

गणित का इतिहास

❖ प्राचार्य दिनदयान्न शर्मा मण्डार, जयपुर

लेखक

डा० ब्रज मोहन एम. ए., एलएल. बी., पीएच. डी.

प्राध्यापक और अध्यक्ष,

गणित विभाग

एवं

प्राचार्य (प्रिंसिपल)

सेण्ट्रल हिन्दू कालेज,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

हिन्दी समिति, सूचना विभाग

उत्तर प्रदेश

लखनऊ

प्रथम संग्रह

१९६५

मूल्य

ती रुपये, पचास पैसे

९५०

मुद्रक

नरेन्द्र भार्गव,

भार्गव ग्रन्थ प्रेस, वाराणसी

प्रकाशकीय

गणित एक ऐसा विषय है जिसकी व्यापकता सार्वभौम है। शिष्ट मानवों से लेकर जंगलों में रहने वाले लोग भी अपने-अपने ढंग से काम-काज चलाने के लिए हिसाब लगाते हैं। अतएव आवश्यकताओं की अभिवृद्धि और सभ्यता के विकास के साथ गणित शास्त्र की विभिन्न शाखाओं का विकास होना भी स्वाभाविक था। एशिया और यूरोप के कई देशों के गणितज्ञों ने इस विकास में योग दिया, किन्तु पश्चिमी इतिहासकारों ने उन सबका उल्लेख एक साथ नहीं किया। भारतीय गणित शास्त्रियों के योगदान के विषय में इतिहास के इन ग्रन्थों में विशेष चर्चा नहीं मिलती। डा० ब्रज मोहन ने प्रस्तुत पुस्तक लिखकर उस अभाव की बहुत कुछ पूर्ति की है। भारतीय गणितज्ञों के अनुसंधान कार्यों की महत्ता सिद्ध करते हुए उन्होंने बड़ी रोचक शैली में यह इतिहास तैयार किया है।

डा० ब्रज मोहन अपने हिन्दी-प्रेम के लिए प्रसिद्ध हैं। वैज्ञानिक विषयों पर सरल, सुबोध भाषा में लिखना प्रायः कठिन होता है, किन्तु डा० ब्रज मोहन हिन्दी के व्यवहार में तदर्थ किसी कठिनाई का अनुभव नहीं करते। प्रस्तुत पुस्तक इसका प्रमाण है। हमें विश्वास है, इससे गणित के विद्यार्थियों का तो विशेष लाभ होगा ही, साथ ही सामान्य पाठक को भी इसमें सुस्चिपूर्ण पठनीय सामग्री मिलेगी।

सुरेन्द्र तिवारी
सचिव, हिन्दी समिति

प्राक्कथन

दिन पर दिन गणित के क्षेत्र का विस्तार होता जा रहा है। एक समय था जब गणित को अंकगणित का समानार्थी माना जाता था। उस समय तक हमारे पूर्वजों को गणित के नाम पर गिनती और पहाड़े ही आते थे। संसार के प्रायः सभी देशों में गणित का आरम्भ अंकों और गिनती से ही हुआ। यही गिनती कुछ समय पश्चात् अंकगणित में परिणत हो गयी। दीर्घ काल बीतने पर गणित के वृक्ष में से कई अन्य शाखाएँ फूट निकलीं—बीजगणित, रेखागणित, त्रिकोणमिति आदि।

ज्योतिष का आरम्भ इस प्रकार नहीं हुआ। इस विद्या की आदि काल से ही एक प्रायः स्वतन्त्र सत्ता रही है। सबसे पहले हमारे पूर्वजों ने तारों का अवलोकन करना आरम्भ किया होगा। तत्पश्चात् उनके विषय में अटकलें लगायी होंगी। इस प्रकार जब से संसार में मनुष्य मात्र का आविर्भाव हुआ, तभी से ज्योतिष्क कार्यों (Bodies) का अवलोकन आरम्भ हो गया था। इतना अवश्य है कि गणित-ज्योतिष का विज्ञान के रूप में विकास तभी हो पाया होगा जब मनुष्य जाति परिकलन (Calculation) में काफी आगे बढ़ चुकी होगी। भारतवर्ष की तो यह परम्परा है कि ज्योतिष गणित का अंग नहीं रहा, इसके विपरीत गणित ज्योतिष का अंग रहा है। या यों कहिए कि ज्योतिष्क परिकलनों में गणित एक परिचारक का कार्य करना था।

एक समय था जब बहुत से मनुष्य संसार के समस्त उपार्जित ज्ञान को कण्ठस्थ कर लिया करते थे। एक समय आजकल का है कि किसी भी व्यक्ति के लिए विद्या की किसी एक शाखा का भी सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना नितान्त असम्भव है। प्रत्येक विषय में से दिन पर दिन नयी नयी शाखाएँ फूटती जाती हैं और भिन्न भिन्न शाखाएँ एक दूसरे से दूर हटती जाती हैं। एक विद्वान् ने आधुनिक गवेषणा की परिभाषा इस प्रकार दी है —“किसी विषय का गवेषणा कार्य आज वह ज्ञान है जो उक्त विषय के विद्येपज्ञों को छोड़ कर और किसी की भी समझ में न आये”। इस उक्ति में बहुत कुछ तथ्य है।

आधुनिक गणित के चार मुख्य अंग हैं—

१. शुद्ध गणित (Pure Mathematics)
२. प्रयोजन गणित (Applied Mathematics)

३ ज्योतिष (Astronomy)

४ सांख्यिकी (Statistics)

यदि इन चारों अंगों का इतिहास लिखा जाय तो एक बृहत् ग्रन्थ तैयार करना होगा। इसके अतिरिक्त प्रयोजित गणित भौतिकी (Physics) के साथ कन्धे से कन्धे भिड़ा कर चलता है। अतः हमारे विचार में प्रयोजित गणित का इतिहास भौतिकी के इतिहास के साथ ही देना चाहिए। ज्योतिष एक स्वतन्त्र विषय बन चुका है, अतः उसका इतिहास स्वतन्त्र रूप में लिखा जाना चाहिए। अब रही सांख्यिकी। इसका जन्म तो गणित से ही हुआ है किन्तु आज यह विषय स्वयं इतना विस्तीर्ण हो गया है कि हमने भी अपनी एक स्वतन्त्र सत्ता जमा ली है। इसके अतिरिक्त यह विषय इतना अर्वाचीन है कि अभी इसका इतिहास लिखने के लिए समय भी परिपक्व नहीं है।

अस्तु, यह ग्रन्थ मुख्यतः शुद्ध गणित का इतिहास है। इसमें ऐसे बहुत से गणितज्ञों की जीवनी देने से रह गयी होगी जिन्होंने प्रयोजित गणित में बिलक्षण कार्य किया हो। इसके अतिरिक्त कतिपय गणितज्ञ ऐसे हुए हैं जिनका मुख्य कार्य प्रयोजित गणित में ही यद्यपि उन्होंने शुद्ध गणित में भी कीर्ति प्राप्त की हो जैसे—

लैप्लास (Laplace), डीलेम्बर्ट (D'Alembert), केंप्लर (Kepler)

इस पुस्तक में ऐसे गणितज्ञों के शुद्ध गणित सम्बन्धी कार्य का ही विस्तृत विवेचन मिलेगा। हमने इनके प्रयोजित गणित सम्बन्धी कार्य का प्रमग घन उल्लेख मात्र कर दिया होगा। इसके अतिरिक्त, बहुत से ऐसे ज्योतिषी हुए हैं जिन्होंने ज्योतिष के क्षेत्र में नाम पड़ा किया किन्तु शुद्ध गणित में जिनका कार्य नगण्य रहा, जैसे कोपर्निकस (Copernicus), टोलेमी (Ptolemy)। हमने इन लोगों के जीवन का भी कोई विस्तृत वृत्तान्त नहीं दिया है। यदा कदा अभिदेश के रूप में इनका नाम भर दिया होगा।

हमने अपने इतिहास में केवल उन्हीं तथ्यों का समावेश किया है जिनकी सत्यता हमारे विचार में प्रायः अमरिगत रूप में प्रमाणित हो चुकी है। लगभग पन्द्रह वर्ष हुए वाली हिन्दू विश्वविद्यालय में गवर्नर पीठ के अधीन स्वामी शंकराचार्य जी पधारे थे। वह गणित के विद्वान् थे। उन्होंने गणितीय विषयों पर कई व्याख्यान दिये थे। इन पत्रिकाओं के लेखकों की व्यक्तिगत रूप से भी कई बार उनके घरों में घटने का अवसर मिला था। उन्होंने अपने व्याख्याता और व्यक्तिगत यात्रा में कई गणितीय गुरु दिये थे जो इस प्रकार हैं—

(१) निम्नलिखित नवतः चरमं दग्धतः

(२) चरमं साम्यं नमृचय्ये

(३) चरलित कलित वर्गों विवेचकः

प्रथम दो पंक्तियों में तो उन्होंने अंकगणित और बीजगणित के कई नियम निकाल कर दिखाये थे। तीसरी पंक्ति का आधुनिक भाषा में यह अर्थ होगा—

(Differential Coefficient)² = Discriminant,

अर्थात् (अवकल गुणांक)² = विवेचक।

अब तब तक इस बीजगणितीय वर्ग समीकरण पर विचार कीजिए—

$$x^2 + 2x + 1 = 0.$$

उपरिलिखित सूत्र का बीजगणितीय रूपान्तर यह होगा—

$$(2 \text{ कय} + 2)^2 = 2^2 - 4 \text{ क ग},$$

अर्थात्
$$y = \frac{1}{2k} \left[-2 \pm \sqrt{2^2 - 4 \text{ क ग}} \right]$$

यही वर्ग समीकरण के हल का आधुनिक रूप है। इस प्रसर (Process) से स्पष्ट है कि उपरिलिखित सूत्र में वर्ग समीकरण का हल, अवकलन गणित (Differential Calculus) की विधि से निकालने का संकेत किया गया है। स्वामीजी ने इन सूत्रों का यह अभिदेश दिया था : अथर्व वेद—परिशिष्ट १। मुझे अथर्व वेद के जितने भी संस्करण काशी के पुस्तकालयों में मिल सके, मैंने सब छान मारे। मुझे उपरिलिखित सूत्र कहीं नहीं मिले। मैंने शंकराचार्य जी को इस विषय में तीन पत्र लिखे। मुझे कोई उत्तर नहीं मिला। तत्पश्चात् मैं वेदों के उद्भट विद्वानों से मिला जैसे पं० गिरिवर शर्मा चतुर्वेदी और पंचगंगा घाट, काशी, के पं० रामचन्द्र मट्ट। उन्होंने बताया कि उपरिलिखित सूत्रों की भाषा ही वैदिक संस्कृत से मेल नहीं खाती। अतः यह वैदिक सूत्र हो ही नहीं सकते। इसके अतिरिक्त वेदों में कहीं गणितीय विषयों का उल्लेख है ही नहीं। इसी दौड़ धूप में मेरे हाथ निम्नलिखित पुस्तक लगी—

G. M. Bolling and J. V. Negelen : The Parishishtas of the Atharva Veda Vol. I Part I : Parishishtas I-52, Leipzig (1909).

मैंने यह ग्रन्थ अपने मित्र डा० वासुदेव शरण अग्रवाल को दिखाया। उन्होंने उसे देख कर कहा कि उक्त पुस्तक में भी कहीं किसी गणितीय विषय का उल्लेख नहीं है। अतः मुझे शंकराचार्य जी के दिये हुए सूत्रों का कहीं पता नहीं चला। पं० गिरिवर शर्मा ने कृपा करके यह तथ्य मुझे अवश्य दिये—

“जब शंकराचार्यजी स्कूल में पढ़ते थे, उनके एक अध्यापक वैदिक ऋचाओं की खिल्ली उड़ाया करते थे और कहा करते थे कि कुछ लोगो के मतानुसार वेदों में समस्त ज्ञान भरा पड़ा है। मला ऐसी अनगल बातों में भी कोई तथ्य हो सकता है।

“शंकराचार्यजी को ये बातें बहुत बुरी लगती थी। उन्होंने उन्ही दिनी यह निश्चय किया कि वह वैदिक सूत्रों की गुरुओं को खोल कर रहेंगे। इस हेतु उन्होंने आठ वर्ष एकान्तवास किया और वैदिक सूत्रों की बुजों प्राप्त करके ही छोड़ी। तत्पश्चात् उन्होंने अपनी गवेषणा का फल पुस्तक रूप में तैयार किया। पुस्तक की पाण्डुलिपि अमेरिका गयी हुई है जहाँ उसके छपने की आशा है।”

जब तक उक्त पुस्तक प्रकाशित न हो जाय तब तक उपरिलिखित सूत्र एक समस्या ही बने रहेंगे। यदि उपरिलिखित तीसरा सूत्र वास्तव में वैदिक है तो इससे यह सिद्ध हो जायगा कि वैदिक काल के हमारे पूर्वज अन्वगणित, बीजगणित आदि के धतिरिक्त कलन (Calculus) के भी ज्ञाता थे। इस तथ्य से कलन शास्त्र का सारा इतिहास ही बदल जायगा। हम उक्त सूत्रों का वास्तविक अभिदेश जानने के लिए बहुत उत्सुक हैं। किन्तु जब तक यथार्थ अभिदेश न मिल जाय तब तक हम इतनी अप्रमाणित बात अपनी पुस्तक में नहीं दे सकते। यदि इस ग्रन्थ के अगले संस्करण तक उक्त सूत्रों का रहस्योद्घाटन हो गया तो हम अवश्य ही इस पुस्तक में उनका समावेश कर लेंगे।

विज्ञानी शास्त्र का इतिहास लिखने के लिए इतिहासकार के पास तीन विधियाँ हैं—वह देश के अनुसार इतिहास लिख सकता है, अथवा विषय के अनुसार अथवा व्यक्तिगत के अनुसार। तीनों मार्गों में कठिनाइयाँ हैं। मान लीजिए कि हम गणित का इतिहास देशानुसार लिखते हैं, तो इसका यह अर्थ हुआ कि यदि हमने इटली से आरम्भ किया है तो हम सर्व प्रथम आदि काल में आपुनिक समय तक इटली के गणित का इतिहास दे देंगे। तत्पश्चात् इसी प्रकार दूसरे देशों के गणित का इतिहास देंगे। इस ढंग से इतिहास लिखने से यह जानना कठिन होगा कि किसी एक काल में भिन्न भिन्न देशों ने गणितीय क्षेत्र में कितनी प्रगति कर ली थी। इस जानकारी के लिए समस्त देशों के इतिहास के पन्ने उलटने पड़ेंगे।

अब मान लीजिए कि हम विषयानुसार इतिहास लिखते हैं, तो यदि हमने अन्वगणित से आरम्भ किया है तो समार भर के अन्वगणित का इतिहास देकर तभी दूसरे विषय पर हाथ लगायेंगे। अब यदि किसी विशिष्ट देश के गणितीय ज्ञान की जानकारी प्राप्त करनी हो तो प्रत्येक विषय के अन्तर्गत उक्त देश के तत्सम्बन्धी पन्नों का अध्ययन करना होगा।

इसी ढंग की कठिनाइयाँ व्यक्तियों के अनुसार चलने में भी हैं। अतः इतिहासकार को इन समस्त विधियों का समन्वय करना होता है। हमने बहुत कुछ सोच-विचार कर गणित की भिन्न भिन्न शाखाओं का इतिहास स्वतन्त्र रूप से लिखने का निश्चय किया है। अतएव हमने अध्यायों को विषय के अनुसार विभाजित किया है। फिर प्रत्येक अध्याय के, काल के अनुसार, कई टुकड़े किये हैं। ऐसा न करने से अध्याय बहुत लम्बे हो जाते और पाठकों का मन ऊँच जाता। इस विभाजन के पश्चात् हमने व्यक्तियों को ही प्रमुखता दी है। हमने इधर बहुत से गणितीय इतिहासों का अध्ययन किया है। हमारा विचार है कि जो इतिहास विषय को ही प्रधानता देते हैं, वे कहीं-न-कहीं जाकर नीरस हो जाते हैं। इसके विपरीत जो इतिहास व्यक्तियों को अधिक महत्त्व देते हैं, उन में मानव तत्त्व बना रहता है अतः वह शुष्क नहीं हो पाते। इसीलिए हमने इस इतिहास को व्यक्ति-प्रधान बनाया है, यों आवश्यकतानुसार कहीं कहीं पर देश अथवा विषय को भी प्रमुखता दे दी है।

जब हमने इतिहास लिखना आरम्भ किया था तो हमारा विचार था कि हम इसे अद्यतन बना दें। किन्तु ज्यों ज्यों कार्य आगे बढ़ता गया, हमें स्पष्ट दिखाई देता गया कि इतिहास को दिनाप्त बनाने के लिए ग्रन्थ का आकार बहुत बढ़ाना पड़ेगा। प्रत्येक विज्ञान बड़े तीव्र वेग से प्रगति कर रहा है। पिछले दस वर्षों में इतना गवेषणा कार्य हुआ है जितना उन से पहले पचास वर्ष में नहीं हुआ था। जो बात और विज्ञानों पर लागू है, वही गणित पर भी लागू है। अतः हमारे सम्मुख दो ही मार्ग थे—या तो सारे इतिहास को संक्षिप्त करके उसे अद्यतन बना देते, या अपनी स्वाभाविक गति से बढ़ते रहते और पिछले पचास साठ वर्ष का इतिहास छोड़ देते। हम ने पिछले मार्ग का अवलम्बन किया है क्योंकि जो पुस्तक ऐतिहासिक दृष्टिकोण से लिखी जाती है उसके लिए पिछले पचास साठ वर्षों का उतना महत्त्व नहीं है जितना आदि काल और मध्य काल का। अतएव इन पन्नों में मुख्यतः सन् १९०० तक का ही वृत्तान्त दृष्टिगोचर होगा। हम जानते हैं कि इसका एक दुष्परिणाम यह हुआ है कि हम बहुत से आधुनिक गणितज्ञों का उल्लेख नहीं कर सके हैं जो अपने अपने क्षेत्र में महान् रहे हैं जैसे —

हॅडमार्ड (Hadamard), लेबेग (Lebesgue), हॉब्सन (Hobson), हार्डी (Hardy), रामानुजन ।

किन्तु किया क्या जाय, लाचारी है। इतना अवश्य है कि 'गणित के इतिहासज्ञ' नामक अंतिम परिच्छेद में हमने प्रायः आज तक के सभी इतिहासकारों का वृत्तान्त दे दिया है। इसका एक कारण यह है कि यह पुस्तक स्वयं एक इतिहास है। अतः

इतिहासज्ञों का तो इसमें विशेष रूप से उल्लेख होना ही चाहिए। दूसरी बात यह है कि पिछली शताब्दी तक तो गणित का इतिहास लिखने की परम्परा ही नहीं बन पायी थी, अतएव हमने उक्त अध्याय को यथासाध्य अद्यावधिक बनाने का प्रयत्न किया है।

प्रायः पुस्तक में देखा जाता है कि पाद टिप्पणियाँ बरमार रहती हैं। हमारा विचार है कि इन टिप्पणियों से पाठक के भस्तिष्क में एक उलझन सी होती है। उसे पाठ्य सामग्री छोड़ कर पाद टिप्पणी पर जाना पड़ता है, और उसे समाप्त करके फिर पाठ पर लौटना पड़ता है। अतः हमने इस ग्रन्थ में पाद टिप्पणियाँ बही दी हैं जहाँ उनका देना अनिवार्य दिखाई पड़ा है अन्यथा हम ने अधिकांश अभिवेश पाठ्य सामग्री के साथ ही द दिये हैं।

यूरोपीय नामों सबधी कठिनाई

एक समस्या है यूरोपिया के नामों की। रोमन लिपि के कई स्वर ऐसे हैं जिन्हें हम नागरी वर्णमाला के स्वरों से व्यक्त नहीं कर सकते। अतः, जैसा कि हमने पुस्तक के प्रारम्भिक अध्याय में भी उल्लेख कर दिया है, हमने इन तीन चिह्नों को अपना लिया है—

God	गॉड,	Pot	पॉट,	Ponder	पॉण्डर
Hat	हॅट,	Man	मॅन,	England	इरलॅण्ड
Get	गैट,	Red	रैड,	Men	मैन

इनमें से पहले दो चिह्न तो १९५४ के लखनऊ के लिपि सुधार सम्मेलन ने भी स्वीकार कर लिये हैं।

इसके अतिरिक्त समस्त यूरोपीय गणितज्ञों और नगरी के नाम हमने कोष्ठकों में रोमन लिपि में भी दे दिये हैं। एशिया और अफ्रीका के नामों के सम्बन्ध में हमने यह नीति नहीं बरती है। कारण, ये नाम रोमन लिपि का अपेक्षा नागरी लिपि के अधिक समीप हैं। अतः ऐसे नाम रोमन लिपि में देने से अपने वास्तविक उच्चारण से और भी दूर चले जायेंगे।

पारिभाषिक शब्द

जो पारिभाषिक शब्द हमें Technical Terms for Secondary Schools—Ministry of Education Govt of India में मिल गये हैं, प्रायः हमने उसी से लिये हैं। जो शब्द उक्त नाम में नहीं मिल हैं, उनके लिए हमने इन शब्दावल्या का महाराज किया है—

१. नागरी प्रचारिणी मन्त्रा : हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावली ।

२. ब्रज मोहन : गणितीय कोश

जब यह पुस्तक लिखी गयी थी, केन्द्रीय सरकार की पूरी गणितीय शब्दावली तैयार नहीं थी। फिर उन्होंने प्रायः बी० एन-सी० तक के गणित के सम्बन्धित पारिभाषिक शब्द प्रस्तुत कर दिये हैं। इसके अतिरिक्त कुछ हिन्दी पर्याय उन्होंने बदल भी दिये हैं। हमने यथासाध्य ऐसे सभी शब्दों को एन पुस्तक में भी बदल दिया है। किन्तु फिर भी संभव है कि कुछ शब्द रह गये हों। कभी कभी ऐसा भी हुआ है कि पुस्तक के आरंभ के कुछ पन्नों में कोई पुराना शब्द आया है और हमें उक्त पन्ने छपने के पश्चात् उक्त शब्द के नये पर्याय का पता चला है। ऐसी स्थिति में हमने ओप पुस्तक में नया पर्याय अपना लिया है और परिशिष्ट में दी हुई शब्दावलियों में दोनों पर्याय दे दिये हैं। यदि कभी पुस्तक का दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ तो उसमें आवश्यकतानुसार संशोधन कर दिया जायगा।

इसके अतिरिक्त जहाँ कहीं कोई पारिभाषिक शब्द पहली बार आया है, हमने कोष्ठक में उसका समानक भी दे दिया है।

बहुवचनों का प्रयोग

हिन्दी में दो प्रकार के बहुवचनों का प्रयोग होता है—बहुत्व सूचक और आदर सूचक। तनिक इन वाक्यों पर विचार कीजिए—

पुस्तकें मेज़ पर रखी हैं।

उसके पिताजी बीमार हैं।

पिछले वाक्य में, “हैं” बहुत्व का सूचक नहीं है, क्योंकि पिताजी केवल एक है। तिस पर भी हम आदर के लिए “हैं” का प्रयोग करते हैं। अंग्रेजी में इस प्रकार का प्रयोग नहीं चलता। अंग्रेजी में कहा जायगा—

His father is ill.

इस वाक्य में हम “is” के स्थान पर “are” नहीं लिख सकते। किन्तु हिन्दी में यह आदर सूचक प्रयोग दीर्घ काल से चला आया है। अब प्रश्न यह है कि हम हिन्दी में लेखकों के लिए एकवचन का प्रयोग करें या बहुवचन का। ऐसा नहीं है कि हिन्दी में एकवचन चलता ही न हो। तनिक इन वाक्यों पर ध्यान दीजिए—

गम् का चाचा गया ।
 गम् के चाचा गये ।
 गम् के चाचाजी गये ।

तीसरे वाक्य में गो "गये" ही लिगना होगा, पहले में "गया" ही लगाना होगा । दूसरे वाक्य में भी 'गये' के ध्यान पर "गया" नहीं लिग सकते । स्पष्ट है कि हम तीनों वाक्यों में से एक को भी गलत नहीं कह सकते । तीसरे वाक्य में दुहरा आदर है क्योंकि उसमें आदर सूचक अव्यय 'जी' भी लगा हुआ है । दो एक उदाहरण और लीजिए—

अगोव एक महान् व्यक्ति था ।
 सम्राट् अगोव बलिग गये थे ।

दूसरे वाक्य में जब हमने आदर सूचक शब्द "सम्राट्" लगा दिया तो "गये" ही कहना होगा, "गया" नहीं कह सकते । किन्तु पहले वाक्य में हमने "अगोव" के साथ कोई आदर सूचक शब्द नहीं लगाया है, इसलिए उसमें हम एकवचन का प्रयोग कर सकते हैं । इसी प्रकार हम यह तो लिख सकते हैं कि "मास्तर कहता था" किन्तु यह नहीं लिख सकते कि "मास्तराचार्य कहता था" ।

अतएव स्पष्ट है कि हिन्दी भाषा बहुवचन प्रधान होने हुए भी, इसमें एकवचन का प्रयोग बजिन नहीं है । इन सब बातों पर विचार करके हमने अधिकतर गणितज्ञों की जीवनीयों में एकवचन का ही प्रयोग किया है क्योंकि यही हमें सुनिश्चित लगता है । केवल जहाँ वही आदर भूतक उपाधियों अथवा अव्ययों का प्रयोग आया है, वहाँ हमने बहुवचन से काम लिया है ।

विभक्ति चिह्न

विभक्ति चिह्न के विषय में भी विभिन्न लेखकों में एकरूपता दिखाई नहीं देती । तबिक इन प्रयोग युग्मों पर ध्यान दीजिए—

Taylor's Series
 Maclaurin's Test
 Bessel's Function

Taylor Series
 Maclaurin Test
 Bessel Function

हम सर्वत्र लाघव सिद्धान्त के समर्थक हैं अतः हमने ऐसे पदों में विभक्ति चिह्न का प्रयोग बिल्कुल नहीं किया है ।

इस पुस्तक की तैयारी के लिए यो तो हमने दसियों ग्रन्थों का अध्ययन किया है किन्तु सबसे अधिक सहायता हमें इन दो पुस्तकों से मिली है—

(i) D.E. Smith : History of Mathematics Vols. I, II : Ginn & Co., New York (1951).

(ii) Encyclopedia Britannica, 14th Ed. (1929)

इतिहास का काल-विभाजन भी हमने बहुत कुछ स्मिथ की पुस्तक के आधार पर ही किया है ।

—ब्रज मोहन

कृतज्ञता प्रकाश

आभार प्रदर्शन एक कठिन कार्य होता है। उन समस्त उद्गमों का तो गिनाना ही कठिन है जिनसे हमें सहायता मिली है। यहाँ तो हम ~~सिर्फ~~ मोटे रूप से दो चार नामों का ही उल्लेख कर सकते हैं। हम "जिन ऐण्ड कम्पनी" के आभारी हैं जिन्होंने हमें स्मिथ की पुस्तक में से दर्जनों फोटो प्रत्युत्पादित करने की अनुज्ञा दी है। हमें "डोवर पब्लिकेशंस, इन्कार्पोरेटेड" ने भी अनुगृहीत किया है। उन्हीं की अनुमति से हमने निम्नलिखित पुस्तक से अनेक चित्रों का उद्घरण किया है :

D. Struik : A concise History of Mathematics (S 1.75)

हम स्क्रिप्टा मैथेमैटिका के प्रति अपना आभार प्रदर्शन करते हैं जिन्होंने हमें अपने निम्नलिखित प्रकाशन में से कई फोटो उद्धृत करने की अनुमति दी :

Portraits of Eminent Mathematicians.

हम केन्द्रीय सरकार के पुरातत्त्व विभाग को भी नहीं भूल सकते जिन्होंने हमें अपने प्रकाशन Bakhshali Manuscript Pts. I-III, में से दो फोटो छाप लेने की अनुज्ञा दी। मेरे मित्र डा० नवरत्न कपूर एम. ए., पीएच. डी. ने पुस्तक की पाण्डुलिपि की तैयारी में मेरी बड़ी सहायता की है जिसके लिए मैं कृतकृत्य हूँ। मैं अपने शिष्यों डा० भगवान दास अग्रवाल एम. ए., पीएच. डी. और डा० शेख मसूद एम. ए., पीएच. डी. का भी आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने परिशिष्टों के निर्माण में मुझे सहयोग दिया है। मेरी भांजी श्रीमती उषा सहगल ने भी शब्दावलियों की तैयारी में मेरा हाथ बँटाया है जिसके लिए मैं अनुगृहीत हूँ।

मैं अपने मित्र पं० निशाकान्त पाठक को भी नहीं भूल सकता। प्रान्तीय सरकार की ओर से यह पुस्तक आप की ही देख रेख में प्रकाशित हुई है। आपने केवल अपना कर्तव्य पालन ही नहीं किया है वरन् इस कार्य में असाधारण व्यक्तिगत रुचि दिखायी है।

--ब्रज मोहन

विषय सूची

अध्याय	पृष्ठ
१. प्रारम्भिक बातें	१
२. संख्या पद्धतियाँ, संख्या शब्द और संख्याक	१५
संख्या वृद्धि	१५
गणना वृद्धि	२४
संख्याक	३१
३. अंकगणित	४०
१. पूर्व ऐतिहासिक काल से ३०० ई० पू० तक	४०
२. ३०० ई० पू० से १००० तक	६३
३. १००० से १५०० ई० तक	८५
४. सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियाँ	१०५
४. बीजगणित	... ११८
१. बीजगणित का नाम और प्रकृति	११८
२. पूर्व ऐतिहासिक काल से ३०० ई० पू० तक	१२०
३. ३०० ई० पू० से ५०० ई० तक	१२६
४. भक्षाली गणित	१३५
५. ५०० से १००० ई० तक	१६८
६. १००० से १५०० ई० तक	१८५
७. सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियाँ	२०८
८. अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियाँ	२२९
५. ज्यामिति	२४३
१. नाम और प्रकृति	२४३
२. ज्यामितीय अलंकार	२४४
३. पूर्व ऐतिहासिक काल से ३०० ई० पूर्व तक	२४७
४. ३०० ई० पूर्व से १००० ई० तक	२६५
५. १००० ई० से १५०० ई० तक	२८१

६ सोलहवीं और ग्यारहवीं शताब्दियाँ	२८७
७ अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियाँ	२९७
६ त्रिकोणमिति	३११
१ दूध घड़ी	३११
२ त्रिकोणमितीय फंक्शन	३१४
३ २०० ई० पूर्व से १००० ई० तक	३१८
४ १००० ई० से १७०० ई० तक	३३०
५ अष्टादशवीं और उन्नीसवीं शताब्दियाँ	३३४
७ चलन और फलन सिद्धान्त	३३७
१ नाम और धर्म	३३७
२ यूरोप में आदिमाल तक ई० से पहले	३५१
३ यूरोप में मध्यकाल सार्वभौम और सभ्यता की शताब्दियाँ	३५५
४ चलन का पूर्व से इन	३६१
५ न्यूटन और लिब्नीज	३६३
६ पश्चिम में आधुनिक काल सभ्यता, अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियाँ	३७३
८ गणित के इतिहास	४४९
१ आदि काल	४४९
२ सोलहवीं सभ्यता और अठारहवीं शताब्दी	४५०
३ उन्नीसवीं शताब्दी	४५२
४ बीसवीं शताब्दी	४५३
९ परिशिष्ट	४५९
१ कोशावली-गणितीय शब्दकोश और विश्वकोश	४५९
२ ग्रन्थावली	४६३
३ लेखावली	४६९
४ हिन्दी-अंग्रेजी शब्दावली	४७६
५ अंग्रेजी-हिन्दी शब्दावली	४८९
६ निष्ठावली	
७ अनुक्रमणिका	

चित्र-सूची

क्रमिक	शीर्षक	पृष्ठ
१.	संख्याओं के लिए पड़ी रेखाओं का प्रयोग	३२
२.	ब्रिजिन देन के संख्यांक चिह्न	३३
३.	मिन्दी संख्याओं का प्राचीन रूप	३३
४.	मिन्दी संख्यांक	३४
५.	सादप्रम के प्राचीन संख्यांक	३५
६.	" " " "	"
७.	हिब्रूओं के आधारीक संख्यांक	३७
८.	यूरोप के प्राचीन अंक	३९
९.	तिब्बत का जीवन चक्र	४४
१०.	खोग आकृति	४५
११.	होतू आकृति	"
१२.	अष्टादशवीं शताब्दी ई० पू० के संख्यांक	४७
१३.	अहमिस पैपिरस	५२
१४.	घोथियस अंकगणित की पांडुलिपि	८४
१५.	सैंक्रोवांस्को की एक हस्तलिपि से	८८
१६.	फ्रांस के प्राचीनतम 'पाटीगणित' का एक पृष्ठ	८९
१७.	पेंसियोली की पुस्तक से	९१
१८.	+ और - चिह्नों का प्रथम प्रयोग	९२
१९.	श्रीघर की त्रिशतिका के दो पृष्ठ	९४
२०.	लीलावती की भोजपत्रीय हस्तलिपि	९८
२१.	'लीलावती' के फैंजी के अनुवाद से	९९
२२.	मिन्न मोटाई वाली लकड़ी की आकृति	१००
२३.	समान मोटाई वाली लकड़ी की आकृति	१०१
२४.	बारह वर्गों में विभाजित एक आयत	१०५
२५.	सोलहवीं शताब्दी का त्रैशिक	१०६
२६.	ऐडम रीज के अंकगणित से (१५२२)	११०

२७ आपस्तम्ब के नियम से सम्बन्धित आकृति	१२१
२८ बौधायन की विधि से सम्बन्धित आकृति	१२२
२९ दो समान्तर भुजावा वाला समबाहु समलम्ब	१२३
३० ऐरियमैटिका का सकेतवाद	१२९
३१ मक्षाली हस्तलिपि प्लेट ३६	१३६
३२ मक्षाली हस्तलिपि के अक्षर	१४१
३३ मक्षाली हस्तलिपि प्लेट ४	१६०
३४ अलखारिज्मी की पुस्तक का प्रथम पृष्ठ	१८१
३५ अलखारिज्मी के समीकरण का एक वर्ग	१८३
३६ अलखारिज्मी के समीकरण का एक अन्य वर्ग	१८३
३७ नीशापुर में उमर खय्याम की कब्र	२०३
३८ फैसाय बीटा (१५४०-१६०३)	२१४
३९ बीजगणित के मूल चिह्न के विभिन्न रूप	२१७
४० नेपियर (१५५०-१६१७)	२२१
४१ न्यूटन (१६४२-१७२७)	२२३
४२ एक जापानी माया वर्ग	२२६
४३ १२९ सख्याओं का एक जापानी माया वृत्त	२२७
४४ जापानी माया वर्गों का आधा भाग	२२८
४५ लैंग्राज (१७३६-१८१३)	२३०
४६ लेजाङ्ग (१७५२-१८३३)	२३२
४७ गैलायस (१८११-३२)	२३३
४८ ऑयलर (१७०७-८३)	२३५
४९ ऑबेर्ल (१८०२-२९)	२३७
५० जापान का पास्कल त्रिभुज	२४०
५१ सइया सम्पाँ का एक पृष्ठ	२४१
५२ मिट्टी का एक प्राचीन वर्तन	२४५
५३ वाँसे की एक प्राचीन सुराही	२४६
५४ लौह युग का ज्ञाकर	"
५५ आठवीं शताब्दी का ज्ञाकर	२४७
५६ चउ पेइ का एक चित्र	२४८
५७ शुल्ब प्रमेय का ज्यामितीय प्रदर्शन	२५१

५८. दो शुल्ब सूत्रीय क्षेत्रफल	२५३
५९. श्येनचित् वेदी में शुल्ब प्रमेय	२५४
६०. चट्टान काटकर बनाया हुआ मिस्री मन्दिर	२५७
६१. मिस्र की चित्रलिपि	२५८
६२. मिस्र की धर्मलिपि	"
६३. हिपॉक्रेटीज के त्रिभुज की दो भुजाओं पर अर्धवृत्त	२६२
६४. यूक्लिड के अनुवाद का एक पृष्ठ	२६६
६५. महावीर के कुछ ज्यामितीय क्षेत्रों की आकृतियाँ	२७७
६६. " " " "	२७७
६७. " " " "	२७८
६८. तावित डन्न कोरा के यूक्लिड के अनुवाद में से शुल्ब प्रमेय का उद्धरण	२८०
६९. लीलावती का एक पृष्ठ	२८४
७०. दकार्त (१५९६-१६५०)	२९३
७१. पास्कल (१६२३-६२)	२९५
७२. देसार्ग का एक विख्यात प्रमेय	२९६
७३. मॉंजे (१७४६-१८१८)	३००
७४. गाडस (१७७७-१८५५)	३०३
७५. स्टेनर (१७९६-१८६३)	३०८
७६. लोवाच्यूस्की (१७९३-१८५६)	३१०
७७. ब्रूप घड़ी के लिए समतल त्रिभुज	३१२
७८. मिस्र की प्राचीन ब्रूप घड़ी	३१२
७९. हेम घड़ी	३१४
८०. ब्रूप घड़ी के लिए त्रिकोणमितीय फलन	३१४
८१. त्रिकोणमितीय कोटिज्या	३१६
८२. मेंनिलॉज का समतल त्रिभुज प्रमेय	३१९
८३. सुवाकर द्विवेदी (१८६०-१९२२)	३३८
८४. समाकलन का एक ज्यामितीय वक्र	३४७
८५. निःशेषण विधि का एक अष्टभुज	३५२
८६. हाइगेंस (१६२९-९५)	३५७
८७. वॅरो अवकलन त्रिभुज	३६०
८८. जापान में कलन का उद्भव	३६२

८९	जापान में चलन का उद्भव	३६३
९०	हिंदी ज्यामितीय रेखा की ढाल नापना	३६५
९१	लिब्नीज (१९४६-१७१६)	३६८
९२	लिब्नीज का चलन पर पहला अभिप्रेत	३७०
९३	फोर्ट के एक प्रमेय का वृत्त	३८१
९४	मैबलारिन का विभाजन	३८५
९५	लैप्लास (१७९४-१८२७)	३८९
९६	गाइस के समिन्ध अक्षरों का चक्र	३९५
९७	कॉशी (१७८९-१८५७)	३९८
९८	जैकोबी (१८०४-५१)	४०३
९९	हैमिल्टन (१८०५-६५)	४०७
१००	बीजगणित के एक विचार निमन का प्रदर्शन	४१५
१०१	बीस्ट्रॉस	४१७
१०२	एक अवकलनशील फलन	४२१
१०३	सिल्वेस्टर (१८१४-९७)	४२३
१०४	बेज़ी (१८२१-९५)	४२४
१०५	स्टीलजैज (१८५६-९४)	४२७
१०६	रीमान (१८२६-६६)	४३०
१०७	कॉन्सिडरिंग नगर में नदी के साथ पुल	४३३
१०८	रीमानी तल	४३४
१०९	कॉन्टर (१८४५-१९१८)	४३९
११०	पॉएन्कारे (१८५४-१९१२)	४४४
१११	गणेश प्रसाद (१८७६-१९३५)	४५६

अध्याय १

प्रारम्भिक बातें

प्रत्येक इतिहासज्ञ को बहुत-से विदेशियों के नाम अपनी लिपि में लिखने पड़ते हैं। आज जब हमने गणित के इतिहास पर अपनी लेखनी उठायी है तो स्वभावतः इसके अन्तर्गत बहुत-से अंग्रेज, फ्रांसीसी और जर्मन गणितज्ञों के नामों का उल्लेख करना होगा। इस संबन्ध में तुरन्त यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि विदेशियों के नाम लिखने में कौन-सी पद्धति अपनायी जाय। हमारा विचार है कि यदि किसी विदेशी का नाम हमारे देश में प्रचलित हो गया है तो लेखकों को उसे उसी रूप में लिखने की छूट देनी चाहिए जिस रूप में वह प्रचलित हो चुका है, चाहे वह रूप ठीक हो चाहे गलत। फ्रैंच गणितज्ञ De Moivre का वास्तविक उच्चारण दः म्वात्रे है, परन्तु अंग्रेजी में अधिकतर लोग इसे 'डी मॉयवर' पढ़ते हैं। पिछले डेढ़ सौ वर्षों में हमारा घनिष्ठ संबन्ध अंग्रेजी से ही रहा है, अतः भारतवर्ष में भी यह नाम 'डी मॉयवर' रूप में ही प्रचलित हुआ है। हमारा विचार है कि अब हम लोगों को यह नाम नये और पुराने दोनों रूपों में लिखते रहना चाहिए।

फ्रैंच गणितज्ञ Dirichlet के नाम का फ्रांसीसी उच्चारण होगा 'डिरिश्ले'। किन्तु अंग्रेजी लेखकों ने इस नाम का विकृत रूप डिरिचले स्वीकार कर लिया है। इस देश के गणितज्ञों ने भी इस विकृत रूप को ही अपनाया है। यह रूप इतना प्रचलित हो गया है कि अब देश के बहुत थोड़े गणितज्ञ यह बात जानते होंगे कि उक्त फ्रैंच गणितज्ञ का वास्तविक नाम यह नहीं है। अतः अब हमें ऐसा कोई कारण दिखाई नहीं देता कि हम इस नाम को बदलें। इसी प्रकार के दो-चार नाम हम यहाँ और देते हैं—

Des Cartes

डे कार्टेज

Schwarz

श्वाज़

Vander Pol

वेंदर पोल

Levi Civita

लैवी सिविता

Leibnitz

लिब्नीज़

यहाँ एक कठिनाई और उपस्थित होनी है। हमें इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि कोई गणितज्ञ अपने नाम को स्वयं किस प्रकार लिखा करता था। एक उदाहरण लीजिए जैकब बर्नोली (Jacques Bernoulli) का। यह गणितज्ञ स्वित्जरलैंड के बेसिल नगर में रहता था जहाँ जर्मन भाषा बोली जाती थी और उसका नाम जैक्स ही लिखा जाता था। इसकी वशावली वेंलियम की थी, किन्तु यह अधिकतर फ्रेंच अथवा लटिन में लिखा करता था। फ्रेंच में तो इसका नाम जैक्स ही रहा, किन्तु लटिन में बदलकर जकोबिस (Jacobes) हो गया। जर्मन लेखकों ने इसके नाम को बिगाड़कर जैकब (Jacob) कर दिया और अंग्रेजी ने इसे सीधा-सादा जेम्स (James) बना दिया। अब प्रश्न यह है कि हम इस नाम के कौन-से रूप को स्वीकार करें। हम जैक्स रूप ही अपनाना पसन्द करेंगे क्योंकि उक्त गणितज्ञ अधिकतर अपने नाम को इसी प्रकार लिखा करता था। किन्तु पाठकों की सुविधा के लिए हम यदा-कदा समस्त प्रचलित रूपों का प्रयोग करेंगे।

यहाँ एक सिद्धान्त और भी दृष्टिगोचर होता है। हमें इस बात पर भी विचार करना होगा कि किसी गणितज्ञ के नाम का कौन-सा रूप अपनाने से गणित के विद्यार्थियों को सुविधा होती है। एक उदाहरण लीजिए लियोनार्डो फिबोनाकी (Leonardo Fibonacci) का। इसको लियोनार्डो बोनाकी भी कहते हैं, फिबोनाकी भी और बोनेमियस भी। अब प्रश्न यह है कि इन तीनों रूपों में से कौन-सा रूप अपनाया जाय। यो तो हम इस बात पर विचार करते हैं कि लेखक स्वयं अपना नाम किस प्रकार लिखा करता था, किन्तु इस सवन्ध में एक महत्त्वपूर्ण बात यह उल्लेखनीय है कि गणित में एक श्रेणी (Series) बहुप्रचलित है जिसका नाम फिबोनाकी श्रेणी (Fibonacci Series) पड़ गया है। यह तथ्य अन्य सभी सिद्धान्तों को दवा देता है। अतः हम उक्त गणितज्ञ का नाम लियोनार्डो फिबोनाकी ही लिखेंगे।

ये तो रहे सामान्य सिद्धान्त। इनके होने हुए भी कहीं-कहीं पर बड़ी कठिनाई आ पड़ती है। कुछ गणितज्ञों के विषय में तो यह पता ही नहीं चलता कि वे स्वयं अपना नाम किस प्रकार लिखा करते थे। कुछ गणितज्ञों के नाम भिन्न-भिन्न देशों में विरुद्ध होते हुए भिन्न-भिन्न रूपों में पहुँचे और अन्त में इंग्लैण्ड में जाकर उनका रूप मूल रूप से बहुत दूर पहुँच गया। हमारी सूचना का उद्गम अधिकतर अंग्रेजी पुस्तकें हैं। अब हमें उन नामों का अंग्रेजी रूप ही प्राप्त हुआ है। अब उनके मूलिक रूप का पता चलाना भी दुष्कर है। अतएव हम ऐसे नामों का अंग्रेजी रूप ही स्वीकार करेंगे।

इसके अनिश्चित विभिन्न देशों की नाम-पद्धतियाँ और रीति-रिवाज भी अलग-

अलग होते हैं। अरब देश में बड़े लम्बे-लम्बे नाम होते हैं। यहाँ तक कि किसी-किसी नाम के एक-एक दर्जन भाग होते हैं और कभी-कभी उन भागों में से कोई-सा भी प्रचलित हो जाता है। हिन्दुओं और जापानियों में एक आधिकारिक नाम होता है और एक पुकारने का नाम, और कभी-कभी पुकारने का नाम ही अधिक प्रचलित हो जाता है। इसके अतिरिक्त हमारे देश में पहले जातिनाम लिखने की पद्धति ही नहीं थी। यह प्रणाली तो अंग्रेजों के सम्पर्क से प्रचलित हुई है। आधुनिक काल में भारतवर्ष में एक बहुत बड़ा गणितज्ञ रामानुजन हुआ है। इसका जाति नाम आयंगर था। अतः यदि इसका नाम आधुनिक अंग्रेजी ढंग से लिखा जाय तो रामानुजन आयंगर होगा। किन्तु इसका रामानुजन नाम जगत्प्रसिद्ध हो चुका है और बहुत कम लोग जानते हैं कि इसका जातिनाम आयंगर था। सच पूछिए तो इस देश की परम्परा के अनुकूल भी इसका नाम रामानुजन ही कहलायेगा, क्योंकि हमारी प्राचीन प्रणाली केवल प्रथम नाम लिखने की ही थी। हमारे यहाँ के कुछ गणितज्ञों के प्रचलित नाम ये हैं—

भास्कर, आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, बराहमिहिर।

आज कौन जानता है कि इन लोगों के जातिनाम अथवा वंशनाम क्या थे ?

एक संवद्ध प्रश्न है नाम-संबन्धी शब्दों का। ऐसे शब्द दो प्रकार के होते हैं— एक तो वे जिनमें नाम के मौलिक रूप के साथ कोई अन्य शब्द जोड़ दिया जाता है, यथा—

Newton's Theorem, Raman Effect, Cauchy Test, Taylor Series.

मेरी समझ में समस्त वैज्ञानिक इस बात पर सहमत होंगे कि किसी भी आविष्कार के साथ उसके आविष्कारक का नाम अवश्य ही जुड़ा रहना चाहिए। Newton's Theorem को हम हिन्दी में 'न्यूटन का प्रमेय' कहेंगे। Raman Effect को 'रमन प्रभाव' ही कहना होगा। इसी प्रकार Taylor Series को हम 'टेलर श्रेणी' के अतिरिक्त और क्या कह सकते हैं ? कुछ अतिवादी ऐसे शब्दों का भी ऐसा अनुवाद करना चाहते हैं, जिसमें आविष्कारक का नाम न आये। बरन् उसके किसी गुण पर नाम रख दिया जाय, जैसे Taylor Series का कर्म है किसी फलन (Function) का प्रसार करना। अतएव मान लीजिए कि हम Taylor Series को 'प्रसार श्रेणी' कह दें। इसी प्रकार Cauchy Test को हम 'कांशी परीक्षण' न कहकर 'तुलना परीक्षण' कह दें। कुछ लोग इस प्रकार के अनुवाद करना चाहते हैं।

हमें तो यह प्रवृत्ति अवैज्ञानिक, अन्यायोचित और घातक जान पड़ती है। यदि हम दूसरे देशों के वैज्ञानिकों के नामों का बहिष्कार करेंगे तो दूसरे देशों के वैज्ञानिक

भी हमारे देश के वैज्ञानिकों के नामों की उपस्था करेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि एक दिन ऐसा आयेगा कि समग्र समस्त वैज्ञानिकों के नामों का मूल चुकेगा और यह पता चलाना भी कठिन हो जायगा कि कौन-सा आविष्कार किस वैज्ञानिक ने किया था। ऐसी स्थिति न हमारे देश के लिए वाछनीय होगी, न अन्य देशों के लिए।

दूसरे प्रकार के नाम-समस्या की बातें हैं जिनमें वैज्ञानिकों के नामों के विवृत रूप को ही उनके आविष्कार का नाम बना दिया जाता है। जैसे Jacobi Determinant का एक स्वतन्त्र नाम Jacobian ही पड़ गया है। इसी प्रकार Wronski's Determinant का नाम Wronskian पड़ गया है। इन नामों के पर्याय यदि हम चाहें तो 'जकोबी का सारणिक' और 'रॉन्स्की का सारणिक' रख सकते हैं। परन्तु यहाँ एक ध्यान विचारणीय है। जब हम Euler's Constant कहते हैं तो उसका अर्थ होता है 'एक ऐसा अक्षर जिसका अध्ययन या उपलक्षण सबसे पहले आइलर ने किया था'। इसलिए इसे 'आइलर का अक्षर' कहना ही उचित होगा। इसी प्रकार यदि हम Jacobian को 'जकोबी का सारणिक' बतें तो विशेष हानि नहीं है। परन्तु Jacobian के विषय ने अपना एक स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित कर दिया है जिसका सारणिक के माध्यम नियमों से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रह गया है। Jacobian के प्रयोग का अब वास्तविक विश्लेषण (Real Analysis) में ऐसा ही स्थान है जैसा रेखागणित में वृत्त का या बीजगणित में अनुपात और समानुपात (Ratio and Proportion) का। इसलिए यदि Jacobian का 'सारणिक' विषय से एक विलक्षण स्वतन्त्र नाम रख दिया जाय तो अत्युत्तम होगा। अतः Jacobian को हिन्दी में भी 'जकोबियन' ही क्यों न कहें? यदि हम यह व्यापक नियम बना लें कि अंग्रेजी के जो शब्द व्यक्तियों के नामों के रूपान्तर माय हैं, उन्हें ज्या-वा-र्या हिन्दी में अपना दिया जाय तो बहुत सुविधाजनक होगा। इसी प्रकार हिन्दी में भी Hessian को 'हेसियन' और Wronskian को 'रॉन्स्कियन' ही कहेंगे।

किन्तु इस बात पर अवश्य ही विचार करना होगा कि यदि ये शब्द क्रियाओं का नाम भी करते हैं तो हमको इनसे हिन्दी में क्रियापद भी बनाने होंगे। क्रियापद बनाने में हम संस्कृत व्याकरण के नियमों का पालन करेंगे न कि अंग्रेजी व्याकरण के नियमों का। हम निम्नलिखित शब्द—

Polonium, Helium, Europium

को हिन्दी में भी "पोलोनियम, हीलियम, यूरोपियम" ही कहेंगे। किन्तु किसी दिन हमें निम्नलिखित शब्दों के समानार्थी बनाने की आवश्यकता पड़ सकती है—

Poloniumate, Poloniumated, Poloniumator

हम 'पोलोनियम' को तो हिन्दी में अपना सकते हैं, किन्तु उपरिलिखित तीनों शब्दों को कदापि हिन्दी में स्थान नहीं दे सकते। इनके लिए हमें इस प्रकार के पर्याय बनाने होंगे—

पोलोनियमन, पोलोनियमित, पोलोनियामक।

एक प्रश्न विदेशी नामों के उच्चारण का भी महत्वपूर्ण है। आजकल नागरी-लिपि में सुधार का प्रश्न छिड़ा हुआ है। इस प्रश्न के व्यापक अंगों से तो हमें इस समय कोई प्रयोजन नहीं है। यहाँ हमें उक्त प्रश्न के केवल उन्हीं अवयवों पर विचार करना है जिनका संबन्ध विदेशी नामों के उच्चारण से है। सबसे पहली बात तो यह दृष्टिगोचर होती है कि अंग्रेजी में कुछ स्वर ऐसे हैं जिनके लिए हिन्दी में अनुसारी स्वर नहीं है; जैसे God और Hockey में o का उच्चारण और Hat और Man में a का उच्चारण। १९५४ में लखनऊ में एक नागरी-लिपि सुधार सम्मेलन हुआ था जिसने इन स्वरों के लिए ये नये चिह्न निर्धारित किये थे—

गाँड, हाँकी, हाँल, कॉल।

मॅन, कॅट, हॅट, कॅप।

हम इस पद्धति को स्वीकार करते हैं।

इसी प्रकार अंग्रेजी के शब्द 'Pen' के 'e' के उच्चारण के लिए हिन्दी में कोई स्वर नहीं है। हिन्दी भाषा-भाषी इन शब्दों के लिखने में 'ए' की मात्रा से ही काम लेते हैं। अतः ये लोग Pen को 'पेन', Get को 'गेट', Pest को 'पेस्ट' लिखते हैं। इस प्रकार अंग्रेजी के Get और Gate में, Pen और Pain में तथा Pest और Paste में कोई अन्तर नहीं रहता। इसलिए कुछ लोगों ने यह प्रस्तावित किया है कि अंग्रेजी के इस स्वर के लिए हिन्दी के 'ए' की उल्टी मात्रा निर्धारित की जाय। यदि यह प्रस्ताव मान लिया जाय तो हम उपरिलिखित शब्द इस प्रकार लिखेंगे—

Get	गॅट	Gate	गेट
Pen	पॅन	Pain	पेन
Pest	पॅस्ट	Paste	पेस्ट

हम इस प्रस्ताव को भी स्वीकार करते हैं। कुछ कट्टरपंथी यह कहते हैं कि "हम दूसरी भाषा के शब्दों के उच्चारण के लिए अपनी लिपि में नये स्वर क्यों बनाएँ। जितनी जीवित भाषाएँ संसार में हैं सबकी सब अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करती हैं। किन्तु वे उन शब्दों को अपनी लिपि और वर्णमाला के अनुसार तोड़-मरोड़ लेती हैं और उन्हें अपने ही व्याकरण के नियमों में बाँधती हैं। उनके लिए कोई नया स्वर

या व्यंजन नहीं बनाया। बाणस्य का नाम अग्रज्जा म म प्रसार Ch nakya लिया जाता है। ज क डिग बाह्य व्यंजन नया बनाया जाता। गया क नाम का विगाह्यर Gunges बना लिया गया है। यन्त्र नाम का विगाह्यर गता ना भा क गग गया का Gungar लिया। इ क डिग बाह्य व्यंजन नया बनाया। यन्त्र क जनता गज जोर नाम लभ ह जिह अग्रज्जा म लक्ष रूप म लिया गया मयत। लभ गता का अग्रज्जा म निरुद्धतम विहृता रूप का लिया जाता है और यहा बाह्य का जाता है, जैसे—

विज्ञान Vigyan अथवा Vyjan वा Vjnan

द्वान Dar han

इतिहास Ithas

यदि आज हम अग्रज्जा नामा अथवा गता को अपना लिपि म लिखत समय नय नय चिह्न और स्वर बनाने लगें तो मज का यदि हम कोई गता दें व जमन या हमा भाषा म गते तो कल्पित हम और भा कई नय चिह्न बनाने पड़ें। इस प्रकार ता नय-नय चिह्ना व निर्माण का बर्मी अने हा नहा पाया। जय म Ilast नाम हिन्दी म लिखत ह तो छट लिया जाता है। क उच्चारण क लिपि कोई नया स्वर नहा बनाया जाता। यही प्रकार यदि हम गणितन Ab I का नाम लिखना हा तो हम आगल या औगल क्या न लिख। उसक डिग लक्ष नय स्वर आ का मजन क्या कर ?

हम यह मानत ह कि यह तक तथ्यहीन नहा है किन्तु हम म विषय म एव उचार और ध्यापक नीति अपनानी चाहिए। प्रथम ता यह कहना गलत हागा कि अग्रज्जा विज्ञेया गता क लिखन म अपनी लिपि म कोई परिवर्तन नया करत। हमन तो कई अग्रजा का गया और बाणस्य जैम नाम इस प्रकार लिखत दया है—

Ganga Chanakya

भी प्रकार आवश्यकतानुसार य गग ऊपर अथवा नीचे विज्ञेया अथवा इस प्रकार क चिह्न लगाकर

/ V — ~ ~

नय वण बना गते ह। स्मिथ (Smith) न अपने गणित के इतिहास म भी विज्ञेया गणितना क नाम लिखन म बहुत-से नय चिह्ना का प्रयोग किया है। किन्तु यदि थोडा देर के लिए मान लिया जाय कि अग्रज्जा अपना लिपि म विज्ञेया गता के कारण कोई परिवर्तन नहीं करते तो भी क्या यह मनावर्ति अनुकरणीय है ? आधुनिक यग म किसी भा दश के निवासी कय मण्डूक बनकर नहीं रह सकते। यदि रह तो इसम उन्हा का अहित है। अपनी भाषा और लिपि जितनी भी अभिव्यक्त बनायी

जा सके, बना देनी चाहिए। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हम संसार की समस्त भाषाओं के स्वर चिह्न अपनी लिपि में बढ़ा लें। इस प्रकार तो हमारी लिपि कभी पूर्ण हो ही नहीं पायेगी। यहाँ प्रदत्त आदर्श का नहीं, वग्न वस्तु-स्थिति का है। गत डेढ़ सौ वर्षों में हमारा सम्पर्क अंग्रेजों से रहा है। यह अच्छा हुआ या बुरा, इस समय इस पर विचार नहीं करना है। किन्तु सम्पर्क रहा, इस तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस सम्पर्क का यह परिणाम हुआ है कि अंग्रेजी के सैकड़ों शब्द हमारी भाषा में घुल-मिल गये हैं, जैसे—

Handle, Bracket, Platform, Gallon, Waggon, Match, Hall, Hockey, Ball, Dock—

ये शब्द देश के बहुत-से स्थानों में प्रचलित हो गये हैं और इन्हें अब अपनी भाषा से निकाल देना न तो संभव है न वाञ्छनीय। इसके अतिरिक्त अभी कम-से-कम दस-तीस वर्ष तक हमारे विद्यार्थियों के लिए अंग्रेजी सीखना अनिवार्य है। अतः उनके लिए अंग्रेजी शब्दों के शुद्ध उच्चारण जानना आवश्यक है। इसलिए अपनी लिपि में रोमन लिपि के कुछ स्वर-चिह्न बनाने ही होंगे। किन्तु हम केवल उन्हीं स्वर चिह्नों को बढ़ाने के लिए तैयार हैं जो हमारे प्रयोग में प्रतिदिन आते रहते हैं। हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि रोमन लिपि के समस्त स्वर-चिह्नों को नागरी लिपि में अपना लिया जाय। हमने केवल उपरिलिखित तीन चिह्नों को ही आवश्यक समझा है। रोमन लिपि के और भी कई स्वर चिह्न ऐसे हैं जिनका हमारी लिपि में समावेश नहीं है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी शब्द People पर विचार कीजिए। हमने इस शब्द को हिन्दी में चार प्रकार से लिखा देखा है—

पीपुल, पीपल, पीपिल, पीप्ल।

वास्तव में ये चारों हिज्जे अशुद्ध हैं। क्योंकि इनमें से एक भी उस उच्चारण का द्योतक नहीं है, जो अंग्रेजी शब्द People में समाविष्ट है। तो क्या हम इस उच्चारण के लिए भी एक नये चिह्न की सृष्टि करें? कदापि नहीं। क्योंकि यह स्वर ऐसे बहुत कम शब्दों में प्रयुक्त होता है, जिनको हिन्दी में लिखने की आवश्यकता पड़े। इसी प्रकार के कई और भी स्वर हैं—

Light, There, Flour

हमारा विचार यह नहीं है कि अंग्रेजी के इन स्वरों के लिए भी नये चिह्न बनाये जायें। यदि कहीं आवश्यकता पड़ेगी तो हम उक्त शब्दों के निकटतम हिन्दी उच्चारण के चिह्नों से काम चला लेंगे।

इस सम्बन्ध में एक बात और भी विचारणीय है। जहाँ तक हमारा तात्कालिक

हेतु है, हमें तो केवल विदेशी गणितज्ञों के नामों के शुद्ध उच्चारण के लिए चिह्न बनाने हैं। अतः यदि इस पुस्तक के लिए हम कुछ नये चिह्न बना भी लें तो उनसे नागरी-वर्णमाला अथवा लिपि पर कोई व्यापक प्रभाव नहीं पड़ता। इस पुस्तक के पाठकों की समस्या और क्षेत्र सीमित हैं।

अभी तक हिन्दी में उच्च गणित की पुस्तकों का अभाव रहा है। अतः आवश्यक गणितीय सकेतों की समस्या कभी उग्र रूप से हमारे सम्मुख नहीं आयी। किन्तु अब दिन प्रति-दिन हिन्दी में उच्च गणित की पुस्तकों की संख्या बढ़ती जा रही है। अतएव यह आवश्यक है कि हम गणितीय सकेतों के प्रश्न पर भी विचार कर लें। कुछ लोग का मन है कि हमें समस्त वैज्ञानिक सकेत ज्यों-के-त्यों अंग्रेजी से ले लेने चाहिए। इस प्रकार मित्र-मित्र देशों के वैज्ञानिकों में विचार विनिमय सरलता से हो सकेगा। यदि प्रत्येक देश के सकेत अलग-अलग रहेंगे तो आस्ट्रेलिया के वैज्ञानिकों को इसी गवेषणा पत्रों के पढ़ने में कठिनाई होगी। एक दिन हमका यह परिणाम निकलेगा कि मित्र-मित्र देश वैज्ञानिक समन्तल पर एक दूसरे से दूर होने जायेंगे। इस प्रकार कभी भी कोई अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक सकेतलिपि बन ही न पायेगी।"

इस तर्क के समर्थक ऐसे प्रस्ताव को व्यावहारिक रूप देने में जो कठिनाइयाँ पड़ेंगी उन पर ध्यान नहीं देते। यदि हमने अंग्रेजी के समस्त सकेतों को अपना लिया तो हमारे मुद्रणालयों को नागरी लिपि के अनिश्चित ग्रीक लिपि के भी समस्त वर्ण रखने पड़ेंगे। या ही हिन्दी की छपाई में पर्याप्त कठिनाइयाँ हैं, एक कठिनाई और बढ़ जायगी। हिन्दी का मुद्रण इस समय भी महंगा है, इस प्रकार और महंगा हो जायगा। इस समय हिन्दी की छपाई के लिए चार बरकें चाहिए, तब कदाचित् छ बरक़ा की आवश्यकता पड़ेगी। या समझिए कि हिन्दी की छपाई सरलतर होने के बदले कठिनतर हो जायगी।

एक बात और भी है। इस प्रकार के तर्क सुनने से ऐसा प्रतीत होता है मानो देश में केवल वे ही मुक्त अध्ययन करते हैं जिन्हें अन्त में गवेषणा करनी होती है। हमें केवल गवेषका का हित ही ध्यान में नहीं रखना है, जिनकी संख्या किसी भी देश में एक प्रतिशत भी न होगी। हमें अधिक समय और दक्षिण तो सामान्य विद्यार्थियों की शिक्षा पर लगाना है जिनकी संख्या ९९ प्रतिशत में भी अधिक होगी। जो विद्यार्थी स्कूलों में शिक्षा पाते हैं उनमें से बहुत-से हाई स्कूल के पश्चात् अध्ययन छोड़ देते हैं। जो विद्यार्थी कॉलेजों में शिक्षा ग्रहण करते हैं, उनमें से भी बहुत-से बी० ए० के बाद पढ़ाई तर्क कर देते हैं। जो छात्र एम० ए० पास करते हैं, उनमें से भी बहुत ही थोड़े ऐसे निकलते हैं जो गवेषणा कार्य में अपना जीवन लगाने हो। इस अल्प

संख्या के हेतु समस्त देश पर एक विदेशी दुर्योधन संकेत-लिपि न्याद देना कहाँ की बुद्धिमानी होगी ?

आज एक विद्यार्थी पढ़ता है कि H_2O का अर्थ है 'पानी' क्योंकि $H=Hydrogen$ और $O=Oxygen$ । और पानी में दो भाग हाइड्रोजन के रहते हैं और तीन भाग ऑक्सीजन के। किन्तु आज से पचास वर्ष उपरान्त का एक भारतीय छात्र कदाचित् अंग्रेजी वर्णमाला से सर्वथा अनभिज्ञ होगा। वह 'H' और 'O' का क्या अर्थ लगायेगा ? आज का पाठक जानता है कि H अंग्रेजी वर्णमाला का एक वर्ण है, जिसकी ध्वनि 'ह' की-सी होती है। उस दिन का विद्यार्थी केवल इतना समझेगा कि 'H' एक विशेष प्रकार का चिह्न है जिसमें दो लकीरें खड़ी रहती हैं और एक लकीर पड़ी। न. वह H और हाइड्रोजन का संबन्ध समझेगा, न H_2O और पानी का। वह केवल बिना समझे ही रट लिया करेगा कि H_2O एक चिह्न विशेष है पानी के लिए। स्पष्ट है कि यह चिह्न उसके मस्तिष्क पर एक अनावश्यक बोझ बनकर रह जायगा।

इसके विरुद्ध यदि हम हाइड्रोजन को 'उदजन' और 'आक्सीजन' को 'ओपजन' कहें तो पानी के लिए वैज्ञानिक संकेत होगा—

उ ओ ।

इस संकेत को पढ़ते ही विद्यार्थी समझ लेगा कि 'उ' का अर्थ है 'उदजन' और 'ओ' का अर्थ है 'ओपजन'। ऐसी स्थिति में यह संकेत विद्यार्थी के मस्तिष्क में एक जीवित पदार्थ की भाँति अंकित रहेगा।

एक बात अवश्य है। कुछ वैज्ञानिक संकेत ऐसे हैं जिनका संबन्ध किसी भाषा से या तो कभी था ही नहीं या पहले था तो अब रहा नहीं। ऐसे संकेत ज्यों-के-त्यों अपनाये जा सकते हैं। चार सरल अंकगणितीय क्रियाओं के संकेत—

+ — × ÷

जैसे अंग्रेजी में हैं, वैसे ही हिन्दी में भी। यद्यपि ये चिह्न भी प्राचीन भारत में सर्वथा ऐसे ही नहीं थे। जो आज ऋण चिह्न कहलाता है, किसी समय वह धन चिह्न था। ऋणात्मक संख्याओं को निरूपित करने के लिए संख्या के ऊपर एक बिन्दी लगायी जाती थी, जैसे आजकल 'आवर्त दशमलव' के निरूपण के लिए लगायी जाती है।* परन्तु यह बात अस्वीकार नहीं की जा सकती कि ऊपर दिये हुए चारों चिह्न आज देश भर में सर्वमान्य हो गये हैं। इसी प्रकार भिन्न के निरूपण के लिए वटे का चिह्न भी

* उदाहरणार्थ देखिए—विभूति भूषण दत्त, दी बक्षाली मैथैमैटिक्स—बुलेटिन कलकत्ता मैथैमैटिकल सोसायटी २१ (१९२९) १-६०।

अप्रेजी और हिन्दी में एक-सा है। और भी बहुत-सा चिह्न है, जिनमें अप्रेजी और हिन्दी में कोई अन्तर नहीं पड़ता—

$$\sqrt{\quad} \quad \cdot \quad . \quad = \quad \square \quad \parallel \quad > \quad < \quad \sim \quad \angle \quad \perp$$

$$\square \quad \odot \quad () \quad \{ \} \quad | \quad \rightarrow$$

ये चिह्न तो हिन्दी का पुस्तका में बराबर प्रयुक्त हो रहे हैं। इनके अनिश्चित और भी कई चिह्न हैं जिनका रिसा भाषा में कोई सम्बन्ध नहीं है—

अनुकूलन चिह्न ⁺	मारणिक चिह्न
— प्रमगुणन चिह्न	धैयिक (Matrix) का चिह्न
\propto अन्तल का चिह्न	\propto समानुपात चिह्न
मापाक (Modulus) चिह्न	(λ)

अब रहा उन चिह्नों के विषय में जिनका मात्र अप्रेजी अथवा ग्रीक भाषा में है। उत्तर प्रदेशीय इन्टरमीडियट बोर्ड ने यह निश्चय किया है कि ग्रीक वर्णमाला के दो अक्षर

π और Σ

हिन्दी में अपना लिपि ज़ायें क्योंकि यह विशिष्ट अक्षर हैं। इनके स्वर हो चुके हैं कि इन्हें उन अक्षरों से अलग नहीं किया जा सकता। हम इन प्रस्तावों में सहमत हैं। हमारे विचार में गामा चिह्न Γ को भी अपना लेना चाहिए। शेष सम्बन्ध भाषा-मन्त्रों के चिह्नों का अनुवाद होना चाहिए।

अप्रेजी में एक खट्टि-सी बन गयी है कि विद्वत्ता के निरूपण के निमित्त बड़े अक्षर प्रयुक्त होते हैं और गुणांक तथा लम्बाइयाँ के लिए छोटे अक्षर। नागरी लिपि में बड़े और छोटे अक्षर तो होते नहीं, किन्तु प्रत्येक अक्षर पर मात्राएँ लगायी जानी हैं। अप्रेजी की वर्णमाला में केवल छब्बस वर्ण हैं और ग्रीक वर्णमाला में चौबीस। अतः बाना लिपियाँ की वर्णमाला में कुल मित्रावर ५० अक्षर हान हैं। इसकी तुलना में नागरी लिपि में ४९ अक्षर होते हैं और प्रत्येक अक्षर पर तरह-तरह की मात्राएँ लगायी जा सकती हैं। अतएव हमारे पास तो चिह्नों की बहुलता है। सम्बन्ध मानाया की तो कदाचित् आवश्यकता ही न पड़े। हमारा विचार है कि सम्प्रति हम प्रथम छ

+ इसमें संदेह नहीं कि यह चिह्न अप्रेजी के 'S' का ही स्पांतर मात्र है, किन्तु सप्रति यह जिस प्रकार लिखा जाता है उसका 'S' से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रह गया है।

मात्राएँ चुन लें। इनमें से तीनों दीर्घ मात्राओं को बिन्दुओं के निरूपण के लिए निर्धारित कर दें और तीनों ह्रस्व मात्राओं को गुणांकों और लम्बाइयों के लिए—

A, B, C, का, खा, गा की, खी, गी, कू, खू, गू,

a, b, c, क, ख, ग, कि, खि, गि, कु, खु, गु

P, Q, R, पा, फा, वा, पी, फी, वी, पू, फू, वू,

p, q, r, प, फ, व, पि, फि, वि, पु, फु, वु,

हिन्दू गणित में परम्परा से अज्ञात राशियों x, y, z , के लिए y, r, l का प्रयोग होता चला आया है। इस रूढ़ि को बदलने की कोई आवश्यकता दिखाई नहीं देती। अतएव तत्संबन्धी राशियों के लिए हमारे संकेत इस प्रकार के होंगे —

$x, y, z, \dots y, r, l,$

$x_1, x_2, x_3, \dots y_1, y_2, y_3,$

$x', y', z', \dots y', r', l',$

$\overline{x}, \overline{y}, \overline{z}, \dots \overline{y}, \overline{r}, \overline{l},$

$\dot{x}, \dot{y}, \dot{z}, \dots \dot{y}, \dot{r}, \dot{l},$

अब हम यहाँ कुछ अन्य चिह्नों की सूची देते हैं —

$\alpha, \beta, \gamma, \dots$ ज्ञात कोण अ, आ, इ, ई,

$\theta, \phi, \psi, \dots$ अज्ञात कोण क्ष, त्र, ज्ञ,

O (origin) ... म (मूलबिन्दु)

e (eccentricity) ... उ (उत्केन्द्रता)

e (coefficient of restitution) ... प्र (प्रत्यानयन गुणांक)

e (exponential) ... घ (घातांकीय)

E ... घा

i ($\sqrt{-1}$) ... ए ($\sqrt{-1}$)

r (radius vector) ... त्र (सदिश त्रिज्या)

ρ (radius of curvature) ... त्रि (वक्रता त्रिज्या)

n (any number) ... स (कोई संख्या)

r (running term) ... घ (घावी पद)

$$\sum_{r=0}^{r=n}$$

$$\sum_{r=0}^{r=n}$$

Lt (Limit)	सी (सीमा)
$Lt_{n \rightarrow \infty}$	सी _{$n \rightarrow \infty$}
Determinant Δ	सा (सारणिक)
Δ_0	सा _०
Δ_1	सा _१
Δ'	सा'
Discriminant Δ	वि (विवेचक)
S (Sum)	यो (योग)
P (Product)	फ (गुणनफल)
Q (Quotient)	भा (भागफल)
R (Remainder)	श (शेष)
nP_r	nP_r
nC_r	nC_r
Sin (Sine)	ज्या
Cos (Cosine)	कोज् (कोटिज्या)
Tan (Tangent)	स्प (स्पर्शज्या)
Cot (Cotangent)	कास्प (कोटि स्पर्शज्या)
Sec (Secant)	व्युकोज् (व्युत्कोज्या)
Cosec (Cosecant)	व्यु (व्युज्या)
Vers (Versed Sine)	उज्ज्या (उत्क्रमज्या)
Covers (Covered Sine)	उत्को (उत्क्रम कोटिज्या)
$\text{Sur}^{-1}x$	उमा ^{-१} य
Sinh (Hyperbolic Sine)	अज्या (अतिपरवलीय ज्या)
Cosh (Hyperbolic Cosine)	अकोज् (अतिपरवलीय कोटिज्या)
t (Time)	म (ममय)
s (Distance)	द (दूरी)
v (Velocity)	वे
u (Initial velocity)	व (आदि वेग)
f (acceleration)	त (त्वरण)
$v = u + ft$	वे = व + त म
$s = ut + \frac{1}{2}ft^2$	द = वम + $\frac{1}{2}$ तम ^२

$$r^2 = x^2 + y^2$$

r (Gradient)

$$r = \sqrt{x^2 + y^2}$$

$$\frac{x}{r} = \frac{y}{r} = 1$$

$$\frac{\sin A}{a} = \frac{\sin B}{b} = \frac{\sin C}{c}$$

$$ax - by - c = 0$$

$$x^2 - y^2 = 1$$

r (perpendicular)

$$h, k$$

$$x \cos \alpha - y \sin \alpha = p$$

$$ax - by - c = 0$$

$$ax^2 - 2hxy + by^2 - 2gx - 2fy - c = 0$$

$$x^2 - 2x - 2y - 2x^2 - 2y - 2x - 2y - c = 0$$

$f(x)$ (function)

$$F(x)$$

$$u(x)$$

$$v(x)$$

$$w(x)$$

$$f'(x)$$

$$f$$

$$f^{-1}(x)$$

$$dx$$

$$dx$$

$$dx$$

$$D_x$$

$$\frac{dy}{dx}$$

$$\frac{dy}{dx}$$

$$\frac{dy}{dx}$$

$$x^2 = x^2 - c \text{ or } c$$

r (Gradient)

$$r = \sqrt{x^2 + y^2}$$

$$\frac{x}{r} = \frac{y}{r} = 1$$

$$\frac{\sin A}{a} = \frac{\sin B}{b} = \frac{\sin C}{c}$$

$$ax - by - c = 0$$

$$x^2 - y^2 = 1$$

r (perpendicular)

$$h, k$$

$$x \cos \alpha - y \sin \alpha = p$$

$$ax - by - c = 0$$

$$ax^2 - 2hxy + by^2 - 2gx - 2fy - c = 0$$

$$x^2 - 2x - 2y - 2x^2 - 2y - 2x - 2y - c = 0$$

$f(x)$ (function)

$$F(x)$$

$$u(x)$$

$$v(x)$$

$$w(x)$$

$$f'(x)$$

$$f$$

$$f^{-1}(x)$$

$$dx$$

$$dx$$

$$dx$$

$$D_x$$

$$\frac{dy}{dx}$$

$$\frac{dy}{dx}$$

$$\frac{dy}{dx}$$

$$\frac{\partial y}{\partial x}$$

$$D_{xy}$$

$$y_n = \frac{d^ny}{dx^n}$$

$$\int_a^b f(x) dx$$

$$\frac{\text{निर}}{\text{निर}}$$

$$\text{तो } r$$

$$r_n = \frac{n}{n+1}$$

$$\int f(x) dx$$

पाठक यह कह सकते हैं कि निम्न प्रकार इन्होंने चिह्नों का अनुवाद किया है, उन्नीस प्रकार अन्य चिह्नों का भी अनुवाद हो सकता है। जो चिह्न (अ) में दिये गये हैं उनका भी अपनी जगह में अनुवाद क्या न कर लिया जाय ? कारण यह है कि इन चिह्नों का किसी भी भाषा में सम्बन्ध नहीं है। अतएव आशा हो सकती है कि गणित की दीर्घ भाषाएँ भी इन चिह्नों का ज़्यादा-ज्यादा अपना लेंगी। इस समय भी गणित की कई भाषाएँ ऐसी हैं जिन्होंने ऊपर दिये हुए प्रायः समस्त चिह्नों का अपनी भाषा में रूपान्तर किया है। जित्नु चिह्नों (अ) में वे अपिज्ञान जैंगे-जैंगे ले लिखे हैं जैंगे जैंगे और इटलियन। यदि हमें चिह्नों को गणित की समस्त भाषाएँ अपना लें तो वैज्ञानिकों के विचार-विनिमय में थोड़ी-बहुत सुविधा अवश्य ही हो जायगी। इस प्रकार यदि उपरिलिखित सूची के समस्त चिह्न भी गणित भर में अपना लिये जायें तो वैज्ञानिक जगत् में और भी सुविधा हो जायगी। परन्तु हम बात की तनिर भी आशा नहीं कि कोई भी समृद्ध भाषा किसी अन्य भाषा के भाषा-मय चिह्न अपना लेगी। इसमें केवल राष्ट्रीय गर्व का ही प्रश्न नहीं है, बरन् जैंगे ऊपर दर्शाया गया है उक्त प्रणाली विद्यार्थी के लिए भी अहितकर होगी।

अध्याय २

संख्या-पद्धतियाँ, संख्याशब्द और संख्यांक

संख्या-बुद्धि

जिस दिन से मनुष्य ने संसार में पदार्पण किया है उसी दिन से उसके मस्तिष्क में संख्या-बुद्धि की उत्पत्ति हुई है। कुछ लोगों की संख्या-बुद्धि तीव्र होती है, कुछ लोगों की मंद। एक अध्यापक ने अपने तीन विद्यार्थियों की संख्या-बुद्धि की परीक्षा लेनी चाही। उन तीनों विद्यार्थियों में से एक ब्राह्मण पुत्र था, दूसरा क्षत्रिय और तीसरा वैश्य। अध्यापक ने मैदान में तीस फुट लम्बा एक वाँस गाड़ दिया और तीनों लड़कों से वारी-वारी से पूछा कि उनके विचार में वाँस की लम्बाई कितनी होगी? ब्राह्मण पुत्र ने कहा कि “लम्बाई होगी कोई पचास साठ फुट या कदाचित् सत्तर-अस्सी फुट।” क्षत्रिय लड़के ने बताया कि “वाँस की लम्बाई होगी चालीस पैंतालीस फुट।” वैश्य-वालक का उत्तर था कि “लम्बाई होगी कोई पौने सत्ताइस, सवा सत्ताइस फुट।”

प्रत्यक्ष है कि तीनों लड़कों में से वैश्य पुत्र की संख्या-बुद्धि सबसे तीव्र थी। इसके विपरीत बहुत-से लोगों की संख्या बुद्धि बहुत मंद होती है। कभी आप किसी दूरस्थ स्थान को पैदल जा रहे हों। रास्ते में कहीं पर भी किसी गाँव वाले से पूछिए कि “अमुक स्थान कितनी दूर है।” वह कहेगा कि “कोस डेढ़ कोस है।” मील दो मील आगे निकल जाइए और फिर किसी से प्रश्न कीजिए कि “गाँव कितनी दूर है।” तो वही उत्तर मिलेगा कि “कोस-डेढ़ कोस है।” रास्ते भर आपका गंतव्य स्थल कोस डेढ़ कोस ही रहेगा। कभी-कभी तो गाँव वाले कहेंगे “अरे! वह क्या सामने दिखता है।” इसी संकेत के भरोसे आप मीलों चले जायेंगे और आपका लक्षित स्थान नहीं आयेगा।

स्वभावतः वच्चों की संख्या-बुद्धि बहुत अविकसित रहती है। किसी वच्चे से पूछिए कि “दो और तीन कितने होंगे।” जो ऊँची से ऊँची संख्या उसे याद होगी, वही कहेगा। यदि उसको सबसे ऊँची संख्या आठ स्मरण है तो वह आठ ही कहेगा। यदि आप उससे पूछें कि चार और पाँच कितने होते हैं तो भी उसका उत्तर आठ ही होगा। वच्चा जब कुछ बड़ा होता है तो पूरी गिनती तो उसे आती नहीं, किन्तु सौ, दो सौ, तीन सौ ये दो चार शब्द उसे याद हो जाते हैं। यद्यपि वह इनका मतलब नहीं समझता,

तब भी उसे जब कभी किसी बहुत बड़ी समस्या का मान बगना होता है, वह भी, दोस्रो ही कहता है।

किसी धार्मिक बालक ने अपने पिताजी से कहा—“बाबूजी, आज मैंने गाँव में कोई ५०० कुत्ते देखे।” बच्चा कुछ-कुछ समझदार हो चुका था, चाप को उसकी मूँतों पर बड़ा प्रोथ आया। उसने कहा कि “तू अभी से इतना झूठ बोलता है। इस गाँव में तो बरा, आम-पाम के दम-पाँव गाँवा के समस्त कुत्ते इकट्ठे कर लिये जायें तब भी पाँच-सी न होंगे। सब-सब बना तूने चितने कुत्ते देखे थे।” बच्चा बेचारा सहम गया। उसने कहा—“बाबूजी ५०० नहीं तो कम-से-कम दो कुत्ते तो थे ही।”

पुराने समय में ममार की कुछ जानियों की सभ्या-कल्पना बहुत ही तुच्छ थी, बल्कि नहीं के बराबर थी। अब भी ममार में कुछ प्रतिनामी जानियाँ ऐसी हैं, जिनकी सभ्या-कुट्टि विलकुल नगण्य है। अमेरिका में एक प्रदेश है बोर्लीविया जिनमें बिबिट्टो नाम की एक जानि रहती है। इस जानि की भाषा में सभ्या सूचक कोई शब्द है ही नहीं। जब कभी इन्हें १ का भाव प्रदर्शित करना होता है तो वह एक शब्द ‘ऐँम’ का प्रयोग करते हैं। यह शब्द हिन्दी शब्द ‘आत्म’ से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। इस ‘ऐँम’ के अनिरिक्त इन लोगों की भाषा में सभ्या-सबन्धी कोई शब्द है ही नहीं। अतः ये लोग २ तक भी नहीं गिन सकते।

अमेरिका में कबीलो का एक परिवार है, जिसका नाम है ग्वायकुव परिवार। इन लोगों की भाषाओं में भी सभ्यात्मक शब्द बहुत ही कम है। इसी परिवार के एक कबीले का नाम है बोटीमूडो। इन लोगों की बोली में केवल दो सभ्यात्मक शब्द हैं—मोकेनम और उरह। मोकेनम का अर्थ है १ और उरह का अर्थ है ‘बहुत’। अतः ये लोग २ या ३ भी नहीं कह सकते, केवल ‘बहुत’ ही कह सकते हैं।

इन तथ्यों से हम बात का पता चल जाता है कि ममार के समस्त प्राणियों में ‘१’ की कल्पना अवश्य ही विद्यमान है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक प्राणी में ‘अह’ अर्थात् अपनेपन का भाव मौजूद है। प्रत्येक प्राणी समस्त विश्व को दो भागों में बाँटता है। एक तो ‘अपने आप’ अर्थात् ‘मे’ और दूसरा ‘अपे सारा-विश्व’। प्रत्येक प्राणी पहले अपने स्वार्थ की रक्षा करता है, तत्पश्चात् दूसरों की आवश्यकता पर विचार करता है। धार्मिक क्षेत्र में इस ‘एक’ का अर्थ है ‘ब्रह्म’, ‘सत्य’ अथवा ‘ईश्वर’। इस एक की कल्पना का इतना महत्व है कि अंग्रेजी में ‘१’ के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग होता है—

A, An, One, Unit, Unity

हिन्दी में भी ‘एक’ के घातक बहुत से शब्द हैं—

एक, एवता, इवाँई, एकाकी, एवाकी, एकोएक, अनेका, इकलौता।

संसार में कुछ जातियाँ ऐसी हैं, जिन्हें २ तक की ही गिनती आती है। अमेरिका में एक जाति है, जिसका नाम है अन्सावलाडा। इनकी भाषा में दो संख्यात्मक शब्द हैं—ते और कयापा। 'ते' का अर्थ है 'एक' और 'कयापा' का अर्थ है 'दो'। इसी देश में एक बोली है मोबोकोवी। इस भाषा में एक अक्षर ऐसा है, जिसका उच्चारण हिन्दी के अक्षर ब से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। इस बोली में भी संख्या-संबन्धी दो ही शब्द हैं—'यांत्वक' जिसका अर्थ है 'एक' और 'यांका', जिसका अर्थ है 'दो'।

पाठक सहज ही अनुमान कर सकते हैं कि मनुष्य को जोड़े का भान कहाँ से हुआ। संसार में जिवर भी दृष्टि डालिए आप को जोड़े ही जोड़े दिखाई देंगे। अपने शरीर को ही देखिए। हमारे शरीर में दो हाथ हैं, दो पैर हैं, दो आँखें हैं, दो कान इत्यादि। अन्यत्र भी आप जोड़े ही जोड़े देखते हैं। कैंची को अंग्रेजी में कहते हैं (Pair of Scissors), ऐनक को कहते हैं (Pair of Spectacles), चीमटे को कहते हैं (Pair of Tongs)। परन्तु इन वस्तुओं में तो जोड़े की कल्पना परोक्ष रूप में है। कुछ वस्तुओं में जोड़े की कल्पना प्रत्यक्ष रूप में होती है। मुगदर की जोड़ी, गुलदस्ते की जोड़ी और युगल जोड़ी आदि।

उत्तर प्रदेश के पश्चिमी प्रान्त में दो शब्दों का प्रयोग होगा है—फुट और जोड़ी। फुट का अर्थ है अकेला। रईस लोग अपने सार्इस से पूछते हैं कि "आज गाड़ी में फुट लगाया है या जोड़ी?" इसका अर्थ है कि "एक घोड़ा जोता है या दो?"

संसार में कुछ जातियाँ सम्यता के उस स्थल पर हैं, जहाँ तीन तक की गिनती होती है। फूगन एक जाति है, जिसकी बोली में केवल तीन संख्यात्मक शब्द हैं। पहला शब्द है 'कउली', जिसका अर्थ है १। यह शब्द हमारे हिन्दी शब्द 'कौड़ी' से बहुत मिलता-जुलता है। दूसरा शब्द है 'कम्पायपी', जिसका अर्थ है २ और तीसरा 'मातेन', जिसका अर्थ है ३। एक अन्य जाति है, जिसका नाम है 'वररो'। इस जाति की बोली में भी संख्या-सूचक केवल तीन ही शब्द हैं—कउए, मकउए और उअउए।

कुछ पक्षियों को ३ तक की संख्या का बोध होता है। एक विशेषज्ञ थे गाल्टन (Galton), जिन्होंने पक्षियों के स्वभाव का अध्ययन किया था। इनका कथन है कि कुछ पक्षियों को ३ तक की संख्या-चेतना होती है। किसी पक्षी के घोंसले में ३ अण्डे हों तो यदि आप उनमें से एक अण्डा उठा लें तो पक्षी को इस बात का भान हो जायगा कि एक अण्डा चोरी हो गया है और वह घोंसला छोड़ देगा। परन्तु यदि किसी पक्षी के घोंसले में चार अण्डे हों तो आप बिना खटके उनमें से एक उठा सकते हैं। पक्षी को इस चोरी का पता नहीं चलेगा, क्योंकि वह ३ और ४ का भेद नहीं जानता।

ममार का कुछ जानिया एना ह ना ८ तक गिन सकता ह। कुछ जानियो ५ तक गिन लता ह। दक्षिण अमेरिका म एक देग है पारू। इम देग म कम्पा नाम को एक जानि रहता है। इन लोग क पान मय्या-मवधा तीन गन्ड ह—पतिया पितैना और मट्ठाना अथान १ २। यदि इन लोग का ४ कहना हागा ता कहें पतिया मट्ठाना। ५ का कहण पितैना मट्ठाना और ६ को कहण 'मट्ठाना मट्ठाना। इमा प्रकार क मक्का उदाहरण जिय जा सकते ह। परन्तु हम केवल एक हा उदाहरण ओर ना। आम्प्लिया का एक जानि है कमिलारोई। इन लोग में ना स्वयं मय्या-मवधा गन्ड ना कहण जान हा ह—

मन् १

बुलर २

गुलिवा ३

४ का यह लग कहन ह बुलर बुलर।

५ का कहने ह बुलर गुलिवा

६ का कहन ह गुलिवा गुलिवा।

कुछ पतिया म ४ और ५ तक की सहा-बुद्धि होनी है। पतिया के एक विपण म लराय (Leray)। उहान अपना एक अनमव मुताया है। एक चौकादार की गमना म एक कौण न घासला बना लिया। कौआ जब दूर म चौकीदार को आना दतना या ना उठकर दूर क एक पड पर जा बैठता था। पन्थना गुनात या कि उम पर गाने चला कर कौण का मारना निनाल अमभव था। चौकादार कौए से बडा तग जा गया था। अन्त म उमन एक चाल चली। एक दिन वह एक और आत्मी को अपन साथ ले गया। कौण न दाना को आने दत्ता तो उड गया और पेड पर जा बसा। उनम म एक आत्मा गुमगी म म बाहर निकला ता कौआ नहा लीग। जब दूसरा आदमा भा चला गया तब कौआ लीग।

आल दिन नात व्यक्ति गुमग म गय और बारी-बारा म बाहर निकल। कौआ घान म नहा जाया। वह तब तक नहा लीग जब तक ताना आदमी नहा निकल गय। बाब बाब दिन चार आत्मा गुमग म गय फिर भा अमफल रह। उसम अगल दिन पाँच आत्मा गुमग म गय। उम दिन कौआ घावा म्मा गया। जब बारी-बारी स चार आत्मा गुमग म बाहर आ गय ता उमन समजा कि सब आत्मा बाहर आ गय ह। वह गुमग म लौट जाया और पाँचवें आदमा न उम गाली म मार लिया। दग उदाहरण स स्पष्ट है कि कौआ चार तक गिन सकता था पाँच तक नहीं गिन सकता था।

संसार की अधिकांश पुरानी जातियों को केवल ५ तक का भान था। कप्तान पॅरी (Perry) का यह अनुभव है कि किसी 'ऐस्किमो' जाति का कोई भी आदमी ७ तक नहीं गिन सकता। किसी ऐस्किमो से ७ तक गिनाइए। ७ तक पहुँचने में वह कम-से-कम एक त्रुटि अवश्य करेगा। एक और अन्वेषक हुए हैं 'हंबोल्ट' (Humboldt)। इन्होंने एक बार चैमा जाति के एक मनुष्य से पूछा कि "तुम्हारी अवस्था क्या है?" उसने कहा '१८ वर्ष'। वह आदमी ३०-३५ वर्ष से कम नहीं था। हंबोल्ट ने कहा कि "तुम १८ वर्ष से कहीं अधिक के लगते हो।" उसने कहा कि "मेरी अवस्था १८ वर्ष की न होगी तो ६० वर्ष की होगी।" हम नहीं समझते कि वह व्यक्ति जान-बूझ कर झूठ बोल रहा था। उस बेचारे ने कहीं १८ और ६० शब्द सुन रखे होंगे। दोनों संख्याएँ उसकी मानसिक पहुँच के बाहर थीं। वह तो केवल इतना जानता था कि दोनों बड़ी संख्याएँ हैं।

दक्षिण आफ्रिका में योरूबा नाम की एक जाति है। इन लोगों की बोली में एक कहावत प्रसिद्ध है कि "बड़े चतुर बनते हो, तनिक बताना तो सही कि नौ नेम कितने होते हैं।" इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अभी तीन चार सौ वर्ष पहले की बात है कि जर्मनी के एक विद्यार्थी ने अपने गुरु से पूछा था कि "मैं गणित की उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहता हूँ, मुझे किस आचार्य के पास जाना चाहिए?" गुरु ने कहा कि "यदि तुम केवल जोड़ना, घटाना ही सीखना चाहते हो तब तो जर्मनी के प्रोफ़ेसर ही काफी होंगे। परन्तु यदि तुम गुणा और भाग भी सीखना चाहते हो तो इटली के किसी विशेषज्ञ के पास जाना होगा।"

यह तो कई सौ वर्ष पहले की बात है। हम अपने देश की ही लगभग ५० वर्ष पहले की बात मुनाते हैं। रेलवे में स्टेशन मास्टर्स की एक परीक्षा हुआ करती थी। उस ज़माने में उस परीक्षा का स्तर बहुत नीचा था। एक बार परीक्षा-पत्र में एक प्रश्न दिया गया था कि "आठ अठ्ठे कितने होते हैं?" एक विद्यार्थी ने उत्तर लिखा ६३। परीक्षक ने उसे पूरे अंक (नम्बर) दिये और कहा कि 'उत्तर क्ररीव-क्ररीव ठीक है।'।

संसार की अधिकांश भाषाओं में संख्यात्मक शब्दों का पैमाना ५ या १० माना गया है। भारतीय संस्कृति में भी १० के पैमाने का ही उपयोग किया गया है। संस्कृत के कुछ शब्दों पर विचार कीजिए—

एकादश	१०+१
द्वादश	१०+२
अष्टादश	१०+८
ऊनविंशति	२०—१

अंग्रेजी में भी अधिवास रूप में १० का पैमाना ही काम में लाया गया है।

Thirteen 3 + 10

Fourteen 4 + 10

५ और १० के इस संख्याधी पैमाने का कारण यह प्रतीत होता है कि मनुष्य के हाथों में ५, ५ उँगलियाँ होती हैं। मनुष्य को गिनने का रास्ता से गुलम उपाय उँगलियों द्वारा ही प्रतीत हुआ। बहुत-सी भाषाओं में ५ के लिए वही शब्द है जो हाथ के लिए है। इसी भाषा में ५ को 'प्याष्ट' कहते हैं और हाथ का भी 'प्याष्ट'। फारसी में पाँच को पञा कहते हैं और तुर्क लोग हाथ का भी पञा कहते हैं। यही बात पञामी भाषा में भी है।

एक उदाहरण और लीजिए। फ्लोरेंस (Florence) द्वीप की एक भाषा है जिसका नाम है 'एँड'। उनमें कुछ संख्यात्मक शब्द इस प्रकार हैं—

सा	१
पञा	२
लिमा	५ (हाथ)
लिमा सा	६
लिमा पञा	७

५ के लिए ता वही शब्द निश्चित कर दिया जो हाथ के लिए था। अब प्रश्न यह हुआ कि १० के लिए कौन-सा शब्द रखा जाय। सत्तर की बहुत-सी भाषाओं में १० को कहते हैं 'हाथ' क्योंकि जब एक हाथ की उँगलियाँ समाप्त हो जाती हैं तो लोग स्वामादिक रूप से दूसरे हाथ की उँगलियों से गिनने हैं। १० के आगे गिनने के लिए कुछ लोग तो फिर दाहिने हाथ से आरम्भ करते हैं। परन्तु कुछ लोग पैर की उँगलियों से काम लेते हैं। ओरीनोकी प्रदेश में एक जाति मार्शपुरे नाम की है। इन लोगों की भाषा के कुछ शब्दों में अर्थ हम यहाँ देते हैं—

५	केवल एक हाथ
६	दूसरे हाथ की भी एक
७	दूसरे हाथ की भी दो
१०	दो हाथ
११	पैर की भी एक उँगली
१५	दो हाथ, एक पैर
२०	पूरा एक आदमी

१ से ५ तक गिनने में दाहिने से बायें गिना जाता है या बायें से दायें, इस विषय

में कोई निश्चित पद्धति नहीं है। कुछ लोग अंगूठे से आरम्भ करते हैं, कुछ लोग कन उँगली से। अमेरिका में वास्टन नगर के एक स्कूल की ५ कक्षाओं के विद्यार्थियों पर यह प्रयोग किया गया था। छात्रों से कहा गया था कि १ से ५ तक गिनें। २०६ विद्यार्थियों में से १४९ ने अंगूठे से गिनना आरंभ किया। अर्थात् तीन चौथाई विद्यार्थियों ने अंगूठे से गिनना आरंभ किया।

परन्तु अंगूठे से आरम्भ करने में ही कोई विशेष बात नहीं है। एक स्कूल में एक प्रयोग इस प्रकार किया गया। एक अध्यापक ने विद्यार्थियों में से एक को खड़ा किया और कहा कि "उँगलियों पर गिनती गिनो।" और शेष सब विद्यार्थियों से कहा "तुम लोग भी इसके साथ गिनो।" उन विद्यार्थियों ने कन उँगली से गिनना आरम्भ किया। उसके साथ-साथ सब विद्यार्थी कन उँगली से गिनने लगे। फिर एक दूसरे विद्यार्थी को खड़ा किया। उसने अंगूठे से गिनना आरंभ किया। उसकी देखा-देखी सब विद्यार्थियों ने अंगूठे से गिनना आरम्भ कर दिया।

किन्तु एक प्रथा सार्वजनिक प्रतीत होती है। अधिकतर लोग बायें हाथ की उँगलियों से गिनना आरंभ करते हैं। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि पुराने ज़माने में हमारे पुरखे सदैव दाहिने हाथ में कोई-न-कोई शस्त्र रखा करते थे। इसलिए गिनने के लिए बायाँ हाथ ही खाली रहता था। इसी प्रथा का भग्नावशेष आजकल इस रूप में रह गया है।

हम लोगों की आजकल की संख्या-भाषा अधिकतर दशांशिक है। पर इस नियम के थोड़े-से अपवाद भी हैं। अंग्रेजी में १३ से लेकर आगे के सब शब्द नियमित हैं, जैसे—

$$\text{Fourteen} = 4 + 10, \quad \text{Eighteen} = 8 + 10$$

किन्तु ११ और १२ अपवाद हैं क्योंकि Eleven और Twelve उस प्रकार नहीं बने हैं, जैसे १३, १४ इत्यादि। ऐसा प्रतीत होता है कि अंग्रेजी के ये दोनों शब्द जर्मन शब्दों Ein-lif और Zwei-lif से बने हैं। इनका अर्थ है १+१० और २+१०। हिन्दी में भी अधिकांश शब्द इसी प्रकार बने हैं, यथा—

$$\text{तेरह} = १० + ३$$

$$\text{चौबीस} = २० + ४$$

इन शब्दों में योग का सिद्धान्त निहित है, किन्तु कुछ शब्द वियोग सिद्धान्त पर भी आधारित हैं, जैसे

$$१९ = १ \text{ कम } २०$$

$$२९ = १ \text{ कम } ३०$$

$$६९ = १ \text{ कम } ७०$$

पाइण्ट बरो (Point Barrow) एक स्थान है। वहाँ की एक उपजाति में १० के बढते २० को गिनती का आधार माना गया है। उनकी बोली के दो चार शब्दों के अर्थ यहाँ दिये जाते हैं—

- १०— ऊपरी भाग अर्थात् मनुष्य का ऊपरी भाग, दोनों हाथों की उँगलियाँ
 १४— १५ से १ कम ।
 २०— एक मनुष्य समाप्त हो गया ।
 २५— एक मनुष्य समाप्त और दूसरे की ५ ।
 ३०— एक मनुष्य समाप्त और दूसरे की १० ।
 ४०— दो मनुष्य समाप्त ।

इससे यह नहीं समझना चाहिए कि हम लोग के जीवन में ५, १० या २० के अतिरिक्त अन्य संख्याओं का महत्त्व है ही नहीं। हिन्दू-संस्कृति में ३ और ५ के अतिरिक्त ७ को भी शुभ माना गया है। बहुत-से धार्मिक कृत्या में ७ लकीरें खींचने हैं या ७ दीये जलाने हैं। विवाह में अग्नि के ७ फेरे करत हैं। बहुत-से आयुर्वेदिक नुस्खों में तुलसी के ७ पत्ते या ७ भाली मिर्चें या ७ इलायचियाँ पड़ती हैं। पता नहीं ॥ की संख्या का महत्त्व सप्तऋषि मण्डल से लिया गया है या नहीं।

७ के पश्चात् ११ का भी बहुत महत्त्व है। कहावत है कि १ और १ ग्यारह होते हैं। हिन्दुओं में दो प्रकार के विवाह अभी तक प्रचलित हैं—७ ठौर का विवाह और ११ ठौर का विवाह। कहते हैं कि यदि घर में निक्कल रहे हो और कोई काना दिखाई दे जाय तो बड़ा अशुभ होता है। किन्तु यदि उसी समय ११ बार राम का नाम ले लिया जाय तो अशुभ का दाप मिट जाता है।

संख्याओं का यह महत्त्व तो सहचरण (Association) के कारण है। किन्तु अधिकांश भाषाओं में बहुत-से सख्यात्मक शब्दों के विशेष नाम भी होते हैं, जैसे अंग्रेजी में—Pair, Trio, Dozen, Score, Gross

हिन्दी में भी इस प्रकार के कई शब्द हैं, जैसे जोड़ी, तिकड़म, चौकड़ी, पञ्चा, अट्ठा, दर्जन, बोड़ी।

इनमें से पञ्चा और 'बोड़ी' को छोड़कर शेष शब्दों का १० से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है।

दस देन में बाजार में कुछ वस्तुओं पजे से बिकती हैं। आम, उपले, दीवाली के दोए और आवले पञ्चा में बिकते हैं। आप इन वस्तुओं का भाव इसी प्रकार पूछते हैं कि "एक रुपये में बितने पजे?" एक बार इसमें भी बड़े आश्चर्य की यह है कि इन वस्तुओं में १०० का अर्थ गिनती के १०० का नहीं होता अर्थात् १०० का अर्थ २० पजे नहीं

होता। कहीं २६ पंजे, कहीं ३० पंजे और कहीं ३६ पंजे होता है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में उपलों का सी ३६ पंजे का होता है। उस हिसाब से यदि आप ५० उपले मँगवाएँ तो आपको १८ पंजे अर्थात् ९० उपले मिलेंगे। इसका कारण यह रहा होगा कि पुराने समय में भिन्न-भिन्न गाँवों में कोई विशेष सम्पर्क नहीं रहता था। प्रत्येक गाँव अपने लिए अलग नाप-तौल नियत कर लेता था। उन दिनों कोई मानकीकरण (Standardisation) नहीं होता था। जब दशमिक पैमाना (Scale of ten) सब जगह चालू हो गया तो अधिकांश वस्तुओं ने तो उसे अपना लिया, किन्तु कुछ वस्तुओं में पुराने नाप-तौल ही चलते रहे।

बनारस के पास एक बाज़ार है खोजवाँ। उस एक ही बाज़ार में कुछ वर्ष पहले किसी दूकान पर ८० की तौल चलती थी, किसी पर ८६ की और किसी पर ९० की। एक दिन इन पंक्तियों के लेखक ने नौकर को गेहूँ लाने के लिए खोजवाँ भेजा। नौकर से कहा कि “२० सेर गेहूँ लेकर वहीं फटकवाकर साफ़ करा लेना और पनचक्की पर पिसवा लाना।” जब वह आटा लेकर घर आया तो कुल साढ़े चौदह सेर आटा निकला। नौकर से हिसाब माँगा। बड़ी देर में हिसाब समझ में आया। बात यह थी कि जिस दूकान पर उसने गेहूँ भोल लिया था, उस पर ९० की तौल थी। जहाँ पर उसने गेहूँ साफ़ कराया वहाँ पर ८६ की तौल थी। फटकने वालियों ने सेर पर आध पाव के हिसाब से अपनी मजदूरी काट ली। इस प्रकार बढ़ाई सेर गेहूँ कम हो गया। शेष रहा साढ़े सत्रह सेर। गेहूँ लेकर वह पनचक्की पर गया। वहाँ ८० की तौल थी। अतः पनचक्की पर वह साढ़े सत्रह सेर गेहूँ फिर २० सेर के लगभग बैठा। इस पर पनचक्की वालों ने दो सेर प्रति मन के हिसाब से पिसाई काटी तो एक सेर गेहूँ पिसाई का कट गया। अब रहा साढ़े सोलह सेर। वह साढ़े सोलह सेर गेहूँ लेकर घर लौटा, किन्तु लेखक के घर पर १०० की तौल के बाट थे। अतः वह साढ़े सोलह सेर गेहूँ घर के बाटों से साढ़े चौदह सेर बैठा। नौकर को खोजवाँ इस विचार से भेजा था कि वहाँ कदाचित् माल सस्ता मिले, किन्तु लम्बी अवधि में सस्ती वस्तु ही महँगी पड़ती है।

तौलिया और अँगोछे अट्ठों में विकते हैं। संतरोँ के दाम अधिकतर दर्जनोँ में बताये जाते हैं—एक रुपया दर्जन या अट्ठारह आने दर्जन। कागज दस्तों में विकता है। यह तो हुई सामाजिक विनिमय-पद्धति। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत रूप से भी भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के गिनने के ढंगों में अन्तर रहता है। आप किसी अपढ़ व्यक्ति को कुछ रुपये गिनने को दीजिए। वह चार-चार, पाँच-पाँच की ढेरियाँ लगा देगा। इकट्ठे ऋषारणसी में आम तथा नीबू प्रायः पंजे या गाही से विकते हैं और सैकड़ा २६ गाही का याने १३० का होता है।

८, १० मी गिनना उमके लिए कठिन है। डाक्टर कोनॅन्ट (Conant) लिखते हैं कि एक बार उन्होंने एक लड़के से ३ और ६ की गुणा करने को कहा। उसने अपने दाहिने हाथ की तर्जनी उँगली से बाये हाथ की उँगलियों पर १, २, ३ इम प्रकार गिना, फिर दुबारा १, २, ३, गिना। फिर निबारा १, २, ३, गिना। इसी प्रकार छ बार गिना और बताया कि गुणन-फल १८ हुआ।

मान लीजिए कि आपने घोड़ी को ५६ कपडे धोने के लिए दिये हैं। वह २५, २५ को द्वा बार गिनेगा और ६ अलग गिनेगा। तब बहेगा कि “दो पच्चीसी और ६ कपडे हैं।” स्त्रिया को आप बहुधा कहते सुनेंगे कि खवारी के २ कम ४० पात आये या न्योने में ३ ऊपर ५० मज्जन बैठे थे। उनकी मन्था-बुद्धि ५ या १० के अपवर्त्यों (Multiples) पर ही टहरती है।

कुछ अधिक्षित व्यक्तियों की, विशेषकर पुराने ढंग की स्त्रियों की, सख्या-बुद्धि इतनी अविकसित रहती है कि वह सामान्य अंको का जोड़ भी नहीं जानती। बचपन में, हमें याद है, ब्दी स्त्रियाँ पूछा करती थी कि “१२ और ५ कितने हुए।” उत्तर में आप चाहे १७ कह दें चाहे अट्ठारह, उनके लिए एक ही बात है। यदि कभी १०० में से ३१ घटाना हा तो ये स्त्रियाँ पहले १०० गेहूँ गिनेंगी, फिर उनमें से ३१ गेहूँ गिनकर अलग कर देगी। अन्त में शेष गेहूँ गिनकर बतायेगी कि ६९ शेष रहे।

गणना-बुद्धि

उपरिलिखित पक्तिया में हमने सख्या बुद्धि की विवेचना की है। अब हम गणना-बुद्धि पर विचार करेंगे। सख्या-बुद्धि और गणना-बुद्धि में थोड़ा-सा अन्तर है। सख्या-बुद्धि को अंग्रेजी में Number Sense कहते हैं। गणना-बुद्धि को कहते हैं Sense of Counting। मान लीजिए कि आप किसी सिनेमा-घर जा रहे हैं। वहाँ यदि आपमें यह पूछा जाय कि सिनेमा में आसनो (Seats) में टिकट अधिक बिके हैं या कम ता आपको टिकटों या आसना की गिनती करने की आवश्यकता नहीं है। आप सिनेमा भवन के अन्दर एक दृष्टि डालेंगे। यदि आपको कुछ आसन खाली दिखाई देंगे तो आप तुरन्त कहेंगे कि टिकट आसनो से कम बिके हैं। किन्तु यदि कोई आसन खाली न हो और कुछ दर्शक खड़े हुए दिखाई पड़ें तो आप तुरन्त कहेंगे कि आसनो से टिकट अधिक बिके हैं। इस निष्कर्ष पर पहुँचने में आपने अपनी सख्या-बुद्धि से काम लिया है। मान लीजिए कि आपसे यह पूछा जाय कि आज सिनेमा घर में कितने दर्शक आये हैं तो आपको दर्शको की गिनती करनी ही पड़ेगी। एक-एक करके दर्शको को गिनना पड़ेगा, अर्थात् आप अपनी गणना-बुद्धि से काम लेंगे।

संख्या-बुद्धि में इस बात का भान नहीं होता कि किसी मंग्रह में कौन-सी वस्तु पहली है, कौन-सी दूसरी। परन्तु गणना-बुद्धि में यह बात आवश्यक है। मान लीजिए कि आप यह कहना चाहते हैं कि आज कक्षा में पाँच विद्यार्थी देर से आये, तो आप अपने हाथ की पाँच उँगलियाँ दिखाकर पाँच का निर्देश करेंगे। किन्तु यदि आप किसी विद्यार्थी से यह कहना चाहते हैं कि परीक्षा में “तुम्हारा पाँचवाँ स्थान आया है”, तो आप यदि उँगलियों से इस बात का संकेत करना चाहें तो आप एक-एक करके बारी-बारी से एक, दो, तीन, चार, पाँच उँगलियाँ उठायेगे। पहली दशा में आपने अपनी संख्या-बुद्धि से काम लिया था, दूसरी दशा में आप अपनी गणना-बुद्धि का उपयोग कर रहे हैं।

एक उदाहरण और लीजिए। जब कंस को यह पता चला था कि वसुदेव-देवकी के पहला बच्चा हुआ है तो उसने उसकी हत्या करना अस्वीकार कर दिया। क्योंकि उसने सोचा कि उसका संहारक तो आठवाँ पुत्र होगा, न कि पहला। किन्तु जब नारदजी उसके पास आये तो उन्होंने एक वृत्त में आठ गुट्टे रखकर कंस से पूछा कि “बता इसमें आठवाँ गुट्टा कौन-सा है।” कंस के पास इसका कोई उत्तर न था। वृत्त में कोई भी गुट्टा पहला हो सकता है और कोई भी आठवाँ। कंस अपनी गणना-बुद्धि का उपयोग कर रहा था, किन्तु नारदजी चाहते थे कि वह अपनी संख्या-बुद्धि से काम ले।

जिस प्रकार हमारी संख्यात्मक बुद्धि में सबसे पहला स्थान १ का है, उसी प्रकार हमारी गणनात्मक बुद्धि में पहला स्थान ‘प्रथम’ का है। हमारे जीवन में प्रथम स्थान ईश्वर को दिया गया है। प्रत्येक शुभ कार्य के प्रारंभ में ईश-वंदना की जाती है। हमारी दिनचर्या में भी शरीर-शुद्धि के पश्चात् प्रथम स्थान सन्ध्या-पूजन का है। इस प्रथम शब्द का महत्व इतना बढ़ गया है कि अधिकांश प्रसंगों में ‘प्रथम’ उत्तम का ही पर्याय समझा जाता है। अंग्रेजी में First class (फर्स्ट क्लास) का मतलब Best class (बेस्ट क्लास) ही होता है। जब हम किसी के प्रदर्शन की प्रशंसा करते हैं तो कहते हैं, His performance was A₁ अर्थात् उसका प्रदर्शन नम्बर १ था। यहाँ A₁ या नम्बर १ का अर्थ है बहुत अच्छा या प्रशंसनीय। हमने लोगों को इस प्रकार कहते सुना है कि “अमुक आदमी नम्बर एक है या अमुक माल नम्बर एक है।” इन स्थलों पर नम्बर १ Good Quality अर्थात् उत्तम श्रेणी का ही द्योतक है।

सृष्टि के निर्माण से पहले केवल ब्रह्म का ही अस्तित्व रहा। “एकं ब्रह्म द्वितीयं नास्ति”—इस श्लोक में ब्रह्म की एकता का निर्देश किया गया है। जब हम ‘एक’ या ‘प्रथम’ का उपयोग ब्रह्म, ईश्वर या परमात्मा के लिए करते हैं तो उसमें अद्वितीयता का भाव भी सन्निहित रहता है, अर्थात् ब्रह्म अतुलनीय है, अनुपमेय है, अद्वितीय है। यह तो

हूँ एक, अद्वितीय, पट्टे या प्रथम की महिमा। हमारे जीवन में द्वितीय या दूसरे—इन शब्दों का भी महत्त्व है। इन शब्दों का उपयोग कई अर्थों में होता है। अंग्रेजी में प्रथम और द्वितीय के समानार्थी शब्द हैं First और Second। इनके अनिश्चित दो शब्दों और भी प्रयोग में आते हैं—प्राइमरी और सेकंडरी। इन शब्दों का अर्थ केवल पहला और दूसरा नहीं है बल्कि प्रधान और गौण है। यह तो हुआ इन शब्दों का ध्वन्यनिलम्ब अर्थ। द्वितीय का सीधा-सा अर्थ है दूसरा। बिस्व में तीन प्रकार की संख्याएँ होती हैं—

- १ गणनात्मक संख्याएँ—(Cardinal numbers) जैसे—एक, दो, तीन।
- २ क्रम-संख्याएँ—(Ordinal numbers) जैसे—पहला, दूसरा, तीसरा।
- ३ गुणन-संख्याएँ—(Multiplicative numbers) जैसे—दुगुना, तिगुना, चौगुना।

पहला और दूसरा हम किम कहें, यह हमारी गणना विधि-पर निर्भर है। मान लीजिए कि किसी सड़क पर एक पुस्तकालय और एक चिकित्सालय है। अब यदि आपसे कोई यह पूछता है कि 'उस सड़क पर पहला चिकित्सालय पड़ता है या पुस्तकालय' तो आप इस प्रश्न का कोई अमरिग्न उत्तर नहीं दे सकते। एक दिशा में चलने पर चिकित्सालय पड़े पड़ेगा, दूसरी दिशा में चलने पर पुस्तकालय।

दूसरे का एक मित्र अर्थ भी होता है जिसका पर्याय अंग्रेजी शब्द Other है। 'दि अदर साइड आफ दि पिकचर' अर्थात् चित्र का दूसरा पक्ष। इसका यह अर्थ हुआ कि चित्र का एक पक्ष तो आप देख ही रहे हैं या देख चुके हैं, 'दोप दूसरा पक्ष।'।

संख्या तीन का भी हमारे जीवन में विशेष स्थान है। प्रतियोगिता में पहले तीन स्थानों के पात्रों का ही पारितोषिक मिलता है। खेल में प्रत्येक विषय में खिलाड़ियों का तीन प्रयत्नों की ही अनुज्ञा मिलती है। भारतीयों के कुछ परिवारों में तीन फेरा में विवाह होता है। उन लोगों में कहावत है—'पहले फेर बाप की बेटी, दूसरे फेरे चत्ता की भतीजी, तीसरे फेरे कोई हुई पराई।' राजा यदि तीन वरण भूमिदान में राजा मर रहा हो। मुसलमानों के तीन मट्टी तन्दुड में तीनों लोगों का बारा-न्याय हो गया। कुछ दिनों हुए हम देश के कुछ स्कूलों में यह नियम था कि जो विद्यार्थी लगातार तीन वर्ष तक किसी विज्ञान में पैसें हाया वह फिर जीवन भर किसी उस विज्ञान में नहीं बैठ सकेगा।

शब्द 'तीसरे' अच्छे और बुरे दोनों अर्थों में आता है। अंग्रेजी का एक मुहावरा है Thrice Blessed जिसका अर्थ है बहुत भाग्यशाली। हिन्दु हमारे विपरीत Third Degree अथवा Third Rate का अर्थ रूपा है—'निम्नवर्ग का।' हिन्दी

में भी इस प्रकार के कई मुहावरे हैं—‘तीसरा प्रहर’, ‘दोहरी मार तेहरी मार’, ‘ढाक के तीन पात’ और ‘तेरह-तीन’ आदि ।

अब हम अपने विषय पर लौटकर आते हैं । किसी रास्ते चलते की दृष्टि में तो संख्या-वृद्धि और गणना-वृद्धि में कोई अन्तर नहीं होता, किन्तु वास्तव में इन दोनों भावों में महान् अन्तर है । अभी हम तीन प्रकार की संख्याओं का उल्लेख कर चुके हैं—गणना-संख्याएँ, क्रम-संख्याएँ और गुणन-संख्याएँ । इन तीनों प्रकार की संख्याओं का सम्बन्ध केवल गणना-वृद्धि से ही है । संख्या-वृद्धि से इनका तनिक भी संबन्ध नहीं । संख्या-वृद्धि में केवल संगति (Correspondence) का भाव रहता है । उसमें गिनती की कल्पना का समावेश ही नहीं है । मान लीजिए कि हम यह कहते हैं कि मनुष्य के उतनी ही आँखें होती हैं जितने हाथ, तो इस वाक्य में आँखों की संख्या का पता नहीं चलता । यदि हाथ दो हैं तो आँखें भी दो ही होंगी । यदि हाथ चार हैं तो आँखें भी चार होंगी । अतः हाथों और आँखों में संगति है ।

संगति कई प्रकार की होती है । जो उदाहरण हमने लिया है वह एकैकी संगति (One-one Correspondence) का है । इसके अतिरिक्त एक-दो संगति और एक-तीन संगतियाँ भी होती हैं । प्रत्येक मनुष्य के दो टांगे होती हैं । यदि हमें पता है कि किसी विश्वविद्यालय में कितने मनुष्य रहते हैं तो उस संख्या को दुगुना करने से यह पता चल जायगा कि विश्वविद्यालय में कितनी टांगें हैं । यह एक-दो संगति का उदाहरण हुआ । परन्तु एक-दो संगति के स्थान के लिए मनुष्यों की गिनती करने की आवश्यकता नहीं है । विश्वविद्यालय में मनुष्यों की संख्या कितनी ही हो, बिना गिने ही हमें यह विश्वास है कि टांगों की संख्या उससे दुगुनी होगी क्योंकि हम जानते हैं कि मनुष्यों और टांगों में एक-दो का सम्बन्ध है ।

प्राचीन काल के लोगों में संख्या-वृद्धि तो कुछ थी भी, किन्तु गणना-वृद्धि सर्वथा नगण्य थी । जब कोई कहता था कि “मैं बाजार से पाँच आम लाया हूँ” तो उसका मतलब गिनती के पाँच नहीं होता था । उसके मस्तिष्क में संख्या पाँच की कोई पृथक् कल्पना नहीं थी । पाँच से उसे हाथ की पाँच उँगलियों का ही भान होता था । उसकी उपचेतना में हाथ की उँगलियों और संख्या पाँच में सांगत्य था । उँगलियों से पृथक् संख्या ५ का कोई अस्तित्व नहीं था । यही कारण है कि संसार की बहुत-सी भाषाओं में पाँच और हाथ के लिए एक ही शब्द का प्रयोग होता है और इसीलिए विश्व की बहुत-सी पुरानी बोलियों में संख्या-सूचक शब्दों का अभाव है । वे लोग उन्हीं संख्याओं के लिए शब्द बनाते थे जिनकी दृष्टिगोचर वस्तुओं से संगति स्थापित कर सकें । बाह्य वस्तुओं में उन्हें प्रायः अधिक-से-अधिक सात वस्तुएँ (सप्तऋषिमण्डल) दिखाई देती थीं । परन्तु

अपने शरीर व अंग पर ध्यान देने से उनकी पहुँच बीमत्तक हो जाती थी, क्योंकि मनुष्य के हाथ और पैर में मंत्र मिलाकर बीस जैंगलियाँ हानी हैं। इसीलिए समार की बहुत सी बोलियाँ की गिनती यदि पाँच या मान से आगे जाती है तो बीस पर रूक जाती है।

पुराने समय में अभिलेख (Record) रखने के बहुत-से ढंग थे। कुछ लोग कौडिया या कन्नडा से तारीख गिना करते थे। प्रति सवेरे उठने ही एक कौडी कोन में रख देते थे। जब बिसी ने आकर निधि पूछी तो कौडियाँ गिनकर बता दी। जब कौडियाँ २८ या ३० जितने का भी महीना हो, उतनी हाँ गयी, तो काने में से उठाकर फिर यथास्थान रख दा। कुछ लोग डारे में गाँठें लगाकर या दीवार पर लकड़ी के लॉच पर तारीख गिना करते थे।

पाठक ने पढ़ा होगा कि जब रॉबिन्सन क्रूसो अकेला एक टापू में रहा था तो प्रति दिन एक लकड़ी के डंडे पर एक-एक खराँच बना दिया करता था। जब कभी वह यह जानना चाहता कि उसे टापू में रहते हुए कितने दिन बीत गये तो उन खराँचों को गिन लिया करता था। इस उदाहरण में सख्या-बुद्धि और गणना-बुद्धि दोनों का सम्मिश्रण है। जब तक रॉबिन्सन क्रूसो बिना गिने यह समझता था कि उसे टापू में रहते हुए उतनी ही दिन हुए हैं जितनी खराँचें उसने लकड़ी पर बनायी हैं तब तक वह अपनी मख्या बुद्धि से काम चला रहा था। परन्तु जब वह उन लकड़ी के गिनने लगता था तब वह अपनी गणना बुद्धि का प्रयोग करता था।

जमनी में गिनती के लिए प्राचीन लोग खडिया से चिह्न बना लिया करते थे। कहीं कहीं छोटे तिनका में भी गणना की जाती थी। मैडागास्कर द्वीप में फौज में मिपाहिया भी गिनती करने का एक अबसूत ढंग था। समस्त सिपाही एक-एक करके अपने सरदार के सामने से होकर जाते थे। सरदार प्रत्येक सिपाही पीछे एक कण्ड जमीन पर डाल देता था। जब दस कण्ड का एक ढेर बन जाता था, तो उस ढेर को हटाकर उसके बगल में एक कण्ड एक नये स्थान पर रख दिया जाता था। अब दस ढेर हो जाते थे तो सौ का निर्देश करने के लिए एक कण्ड एक तीसरे स्थान पर रख दिया जाता था। इसी प्रकार सारी फौज की गणना हो जाती थी।

इसी ढंग का एक उदाहरण अमेरिका के एक हव्शी दल में मिलता है। मोमबलाई एक हव्शी कबीले का नाम है। मान लीजिए कि उस कबीले की एक हव्शिन किसी दुकानदार से सौदा उधार लेती है। वह प्रत्येक सौदा की स्मृति में एक डोरी में गाँठ लगा लेती है। जब हिमाव करने का दिन आता है तब वह अपनी डोरी दुकानदार के पास ले जाती है। दुकानदार गाँठों की गिनती करके उसे दाम बताता है। यह हिमाव उसकी समझ में नहीं आता। अब दुकानदार एक नये ढंग से हिमाव समझाता

है। वह एक खपच्ची ले लेता है और प्रत्येक गाँठ के लिए खपच्ची में एक खरोंच बना देता। प्रत्येक खरोंच का मतलब हुआ एक डाइम (इस कबाले के एक पुराने सिक्के का नाम)। जब डाइमों का एक डालर बन जाता है तब खपच्ची में एक लम्बी खरोंच बनायी जाती है। इसी प्रकार जब पाँच लम्बी खरोंचें बन जाती हैं तो पाँच डालर का संकेत करने के लिए खपच्ची में एक डोरी बाँधी जाती है। अब मान लीजिए कि खपच्ची में तीन डोरियाँ बाँधी हैं, तो स्त्री की समझ में आ जाता है कि पन्द्रह डालर तो हो ही गये। इन पन्द्रह डालरों का उसने पहले भुगतान कर दिया। अब मान लीजिए कि तीन लम्बी खरोंचें बची हैं। तो उसने तीन डालर और दे दिये। यदि अन्त में दो छोटी खरोंचें शेष रह गयीं तो उसने दो डाइम देकर हिसाब चुकता कर दिया। इस प्रकार दस-पाँच डालर का हिसाब भी घंटों में हो पाता था।

जब तक सिक्के नहीं चले थे बाज़ार का समस्त लेन-देन अदला-बदली (Barter) अर्थात् विनिमय से हुआ करता था। भारत में इसका एक प्राचीन नाम था 'माण्ड-प्रति-माण्ड' अर्थात् 'वर्तन के बदले वर्तन'। इस पद्धति में एक वस्तु के बदले में एक विशिष्ट नाप की दूसरी वस्तु दी जाती थी, जैसे एक टोपी का मूल्य पाव भर गेहूँ अथवा सौ उपलों का मूल्य सेर भर चावल। बाज़ार का सब कारोबार इसी भाँति चलता था। इस प्रकार के लेन-देन में थोड़ी-सी ही गिनती की आवश्यकता पड़ती थी। यह भी एक कारण था कि प्राचीन लोगों की गणना-बुद्धि विकसित न हो पायी। अधिकतर लोग हाथों की उँगलियों से ही गिना करते थे। इस प्रकार तो वह दस तक या अधिक से अधिक बीस तक ही गिन सकते थे। किन्तु कुछ लोगों में उँगलियों द्वारा गणना करने की पद्धति का इतना विकास हो गया था कि उँगलियों की सहायता से ही वे लोग सौ तक गिन लेते थे।

इसकी कई विवरियाँ थीं। एक विधि यह थी कि उँगलियों के बीच के गड्ढों को इकाइयों में गिना जाय और जोड़ों को दहाइयाँ माना जाय। इस प्रकार यदि ३४ कहना हो तो उँगलियों के तीसरे जोड़ और चौथे गड्ढों पर उँगली रखेंगे। कुछ पुराने कबीलों में सौदा गुप्त रूप से करने का रिवाज था। दो व्यक्ति, जो आपस में सौदा करना चाहते थे, अपना एक-एक हाथ कपड़े के नीचे रख देते थे। कपड़े के नीचे ही उँगलियों से एक दूसरे के हाथों पर संकेत करके अपना-अपना मतलब समझा देते थे। पहले एक ने एक प्रस्ताव किया। दूसरे ने उसमें कोई संशोधन किया। तब फिर पहले ने कुछ बढ़ाया। दूसरा हिचकिचाया। इसी प्रकार कपड़े के नीचे ही सारा सौदा होता था। इस सांकेतिक भाषा में वे लोग अपने विचार इतने स्पष्ट रूप में रख सकते थे मानो सौदा मौखिक रूप में ही हो रहा हो।

अभी तक तो जितने उदाहरण हमने दिये हैं, उन सब में सरल गिनती का ही प्रयोग निहित था। प्रत्येक वस्तु एक ही सख्या का निर्देश करती थी। उनमें स्थिति-मान (Positional value) का कोई भाव नहीं था। किन्तु जो उदाहरण हमने अभी दिया है उसमें स्थिति-मान का भी समावेश है। मान लीजिए कि हम जंगल के जोड़ा और गड़्डों से गिनती गिन रहे हैं। यदि कोई प्राचीन गणना सही मान ले तो इस प्रकार गिनेगे—१, २, ३, ४, ५, ६ . . .। किन्तु यदि स्थिति-मान का भी प्रयोग करे तो हम प्रत्येक गड़्डे को १ और प्रत्येक जोड़ा को १० मानेंगे। इस प्रकार हम १० जंगलियाँ से १०० तक की गिनती गिन सकते हैं। यदि स्थिति-मान से हम न ले तो जंगलियों के जोड़ों और गड़्डों से हम अधिक से अधिक २० तक की गिनती ही गिन सकेंगे।

स्थिति-मान का यह अर्थ है कि प्रत्येक स्थान का मान केवल एक सख्या ही नहीं बल्कि उसकी स्थिति से एक विशिष्ट सख्या का निर्देश हो। या यों कहिए कि पुष्प गणना तो केवल योगिक (Additive) ही होती थी। यदि बराबर-बराबर रख दें किन्तु रख दिये जायें तो उनका अर्थ केवल ३ ही होगा। परन्तु आधुनिक गणना गुणनात्मक (Multiplicative) भी है, योगिक भी। आधुनिक पद्धति में यदि हम पाम-पास तीन बिन्दु रखे तो दाहिनी ओर के बिन्दु का अर्थ होगा १, दूसरे का अर्थ होगा १० और तीसरे का १००।

इसमें कोई संदेह नहीं कि स्थिति-मान की सचेत-लिपि पहले-पहल हिन्दुओं ने ही निष्काशी थी। भारत से यह लिपि अरब पहुँची। अरब वालों से यूरोपवासियों ने सीरी। आज हम लागू इस बात के इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि हमें यह ध्यान भी नहीं आता कि गिनती लिखने की इसके अनिश्चित और भी कोई पद्धति हो सकती है। आधुनिक पद्धति में जब हम ४७ लिखते हैं तो उसका अर्थ होता है—

$$4 \times 10 + 7 \times 1$$

अर्थात् ४ का अर्थ है ४० और ७ का अर्थ है ७। उपरिलिखित दोनों गुणनफल (4×10) और (7×1) को जोड़कर हम ४७ बनाने हैं। इस प्रकार जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, गिनती लिखने की आधुनिक पद्धति में योगिक और गुणनात्मक दोनों प्रणालियों का समावेश है। सभी-सभी पुराने ढंग के बृद्ध आजकल के बालकों को भ्रम में डाल देते हैं। ये लोग छोटे बच्चा से प्रश्न करते हैं कि “१०० में पहले शून्य क्या मान है और दूसरे शून्य का क्या मान है।” बच्चा बेचारा अपनी अविचारित बुद्धि के अनुसार उत्तर देता है कि दोनों शून्यों का मान है शून्य। तब बृद्ध महोदय कहते हैं “बिलकुल गलत। देखो, यदि हम पहले शून्य को हटा दें तो १०० के स्थान पर १० आएगा।”

जायेंगे। अतः पहले शून्य का मान हुआ ९०। अब यदि हम हमने शून्य को भी हटा दें तो १० का १ रह जायगा। अतएव हमने शून्य का मान हुआ १।”

इस प्रकार की युक्ति विलकुल अवर्क-मंगत है। मान लीजिए कि उन युक्ति का प्रयोग हम संख्या ४७ पर करते हैं। अब ४७ में से ७ को हटाने से ४ बच रहता है। अतः ७ का मान हुआ ४३। इसी प्रकार ४ को हटाने से ७ बच रहता है। इसलिए ४ का मान हुआ ४०। इस प्रकार ४३ और ४० जोड़ने से ८३ का मान ८३ हो जाता है। यह तर्क अमोत्सादक है। ४ का मान नौ वास्तव में ४० है, किन्तु ७ का मान केवल ७ ही है। यदि ४७ में से ७ को हटाएँ तो ७ के स्थान पर शून्य रखना पड़ेगा, क्योंकि ७ का स्थान इकाई का है। ४ का स्थान दहाई का है। ४ दहाई से इकाई के स्थान पर नहीं आ सकता, इसलिए हम यह नहीं कह सकते कि ४७ में से ७ हटाने से ४ बच रहता है। ७ को हटाते ही उसके स्थान पर शून्य आविर्भूत हो जायगा और ४० उपलब्ध होगा। यहाँ ४ का अर्थ केवल ४ नहीं है बल्कि ४ संख्या ४० का संकेत है। हमारी आधुनिक शिक्षा-प्रणाली सांकेतिक है।

संख्यांक

स्वामाविक बात है कि वच्चा पहले बातों का समझना सीखता है, तत्पश्चात् बोलना आरंभ करता है। उसके कई वर्ष बाद इस योग्य होता है कि उसे लिखना सिखाया जाय। इसी प्रकार मानव के इतिहास में मनुष्य ने सर्वप्रथम बोलना आरम्भ किया। उसके बहुत समय पीछे लिखने का प्रयत्न किया होगा। जहाँ तक लिखित अभिलेख प्राप्त हैं, उनसे पता चलता है कि सर्वप्रथम संख्यांक सीधी रेखाओं से निरूपित किये जाते थे। सबसे पुराने चिह्न मिश्र में मिलते हैं जो प्रायः ३४०० ई० पू० के बताये जाते हैं। मैसोपोटामिया के संख्या-चिह्न कदाचित् ३००० ई० पू० के हैं। भारत और चीन के चिह्न ३०० ई० पू० के आस-पास के हैं। इन सब चिह्न-पद्धतियों में एक बात सामान्य रूप से पायी जाती है। वह यह कि १ से ९ तक के संख्या-चिह्न एक पद्धति के होते थे, किन्तु १० के लिए एक विशेष चिह्न होता था।

मैसोपोटामिया और उसके आस-पासके प्रदेशों में संख्यांकों के लिए खड़ी रेखाएँ खींची जाती थीं। कदाचित् यह चिह्न हाथ की उँगलियों से ही लिये गये थे। रोमन संख्यांक आज भी प्रायः उसी प्रकार लिखे जाते हैं—

I, II, III, IV, V, VI, VII, VIII, IX, X

इनमें से प्रथम तीन चिह्नों में तो योग-सिद्धान्त स्पष्ट दिखाई देता है। किन्तु IV और IX में वियोग-सिद्धान्त का प्रयोग किया गया है। IV का अर्थ है ५ से १ कम।

इसी प्रकार IX का अर्थ है १० से १ कम। V—यह चिह्न बढ़ाचिह्न गुंठे पत्रे का विवृत रूप है। इसी प्रकार X में दो पत्रे ऊपर नीचे जुड़े हुए हैं।

पूर्वी एशिया में सभ्याका के लिए पड़ी रेखाओं का प्रयोग किया जाता था—

$$- = \equiv$$

ये रेखाएँ बढ़ाचित डंडा की आकृति का समान गीची गयी हैं जो पृथ्वी पर अम्बा मेड़ पर पड़े हैं। आज भी हमारे नागरी के सभ्याको में इन डंडों की आकृति स्पष्ट दिखाई देती है और प्रत्येक सभ्याक में उतने ही डंडे दृष्टिगोचर होते हैं, जिनकी को उबल सभ्याक निरूपित करता है। तब इन चिह्नों पर विचार कीजिए—

$$- = \equiv \text{ ५ ५ ६ ७ ८ ९ }$$

चित्र १—सरपाँचों के लिए पड़ी रेखाओं का प्रयोग।

अब इन चिह्नों की तुलना नागरी के वर्तमान सभ्याक-चिह्नों से कीजिए—

$$१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९$$

इन चिह्नों में डंडा के रूप स्पष्ट दिखाई देते हैं। चिह्नों के रूपा में यह विकार इसलिए हुआ कि लिखने में बलम बार-बार उठाने का प्रयत्न न करना पड़े। यह मनप्य का स्वभाव है। इसीलिए कुछ समय पश्चात् पड़ी और खड़ी रेखाओं ने धनो का रूप धारण कर लिया होगा।

इसमें संदेह नहीं कि शून्य के चिह्न का आविष्कार सबसे पहले हिन्दुओं ने किया था क्योंकि यह चिह्न सर्वप्रथम उन्हीं की प्राचीन पुस्तकों में पाया गया था। यद्यपि आज निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि हिन्दू गणितज्ञों में से सबसे पहले शून्य का प्रयोग किसने किया था। इसी शून्य के चिह्न से सभ्याक-पद्धति को आधुनिक दशमिक प्रणाली निकली, जो आज प्रायः समस्त सभ्य ससार में फैल गयी है। इस स्थान पर भिन्न भिन्न सभ्याक पद्धतियों की तुलना अनुपयुक्त न होगी।

यूरोपीय	1	2	3	4	5	6	7	8	9	0
अरबी	١	٢	٣	٤	٥	٦	٧	٨	٩	٠
देवनागरी	१	२	३	४	५	६	७	८	९	०

धल्लिन देश में मिट्टी का प्राचुर्य था। अतः उस प्रदेश के निवासी मिट्टी पर ठप्पा मारकर उसे धूप अथवा भट्टी में पकाया करते थे और इस प्रकार अपने सभ्या चिह्न बनाते थे। इन लोगों की सभ्याक पद्धति का आधार ६० था, यद्यपि ये लोग १० के

लिए भी विशेष चिह्न बनाते थे और इन लोगों में कुछ अंकों के लिए दो-दो चिह्न प्रचलित थे, जैसे—

१ : V अथवा)

१० : < अथवा |||||

इन लोगों के कुछ अन्य चिह्न इस प्रकार हैं—

V > = १००

VV < < < V ☺ = ६० + ६० + १० + १० + १० + १० + १० + १ + १
= १७१½

)) ● ☺ = ६० + ६० + १० + ½ = १३०½

चित्र २—बदलिन देश के संख्यांक-चिह्न। इस प्रदेश के संख्यांक-चिह्नों में एक विशेषता यह थी कि जो चिह्न १ को निरूपित करता था वही चिह्न

६० अथवा ३६०० अथवा ६०^४ को भी निरूपित करता था। यह संदर्भ से ही पता चलता था कि किस स्थान पर उक्त चिह्न से लेखक का तात्पर्य कौन-सी संख्या से है।

साधारणतया इन लोगों की संख्यांक-पद्धति में योग-सिद्धान्त का ही प्रयोग होता था। किन्तु कहीं-कहीं पर वियोग-सिद्धान्त भी काम में आता था, जैसे—

||||| V > = २० - ३ = १७

मिस्र के सांकेतिक चिह्न

मिस्र की भाषा में साधारणतया दाहिनी से बायीं ओर लिखा जाता था, किन्तु और देशों के निवासियों की भांति ये लोग भी कभी-कभी संख्यांक बायीं से दाहिनी ओर लिखा करते थे।

यहाँ उक्त प्रदेश के कुछ सांकेतिक चिह्न दिये जाते हैं। इनके १ से १० तक के चिह्न इस प्रकार के थे जो चित्र ४ की प्रथम पंक्ति में दृष्टिगोचर होते हैं।



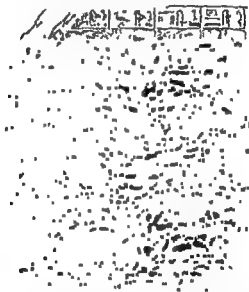
चित्र ३—मिस्र की संख्याओं का प्राचीन रूप।

[जिन एण्ड कंपनी की अनुमति से डेविड यूजीन स्मिथ दृत 'हिस्ट्री ऑफ मैथेमैटिक्स' से प्रत्युत्पादित।]

				III	III	III	III	III	III
I	II	III	IIII	II	III	III	IIII	III	II

ये लागू भी १= और उसके घाता (Powers) के लिए विक्षेप चिह्न निर्धारित करने थे। इनकी बड़ी संख्याओं के कुछ चिह्न चित्र ४ की तीसरी पंक्ति में दिये गये हैं।

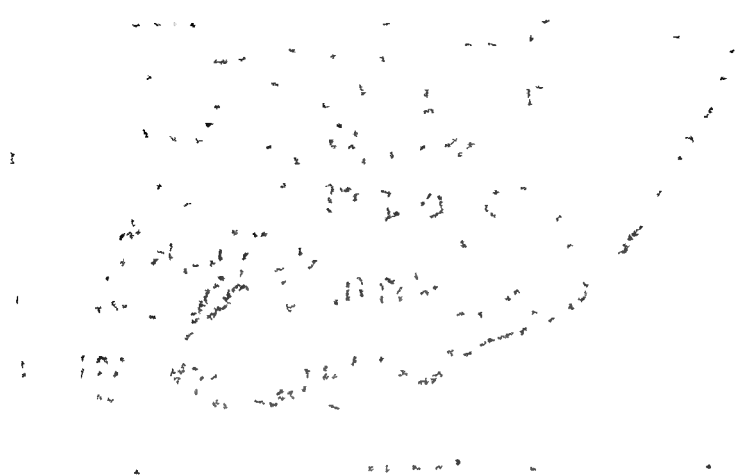
1	II	III	IIII	V	VI	VII	VIII	IX	X
11	2	3	4	5	6	7	8	9	10
10	11	12	13	14	15	16	17	18	19
20	30	40	50	60	70	80	90	100	1,000



चित्र ४—मिस्री संख्यांक ।

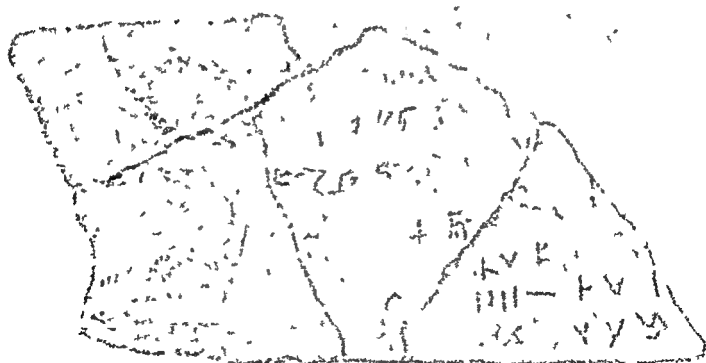
[जिन एण्ड कपनी की अनुमति से डेविड यूजीन स्मिथ का 'रिस्की ऑफ़ मॅथेमैटिक्स' से प्रतुल्यारित।]

यूनानियों की संख्या-शक्ति भी १० तक चलती थी। उसके आगे उन्हीं चिह्नों की पुनरावृत्ति होती थी। १० के लिए उनके पास कई चिह्न थे। माइस्र और चीन वाले १० के लिए एक पड़ी रेखा का प्रयोग करने थे।



चित्र ५—साइप्रस के प्राचीन संख्यांक ।

[जिन एण्ट कंपनी की अनुमति से टेबिल यूजीन स्मिथ कृत 'हिस्ट्री ऑफ मैथेमेटिक्स' से प्रत्युत्पादित।]
अन्तिम दो पंक्तियों में ६ का संख्यांक (III III) दो बार आया है।



चित्र ६—साइप्रस के प्राचीन संख्यांक ।

[जिन एण्ट कंपनी की अनुमति से टेबिल यूजीन स्मिथ कृत 'हिस्ट्री ऑफ मैथेमेटिक्स' से प्रत्युत्पादित।]

यह ऊपर के अपगण्ड का निचला भाग है। पहली पंक्ति में संख्यांक ४ (IIII) दिया है और सबसे निचली पंक्ति से ऊपर वाली में संख्यांक १४ (IIII—)




यह अपमग्न माइक्रम के एक मन्दिर के मन्त्रावली में पाया गया है और ग्युयॉर्क के एक संग्रहालय में सुरक्षित है।

ग्रीक के निवासियों १०० के लिए एक वृत्त और १००० के लिए एक गमचतुर्भुज (Rhombus) बनाते थे।

बहुत-से प्रदेशों में बड़ी संख्याएँ इंगित करने के लिए शब्दों का प्रयोग किया जाता था। कुछ समय पश्चात् शब्दों का स्थान उनके पढ़ने अक्षर ले लेते थे। यूनानियों की पद्धति इस प्रकार थी —

संख्या	शब्द	चिह्न
५	II ENTE	II
१०	Δ EKA	Δ अथवा ०
१००	HEKATON	II
१०००	XI A IOI	X
१००००	MYP IOI	M

पन्नी-पन्नी इन चिह्नों को मिलाकर समुक्त रूप दे दिया जाता था, जैसे—

५०		अर्थात्	५ × १०
५००		अर्थात्	५ × १००
५०,०००		अर्थात्	५० × १०००

यह सरल पद्धति कदाचित् बहुत पुरानी है, किन्तु अभिलेख केवल तीसरी शताब्दी पूर्वोक्त के ही मिलते हैं।

हिब्रू संख्यांक

यूनानियों की भाँति हिब्रूओं ने भी एक आक्षरिक संख्याक पद्धति बनायी थी। संख्या ४०० तक पहुँचते-पहुँचते उनकी वर्णमात्रा समाप्त हो गयी तो उन्होंने ४०० और १०० के चिह्नों को मिला कर ५०० का चिह्न बनाया। इसी प्रकार वे लोग ९०० तक के संकेत बना गये। बाद के अन्य विद्वानों ने ५०, ८०, ९० इत्यादि के संकेत शब्दों के अन्तिम अक्षर लेकर ५००, ८००, ९०० इत्यादि के चिह्न बना लिये। उक्त चिह्नों की सारणी इस प्रकार की होगी—

	N	2	3	7	11	1	1	11	10
इकाई	१	२	३	४	५	६	७	८	९

	१	२	५	10	1	0	५	1	5
दहाई	१०	२०	३०	४०	५०	६०	७०	८०	९०

	P	7	11	11	7	10	7	7	7
सैकड़	१००	२००	३००	४००	५००	६००	७००	८००	९००

चित्र ७—हिंदुओं के आक्षरिक संख्यांक ।

द्रष्टव्य—Encyclopaedia Britannica, Fourteenth Edition (1929), Vol. 16, P. 612.

रोमन संख्यांक

रोमन संख्यांक-पद्धति खड़ी रेखाओं को छोड़कर केवल चार चिह्नों का प्रयोग करती है—

V X L C

इनमें से पिछले दोनों चिह्नों के उद्गम का ठीक-ठीक पता नहीं चलता । संभव है कि L इन दो चिह्नों \perp , \downarrow का ही विकृत रूप हो । किन्तु इस अक्षर को संख्या ५० का निरूपण करने के लिए क्यों चुना गया, इसका कारण समझ में नहीं आता । अक्षर C संभव है यूनानी अक्षर θ (थीटा) का विकृत रूप हो जो संख्या १०० के लिए निर्धारित किया गया था । हो सकता है कुछ समय पश्चात् उक्त चिह्न अंग्रेजी सेंट (सेंटम) के कारण C के रूप में आ गया हो । इन चिह्नों के अतिरिक्त एक अक्षर M भी काम में आता है जो १००० का निरूपण करता है । यह कदाचित् यूनानी शब्द मिल (Mill) का घोटक है, जिसका अर्थ १००० है ।

रोमन शिलालेखों से एक दूसरी संख्यांक-पद्धति का भी पता चलता है, जिसमें एक ही चिह्न की बार-बार पुनरावृत्ति की जाती है । इस पद्धति के कुछ संख्यांक यहाँ दिये जाते हैं—

१०००	(१)
१०,०००	((१))
१००,०००	(((१)))
१०००,०००	((((१))))

मम्मव है कि आधुनिक अतन्ती चिह्न ∞ उपरिलिखित १००० के चिह्न से ही निराला हो। सबसे पुराना रोमन सिलालेख, जिसमें डा बड़ी सख्याओं का उल्लेख है, २६० ई० पू० का है।

यूक्लेड में पुराने समय में एक सम्म्यता विवक्षित हो चुकी थी, जिसका नाम माया सम्म्यता था। इसकी सख्याक पद्धति में ५ को आधार माना गया था। उक्त पद्धति में एक का निरूपण बिन्दु () से और ५ का पंजी लकीर (—) में किया जाता था। यहाँ कुछ सख्याक दिये जाते हैं—

१	२	५	८	१०	१७
		—	—	—	—

बाद के समय में रोमन सख्याकों में इस प्रकार की सख्याएँ भी आती हैं—

$$\text{II CXXII} = २१२२$$

इस प्रकार की सख्याओं में अंकों का स्थितिमान भी दृष्टिगोचर होता है, यद्यपि उक्त स्थितिमान का प्रयोग आधुनिक नियमित ढंग से नहीं किया गया था।

चीनिया के पास तीन सख्या पद्धतियाँ हैं : प्राचीन राष्ट्रीय पद्धति, आधुनिक राष्ट्रीय पद्धति और व्यापार पद्धति। इन तीनों पद्धतियों के प्रथम तीन सख्याक इस प्रकार हैं—

—	—	—
—	—	—
—	—	—

दूसरी पद्धति में शून्य के लिए वृत्त का प्रयोग होता है और उसमें स्थितिमान का भी निरूपण किया जाता है। सख्या १० का ये लोग इस प्रकार लिखते हैं \bigcirc क्योंकि चीनी भाषा ऊपर से नीचे लिखी जाती है।

हमारे आधुनिक सख्याकों के विषय में एक विवाद चल रहा है। कुछ लोग कहते हैं कि इनका आरम्भ अरब से हुआ। इसी प्रकार कुछ इतिहासज्ञ मिस्रियों को और कुछ हिन्दुओं को इनका जन्मदाता बतलाते हैं। एक मत ईरान से भी इसका उदय होना

मानता है। यह स्वाभाविक है कि व्यापारियों के द्वारा ये संख्यांक एक देश से दूसरे देश में गये हों और इनके रूपों पर भी पारस्परिक सम्पर्क से प्रभाव पड़ा हो। यों तो उक्त चारों देशों में आधुनिक संख्याओं में से कुछ का प्रयोग प्राचीन समय से किया जाता रहा है, किन्तु इन संख्याओं में से सबसे अधिक का प्रयोग सर्वप्रथम भारत में ही मिलता है। तीसरी शताब्दी ई० पू० में अशोक के एक शिलालेख में अंक १, ४ और ६ प्रयुक्त हुए थे। चौथी शताब्दी के नाना घाट के एक शिलालेख में अंकों २, ४, ६, ७ और ९ का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त नासिक की पहली और दूसरी शताब्दी की गुफाओं में अंकों २, ३, ४, ५, ६, ७ और ९ का प्रयोग मिलता है। किन्तु इनमें से किसी भी शिलालेख से इस बात का प्रमाण नहीं मिलता कि हिन्दुओं को उतने पुराने समय में स्थितिमान का भी ज्ञान था। हिन्दू-साहित्य से यह संदेह तो होता है कि कदाचित् इन लोगों ने सन् ईस्वी से पूर्व ही शून्य का आविष्कार कर लिया था, किन्तु किसी शिलालेख में शून्य का स्पष्ट प्रयोग नवीं शताब्दी ईसवी से पूर्व का नहीं मिलता।

हिन्दू-संख्याओं का बाह्य उल्लेख मैसोपोटामिया के एक पादरी सिबोख्त (Sebokht) द्वारा मिलता है जो ६५० ई० का है। यतः वह नौ चिह्नों का उल्लेख करता है, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि उसे शून्य का बोध नहीं था। आठवीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में भारत की कुछ ज्योतिषीय सारणियों का अनुवाद बग़दाद में अरबी भाषा में हुआ और इस प्रकार हिन्दू-संख्याओं का आविर्भाव अरब में हुआ। सन् ८५५ ई० के लगभग अलखवारिज्मी ने उक्त विषय पर एक पुस्तिका लिखी, जिसका बाथ के एडिलार्ड (Adelard) ने सन् ११२० में लॉटिन में अनुवाद किया। विद्वानों का यह अनुमान है कि उक्त अनुवाद से कई शताब्दी पूर्व ही हिन्दू-संख्यांक यूरोप में प्रवेश कर गये थे, किन्तु यूरोप की सबसे प्राचीन पाण्डुलिपि जिसमें उक्त अंकों का उल्लेख है स्पेन में पायी गयी है, जो सन् ९७६ की बतायी जाती है। उक्त पाण्डुलिपि में संख्यांक इस प्रकार के थे—

17744L789

चित्र ८—यूरोप के प्राचीन अंक।

[जिन एण्ड कम्पनी की अनुज्ञा से डेविट यूजीन स्मिथ कृत 'हिस्ट्री ऑफ़ मैथेमैटिक्स' से प्रत्युत्पादित।]

इस प्रकार भारतीय संख्यांक देश-विदेश में धूमते हुए और विकृत होते हुए

अध्याय ३

अंकगणित

(१) पूर्व ऐतिहासिक समय से ३०० ई० पू० तक

पृथ्वी की आयु के विषय में अनेक मन हैं। आजकल के भौमिकीज्ञ (Geologists) कहते हैं कि पृथ्वी लगभग ६००००००००० (छ अरब) वर्ष पुरानी है। पृथ्वी पर मानव जाति का प्रादुर्भाव जब हुआ, यह कहना बठिन है। किन्तु इतना निश्चित है कि मानव-जाति का इतिहास लाखों वर्ष पुराना है। मनुष्य ने जब से गणित का प्रयोग आरम्भ किया, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता तथापि यह निश्चित है कि मानव-जाति में अंकों का प्रयोग अति प्राचीन है। जैसा हम पिछले अध्याय में दर्शा चुके हैं, ससार के प्राचीनतम कबीलों को भी अंको १ और २ का भान है। मनुष्य ने पहले पहल गिनना जब सीखा, यह नहीं कहा जा सकता। किन्तु इतना निश्चित है कि गिनती सीखने के बहुत दिनों पश्चात् ही परिकलन (Calculation) करना सीखा होगा। भारत में गिनती के लिए प्राचीन शब्द 'गणन' है और इसी शब्द से गणित निकला है। 'गणित' का मौलिक अर्थ है 'गणन किया हुआ' अर्थात् 'गिना हुआ'। इससे स्पष्ट है कि गणित का विषय गिनती से ही आरम्भ हुआ है।

अंकगणित का मौलिक अर्थ है अंक विज्ञान। इस विषय में अंको के गुणों का अध्ययन किया जाता था। किन्तु आधुनिक समय में अंको के गुणों का विषय इतना विस्तृत और विकसित हो गया है कि अब अंक-सिद्धान्त (Theory of Numbers) एक स्वतंत्र विषय बन गया है। अतः अब अंकगणित के अन्तर्गत केवल अभिकलन (Computation) कला और उसके प्रयोग ही आते हैं। भारतवर्ष में प्राचीन समय में विद्यार्थियों को गुरुकुल और आश्रमों में शिक्षा दी जाती थी। सर्वप्रथम बालका को जंगली से बाटू पर लिखना सिखाया जाता था। गिनती सिखाने के लिए एक यन्त्र होता था, जिसे गिनतारा (Abacus) कहते थे। कुछ समय पश्चात् पटिया अथवा सल्लो का आविष्कार हुआ जिसपर बालक सड़िया से लिखने लगे।

इसीलिए इस विषय का एक नाम 'पाटी गणित' भी पड़ गया। स्टेट का आविष्कार बहुत समय पश्चात् हुआ है और कागज पर लिखना तो आधुनिक समय की देन है।

शताब्दियाँ बीत गयीं। मनुष्य ने अंकगणित के महत्त्व को समझा। आरम्भ में यह विषय कुछ विशिष्ट जातियों का एकस्व समझा जाता था। तत्पश्चात् उक्त विषय समस्त सम्प्रदायों और जनसाधारण में फैलने लगा और एक ऐसा समय आया जब अंकगणित को भी सामान्य संस्कृति के लिए आवश्यक समझा जाने लगा। आजकल इसका महत्त्व इतना बढ़ गया है कि प्रत्येक छात्र के लिए तीन कलाएँ जानना आवश्यक समझा जाता है—पढ़ना, लिखना और अंकगणित।

अंकगणित के इतिहास में चार देशों के नाम उल्लेखनीय हैं—भारत, चीन, मेसोपोटामिया और मिस्र। भारतवर्ष में अंकगणित कब से प्रयोग में आया यह कहना असंभव-सा है, क्योंकि चार-पाँच हजार वर्षों से पहले के विश्वसनीय अभिलेख नहीं मिलते। जबसे हिन्दुओं में संख्यालेखन की स्थितिमान पद्धति आरम्भ हुई, तब से आज तक का तो अंकगणित का इतिहास बहुत कुछ उपलब्ध हो चुका है। यदि यह कहें कि आधुनिक अंकगणित की नींव हिन्दुओं ने डाली है तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी। हिन्दू अंकगणित का प्रभाव चीनियों और अरबों पर भी पड़ा और इन दोनों देशों ने भी बहुत कुछ अंशों में हिन्दू-गणना की प्रणाली को अपनाया।

गणित के इतिहास के विचार से हम पूर्व ऐतिहासिक काल से ३०० ई० पू० तक के समय को पहला युग मान सकते हैं। प्रस्तर-युग के कुछ ऐसे हथियार मिले हैं, जिनसे पता चलता है कि आज से पचास साठ हजार वर्ष पहले भी वस्तुओं की अदला-बदली होती थी और किसी-न-किसी रूप में गिनती का भी प्रयोग होता था। सबसे पहले मनुष्य ने आग जलाना कब सीखा, यह कहना कठिन है, किन्तु विशेषज्ञों का अनुमान है कि अग्नि का आविष्कार लगभग ५०,००० वर्ष पूर्व हुआ होगा। अग्नि के आविष्कार और हथियारों के निर्माण से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि उस प्राचीन समय में भी मनुष्य के मस्तिष्क का कुछ-न-कुछ विकास हो चुका था। इसी से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि उस समय के मनुष्यों को संख्या का भी कुछ-न-कुछ बोध हो गया होगा।

आज से लगभग १५००० वर्ष पूर्व का समय मध्य प्रस्तर-युग कहलाता है। इस युग की कुछ कलापूर्ण वस्तुएँ पुरातत्त्वज्ञों (Archaeologists) को प्राप्त हुई हैं; जैसे मिट्टी के वर्तन—झंझर, सुराही, प्याले इत्यादि। साथ ही हम यह भी देखते हैं कि आज कल जहाँ भी ऐसे कबीले निवास करते हैं, जो इस ढंग के वर्तन बनाते हैं, उन्हें संख्या का कुछ-न-कुछ बोध अवश्य ही होता है। इन बातों से हम यह निष्कर्ष निकालते

हैं कि उस समय की मानव-जाति को भी मर्यादा का भान हो चुका था। अंतिम प्रस्तर-युग का समय ५००० ई० पू० के आस-पास का बताया जाता है। ऐतिहासिक तथ्यों से पता चलता है कि उक्त समय तक सप्ताह में बहुत-सी मर्यादा पद्धतियों विकसित हो चुकी थी।

४००० ई० पू० के आस-पास धातु का आविष्कार हुआ। फलतः नाप-तौल के बटखरे और औजार बनने लगे। इस साधन से वस्तुओं की अदला-बदली में सुविधा होने लगी और सत्त्वा-पद्धतियों के विकास का मार्ग भी प्रशस्त हुआ। ३००० ई० पू० के अभिलेखों में पत्थर की दीवारों का उल्लेख मिलता है और यह भी पता चलता है कि भिन्न-भिन्न देशों में समुद्री जहाजों की आवा-आही उस समय तक होने लगी थी। भिन्न-भिन्न देशों का निर्माण भी उसके कुछ ही समय पश्चात् हुआ था। इससे पता चलता है कि अकगणित के अतिरिक्त मापकी (Mensuration) और सर्वेक्षण (Surveying) की नींव भी उस समय तक पड़ चुकी थी। अब हम भिन्न-भिन्न देशों की, अकगणित के विचार से, उस समय तक की प्रगति का व्याख्यान देंगे।

चीन

चीन में गणित का आरम्भ कब से हुआ यह नहीं कहा जा सकता। इस सम्बन्ध में हमें जो सबसे पुराना अभिलेख प्राप्त है, वह ११२२ ई० पू० का है, जब चीन में बूबांग का राज्य था। चीन की सबसे प्राचीन पुस्तक आडविंग कहलाती है। पुस्तक के नाम का अर्थ है 'क्रमचय पुस्तक'। इसका लेखक सम्भवतः वैनवांग था, जिसका जीवन काल ११८२-११३५ ई० पू० था। इस पुस्तक में निम्नलिखित चार अंकों का, परोक्ष रूप में, उल्लेख मिलता है।

— — — —	— — — —	— — — —	— — — —
३	२	१	०

इन चिह्नों में से तीन-तीन को एक साथ लेने में आठ नये चिह्न बनते हैं—

— —	— —	— — — —	— — — —	— — — —	— — — —	— — — —	— — — —
स्वर्ग	माप	अग्नि	गर्ज	वायु	जल	पहाड़	पृथ्वी
७	६	५	४	३	२	१	०
स्वर्ग	मन्त्रि	अग्नि	बादल	वायु	वर्षाजल	पहाड़	पृथ्वी
आकाश	जल		की गरज		चन्द्रमा		
८०	८००	१००	३०००	८०००	५०	३०५०	३०

उन चिह्नों को चीन में पक़ुआ कहा जाता है। चीन के निवासियों में उन चिह्नों की बड़ी महिमा गायी गयी है। दर्जनों लोगों ने उन पर पुस्तकें लिखी हैं और उनके भिन्न-भिन्न प्रकार के अर्थ लगाये हैं। प्राचीन समय में आज्ञाक लागों चीनी उन चिह्नों ने प्रभावित हुए हैं।

कुछ आधुनिक विद्वानों का मत है कि ये चिह्न बाल्मन्य में चीनी संख्यांक हैं जो संख्या २ की मापनी (scale) पर आधारित हैं। यदि हम — को १ मानें और — — को शून्य तो उपरिलिखित चिह्नों के मान उस प्रकार होंगे—

१११, ११०, १०१, १००, ०११, ०१०, ००१, ०००

यदि संख्या २ को मापनी मानकर इन चिह्नों का अर्थ लगाया जाय तो क्रमशः ये अंक प्राप्त होंगे—

७ ६ ५ ४ ३ २ १ ०

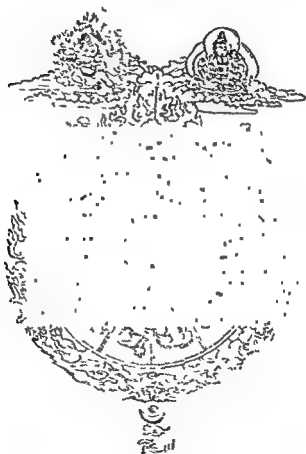
ये चिह्न आज भी चीन के बहुत-से ज्योतिषियों के पास दिखाई पड़ेंगे, जहाँ नगर-नगर और गाँव-गाँव में घूमते फिरते हैं। इतना ही नहीं, ये चिह्न बहुत-से तावीजों में काम में आते हैं और घरेलू वर्तनों तक पर गुदे रहते हैं। आइकिंग में लिखा हुआ है कि ये आठ पक़ुआ एक पिशाचिनी के पैरों के चिह्न हैं जो सम्राट् फूही के राज्य में एक नदी के किनारे दिखाई पड़ी थी।

तिब्बत में एक आकृति (चित्र ९) पायी गयी है, जिसे जीवन-चक्र कहते हैं। उक्त आकृति में राशि चिह्न (Signs of the Zodiac) और पक़ुआ के आठ चिह्न दिये गये हैं। आकृति के मध्य में एक माया वर्ग (Magic Square) दिया गया है।

४		९	२
३		५	७
८		१	६

इस वर्ग में किसी भी पंक्ति, स्तंभ अथवा विकर्ण की संख्याओं का योग १५ होता है। अतः इसे भारतवर्ष की भाषा में 'पन्द्रहा' कहते हैं। वास्तव में उपरिलिखित माया वर्ग आगे दी हुई (चित्र १०) आकृति से निकला है—

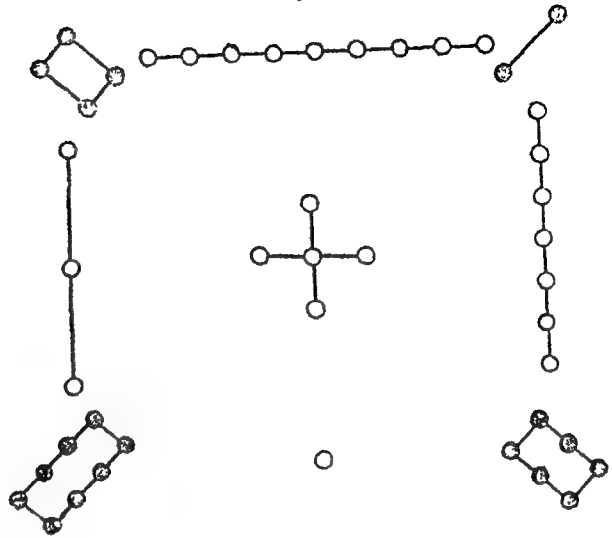
सम्राट् यू के समय में एक बहूआ दिगाई पडा था जिसकी पीठ पर यह आकृति गुदी हुई थी। इस आकृति का चीनी नाम लो झू है।



चित्र ९—तिब्बत का जीवन चक्र ।

[यिन छण्ड बम्पनी की अनुमति से डेविड ग्रीन स्मिथ कृत 'हिंदी बाऊ में चैमेलिस' से प्रत्युपादित ।]

अंकगणित

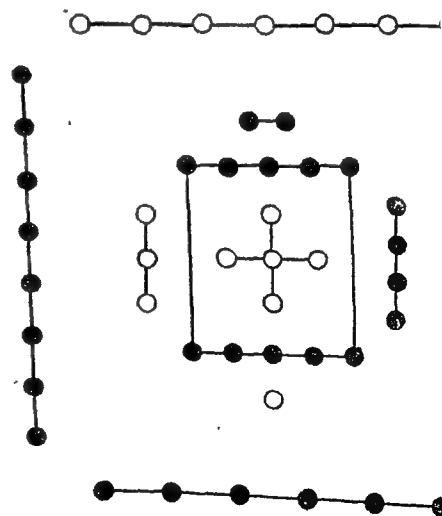


चित्र १०—लोशू आकृति ।

आइकिंग में एक अन्य चिह्न भी दिया गया है, जो इस प्रकार है—

चीन में इस चिह्न की भी बड़ी-महिमा गायी गयी है यद्यपि इसका महत्त्व लो शू से कम है। इस चिह्न का नाम होतू है।

१००० और ३०० ई० पू० के बीच में चीन में अंकगणित-सम्बन्धी कार्य बहुत कम हुआ। चीन की उस समय की सबसे बड़ी दिन उसकी टंकण पद्धति थी। ६७० ई० पू० के



चित्र ११—होतू आकृति ।

आग-पाम उमने मित्रों चलाने आरम्भ किये जो सामान्य यन्त्रों की भाँट के होते थे जैसे चाकू और परमे। कुछ समय पदसाँ गोट मित्रों भी चलने लगे। उस समय चीनियों की परिवहन-विधि क्या थी, हम नहीं कह सकते। सिन्धु ५४२ ई० पू० के आग-पाम चीनी लोग त्रिगार के त्रिगुणों की गणितियों काग में लाने लगे थे। ३७५ ई० पू० के लगभग चीनियों ने पहले मित्रों नितान्त जिनपर उनकी गोट और घात गूदे हुए थे।

बविलन और मैसोपोटामिया

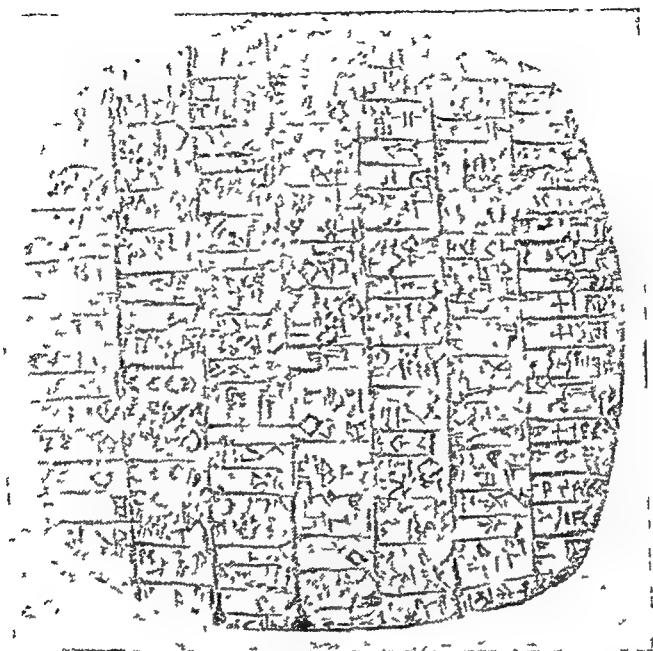
मैसोपोटामिया के अन्तर्गत का इतिहास बहुत पुराना है। बहुत प्राचीन समय में ही उस प्रदेश के निवासियों ने वाँस के बटवारे बना किये थे और १००० ई० पू० तक के लोग लिखने की कला भी जान गये थे। उनकी दृष्टियों ईरान और हिन्दुस्तान तक जाने लगी थी। उनकी कायं प्रणाली के अभिलेखों से पता चलता है कि उस समय तक वे लोग अवगणित का प्रयोग मली-शक्ति करने लगे थे।

बविलन के निवासियों ने २७०० ई० पू० के लगभग ही एक सख्या-मण्डप बना कर दी थी। मिलालेखों से हम जान की पुष्टि होती है। सुमेर के निवासी ईदों पर अपने अभिलेख रखा करते थे। उनसे पता एक गोल नुकीली छड़ी होती थी जिसके द्वारा वह गोली मिट्टी पर अक्षर बनाया करते थे। यह अक्षर पत्थरी (Wedge) के आकार के अथवा वर्तुल या अर्धवर्तुल हुआ करते थे। मिट्टी की ये पट्टियाँ आग अथवा धूप में सुखा ली जाती थी। ऐसी बहुत-सी पट्टियाँ मिश्र-मिश्र सप्ताहलयों में रखी हुई हैं। सुमेर के अभिलेखों से यह बात निर्विवाद सिद्ध हो जाती है कि लगभग ३००० ई० पू० में भी सुमेर के निवासी नाप-तौल के पैमानों से मली-शक्ति परिचित थे। वे लोग हिमाय करना जानते थे, रसीदें लिखा करते थे और बिल (Bill) बनाया करते थे। व्यापारिक गणित जिनका सुमेर में विवर्धित हो चुका था उनका समार के किसी अन्य भाग में नहीं हुआ था।

सुमेरियों ने गुणन-सारणी भी तैयार कर ली थी। इन लोगों में दो सख्या-पद्धतियाँ चलती थी। एक का आधार १० था, दूसरी का ६०। इनके सबसे ६० के घातों में बड़ा करते थे। इन लोगों की स्थितिमान का भी मान था। यदि यह ८५ लिखते थे तो उसका अर्थ होता था $८ \times ६० + ५$ । इसी प्रकार २२ का अर्थ होगा $२ \times ६० + २$ और ४७३ का अर्थ होगा $४ \times ६०^२ + ७ \times ६० + ३$ ।

सुमेरियों ने ६० के घातों के लिए ही नहीं, बल्कि ऋण घाता (Negative Powers) के लिए भी चिह्न बना किये थे। किन्तु स्थितिमान का इन लोगों की

स्पष्ट रूप में ब्रवी न था। हमने ऊपर लिखा है कि इन लोगो की पद्धति में ४७२ का क्या अर्थ होगा। किन्तु उस अर्थ के अतिरिक्त उसी मग्या का यह अर्थ भी हो सकता]



चित्र १२—अष्टादशवीं शताब्दी ई० पू० के संख्यांक।

[जिन एण्ट कंपनी की अनुमति से टेवित बूजीन रिमथ कृत 'हिस्ट्री ऑफ मैथेमैटिक्स' से प्रत्युत्पादित।]

था— $४ \times ६०^२ + ७ \times ६० + ३ \times ६०^{-१}$ अर्थात् $४०७\frac{३}{१०}$ । और उसी चिन्ह का यह अर्थ भी हो सकता था— $४ \times ६०^२ + ७ \times ६०^{-१} + ३ \times ६०^{-२}$ । इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ही चिन्ह भिन्न-भिन्न संख्याओं को निरूपित करता था। इसके अतिरिक्त इन लोगो में अभी तक शून्य के लिए कोई चिन्ह नहीं बना था। इस कारण भी चिह्नों का अर्थ लगाने में गड़बड़ी हुआ करती थी। कभी-कभी ७२ का अर्थ होता था $७ \times ६०^२ + २$ अर्थात् २५२०२। आधुनिक पद्धति में उन्ही लोगो के पैमाने में इस मख्या को ७०२ लिखा जायगा। किस समय किस चिन्ह में किस संख्या का अभिप्राय हुआ करता था इसका पता संदर्भ से ही चलता था। स्पष्ट है कि उपरिलिखित गड़बड़ी के कारण भी शून्य के चिन्ह का आविष्कार हुआ होगा। किन्तु उसका आवि-

प्यार बहुत समय पश्चात् हुआ होगा जब परिवर्तन की कला काफी विकसित हो चुकी होगी।

मुमेरियो ने ६० की अपनी सख्या-पद्धति का आधार बनाया। इसका कारण वदाचित् यह रहा हो कि सख्या ६० के भाजक बहुत-से हैं—

२, ३, ४, ५, ६, १०, १२, १५, २०, ३०

इस आधार को चुनने का अकेला यही कारण नहीं रहा होगा। समव है और कारण भी रहे हों जो आज इतिहास के गर्भ में लुप्त हो गये हैं। ६० की पद्धति अद्य-पर्यन्त सत्सार में किसी-न-किसी रूप में चली आ रही है। घटा आज भी ६० भागों में बाँटा जाता है, जिन्हें मिनट कहते हैं। आज भी प्रत्येक मिनट के ६० पण्ड निये जाने हैं, जिन्हें सेकिण्ड कहते हैं। आज भी वृत्त के ३६० अंश किये जाते हैं। प्रत्येक अंग के ६० मिनट होते हैं और प्रत्येक मिनट के ६० सेकिण्ड।

बव्लिन के गणित का इतिहास लगभग ३१०० ई० पू० में आरम्भ होता है। इस प्रदेश का पहला उल्लेखनीय शासक सार्गन था, जिसका राज्यकाल २७५० ई० पू० के आस-पास का बताया जाता है। इसका राज्य अक्काद जिले से आरम्भ हुआ था जो मुमेर के उत्तर में है। मुमेर और बव्लिन एक दूसरे के बहुत समीप थे। वदाचित् यही कारण हुआ कि बव्लिन के निवासियों ने मुमेरियों की सख्या-पद्धति अपना ली और उनसे गणित ज्योतिष और तिथिपत्र बनाने की विधि भी सीख ली।

२४०० ई० पू० के लगभग की कुछ पटियाँ मिलती हैं जिनमें बव्लिन के राजाओं में से उर के तृतीय परिवार का पता चलता है। उनके पटियों से स्पष्ट हो जाता है कि बव्लिन के उस समय के निवासी परिवर्तन कला में बहुत दक्ष थे। उन लोगों ने भूमि के माप की पद्धति बना ली थी। तौल के लिए बटगरों का निर्माण कर लिया था और वे लॉग व्याज का हिसाब भी लगा लिया करते थे। उन लोगों में व्याज की दर २०% से ३३ $\frac{1}{3}$ % तक थी। उन लोगों में द्रवा और टोमा के माप की भी एक पद्धति थी, जिसका मात्रक (Unit) 'का' था। यहाँ तक कि ये लोग मिश्रो $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{3}$ आदि का प्रयोग भी जानते थे।

सार्गन के अनिरिक्त बव्लिन का एक और राजा उल्लेखनीय है, जिसका नाम हम्मू-रबी था। इसका राज्यकाल १९५० पूर्वमा के आस-पास का बताया जाता है। इस राजा के समय के मन्त्रावेषों में एक खैडहर है जो सत्सार का सबसे प्राचीन स्पूल गृह कहलाता है। इस खैडहर में बहुत-सी पटियाँ पायी गयी हैं, जिन पर छात्र अपने पाठ लिखा करते थे। बव्लिन के अकगणित के विषय में हमें बहुत-सी बातें इसी पटियों द्वारा ज्ञान हुई हैं। यहाँ दो पटियाँ विशेष रूप से वर्णनीय हैं, जो १८५४ में सक्का में

पायी गयी थीं, जिसका प्राचीन नाम लरसा था। इन पट्टियों में १ से ६० तक की संख्याओं के वर्ग और १ से ३२ तक की संख्याओं के घन दिये गये हैं। इन पट्टियों की निधि निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकती, तथापि अनुमान है कि ये भी हम्मूरबी के समय की हैं। इन पट्टियों के प्राप्त करने का श्रेय अंग्रेज भौमिकीज्ञ (Geologist) लॉफ्टस (Loftus) को है।

संकरा की पट्टियों में भी ६० को ही आधार माना गया है। उनमें वर्ग-सारणी की संख्याएँ तो दशमिक पद्धति में ही दी गयी हैं जैसे १६, २५, ३६, ४९। किन्तु ६७ के स्थान पर १७ लिखा गया है। इससे स्पष्ट है कि इस संख्यांक-पद्धति का आधार १० नहीं, बल्कि ६० है। पट्टियों से यह तो पता चलता है कि ये लोग स्थितिमान का अर्थ कुछ-कुछ समझने लगे थे। किन्तु उसका प्रयोग नियमित रूप से नहीं करते थे, क्योंकि वे लोग ९४ को १ ३४ लिखते थे। इस चिह्न से उनका तात्पर्य होता था $1 \times 60 + 3 \times 10 + 4$ । इसका अर्थ यह हुआ कि वह पहले स्थान को इकाई, दूसरे स्थान को दहाई, किन्तु तीसरे स्थान को ६० का अपवर्त्य मानते थे। उनकी पद्धति और हमारी आधुनिक पद्धति में कई बातें सामान्य हैं—

- (१) उन लोगों के अंक भी १ से ९ तक चलते थे जैसे हमारे आधुनिक अंक।
- (२) स्थितिमान का प्रयोग उन्होंने भी किया है। किन्तु वह उतना नियमित नहीं है, जितना हमारी आधुनिक पद्धति में।
- (३) लिखने में ऊँचा मात्रक पहले लिखा जाता था और तत्पश्चात् नीचा मात्रक। वही पद्धति आजकल भी चालू है। हम पहले सैकड़ा लिखते हैं, फिर दहाई और तब इकाई।
- (४) वे लोग भी संख्याओं को बायीं से दाहिनी ओर लिखा करते थे; जैसे हम लिखते हैं।

किन्तु बोल-चाल में कहीं छोटी इकाई पहले बोली जाती है, कहीं बड़ी। हिन्दी में चौबीस में पहले चार बोलते हैं, पीछे बीस। इसी प्रकार छियासी का अर्थ है $6 + 40$ । अंग्रेजी में Eleven से Nineteen तक की संख्याओं में छोटी इकाई पहले बोलती है, किन्तु शेष संख्याओं में ऊँची इकाई पहले बोलती है। Forty-eight में Forty पहले आता है, eight पीछे।

बब्लिन में भी ६० को ही संख्यांक-पद्धति का आधार माना गया था। अनुमान है कि उन्हें इस तथ्य का पता था कि यदि किसी वृत्त में एक सम षड्भुज (Regular Hexagon) खींचा जाय तो उसकी भुजा वृत्त की त्रिज्या के बराबर होगी। कदाचित् इस बात से उनके मन में यह विचार आया कि वृत्त के ३६० बराबर भाग किये जायँ।

६० का आधार माना जायेगी कारण था था जोर बाईं, यह कहना बहुत कठिन है। मगर के कुछ प्रदेशों में १५, २० और ६० का मन्दा-गणित का आधार माना गया है। ४० के स्थान में तो हम यह कह सकते हैं कि हमारे बहुत-से भाजक हैं—

$$२, \quad ४ \quad ५ \quad ८ \quad १०, \quad २०$$

मन्दाचित्त दुर्गन्धि इस मन्दा को चुना गया है। २० का चुनने का कारण यह था मरता है कि मनुष्य के हाथों और पैरों में कुल भिन्न-भिन्न २० उँगलियाँ होती हैं। किन्तु १५ को मन्दा-गणित का आधार किसलिए चुनाया गया, इसका कारण समझ में नहीं आता। हमारे भाजक तो केवल ३ और ५ हैं। हमारा आधार भी नहीं हो सकता जोर शरीर के अंगों में भी हमारा कोई प्रत्यक्ष भवन्ध दिखाई नहीं पड़ता।

बलिन को मन्दा-लेगन पद्धति जैसी ही है जैसी हम गुमेर के विषय में बताया है। अर्थात् इनकी मन्दाओं में अर्थात् का मान ६० के घाता में घटा-बढ़ा करता था। किन्तु इनकी पद्धति में भी वही गड़बड़ थी जो गुमेर की पद्धति में। सन्दर्भ में ही पता चलाना पड़ता था कि किस मन्दा के अर्थात् ६० के बौन से घात से आरम्भ होते हैं। इतना ही नहीं, इनकी मन्दाओं में मित्रों के अर्थात् दो अर्थात् के भी हा सवते थे और एक अर्थात् के भी, जैसे

$$१ \quad २३ \quad ५२ \quad ६७ \quad ३$$

का अर्थ होगा—

$$१ - \frac{२३}{६०} + \frac{५२}{६०^२} + \frac{६७}{६०^३} + \frac{३}{६०^४}$$

यह ठीक वैसी ही पद्धति नहीं है जैसी हमारी आधुनिक स्थितिमान पद्धति। आधुनिक पद्धति के आधार में किसी भी घात का गुणांक दो अर्थों की कोई सख्या हो ही नहीं सकती। उसमें तो प्रत्येक अर्थ का अलग-अलग स्थितिमान होता है।

कभी-कभी दो सख्याओं के बीच में अधिक स्थान छोड़ा जाता था, जैसे

$$३२ \quad ३ \quad ७ \quad ११$$

इस अधिक अवकाश का अर्थ है कि ६० का, बीच का, एक घात लुप्त है अर्थात् उसका गुणांक शून्य है। उपरिलिखित सख्या इस प्रकार लिखी जायगी—

$$३२ \quad ३ \quad ७ \quad ११$$

इस प्रकार इस सख्या का स्पष्ट रूप से यह अर्थ निकल आयेगा

$$३२ \times ६० + \frac{३}{६०} + \frac{७}{६०^२} + \frac{११}{६०^३}$$

उपरिलिखित चिह्न के प्रयोग से यह पता चलता है कि बव्लिन के गणितज्ञ इस बात की आवश्यकता समझने लगे थे कि शून्य के लिए भी एक विशेष चिह्न बनाया जाय, किन्तु ऐसा नहीं समझना चाहिए कि वे लोग संख्या शून्य का अर्थ भली-भाँति समझ गये थे। आज तो शून्य को समस्त संख्याओं का आरंभ माना जाता है और उसे भी एक संख्या का गौरव प्राप्त है। हमारे विचार में शून्य के संबन्ध में ये सब बातें बव्लिन के गणितज्ञों के मस्तिष्क में नहीं आयी थीं। वे लोग तो केवल इतना ही समझते थे कि इस बात को दर्शाने के लिए कि किसी विशिष्ट संख्या में ६० का कोई घात लुप्त है, एक विशेष चिह्न होना चाहिए। अतः शून्य का चिह्न केवल इस बात का निर्देश करता था कि उक्त संख्या में ६० के अमुक घात का अस्तित्व नहीं है। शून्य का संख्या के रूप में सबसे पहले किसने प्रयोग किया यह कहना कठिन है। किन्तु इतना पता है कि ई० पू० की द्वितीय शताब्दी में यूनान के ज्योतिषी शून्य के लिए ० का प्रयोग करने लगे थे जो यूनानी अक्षर ओमीक्रॉन है। किन्तु वे लोग भी उसी अर्थ में इसका प्रयोग करते थे जिस अर्थ में बव्लिन वाले।

लगभग २०० ई० पू० की एक पटिया पायी गयी है, जिसका उल्लेख सबसे पहले लुट्ज ने १९२० में किया था। उससे यह पता चला है कि बव्लिन के गणितज्ञ मिश्रों को इस प्रकार लिखा करते थे कि उनका हर ६० या ३६० ही हो। जैसे वे लोग $\frac{३६०}{६०}$ को $\frac{६०}{६०}$ भी लिखते थे। किन्तु उसे $\frac{३६०}{६०}$ नहीं लिखते थे। $\frac{३६०}{६०}$ को वह लोग $\frac{१३}{६०}$ लिखते थे। किन्तु इस नियम के दो अपवाद थे—

१. यदि किसी मिश्र का अंश १ हो तो उसे वह सरलतम रूप में लिख देते थे; जैसे $\frac{३६०}{६०}$ को वे लोग $\frac{१}{६०}$ लिखते थे।

२. यदि किसी मिश्र का अंश हर से एक कम हो तो भी उसे वह सरलतम रूप में लिखते थे; जैसे $\frac{३६०}{६०}$ को वे लोग $\frac{५५}{६०}$ भी लिखते थे और $\frac{३}{६०}$ भी।

मिश्र

मिश्र के गणित के विषय में हमारे ज्ञान का आधार मुख्यतः दो-तीन पुस्तकें हैं। मिश्र में एक प्रकार का नरकुल होता था, जिससे कागज़ बनाया जाता था। उसे 'पैपिरस' कहते थे। उक्त कागज़ पर जो पुस्तकें लिखी जाती थीं, उनका नाम भी पैपिरस पड़ जाता था। हमें दो पैपिरस तो पूर्ण रूप में प्राप्त हुए हैं, रिहंड पैपिरस और मॉस्को पैपिरस। इनके अतिरिक्त अल्लाहून पैपिरस के भी कुछ अंश प्राप्त हुए हैं। इन पुस्तकों ने मिश्र के गणित-ज्ञान पर बहुत प्रकाश डाला है। मॉस्को पैपिरस में २५ प्रश्न दिये गये हैं। रिहंड पैपिरस कदाचित् १५५० ई० पू० के आस-पास लिखा

गया था। उन दिनों मिस्र में एक लेखक आहमेमु नाम का हुआ है जिसे आधुनिक लेखक अहमिस कहते हैं। उसने मिस्र के ही एक प्राचीन ग्रन्थ का अनुवाद किया था। उक्त अनुवाद की पाण्डुलिपि १९वीं शताब्दी ई० में एक अंग्रेज हेंनरी रिहड ने खरीद ली। पाण्डुलिपि का मौलिक नाम अहमिस पैपिरस था, किंतु उक्त विक्रय के पश्चात् उसका नाम रिहड पैपिरस पड़ गया। तब से यह पुस्तक उसी नाम से प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ में ८५ प्रश्न हैं। ये प्रश्न अधिकतर व्यावहारिक गणित पर हैं। कुछ प्रश्न पशुओं के भोजन पर कुछ अनाज पर कुछ सराब पर और कुछ रोटी पर हैं। हम यहाँ मिस्र की अंकगणित-पद्धति का दिग्दर्शन कराते हैं। हमें इस ज्ञान का अधिकांश उक्त पैपिरस से ही प्राप्त हुआ है। पैपिरस अब ब्रिटेनी संग्रहालय में सुरक्षित है।



चित्र १३—अहमिस पैपिरस।

[जिन एण्ड बम्पनी की अनुमति से डेविड यूचीन शिथ वुड हिस्ली आर्क मैथेमेटिक्स से प्रस्तुत।]

मिस्र की सक्तेलिपि दशांशिक थी। १ के लिए वे लोग एक खड़ी रेखा बनाते थे, २ के लिए दो खड़ी रेखाएँ इसी प्रकार की तक। १० के लिए उनका चिह्न 10

था। २० के लिए ऐसे-ऐसे दो चिह्न बनाये जाते थे। ३० के लिए तीन, इसी भाँति ९० तक। तत्पश्चात् १०० के लिए एक पृथक् चिह्न था, १००० के लिए अलग और इस प्रकार १०००००० तक १० के प्रत्येक घात के लिए एक भिन्न चिह्न था। इन लोगों की संकेतलिपि याँगिक थी, जैसी आधुनिक रोमन संकेतलिपि है। उदाहरणार्थ, रोमन संकेतलिपि में १७५९ को इस प्रकार लिखेंगे—

M D C C L IX

इन चिह्नों का अर्थ है—

$$१००० + ५०० + १०० + १०० + ५० + (१० - १)$$

इस संकेतलिपि में स्थितिमान का अभाव है। इसके अतिरिक्त यह संकेतलिपि इतनी भद्दी है कि इसमें बड़ी संख्याएँ लिखने के लिए दर्जनों चिह्न बनाने पड़ते हैं। उदाहरण के लिए ६७५६ लिखने के लिए उक्त पद्धति में १८ चिह्न बनाने पड़ेंगे।

मिस्री गणितज्ञ मिश्रों के प्रयोग में बड़े दक्ष थे। ये लोग अधिकतर इकाई मिश्रों से काम लेते थे, अर्थात् ऐसे मिश्रों से जिनका अंश १ हो। अतः इस अंश का इतना महत्त्व था कि उसके लिए विशेष चिह्न निर्धारित किये गये थे। प्राचीन मिस्री संकेतलिपि में तो इसके लिए हर के ऊपर एक बिन्दी लगायी जाती थी। अतः उक्त संकेतलिपि में $\frac{१}{४}$ को इस प्रकार लिखेंगे $\frac{१}{४}$ । चित्रीय संकेतलिपि में इसके लिए यह चिह्न \bigcirc बनाया जाता था। गुणन में इन लोगों का व्यवहार २ तक ही सीमित था। अतः यदि इन लोगों को किसी संख्या को ९ से गुणन करना हो तो ये लोग पहले संख्या को दुगुना करेंगे, फिर गुणनफल को दुगुना करेंगे और इस अन्तिम गुणनफल को दुबारा दुगुना करेंगे। फिर इस अन्तिम फल में मौलिक संख्या जोड़ देंगे।

एक उदाहरण और लीजिए। मान लीजिए कि १२ को ११ से गुणा करना है, तो विधा इस प्रकार की होगी—

$$१२ \times १$$

$$१२ \times २$$

$$१२ \times ४$$

$$१२ \times ८$$

अब पहली, दूसरी और चौथी पंक्तियों के फलों को जोड़ देंगे।

यतः ये लोग इकाई मिश्रों का ही प्रयोग करते थे, अतः अहमिस में पहला प्रश्न यही है कि किसी मिश्र को इकाई मिश्रों के रूप में किस प्रकार प्रदर्शित किया जाय। इस प्रश्न का अहमिस में कोई सार्विक हल नहीं दिया गया है, वरन् विशिष्ट उदाहरण ही दिये गये हैं; जैसे—

$$\begin{aligned}\frac{3}{4} &= \frac{1}{2} - \frac{1}{4} \\ \frac{2}{5} &= \frac{1}{3} - \frac{1}{15} \\ \frac{1}{6} &= \frac{1}{3} - \frac{1}{6} \\ \frac{1}{7} &= \frac{1}{4} - \frac{1}{28}\end{aligned}$$

मित्रा में इकाई मित्र ही काम में आती थी और गुणक सदैव २ ही रहता था । अतः केवल ऐसी ही मित्रा के इकाई मित्रा में टुकड़े करने की आवश्यकता पड़ती थी जिनका भाग २ हो । अतएव उपरिलिखित प्रकार के समीकरणों की सारणियाँ तैयार कर ली गयी थी । केवल एक ही मित्र ऐसा था जिसका भाग १ से मित्र था और जिसका य लाग प्रयोग में लाते थे और वह मित्र था $\frac{1}{2}$ । मिस्र के निवासियों की दृष्टि में इस मित्र का महत्त्व $\frac{1}{2}$ से भी अधिक था क्योंकि ये लोग इस प्रकार सोचते थे कि किसी समस्या का दो तिहाई लेने से यह समस्या आती है और फिर उसका भाग करके मित्र $\frac{1}{2}$ प्राप्त होता है । उक्त मित्र का महत्त्व इतना अधिक था कि बिनीय मक्नलिफि में उसके लिए विशेष चिह्न $\frac{1}{2}$ निर्धारित किया गया था ।

० के अनिश्चित किसी गणितज्ञ १० से भी गुणा किया करते थे । १० से गुणा करने में दून्हे बाईं परिधम नहीं करना पड़ता था क्योंकि उसके लिए तो केवल इकाई के चिह्न को दहाई के स्थान पर रख देना था या दहाई के चिह्न को सँवडे के स्थान पर दण्पादि । य लोग टुकड़े-टुकड़े करके भाग दे लिया करते थे । मान लीजिए कि १३ का $\frac{1}{2}$ भाग देना है तो ये लोग ३ का दुगुना करके ६ प्राप्त करेंगे । ६ का दुगुना करने से इहे १२ प्राप्त होंगे । अब १२ में फिर $\frac{1}{2}$ जोड़ने से १५ आने लगे और २ दोप बच जाते हैं । इस प्रकार १३ में $\frac{1}{2}$ बार ३ गये, २ दोप बचे । अतः मजकूर हुआ $\frac{1}{2}$ ।

मिस्रिया का व्यापार-गणित बहुत बड़ा बड़ा था । लगभग १५०० ई० पू० में मानी हतागु ने एक मन्दिर बनवाया था जिसका आपुनिर नाम दाल बाहरी है । उक्त मन्दिर की दीवारों पर सँवडे, हजार दस हजार, लाख, दस लाख तक की गिनती का उल्गम मिलता है । इससे पता चलता है कि वे लोग समस्याओं के प्रयोग में बड़े प्रयोग हा कर ष । यह मन्दिर सीवीड के पास है और इसका पता १९०४ ई० में लगा था । इस अनिश्चित धीवीड में एक कठ भी मिली है । इस कठ के निगलेरा में पता चलता है कि मिस्र की वर-वर्द्धति भी काफी विचित्र हा चुती थी । उक्त निगलेरा में १००० से अधिक की किसी समस्या और $\frac{1}{2}$ के अनिश्चित किसी मित्र का प्रयोग वर्ण किया गया है ।

अनिश्चित गुणक के अनिश्चित एक अथ पुनः हैमि पैरिगम भी मिली है ।

इसमें भी व्यावहारिक हिसाब-किताब दिये गये हैं और इसमें मित्र की संख्यांक-पद्धति पर भी प्रकाश पड़ता है।

यूनान (Greece)

यूनान १९ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में तुर्की से स्वतन्त्र हुआ और १८३० ई० में एक स्वतन्त्र राज्य घोषित हुआ। सर्वप्रथम यूनान का विस्तार बहुत छोटा था। इसमें केवल तीन भाग समाविष्ट थे—

(१) पैलोपोनीसस (Peloponesus) का जल डमरूमध्य, जो आधुनिक यूनान का सबसे निचला भाग है।

(२) यूनान जलडमरूमध्य का थोड़ा-सा भाग।

(३) ईजियन सागर (Aegian Sea) के थोड़े-से टापू।

यूनान के क्षेत्र का विस्तार कई टुकड़ों में हुआ है। सन् १८६४ में आयोनियन (Ionian) टापू इसमें आकर मिले। सन् १८७८ में सिसिली का मैदान भी इस राज्य में समाविष्ट हो गया। अन्त में आधुनिक यूनान का ऊपरी भाग, क्रीट (Crete) और बहुत-से टापू भी उक्त राज्य में आ मिले।

यूनान की संस्कृति मुख्यतः समुद्री है, क्योंकि इस क्षेत्र में टापुओं का ही प्राधान्य है। इन टापुओं में से भी एक द्वीप समूह ने यूनान की संस्कृति पर बड़ी गहरी छाप डाली है। इस द्वीप-समूह का नाम साइक्लेड्स (Cyclades) है और यह यूनान की मुख्य भूमि और लघु एशिया के बीच में स्थित है। इस द्वीप-समूह में दो द्वीप बहुत महत्वपूर्ण हैं—साईरा (Cyra) और डेलीस (Delos)। यूनान के इतिहास में इन दोनों टापुओं का महत्त्व सर्वाधिक रहा है। ३००० से २४०० ई० पू० तक साइक्लेड्स एक बड़ा व्यापार केन्द्र था और साईरा उसकी वाणिज्य राजधानी थी। साईरा और अन्य टापुओं में जीवन की आवश्यक वस्तुओं की कमी थी। अतः इन टापुओं से बाह्य संसार का समुद्री व्यापार स्थापित हो गया।

लघु एशिया में मिलेटस (Miletus) नाम का एक प्राचीन नगर था। यह नगर मियेंडर (Meander) नदी के मुहाने के समीप स्थित है। यूनानियों ने इस पर आक्रमण किया और इसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। तत्पश्चात् इन लोगों ने नदी के किनारे पर एक नया नगर बसाया। इस नगर का व्यापार मियेंडर नदी के ऊपरी भाग तक होने लगा। इस नगर का व्यापार इतना बढ़ा कि इसी व्यापार के सहारे सातवीं शताब्दी ई० पू० तक साठ से भी अधिक नये नगर बस गये। ५०० ई० पू० तक मिलेटस यूनान का सबसे बड़ा नगर बन गया था। मिलेटस में साहित्य

सर्जन भी घटाघट होने लगा। थेल्स (Thales), ऐनक्सिमैण्डर (Anaximander), ऐनक्सिमिनस (Anaximenes) और हाइपेनियस (Hypasius) सब इसी नगर के निवासी थे। मिलेटस में ही यूनानी गणित का आरम्भ हुआ और इसी नगर में यूनान के व्यापारिक अकगणित का विकास हुआ। मिलेटस से थोड़ी ही दूर पूर्व में लीडिया (Lydia) नगर है। पश्चिमी ससार में सर्व प्रथम सिक्के ढालने का गोम्ब इसी नगर को प्राप्त है। लीडिया में ७वीं शताब्दी ई० पू० में सिक्के ढालने लगे थे। सिक्के ढालने में पहले व्यापारिक हिमाव बिताव बड़ी कठिनाई में होता होगा। सिक्के तो केवल कौटुंबी और भूगो के रूप में होते थे और धातु का लेन-देन सदैव ताल बर बिया जाता था। अतः स्पष्ट है कि सिक्कों के ढालने से व्यापारिक लेन देन में बड़ी सुविधा हो गयी होगी। मिलेटस ने इस बात का मर्म समझा और टकण (Coinage) पद्धति को तुरन्त अपना लिया, किन्तु एथेंस (Athens) नगर का उस अपनाने में पचास वर्ष लगे।

यूनान में वही पहले व्यक्तिन में व्यापारिक अकगणित का प्रयोग हो चुका था। यह अकगणित बज्जिन से नीट के टापू, सिव और लघु एशिया में पहुँचा। इन प्रदेशों में अकगणित का विस्तार हो रहा था, किन्तु उस समय तक यूनान जगला से भरा हुआ था और उसमें कुछ खानाबदोस कबीले रहते थे। १००० ई० पू० तक यूनान के निवासी बिलकुल अशिक्षित और अविकसित प्रकार का जीवन व्यतीत करते थे। प्रत्येक निवासी अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति भर के लिए खेती कर लिया करता था। भविष्य के लिए संचय करने का उसे ध्यान भी नहीं आता था। ऐसी स्थिति में उक्त प्रदेश में अकगणित का क्या विकास हो सकता था? थोड़ी-सी गिनती और थोड़ा सा विनिमय—बस इतने ही अकगणित की उन्हें आवश्यकता थी। बर्ब शक्तियां तब यूनान की यही दशा रही। हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि यूनान में व्यापारिक अकगणित का आरम्भ सातवीं शती ई० पू० में हुआ।

उस समय तब अकगणित का अर्थ केवल परिणत बला ही था। तब तक सम्या-सिद्धांत का आरम्भ भी नहीं हुआ था। यो सम्यात्रा के कुछ रोचक गुणों से वे लोग परिचित होने लगे थे। किन्तु दैनिक जीवन में उनके प्रयोग में परिणत-बला ही आती थी। पाँचवीं शताब्दी ई० पू० में यूनान में कुछ स्कूल अवश्य खुल चुके थे, किन्तु उस प्रदेश के किसी सामान्य निवासी को अकगणित के नाम पर गिनती के अनिश्चित और कुछ नहीं आता था। जोड़ना, घटाना, गुणन करना आदि त्रियाएँ उन्होंने अभी तक नहीं सीखी थी। उस समय के जोड़ने और घटाने के कुछ प्रश्न हमें प्राप्त हुए हैं। इनके अनिश्चित वही-वही गिनतारे भी पाये गये हैं। किन्तु ये सब वस्तुएँ उस समय

से कई शती पश्चात् की प्रतीत होती है। सन् ईसवी के पास की एक गुणन-सारणी भी मिली है जो मोम पर लिखी हुई है। उक्त सारणी अभी तक अंग्रेजी संग्रहालय में विद्यमान है। हम यहाँ उक्त समय के कुछ यूनानी गणितजों का वृत्तान्त देते हैं।

पिथॅगोरस (Pythagoras)

पिथॅगोरस का जीवन काल ५३२ ई० पू० के लगभग था। इसमें सन्देह नहीं कि पिथॅगोरस ने मिस्र और भूमध्यसागर के आस-पास के कई देशों की यात्रा की थी। ५२९ ई० पू० के लगभग पिथॅगोरस दक्षिण इटली (Italy) के क्रोटन (Croton) प्रदेश में गया। क्रोटन में उसने एक धार्मिक संस्था की स्थापना की, जिसका उद्देश्य था समाज-सुधार। कुछ समय तक यह संस्था खूब चली और इसका प्रभुत्व देश-विदेश में फैल गया, किन्तु अन्त में देश की राजनीति से उलझ जाने के कारण संस्था को तोड़ देना पड़ा। ५१० ई० पू० में क्रोटन की साइवेरिस पर जीत हुई। उसी समय के आस-पास पिथॅगोरस को मेटैपॉण्टियम (Metapontium) जाना पड़ा और वहीं छठी शताब्दी ई० पू० के अन्तिम दिनों में उसकी मृत्यु हो गयी।

पिथॅगोरस के अनुयायियों को जो आज्ञा-पत्र दिया गया था उसका प्रभाव पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व के मध्य तक रहा। पिथॅगोरियों पर भाँति-भाँति के अत्याचार हुए। उनके सभा-भवनों में आग लगा दी गयी। एक बार उनके एक सभा-भवन में, जिसका नाम मिलो था, ५०-६० पिथॅगोरियों की हत्या कर दी गयी। चौथी शती के मध्य तक उक्त संस्था के सदस्यों का नाम-निशान भी मिट गया।

पिथॅगोरस दार्शनिक भी था, गणितज्ञ भी। उसके दार्शनिक सिद्धान्त कई बातों में हिन्दू-सिद्धान्तों से मिलते-जुलते हैं। वह यह मानता था कि मनुष्यों और पशुओं में एक-सी आत्मा का निवास है। इसीलिए उसने मांस-भक्षण का निषेध किया था। पिथॅगोरस आवागमन के हिन्दू-सिद्धान्त को भी मान्यता देता था। उन दिनों कागज का आविष्कार नहीं हुआ था और यूनान में शिलालेखों और पट्टियों का भी प्रचलन नहीं था। अतः पिथॅगोरस ने अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन मौखिक रूप से ही किया। इसलिए यह संभव है कि उसके सिद्धान्त भिन्न-भिन्न पीढ़ियों और समुदायों में विकृत रूप में पहुँचे हों। तिसपर भी इतना निश्चित प्रतीत होता है कि पिथॅगोरस ने गणित और दर्शन को मिलाकर एक कर दिया था। उसका यह विश्वास था कि द्रव्य के गुणों का आधार 'संख्या' है। इसीलिए वह अंकगणित को बहुत उच्च स्थान देता था। वह चार विद्याओं को सर्वोच्च समझता था—अंकगणित, ज्यामिति, ज्योतिष और संगीत। वह कदाचित् यह मानता था कि सारी सृष्टि की रचना गणित पर आवृत्त

है। पृथ्वी सम पट्टफल (Regular Parallelepiped) से बनी है, अग्नि स्तूप (Pyramid) में, वायु अष्टफलक (Octahedron) से, महाव्याम द्वादशफलक (Dodecahedron) से और पानी विंशतिफलक (Icosahedron) से।

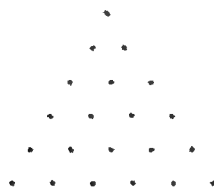
यह निश्चिन है कि पिथगोरस का सम्पर्क पूर्वी विद्वानों से हुआ था, क्योंकि उसके बहुत से मिथ्यान्त पूर्व विश्वासा और विचरन्तिया में मेल खाते हैं। पिथेगोरस का सबसे प्रसिद्ध शिष्य फाइलोलस (Phylolaus) था। फाइलोलस की यह उक्ति थी कि सग्या ५ रग की सानक है ६ ठडक की, ७ स्वास्थ्य की, ८ प्रेम की। इस विरवास की तुलना चीनिया की डम विचरन्ती से हा सरनी है कि सग्या २ पृथ्वी का निरूपण करनी है और सरया ५ पवन का। इस सवन्ध में यूनान की एक प्रया उल्लेखनीय है। पूर्णिमा की रात में किसी दर्पण पर रक्त से कुछ अक्षर बनाये जाते थे और सीसे में चन्द्रमा क प्रतिविब में उन्हें पडा जाता था। यह प्रया पूर्वी रीति-रिवाजों से बहुत कुछ मिलनी-जुलती है।

पिथगोरस का विरवास था कि प्रकृति का आरम सख्या से ही हुआ है। सख्या दो प्रकार की होती है—सम (Even) और विषम (Odd)। सख्याओं का आरम सग्या १ में होता है। विषम सख्याएँ सीमा की स्रोतक हैं और सम सख्याएँ असीम की। सीमा और असीम की कल्पना से ही देश, काल और गति के नामा का आविर्भाव हाता है। आकाश (Space) में सख्या १ बिन्दु की स्रोतक है, सख्या २ रेखा की सख्या ३ तल की और सख्या ४ ठोस की। समार में १० आधारभुत विपरीतियाँ (Oppositions) हैं—

एक और अनक, दाहिना और बायाँ, पुरुष और स्त्री, विराम और गति, ऋजु और बक उजाला और अंधेरा, सला और बुरा, वर्ग और आयताकार, सम और विषम, सीमा और असीम।

इन विपरीतियों के मेल का ही नाम विश्व है। पिथेगोरस विषम सग्याओं का नर सख्याएँ (Male Numbers) और सम सख्याओं को मादा सख्याएँ (Female Numbers) कहता था। उसके विचार में सग्या १ ददा (Goddess of Reasoning) की प्रतीक है क्योंकि अपरिवर्ननीय है। सख्या २ समिति (Symmetry) की सानक है सरया ४ न्याय की क्योंकि यह दो बराबर की सख्याओं का गुणनफल है। सख्या ५ विवाह की परिचायक है, क्योंकि यदि १ को सख्या न माना जाय तो सख्या ५ ही प्रथम नर सग्या और प्रथम मादा सख्या का जोड (१+२) है। सख्या ७ एकान्त की निदर्शक है, क्योंकि पहली दस सख्याओं में न इसका कोई गुणनफल है न अपवत्य।

पिथागोरस ने त्रिभुजिय संख्याओं (Triangular Numbers) का अध्ययन किया था। ये संख्याएँ उन प्रकार की होती हैं—



पहली त्रिभुजिय संख्या १ है। दूसरी त्रिभुजिय संख्या १ + २ अर्थात् ३ है। तीसरी त्रिभुजिय संख्या १ + २ + ३ अर्थात् ६। चौथी संख्या १ + २ + ३ + ४ अर्थात् १० है। इस प्रकार हमें त्रिभुजिय संख्याओं का यह अनुक्रम (Sequence) प्राप्त होता है—

१, ३, ६, १०, १५, २१.....

उस वक्त से यह भी पता चलता है कि प्राकृतिक संख्याओं की कृत्ति भी श्रेणी का जोड़, जिसका आरंभ १ से होता है, सदैव एक त्रिभुजिय संख्या होता है।

हम जानते हैं कि यदि हम १ से लेकर विषम संख्याएँ जोड़ते चले तो कितनी भी संख्याएँ लें, उन सब का जोड़ सदैव एक वर्ग संख्या होती है; जैसे—

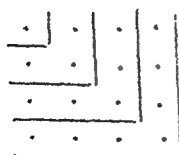
$$१ + ३ = ४ = २^2,$$

$$१ + ३ + ५ = ९ = ३^2$$

$$१ + ३ + ५ + ७ = १६ = ४^2$$

$$१ + ३ + ५ + ७ + ९ = २५ = ५^2$$

यदि इन संख्याओं को बिन्दुओं से निरूपित किया जाय तो आकृति इस प्रकार की बनेगी—



यहाँ एक बात यह उल्लेखनीय है कि यदि किसी भी पंक्ति पर जो संख्या जोड़ी जाय वह स्वयं एक वर्ग हो तो हमें एक ऐसी वर्ग संख्या प्राप्त हो जाती है जो दो वर्गों का जोड़ हो, जैसे—

$$१ + ३ + ५ + ७ = १६$$

इसमें अगली विषम संख्या ९ जोड़ने में, जो स्वयं एक वर्ग है, हमें २५ प्राप्त होता है जो ५ का वर्ग है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकला है—

$$३^२ - ४^२ = ५^२$$

इसी प्रकार

$$१ + ३ + ५ + ७ + ९ + ११ + १३ + १५ + १७ + १९ + २१ + २३ = १४४ = १२^२$$

अगली विषम संख्या २५ है जो स्वयं एक वर्ग है। इसे जोड़ने में $१४४ + २५$ अर्थात् १६९ प्राप्त होता है। इस प्रकार हमें यह फल मिला है—

$$१२^२ - ५^२ = १३^२$$

ऐसे अनगिनत जोड़े बनाये जा सकते हैं। पियेगोरस ने इनके बनाने के लिए एक सूत्र दिया है—

$$स^२ - (२(म^२ - १))^२ = (१(म^२ - १))^२$$

इसमें 'म' को कोई भी विषम संख्या मान सकते हैं। $स = ३$, ५ लेने से हमें क्रमशः उपरिलिखित दोनों उदाहरण प्राप्त होने हैं। दो अन्य उदाहरण ये हैं—

$$स = ७, ७^२ + २४^२ = २५^२$$

$$स = ९, ९^२ + ४०^२ = ४१^२$$

स्पष्ट है कि इस प्रकार की समस्याओं का सबन्ध उस प्रमेय से है जो पियेगोरस के नाम से प्रसिद्ध है। पियेगोरस कहाँ तक इस प्रमेय का आविष्कारक कहा जा सकता है इसकी चर्चा हम अन्यत्र करेंगे। यहाँ तो हम केवल इस प्रकार की समस्याओं का ही विवेचन करेंगे। उपरिलिखित उदाहरणों से स्पष्ट है कि यदि हम एक समकोण त्रिभुज बनाएँ जिसकी भुजाएँ ३ और ४ हों तो वर्ण की लंबाई ५ होगी। इसी प्रकार यदि भुजाएँ ७ और २४ हों तो वर्ण २५ होगा। ऊपर दिये हुए सूत्र से जितने समकोण त्रिभुज प्राप्त होंगे सचकी भुजाओं की लम्बाइयों के अनुपात परिमेय (Rational) होंगे। किन्तु बहुत-से समकोण त्रिभुज ऐसे होते हैं जिनकी भुजाओं की लम्बाइयों के अनुपात अपरिमेय (Irrational) होते हैं। यदि किसी समकोण त्रिभुज के कोण ३०° और ६०° के हों तो उसकी भुजाओं की लम्बाइयों का अनुपात $१ : \sqrt{3} : २$ होता है। इसी प्रकार किसी समद्विबाहु समकोण त्रिभुज (Isosceles Right-angled triangle) की भुजाओं की लम्बाइयों का अनुपात $१ : १ : \sqrt{2}$ होता है।

इस प्रकार हमें अपरिमेय संख्या $\sqrt{2}$ प्राप्त होती है। पियेगोरस ने इस संख्या के निकट मान निवालने के लिए एक सूत्र दिया है। मान लीजिए कि $य$, २ दो पूर्णांक संख्याएँ (Integral Numbers) हैं, जो समीकरणों

$$२ य^२ - २^२ = \pm १$$

में से किसी एक को सन्तुष्ट करती हैं। तो भिन्न $\frac{२य+२}{य+२}$ अपरिमेय संख्या $\sqrt{२}$ का

एक निकट मान होगा। हम यहाँ कुछ मानों की सूची देते हैं—

$$य = ०, २ = १, २य^२-२^२ = -१; \sqrt{२} = \frac{१}{१}$$

$$य = १, २ = १, २य^२-२^२ = +१; \sqrt{२} = \frac{३}{३}$$

$$य = २, २ = ३, २य^२-२^२ = -१; \sqrt{२} = \frac{७}{५}$$

$$य = ५, २ = ७, २य^२-२^२ = +१; \sqrt{२} = \frac{१७}{१२}$$

$$य = १२, २ = १७, २य^२-२^२ = -१; \sqrt{२} = \frac{४१}{२९}$$

इस प्रकार हम $\sqrt{२}$ के निकट और निकटतर मान प्राप्त कर सकते हैं।

यह उल्लेखनीय है कि पियॅगोरस ने पाश्चात्य संगीत का भी सुचारु रूप से अध्ययन किया था और उसमें गवेपणा भी की थी। उसका सबसे महत्त्वपूर्ण आविष्कार यह था कि किसी तन्तु वाद्य में तारकी लम्बाई के $\frac{१}{२}$ पर रुकने से अष्टक (Octave) का आठवाँ स्वर प्राप्त होता है, $\frac{३}{४}$ पर पाँचवाँ स्वर और $\frac{३}{५}$ पर चौथा। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि पूर्वी संगीत में सात स्वरों की इकाई मानी जाती है, जिसे 'सप्तक', कहते हैं। उपरिलिखित स्थानों पर रुकने से हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में क्रमशः तार सप्तक का सँ और मध्य सप्तक के प और म प्राप्त होंगे।

हम जानते हैं कि—

$$१ : \frac{१}{२} = १ - \frac{३}{४} : \frac{३}{४} - \frac{१}{२}।$$

प और सँ की इसी संस्वरता (Harmony) के कारण हारमोनियम (Harmonium) बाजे का नाम पड़ा। हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में भी किसी सप्तक में प और स को ही स्थायी स्वर माना गया है। हरात्मक श्रेढी (Harmonic Progression) का नाम भी इसी गुण के कारण पड़ा। हम जानते हैं कि तीन राशियाँ क, ख, ग, हरात्मक श्रेढी में होंगी, यदि

$$\frac{क}{ग} = \frac{क-ख}{ख-ग}।$$

इसी समीकरण में क=१, ख= $\frac{३}{४}$, ग= $\frac{१}{२}$ लेने से उपरिलिखित सम्बन्ध प्राप्त हो जायगा। पियॅगोरस ने संगीत का इतने सूक्ष्म रूप से विवेचन किया है कि पश्चिमी लोग उसे संगीत का आविष्कारक कहते हैं। उसने संगीत के क्षेत्र में बहुत-से आविष्कार किये, किन्तु उसकी पद्धति का विस्तृत रूप आज इतिहास के गर्भ में छिप गया है। कदाचित् संगीत-संवन्धी कुछ ज्ञान तो उसने अपनी यात्रा में मिस्र देश से प्राप्त किया था।

अपने जीवन काल में तो पिथगोरस को घबके खाने पड़े, किन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त डेलफी की देवी (Oracle of Delphi) ने, जिसे यूनानी बहुत मानते थे, यह कहा कि 'पिथगोरस यूनान का सबसे बुद्धिमान् और वीर पुत्र था'। अतः उसकी मृत्यु के लगभग दो सौ वर्ष पर्यन्त, ३४३ ई० पू० में रोम में उसकी मूर्ति स्थापित की गयी और उसका नाम की पूजा होने लगी।

प्लेटो (Plato)

प्लेटो यूनान का एक दार्शनिक था, जिसका जन्म ४२८ ई० पू० में और मृत्यु ३४८ ई० पू० में हुई थी। प्लेटो की आकांक्षा राजनीतिज्ञ बनने की थी, किन्तु उस समय के प्रतित्रियावादियों की करतूतों से उसे महान् क्लेश होता था। इसलिए वह राजनीतिक क्षेत्र से अलग ही रहा और जब ३९९ ई० पू० में सुक्रास (Socrates) की हत्या हो गयी तब तो प्लेटो ने राजनीतिक क्षेत्र को तिलाजलि ही दे दी। तत्पश्चात् वह कई वर्ष तब यूनान, मिस्र, इटली और सिसिली (Sicily) में घूमता रहा। ३८७ ई० पू० के लगभग प्लेटो ने एक परिषद् की स्थापना की जो आज तक उसके नाम से प्रसिद्ध है। परिषद् का ध्येय था दार्शनिक और वैज्ञानिक गवेषणा। प्लेटो जीवन भर उक्त परिषद् का अध्यक्ष रहा। परिषद् में गवेषणा छात्र अपनी समस्याएँ प्रस्तुत किया करते थे और प्लेटो उनका समाधान किया करता था।

सौधी सन्ती ई० पू० का प्रायः समस्त गणितीय कार्य प्लेटो, उसके मित्रों और शिष्यों द्वारा ही सम्पन्न हुआ था। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि परिषद् के द्वारा ही पाँचवीं शती के पिथगोरिया और बाद के गणितज्ञों में सबन्ध स्थापित हुआ।

प्लेटो ने भी सख्याओं का अध्ययन किया था। किन्तु वह सख्याओं को केवल गणितीय कला का माध्यम नहीं समझता था, बल्कि उसके विचार में अकगणित एवं जीता-जागता व्यावहारिक विज्ञान था। प्लेटो की सबसे प्रसिद्ध पुस्तक गणतन्त्र (Republic) है। उक्त पुस्तक के आठवें भाग में वह एक रहस्यमय सख्या का उल्लेख करता है। यह निश्चित रूप में नहीं कहा जा सकता कि उक्त सख्या कौन-सी थी। कुछ लोगों का विचार है कि वह सख्या ६०^४ अर्थात् १२९६०००० थी। इस सख्या का उल्लेख भारत और बर्लिन के गणितज्ञों ने भी किया है। यह सम्भव है कि पिथगोरस ने यह सख्या अपनी यात्राओं में पूर्व से प्राप्त की हो और तत्पश्चात् वह उसके शिष्यों द्वारा प्लेटो तक पहुँच गयी हो।

प्लेटो ने मध्या मिडान्त का आधार दार्शनिक था। उक्त सिद्धान्त पिथगोरियों के सिद्धान्त में बहुत मेल गाना था, किन्तु इनमें दो बातों का अन्तर था—

(१) पिरॅगोरियों का यह मत था कि संख्याओं में ही सीमा और असीम की कल्पना निहित है। प्लेटो का विचार था कि संख्याओं में 'एक' और बड़े, छोटे के भाव निहित हैं।

(२) पिरॅगोरियों के विचार में वस्तुओं और संख्याओं में एकात्म्य (Identity) है। प्लेटो का मत है कि बाहरी वस्तुओं और संख्याओं के मध्यस्थ 'गणितीयकों' (Mathematicals) का भी एक वर्ग निहित है।

प्लेटो के शिष्यों ने प्लेटो के कार्य को आगे बढ़ाया। उनमें से कई एक गणितज्ञ हुए हैं। किन्तु उनमें से अधिकांश की रुचि ज्यामिति और ज्योतिष में थी। तीन शिष्यों के नाम उल्लेखनीय हैं—स्पूसियस (Spucius), ज़ेनोक्रैटीज़ (Xenocrates) और अरस्तू (Aristotle)। इन गणितज्ञों ने अंकगणित पर भी पुस्तकें लिखी हैं। अरस्तू का नाम तो दार्शनिकों में प्रसिद्ध है। उसकी रुचि विशेषकर प्रयोजित गणित (Applied Mathematics) में थी। उसका विचार था कि गणित का स्थान भौतिकी (Physics) और अतिमानस्य (Metaphysics) के मध्य में है। उसकी इच्छा थी कि अंकगणित और ज्यामिति के क्षेत्र अलग-अलग निर्धारित कर दिये जायें। उसने दो पुस्तकें लिखी हैं, एक, अविभाज्य रेखाओं (Indivisible Lines) पर और दूसरी यान्त्रिक प्रश्नों पर। अरस्तू को विज्ञान के इतिहास में भी बहुत रुचि थी। कदाचित् इसी कारण उसके कई शिष्यों ने गणित के इतिहास में भी रुचि दिखायी है।

५२९ ई० में सम्राट् जस्टीनियस (Justinus) ने अपने कट्टर ईसाईपने में एथेंस (Athens) के समस्त स्कूलों और शैक्षणिक संस्थाओं को बन्द करवा दिया और इस प्रकार प्लेटो की परिपद् का अन्त हो गया।

(२) ३०० ई० पू० से १००० ई० तक

ऐलैग्जेंड्री सम्प्रदाय (Alexandrian School)—ऐलैग्जेंड्रिया मिस्र का मुख्य पत्तन है और लगभग १००० वर्ष से उक्त देश की राजधानी है। नगर अति प्राचीन है, किन्तु आधुनिक ऐलैग्जेंड्रिया एक नया नगर है जो प्राचीन नगरी के ठीक ऊपर बसा हुआ है। इसी कारण प्राचीन नगर की खुदाई कराने में सदैव कठिनाई पड़ती है। अतः खुदाई के द्वारा प्राचीन ऐलैग्जेंड्रिया का बहुत कम इतिहास जाना जा सका है। इतना निश्चित है कि इस नगर की स्थापना ३३२ ई० पू० में सम्राट् मिकन्दर (Alexander) ने की थी और उसका विचार था कि यह नगर मैसेडोनिया (Macedonia) और नील नदी की घाटी को मिलाने का काम करे। खुदाई

करने पर कुछ पुराने मन्दिरों और कब्रों के भग्नावशेष मिले हैं। यह भी अनुमान है कि किमी समय इस नगर में एक रोमन किला था और कई बड़े-बड़े भवन थे। इतना भी पता चलता है कि किसी ज़माने में इन भवनों के नीचे अथाह धन भरा पड़ा था।

ऐलैग्जेंडर (सिकन्दर) ने इस नगर को इसलिए बसाया था कि उसकी प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण बनाये रखे। ३२३ ई० पू० में उसका देहान्त हो गया। कुछ दिनों तक तो उसके सेनापतियों ने उसके राज्य को भँजाला, किन्तु अल्प काल पश्चात् राज्य के तीन टुकड़े हो गये। मिस्र में उसके मित्र टॉलेमी (Ptolemy) का राज्य हुआ। मैसेडोनिया में एण्टीगोनस (Antigonos) का शासन चलने लगा और उसने एशिया के शेष भागों पर भी अपना अधिकार जमाया। उसी समय से ऐलैग्जेंड्रिया की उत्पत्ति का इतिहास आरम्भ होता है। यह नगर समार के वाणिज्य का केन्द्र तो बना ही, साथ ही इसकी गिनती सत्सार के गिने-चुने वैज्ञानिक और साहित्यिक केन्द्रों में भी होने लगी। सत्सार के सबसे प्राचीन पुस्तकालयों में से एक इसी नगर में बना और सत्सार के सर्वप्रथम अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना भी इसी नगर में हुई। उन्हीं दिनों इस नगर में बड़े-बड़े गणितज्ञ उत्पन्न हुए जैसे यूक्लिड, आर्किमिडीज और हर्दॉस्थेनीज। इन गणितज्ञों का जीवन-चरित यथास्थान दिया जायगा।

हर्दॉस्थेनीज (Eratosthenes)

हर्दॉस्थेनीज मुख्यतः एक भूगोलज्ञ था। उसका जीवन काल २७६-१९४ ई० पू० के लगभग था। उस का जन्म साइरीन (Syrene) में हुआ, किन्तु उसने शिक्षा ऐलैग्जेंड्रिया और एथेंस में प्राप्त की। मध्यको (Means) पर उसने दो पुस्तकों का प्रणयन किया जो अब अलभ्य हैं। उसने अभाज्य सख्याओं (Prime Numbers) को निकालने की एक विधि का आविष्कार किया। यही विधि अकगणित को उसकी सबसे बड़ी देन थी। उक्त विधि को हर्दॉस्थेनीज की छलनी (Sieve of Eratosthenes) कहते हैं। विधि इस प्रकार है कि पहले समस्त विषम सख्याएँ लिख डाली—

३, ५, ७, ९, ११, १३, १५, १७, १९, २१, २३, २५, २७, २९, ३१

अब इनमें से प्रत्येक के अपवर्त्यों को काटते चले गये। उपरिलिखित सख्याओं में ३ के इतने अपवर्त्य हैं—

९, १५, २१, २७।

अतः इन चारों सख्याओं को काट दिया। शेष सख्याओं में से ५ के अपवर्त्यों को काटा। उक्त सख्याओं में ५ का अपवर्त्य केवल २५ है। उक्तको काटने के पश्चात्

जो मंत्र्याणं, वची उनमें मे ७ के अपवर्त्यों को काटा और उसी प्रकार आगे बढ़ते चले गये। अन्त में केवल अमाज्य मंत्र्याणं ही शेष रह जायेंगी।

इरॉटॉस्थेनीज को गणितीय भूगोल का जन्मदाना कह सकते हैं। उसने पृथ्वी के व्यास और परिधि का नाप दिया। यह नाप उस समय के उपकरणों को देखते हुए बहुत कुछ ठीक कहा जायगा। पृथ्वी के व्यास का नाप उसने ७८५० मील दिया है। यह नाप ध्रुवी व्यास में केवल ५० मील न्यून है। इरॉटॉस्थेनीज के लिए इतना सूक्ष्म मान दे देना श्रेयस्कर था। उसकी सूज-बूज के कारण उसके भवत उसको द्वितीय प्लेटो के नाम में अभिहित करने लगे थे। कुछ लोगों ने उसका नाम बीटा रखा था जो यूनानी वर्णमाला का द्वितीय अक्षर है। उन लोगों का तात्पर्य यह था कि यूनानी बुद्धिमानों में उसका नम्बर २ था। किन्तु अन्य लोगों का यह मत है कि यह नाम उसे केवल इस कारण दिया गया था कि वह विग्वविद्यालय के छात्रालय के कमरा नं० २ में रहता था।

आर्किमिडीज (Archimedes)

आर्किमिडीज का जीवन काल २८६-२१२ ई० पू० के आस पास था। उसके पिता एक गणित ज्योतिषी थे। उसने ऐलैजेंड्रिया में शिक्षा पायी। तदुपरान्त वह सिसिली में अपने जन्मस्थान साइरेंस्यूज (Syracuse) में लौट आया और उसने अपना जीवन गणितीय गवेषणा में लगा दिया। उसने बहुत से मौलिक यंत्रों का आविष्कार किया। जब रोमनों ने साइरेंस्यूज पर घेरा डाला तो इन्हीं पात्रों की सहायता से आर्किमिडीज उक्त नगर को तीन वर्ष तक बचाये रहा। जनश्रुति है कि जब रोमन जहाज नगर के समीप आ गये तो आर्किमिडीज ने एक दर्पण का निर्माण किया। उसकी यह विशेषता थी कि उसकी सहायता से आर्किमिडीज ने सूर्य रश्मियाँ उन जलपोतों पर डालकर उनका अग्निदाह कर दिया।

उन दिनों साइरेंस्यूज का अधिपति हिरॉन (Heron) था। आर्किमिडीज का इससे घनिष्ठ संवन्ध था। एक लोक प्रवाद है कि हिरॉन ने अपने लिए एक स्वर्ण मुकुट बनवाया। उसे यह संदेह हुआ कि सुनार ने मुकुट में चाँदी की मिलावट कर दी है। तथ्यान्वेषण के लिए आर्किमिडीज को यह कार्य सौंपा गया। आर्किमिडीज कई दिन तक सोचता रहा। नाँद में स्नान करते समय उसे एक दिन सूझा कि जल से भरपूर नाँद में समान भार के सोने और चाँदी के डले डालकर यह देखा जाये कि दोनों दशाओं में कितना कितना जल नाँद के बाहर गिरता है। इन दोनों मात्राओं का अन्तर लिखकर, अन्ततः मुकुट को नाँद में डालकर देखा जाये कि उसके कारण नाँद का कितना पानी

बाहर गिरता है। उससे मुबुट में मिश्रित चांदी की मात्रा का अनुमान हो जायगा। इस विचार से हर्पोत्पल्ल हो वह नग शरीर ही ग्लानागार में 'मिल गया, मिल गया' चिल्लाता हुआ गली में दौड़ गया।

आर्किमिडीज कहा करता था कि कोई भी बहुत बड़ा भार थोड़े से बल में गिस्ताया जा सकता है। हेरोन ने एक दिन उससे कहा कि अपने बचन की सत्यता प्रमाणित करे। आर्किमिडीज ने एक जहाज सामान से इतना भरवाया कि अतः मजदूरों की सहायता के बिना उसका गोदी में से निचलना अति दुष्कर था। तत्पश्चात् उसे यात्रियां स भरकर उसपर एक घिरनी लगा दी। घिरनी के ऊपर एक रस्सी लपेटकर आर्किमिडीज उसका एक सिरा अपने हाथ में पकड़कर जलयान से दूर जा बैठा। इस प्रकार उसने जहाज को ऐसी सरलता से खींच लिया माना जहाज अपनी घबिन से समुद्र में चल रहा हो। इसी सम्बन्ध में आर्किमिडीज कहा करता था कि 'मुझे खड़े होने का उपयुक्त स्थान दे दो तो मैं सारी पृथ्वी को नचा दूँ।' गणित के विद्यार्थी जानते हैं कि उक्त बचन में उत्तोलक (Lever) का सिद्धान्त निहित है।

आर्किमिडीज का मुख्य कार्य ज्यामिति के क्षेत्र में है। जहाँ तब अवगणित का सम्बन्ध है उसकी मुख्य देन 'रेतगणक' (Sand Reckoner) है। उसने पूर्णांकों को राख्या 10^6 के आठव घातो के हिमाब से विन्यस्त किया। इस प्रकार उसने 10^{18} तक के पूर्णांकों को गिनने की पद्धति निकाली। उक्त पद्धति में बीजगणित का निम्न-लिखित घातांक नियम छिपा हुआ है —

$$m^a \cdot k^b = m^{a+b} ;$$

एक बार जब मार्सेलस (Marcellus) ने साइरेंस्यूज पर चढ़ाई की थी तब आर्किमिडीज ने ही अपने मानसिक बल से उसे बचाया था। उसने उत्तोलकों द्वारा पत्थर फेंककर जहाज के बड़े डूबा दिये थे। किन्तु अगली बार मार्सेलस ने साइरेंस्यूज पर पीछे से आक्रमण किया। नगर में उस समय कोई धार्मिक उत्सव हो रहा था। नगर निवासी युद्ध के लिए तैयार न थे। अतः वही हुआ जो होना था। नगर वालों की हार हुई।

आर्किमिडीज के अन्न की कहानी भी बड़ी रोचक है। उसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह गणितीय प्रश्न करने समय इतना तमय हो जाता था कि खाना-पीना तब भूल जाया करता था। जब वह आग के पास बैठता था तो चूल्हे में से राख निकालकर उसमें उँगलों से आकृतियाँ बनाने लगता था। जब वह तैल मलकर नहाता था तो अपने तैल युक्त शरीर पर नासुनों से ज्यामितीय चित्र बनाया करता था। अतः उसकी मृत्यु की कहानी पर भी लोगो को कोई आश्चर्य नहीं होता। उसे पता चला

कि नगर को शत्रुओं ने घेर लिया है। उग नग्न वह कुछ आकृतियाँ बना रहा था, उन्हीं में संलग्न रहा। इतन में एक रोमन सिपाही को छाया उनके वृत्तों पर पड़ी। वह निल्लया "मेरे वृत्तों को ज्यों का त्यों रहने दो" (अर्वात् यहाँ से हट जाओ ताकि मेरे वृत्तों पर तुम्हारी छाया न पड़े।) निपाही को शोक आ गया और उगने अपनी तलवार उसके शरीर में घुसेड़ दी। इन प्रकार ७५ वर्ष की उम्र में उसका प्राणान्त हो गया।

ऐपोलोनियस (Apollonius)

ऐपोलोनियस का जन्म २६२ ई० पू० के लगभग हुआ था। उसका मुख्य कार्य ज्यामिति में था जिसका विवरण ग्रन्थान्वयन दिया जायगा। उसका जन्म लघु एशिया के पॉम्फोल्या (Pompholia) प्रदेश के पर्गा (Perga) नगर में हुआ था और शिक्षा दीक्षा ऐलैग्जेंड्रिया में।

पैप्पस (Pappus) ऐलैग्जेंड्रिया का एक ज्यामितिज्ञ हुआ है जिसका जीवन काल तृतीय शती ई० था। उसने आठ भागों में एक संग्रह छपा है। उक्त संग्रह में उसने अपने पूर्वगामियों के गवेषणा फलों को क्रमबद्ध कर दिया है और उनपर अपनी टिप्पणियाँ एवं व्याख्याएँ भी दी हैं। संग्रह में ऐपोलोनियस के कार्य का भी विवरण है। उक्त संग्रह से ही हमें ऐपोलोनियस के कार्य का आधिकारिक विवृत प्राप्त होता है। संग्रह के दूसरे भाग में पैप्पस ने लिखा है कि ऐपोलोनियस ने संख्यान (Numeration) की एक प्रणाली निकाली थी। उक्त प्रणाली वास्तव में आर्किमैडीज की प्रणाली का ही संशोधित रूप था। इस प्रणाली में 10^6 को संख्याओं का आधार माना गया था। यही संख्या बहुत समय पहले से पूर्व में संख्यान का आधार थी और युरोप की संख्यान प्रणाली का भी कई शतियों तक यही संख्या आधार रही। बड़ी संख्याओं के अभिव्यंजन हेतु यह प्रणाली आर्किमैडीज के रेत-गणक से अधिक सुविवाजनक थी और उक्त प्रणाली से बड़ी संख्याओं का गुणन भी सुगम हो गया। इसके अतिरिक्त ऐपोलोनियस ने यूक्लिड (Euclid) की असुमेय संख्याओं के सिद्धान्त का भी विस्तार किया था।

निकोमेकस (Nicomachus)

निकोमेकस का जन्म कदाचित् जिरास नगर में हुआ था जो जेरूसलम से ५६ मील उत्तर पूर्व में है। उसका स्थिति काल १०० ई० के आस-पास है। निकोमेकस की दो कृतियाँ प्राप्य हैं। उनमें से एक तो अंकगणित पर है। उक्त पुस्तक में पिथॅगोरी प्रणाली की छाप स्पष्ट दृष्टिगत होती है। अतः लोगों का अनुमान है कि कदाचित् वह विद्याव्ययन के लिए ऐलैग्जेंड्रिया गया हो। निकोमेकस के अंकगणित की टीका

बहुत से टीकाकारों ने की है। इसीलिए निकोमेकस ऐसक के रूप में बहुत प्रसिद्ध हो गया यद्यपि उसका अवगणित सबन्धी ज्ञान कोई ऊँचे स्तर का नहीं था। प्रस्तुत ग्रन्थ में उसने सख्याओं के गुणों का विवेचन किया है। इसके अनिरिक्त उसने प्राकृतिक सख्याओं के घनों (Cubes) के जोड़ का भी एक नियम दिया है। उक्त नियम की सहायता में १ से लेकर किसी भी प्राकृतिक सख्या पर्यन्त की सख्याओं के घनों का योग निकाला जा सकता है।

निकोमेकस की दूसरी पुस्तक संगीत-मिडान्त पर थी। इन दोनों पुस्तकों के अनिरिक्त उसने एक अन्य पुस्तक सख्याओं के गुणों पर लिखी है, जिसके एक भाग के थोड़े-से अंश प्राप्य हैं।

चीन और जापान

जहाँ तक अवगणित का सम्बन्ध है, निकोमेकस के परचात् यूरोप में कोई बड़े गणितज्ञ नहीं हुए। गणित की अन्य शाखाओं के विद्वानों का विवरण यथास्थान दिया जायगा। चीन में २१३ ई० पू० के लगभग एक महत्त्वपूर्ण घटना यह घटी कि सम्राट् शी ह्वांगती की आज्ञा से समस्त पुस्तकें जला दी गयीं। उक्त आज्ञा के अनगार यदि कोई व्यक्ति पुस्तकें नहीं जलाता था तो उसे लोहे से दाग दिया जाता था। उस समय के कितने चीनी ग्रन्थ अग्नि दाह से बच रहे, आज यह बताना कठिन है। सन् ईस्वी के आरम्भ के आस पास ही चीन की प्रसिद्ध पुस्तक 'बुसाओ स्वान किंग' प्रणीत हुई, जिसमें अधिकांशतः क्षेत्रफलों का विवेचन किया गया था। चौदवीं शती ईस्वी में चीन और एशिया के अन्य देशों में सम्पर्क स्थापित हो चुका था। ३९९ ई० में एक चीनी बौद्ध फाहियान भारतवर्ष आया और १५ वर्ष इस देश में रहकर चीन लौटा। उसने अपना सारा दीर्घ जीवन हिन्दू कृतियों के अनुवाद करने में बिताया।

जिस समय का हम उल्लेख कर रहे हैं, उस समय जापान ने भी अवगणित में कोई विशेष प्रगति नहीं की। इतना पता है कि उक्त देश में उन दिनों तब नाप की कोई पद्धति प्रचलित हो चुकी थी। इसके अनिरिक्त विद्वानों का अनुमान है कि ६६० ई० पू० के आस पास जापान में एक सख्या-पद्धति चालू थी, जिसके द्वारा बहुत बड़ी सरयाएँ भी लिखी जा सकती थी। बौद्ध धर्म के प्रसार से जापानी साहित्य पर चीन का प्रभाव पड़ने लगा। सन् ५५४ ई० में दो विद्वान् कोरिया से जापान आये। वे तिथिपत्र (Calendar) के विशेषज्ञ थे। इसने कुछ वर्ष अनन्तर कोरिया से एक पुरोहित आया, जिसने जापान की राजी को ज्योनिय और तिथिपत्र पर कई पुस्तकें भेंट की। तभी से जापान पर चीनी साहित्य का प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा।

भारत

३२७ ई० पू० में सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया। उक्त घटना ने भारत के सांख्यिक साहित्य और गणित को कुछ-न-कुछ अवश्य ही प्रभावित किया। किन्तु कितना प्रभाव पड़ा यह कहना कठिन है। उस समय तक भारत में अंकगणित विद्या के रूप में विकसित नहीं हो पाया था। पर हिन्दू-संख्यान-पद्धति उस समय के आस पास की ही उपज है। ५०० और १००० ई० के बीच में भारत में कई बड़े गणितज्ञ हुए हैं। उनमें से चार के नाम विशेषरूपेण उल्लेखनीय हैं—आर्यभट्ट, वराहमिहिर, जो एक ज्योतिषी था, ब्रह्मगुप्त और महावीर। इन सबकी कृतियों का वर्णन यथास्थान किया जायगा।

आर्यभट्ट

आर्यभट्ट का जन्म पटना के पास कुसुमपुर में ४७६ ई० में हुआ था। आर्यभट्ट के तीन ग्रन्थों का पता चलता है,—दशगीतिका, आर्यभटीय और तन्त्र। इनमें से आर्यभटीय ही उसकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक है। पहली दोनों पुस्तकों की पाण्डुलिपियों का पता सर्वप्रथम भाऊ दाजी ने १८६४ में चलाया था।^१ तीसरे ग्रन्थ का नाम के अतिरिक्त कुछ पता नहीं चल पाया है। आर्यभटीय श्लोकों में लिखी गयी है। पुस्तक में पाँच अध्याय हैं जिनमें से केवल एक गणित पर है, शेष ज्योतिष पर। उक्त एक अध्याय में आर्यभट्ट ने अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति और त्रिकोणमिति के ३३ सूत्र दिये हैं।

लगभग ५० वर्ष हुए आर्यभट्ट के विषय में एक विवाद उठ खड़ा हुआ था। इतिहासज्ञ अलवेरूनी^२ ने सन् १०३० ई० में लिखा था कि भारत में आर्यभट्ट नाम के दो ज्योतिषी हुए हैं। अलवेरूनी के इस कथन से अनुचित लाभ उठाकर के^३ (Kaye) ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि भारतीयों का गणित का ज्ञान वस्तुतः यूनानी गणितज्ञों की रचनाओं से प्रभावित था। आर्यभटीय के दूसरे भाग के पहले अध्याय का शीर्षक 'गणित' है। के ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि

1. Bhau Daji : On the age and authenticity of the works of Aryabhatta, Varahmihira, Brahmagupta—Journal, Royal Asiatic Society (1865).
2. Al-Biruni's India, English trans. By Sachan Vols. I & II London (1910)
3. Kaye : Aryabhatta—J. Asiatic Soc. Bengal (1908) p. III.

‘गणित’ अध्याय आर्यभट्टीय के शेष अंश के लेखक द्वारा नहीं लिखा गया है, वरन् एक दूसरे आर्यभट्ट की रचना है। इस प्रकार के नौ प्राचीन हिन्दू गणित के निम्नलिखित मर्मज्ञा के मत को टुकरा दिया है—

माउदाजी, कर्न (Kern), वेबर (Weber), रोडे (Rodet), थीबॉ (Thebaut), शंकर बालकृष्ण दीक्षित तथा मुधाकर द्विवेदी।

वे उन लोगों में से थे या जो यदा कदा प्राचीन हिन्दू सम्प्रति पर कीचड़ उछालने में ही अपना गौरव जन्मव करतें थे। हम यहाँ उक्त विवाद में प्रवृत्त नहीं होना चाहते। जिन पाठकों को इस विषय में रचि हों वे निम्नोक्त लेखों और ग्रन्थों का अवलोकन कर सकते हैं—

- (1) Kaye Indian Mathematics—Calcutta (1915).
- (2) P C Sengupta : Aryabhata's last work—Bull Cal Math Soc 22 (1930) pp. 115-20.
- (3) B B Dutt : Two Aryabhata's of Al Biruni—Ibid 17 (1926) 59-74
- (4) — Aryabhata, the author of the Ganita—Ibid 18(1927)5-18.

इसमें सन्देह नहीं कि अलबेरूनी को इस विषय में सिद्धिन् भ्रम हुआ था। जिन पुस्तक का उमने उल्लेख किया था वह एक ही आर्यभट्ट की कृतियाँ थी और उसी ने भारतीय गणितज्ञ के रूप में श्यानि लाभ किया है।

‘आर्य सिद्धान्त’ नामक ग्रन्थ के रचयिता एक अन्य आर्यभट्ट भी भारत में हुए हैं। उक्त पुस्तक आर्यभट्टीय से बड़ी है और १८ अध्यायों में विभक्त है। इसीलिए कुछ लोग उसे ‘महा आर्य सिद्धान्त’ के नाम से अभिहित करते हैं और उसकी तुलना में ‘आर्यभट्टीय’ को ‘लघु आर्यभट्टीय’ की सजा प्रदान की जाती है। आर्यभट्ट के जीवन-काल के विषय में विद्वानों में महान् मतभेद है। फिर भी इतना निश्चित है कि यह लेखक पहले आर्यभट्ट से कई शताब्दियों पश्चात् हुआ था। सम्भवतः वह अलबेरूनी के समय के भी बाद में हुआ हो। अतः अलबेरूनी का तात्पर्य इस दूसरे आर्यभट्ट से कदापि नहीं हो सकता था। अतएव आर्यभट्ट से हमारा अभिप्राय उसी पहले आर्यभट्ट से होगा और हम उसी की कृतियाँ पर विचार करेंगे।

आर्यभट्टीय के प्रथम भाग का नाम दशगोत्रिका है, जिसमें ज्योतिषीय सारणियाँ दी गयी हैं। दूसरे भाग को आर्यस्तोत्र कहते हैं। इसमें तीन अध्याय हैं—गणित, काल-त्रिया और गोत्र। गणित के प्रारम्भ में यत्तिपय ज्योतिषीय परिभाषाएँ दी गयी हैं। तत्पश्चात् वर्गमूत्र निकालने का सूत्र आता है। गणित का चौथा अंशक इस प्रकार है—

भागं हरेद्वर्गान्नित्यं द्विगुणेन वर्गमूलेन ।

वर्गद्विगो शुद्धे लब्धं स्थानान्तरे मूलम् ॥ ४ ॥

अर्थ—इकाई के स्थान से आरंभ करके प्रत्येक दूसरे अंक के ऊपर एक विन्दु रखो। जितनी विन्दियाँ लगेंगी उतने ही अंक वर्गमूल में होंगे। मान लीजिए कि हमें २०४४९ का वर्गमूल निकालना है, तो इस प्रकार विन्दियाँ लगाओ—

२ ० ४ ४ ९

तीन विन्दियाँ लगीं। अतः वर्गमूल में तीन अंक होंगे। सबसे बायीं ओर की संख्या पर विचार करो कि उसमें से कौन-सी बड़ी-से-बड़ी संख्या का वर्ग घटा सकते हो। उपरिलिखित संख्या में बायीं ओर का अंक २ है, जिसमें से केवल १ का वर्ग घटा सकते हैं। अतः वर्गमूल का पहला अंक १ हुआ। अब वर्गमूलन क्रिया को भाग का रूप देकर भजनफल के स्थान पर १ रखो :

$$\begin{array}{r}
 20449 \quad (143 \\
 \underline{1} \\
 28 \overline{) 104} \\
 \underline{96} \\
 263 \overline{) 689} \\
 \underline{689} \\
 \hline
 \times
 \end{array}$$

संख्या १ के वर्ग को निर्दिष्ट संख्या में से घटाओ और उसके अगले दो अंक नीचे उतार लो। इस संख्या १ के दुगुने को भाजक के स्थान पर रखो। अब हमारा भाजक २ और भाज्य १०४ हो गया। १०४ में से दाहिने अंक को छोड़ दो। शेष अंक १० है। २ से १० में भाग देने से ५ मिलता है, किन्तु ५ रखने से आगे की क्रिया असम्भव हो जायगी। अतः भजनफल ४ मानो और भाजक और भजनफल दोनों में ४ रख दो। अब भाजक २४ और भजनफल का दूसरा अंक ४ हो गया। इस प्रकार ९६ गुणनफल आया। १०४ में से घटाने पर ८ मिला। शेष दोनों अंक ४९ भी उतार लो और फिर वही क्रिया दुहराओ। इस प्रकार वर्गमूल १४३ प्राप्त हो जायगा।

यह वर्गमूल क्रिया ठीक वैसी ही है जैसी हम लोग आधुनिक गणित में सीखते हैं। इसमें कई बार जाँच भजनफल (Trial Quotient) लेना पड़ता है। अधिकतर जो जाँच भाजक दृष्टिगोचर हो उससे एक अंक कम ही लेना चाहिए, अन्यथा आगे चलकर क्रिया विफल हो जाती है।

गणित में अगले स्तरों में घन मूल (Cube Root) निकालने की विधि दी गयी है—

अधनाद् भजेद् द्वितीयात् त्रिगुणेन घनस्य मूलधर्मेण ।

यर्गस्त्रिपूर्वं गुणित साध्य प्रथमाद्घनरच घनान् ॥ ५ ॥

स्तरों का अर्थ एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा । मान लीजिए कि हमें १९६८३ का घनमूल निकालना है । तो पहले इस संख्या पर दाहिने से आरम्भ करने और दो-दो अंक छोड़कर बिन्दियाँ लगा ली—

१ ९ ६ ८ ३

सबसे बायीं ओर हम संख्या १९ मितरी । वह कौन-सी बड़ी-ने-बड़ी संख्या है जिसका घन १९ म से घट सकता है ? संख्या २ । अतः २ को भजनफल में रखो और उससे घन को १९ में से घटा दिया—

१ ९ ६ ८ ३ (२

८

१ १ ६ ८ ३

सोप तीनों अंक उतारने से अगला भाज्य ११६८३ प्राप्त हुआ । और मूलांक २ हमें प्राप्त हो चुका है । इससे वर्ग के तिगुने अर्थात् १२ को जाँच भाजक (Trial Divisor) मानो । भाज्य ११६८३ के दाहिने दो अंक छोड़ने से जाँच भाज्य ११६ प्राप्त हुआ । ११६ में १२ से भाग देने पर ९ जाँच भजनफल होता है । किन्तु ९ अथवा ८ लेने से आगे की क्रिया असम्भव हो जाती है । अतः ७ को जाँच भजनफल माना ।

अब मूलांक २ के तिगुने को बायीं ओर और जाँच भजनफल ७ को दाहिनी ओर रखो । इस प्रकार संख्या ६७ प्राप्त हुई । इस संख्या को फिर जाँच भजनफल ७ से गुणा करो तो हमें संख्या ४६९ प्राप्त हुई । अब इस संख्या को जाँच भाजक १२ के नीचे, उससे दो अंक दाहिनी ओर इस प्रकार रखो और दानो को

१२

४६९

१६६९

जोड़ दो । इस प्रकार उपलब्ध संख्या १६६९ को सत्य भाजक (True Divisor) कहते हैं । इससे उपरिलिखित

१६६९) १ १ ६ ८ ३ (२७

१ १ ६ ८ ३

×

अंकगणित

भाज्य को भाग देने से हम देखते हैं कि भजनफल का दूसरा अंक ७ ठीक उतरता अतः घनमूल हुआ २७।

हम एक अन्य उदाहरण लेकर इस रीति को और स्पष्ट करते हैं। मान लीं कि हमें ३५६११२८९ का घनमूल निकालना है। तो क्रिया इस प्रकार होगी —

$$\begin{array}{r}
 35611289 \\
 \underline{27} \\
 8611 \\
 \hline
 4768 \\
 2883289 \\
 \hline
 314921 \\
 2883289 \\
 \hline
 \times
 \end{array}$$

अभीष्ट घनमूल = ३२९

यदि इस संख्या का घनमूल आधुनिक विधि से निकालें तो क्रिया इस प्रकार होगी

$$\begin{array}{r}
 35611289 \\
 \underline{27} \\
 8611 \\
 \hline
 4768 \\
 2883289 \\
 \hline
 314921 \\
 2883289 \\
 \hline
 \times
 \end{array}$$

दोनों विधियाँ मूलतः एक ही हैं, केवल भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषा में लिखी हैं।

घन मूल क्रिया के बाद आर्यभट्ट ने ज्यामिति और बीजगणित के कुछ सूत्र लिखे हैं। यतः सारा विषय पद्य में दिया हुआ है, अतः भाषा बहुत ही संक्षिप्त हो गयी है।

उसका अर्थ निकालना भी कठिन है। त्रैराशिक (Rule of Three) आर्यभट्ट ने इन शब्दों में दिया है—

त्रैराशिक फल र शि तमयेच्छाराशिना हत वृत्वा ।

लब्ध प्रमाण भजित तस्मादिच्छा फलमिदं स्यात् ॥ २६ ॥

पहली राशि को 'प्रमाण राशि', दूसरी को 'फल-राशि', तीसरी को 'इच्छा-राशि' कहते हैं। फल राशि को इच्छा राशि से गुणा करके प्रमाण राशि से भाग देने पर उत्तर प्राप्त होता है।

उदाहरण—यदि ७५ सुपारियों में १० नारंगियाँ आती हैं तो ३० सुपारियों में कितनी नारंगियाँ आयेगी ?

प्रमाण-राशि = ७५ ,

फल-राशि = १० ,

इच्छा-राशि = ३० ,

$$\text{उत्तर} = \frac{१० \times ३०}{७५} = ४ \text{ नारंगियाँ} ।$$

'गणित' में इसके आगे व्युत्क्रमण नियम (Rules of Inversion), मित्रों का गुणन आदि दिये गये हैं। यहाँ हम उक्त अध्याय का केवल एक श्लोक देते हैं—

गुलिकान्तरेण विभजेद् द्रव्यो पुरुषयोस्तु रूपक विशेषम् ।

लब्ध गुलिका मूल्य यद्यर्थं कृतं भवति तुल्यम् ॥ ३० ॥

गौ आदि ढोरो को 'गुलिका' कहते हैं और सोने चाँदी के सिक्का आदि को 'रूपक' कहते हैं। यदि दो व्यक्तियों के गुलिका धन और रूपक धन के जोड़ तुल्य हो तो यह नियम लागू होगा—

रूपक द्रव्यों में से जो अधिक हो, उसमें से दूसरे द्रव्य को घटाओ। इसी प्रकार गुलिका द्रव्यों में से जो अधिक हो उसमें से दूसरे को घटाओ। पहले शेष को दूसरे शेष से भाग दो। भजनफल ही एक गौ का मूल्य होगा।

उदाहरण—सोहन के पास ६ गायें और १२५ रुपये हैं और सोहन के पास ४ गायें और २७५ रुपये हैं। यदि दाना के सर्वधन बराबर हो तो एक गाय का मूल्य बताओ।

त्रिया ६ गाय—४ गाय=२ गाय,

$$२७५ रु० - १२५ रु० = १५० रु०$$

.. प्रत्येक गाय का मूल्य $\frac{१५०}{२}$ अर्थात् ७५ रु० हुआ ।

इन प्रकार पहले का सर्वधन = ६४.७५ : १२५

= ५३५८०

और दूसरे का सर्वधन = ४१.७५ : २७५

= ५३५८०

ब्रह्मगुप्त

ब्रह्मगुप्त का जीवन काल ५५८-६६० ई० माना जाता है। कदाचित् उक्त यती का सन्ने वड़ा हिन्दू गणितज्ञ यही था। उनका कार्यक्षेत्र उज्जैन था। इसने तीस वर्ष की अवस्था में ही अपने ग्रन्थ ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त की रचना की थी। उक्त ग्रन्थ में इक्तीस अध्याय हैं, जिनमें से दो अध्याय गणित पर हैं और शेष ज्योतिष पर। इन दोनों अध्यायों में अंकगणित, बीजगणित और ज्यामिति के अनेक सूत्र दिये हुए हैं। इन अध्यायों का अंग्रेजी अनुवाद फोल्गुवुड ने किया है। देखिए—

H. T. Colebrooke: Algebra with Arithmetic and Mensuration from the Sanskrit of Brahmagupta and Bhaskara—London 1817.

उक्त अध्यायों के अंकगणितीय भाग में ब्रह्मगुप्त ने बहुत से प्रकरण दिये हैं, जैसे धन मूल, गुणन की चार विधियाँ, वर्ग, घन, मिश्र, अनुपात, त्रैराशिक, विषम-संख्या राशिक, व्याज, व्युत्क्रमण, शून्य, अनन्त, अनिर्णीत रूप (Undetermined Forms)।

इस विषय सूची से पता चलता है कि उस समय के हिसाब से हिन्दू गणित ब्रह्मगुप्त के कार्य काल में अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया था। इसी कारण ब्रह्मगुप्त का केवल भारतीय गणित में ही नहीं, बल्कि विश्व-गणित के इतिहास में एक विशेष स्थान है।

यहाँ हम ब्राह्म स्फुट सिद्धान्त, मुवाकर द्विवेदी, बनारस (१९०२) में से कुछ श्लोक देते हैं। गणिताध्याय के पृ० १७८ पर यह श्लोक आता है जिसमें त्रैराशिक का नियम दिया हुआ है—

त्रैराशिके प्रमाणं फलमिच्छाद्यन्तयोः सदृशराशी ।

इच्छा फलेन गुणिता प्रमाणभक्ता फलं भवति ॥ १० ॥

अर्थ—इच्छा को फल से गुणा करके प्रमाण से भाग देने पर उत्तर प्राप्त होता है।

उदाहरण—यदि $3\frac{3}{4}$ सेर दूध $2\frac{3}{4}$ रु० में आता है तो $८\frac{1}{2}$ सेर दूध कितने में आयेगा ?

प्रमाण = $3\frac{3}{4}$,

फल = $2\frac{3}{4}$,

इच्छा = $८\frac{1}{2}$,

उन दिना इन राशिया का हम प्रकार सारणी के रूप में रखा जाता था—

३	२	८
२	३	१
३	४	२

मूक्षम मिना के रूप में ये राशियाँ इस प्रकार लिखी जायेंगी—

११	११	१७
३	४	२

दूसरे और तीसरे मिन्ना का गुणा करके पहल स भाग देने पर हमें प्राप्त होता है—

$$\frac{11 \times 17}{3}$$

मिन्ना को गुणा करने का वही नियम था, जो आजकल है। 'गुणको के हार को भाजक में ले जाओ और भाजक के हर को गुणको में ले जाओ।' इस प्रकार

$$\text{उत्तर} = \frac{11 \times 17 \div 3}{11 \times 4 \times 2} = \frac{41}{8} \text{ द०}$$

$$= ६ ३७५ \text{ द०}$$

मिथ समानुपात (Compound proportion) को हिन्दुओं ने विशेष तौर पर दिये हुए थे। प्रश्नों में जितने पदों का प्रयोग होता था उसी हिसाब से नाम दिये जाते थे, जैसे पञ्चराशिक, सप्तराशिक, नवराशिक, कभी कभी इन सब नियमों को एक साविक नियम विषमराशिक (Rule of odd terms) के अन्तर्गत दिया जाता था।

त्रैराशिक व पञ्चराशिक ब्रह्मगुप्त ने व्यस्त त्रैराशिक और तदुपरान्त विषम राशिक दिया है।

व्यस्त त्रैराशिक फलमिच्छामस्त प्रमाण फलघात ।

त्रैराशिकादिषु फल विषमत्वकादसान्तषु ॥ ११ ॥

फल सक्रमणमुभयतो बहुराशिवघातपवधहतो ज्ञेयम् ।

सकलेष्वव भिन्नेषुभयतश्छद सक्रमणम् ॥ १२ ॥

व्यस्त त्रैराशिक—प्रमाण को फल से गुणा करके इच्छा स भाग दो ।

उदाहरण—यदि १५ मालाएँ हों जिनमें से प्रत्येक में १२ मोती हों तो अट्ठारह अट्ठारह मोतियों की कितनी मालाएँ बन सकती है ?

$$\text{प्रमाण} = १५$$

$$\text{फल} = १२$$

$$\text{इच्छा} = १८$$

सारणी में ये राशियाँ इस प्रकार व्यक्त की जायँगी—

१५	१२	१८
----	----	----

$$\text{उत्तर} = \frac{१५ \times १२}{१८} = १० \text{ मालाएँ ।}$$

विपमराशिक—फलों का हेर-फेर करो । जिस ओर के पद अधिक हों, उस ओर के पदों के गुणनफल को दूसरी ओर के पदों के गुणनफल से भाग दो । समस्त भिन्न के हरे का हेर-फेर कर दो ।

इस नियम में अज्ञात राशि के स्थान पर ० रखा जाता था ।

उदाहरण—यदि १०० रु० का १ महीने का सूद ३ रु० हो तो २४ रु० का वर्ष में कितना सूद होगा ? यदि सूद और मूलधन दिया हो तो समय कैसे निकालोगे यदि समय और सूद दिया हो तो मूलधन कैसे निकालोगे ?

यतः ३ वर्ष = ३६ महीने, अतः प्रमाण पक्ष यह हुआ—

१०० रु०, १ महीना, ३ रु० (फल)

और इच्छा पक्ष इस प्रकार हुआ—

२४ रु०, ३६ महीने, ० रु०

सारणी के रूप में हम इन पदों को इस प्रकार व्यक्त करेंगे—

१००	२४
१	३६
३	०

फलों का हेर-फेर करने से इस सारणी का यह रूप हो जायगा—

१००	२४
१	३६
०	३

अत यदि ० को गिना न जाय तो दाहिनी ओर के पद अधिक हैं। इसका गुणांक २५०२ है। बायी ओर का गुणांक १०० है। इसमें २५०२ का भाग देने पर उत्तर

$$\begin{array}{r} 2502 \\ 100 \end{array} \text{ अर्थात् } 25 \cdot 02 \text{ हो आता है।}$$

इसमें उत्तर प्राप्ति पद्धति में लिखा है। प्राचीन पद्धति में उक्त उत्तर इस प्रकार लिखा जायगा—

$$\begin{array}{r} 25 \quad 23 \\ \hline 25 \end{array}$$

समय निश्चयना—

प्रमाण पक्ष १०० १० १ महीना ३ १०

दण्ड पक्ष २४ १० ० महीना २५ $\frac{23}{25}$ १०

पदा का सारणी रूप—

१००	२४
१	०
३	६४८
	२५

पक्षों के हेर-फेर में सारणी का यह रूप हो जायेगा—

१००	२४
१	०
६४८	३
२५	

बायी ओर तीन पद हैं और दाहिनी ओर दो। अत बायी ओर के पदा के गुणन-फल को दाहिनी ओर के गुणनफल से भाग देना है। हर २५ के स्थानान्तरण से पदा का यह रूप हो जायगा।

$$\begin{array}{r} 100 \quad 24 \\ 1 \quad 0 \\ 648 \quad 3 \\ 25 \end{array}$$

अब गुणनफलों के भाग से उत्तर

$$\frac{१०० \times १ \times ६४८}{२४ \times ३ \times २५} = ३६ \text{ महीने}$$

आ गया ।

मूलधन निकालना —

प्रमाण पक्ष—१०० रु०, १ महीना, ३ रु०

इच्छा पक्ष— ० रु०, ३६ महीने, $\frac{६४८}{२५}$ रु०

पदों का सारणी रूप—

१००	०
१	३६
३	६४८
	२५

फलों के हेर-फेर के पश्चात् सारणी का रूप यह होगा—

१००	०
१	३६
६४८	३
२५	

हरों के हेर-फेर के पश्चात् सारणी का रूप यह हो जायेगा—

१००	०
१	३६
६४८	३
	२५

पदों की संख्या बायीं ओर ही अधिक मानी जायगी, क्योंकि दाहिनी ओर एक शून्य है जिसका अर्थ 'पद का अभाव' माना जाता है ।

$$\text{अतः उत्तर} = \frac{१०० \times १ \times ६४८}{३६ \times ३ \times २५} = ३ \text{ रु०}$$

त्रैराशिक भी विपमराशिक का ही एक विशिष्ट रूप है । यह बात स्पष्ट रूप से ब्रह्मगुप्त ने कही थी ।

महावीर

उस समय के भारत के गणिताचार्यों में महावीर का नाम भी उल्लेखनीय है। इसके जीवन काल की ठीक-ठीक अवधि नहीं दी जा सकती। अनुमान है कि यह राष्ट्रकूट वंश के एक राजा के राजसभासदों में से था। महावीर के उक्त आश्रयदाता का नाम अमोघवर्ष था और वह मैसूर में राज्य करता था। उसका राज्यकाल नवौं शताब्दी पूर्वार्ध में आरम्भ हुआ था। अब हमारे विवरणानुसार महावीर का स्थितिकाल ९ वीं शताब्दी का पूर्वार्ध ही था। इस प्रकार महावीर का कार्य काल ब्रह्मगुप्त से दस शताब्दी पश्चात् का टकरता है।

यह निश्चिनप्राय है कि महावीर अपने पूर्वज गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त के कार्य से अभिमत था। इसने ब्रह्मगुप्त के प्रायः सभी फलों का स्पष्टीकरण किया है। इसके अतिरिक्त इसने बहुत से नये नियम भी गणितीय जगत को दिये हैं। दक्षिण भारत में इसके कार्य की बड़ी ख्याति है। इसका सर्वप्रसिद्ध ग्रन्थ 'गणित मार सग्रह' है। इस ग्रन्थ का एक संस्करण मद्रास से रणाचार्य ने १९१२ में निकाला था।

गणित सार सग्रह में ९ अध्याय हैं। पहले अध्याय में नाप तौल के पैमाने, आधारभूत क्रियाओं के नाम आदि सुलभ हैं। तत्पश्चात् महावीर ने गुणन की चार विधियाँ दी हैं। इनके अतिरिक्त एक पाचवीं विधि का भी उल्लेख किया है, जिसका नामकरण 'कपाट सन्धि' किया गया है। किन्तु उक्त क्रिया का स्पष्टीकरण नहीं किया गया है। इसके पश्चात् महावीर ने इन क्रियाओं का विवरण दिया है—

तिर्यग्गुणन, लम्बा भाग, वर्गण, घनन, वर्गमूल, मिश्र जिनको इसने ६ जानियों में विभाजित किया है, इकाई मिश्र, त्रैराशिक, व्यापार गणित, विविध प्रश्न और सूत्र्य सबन्धी क्रियाएँ।

इन प्रकरणों में एक प्रकरण 'इकाई मिश्र' आया है। यह ऐसे मिश्र को कहते हैं जिसका अंश १ हो। उक्त मिश्र का प्राचीन नाम 'रूपाशक राशि' है। महावीर ने कई नियम दिये हैं जिनके द्वारा किसी रूपाशक मिश्र को कई रूपाशक भिन्ना में विभक्त किया जा सके।

(१) १ को स सख्या के रूपाशक भिन्ना में विभक्त करना —

रूपाशकराशीना रूपाद्यास्त्रिगुणिता हरा नमश्च ।

द्विद्विभ्यशाम्यस्ता वादिमचरमौ फले रूपे ॥ ७५ ॥

नियम—१ से आरम्भ करते ३ से गुणा करते जाओ और इस प्रकार स मर्यादे लिख डालो —

$$1, \frac{1}{2}, \frac{1}{3}, \frac{1}{4}, \dots, \frac{1}{2^{n-1}}, \frac{1}{2^n}.$$

अब पहले हर को २ से और अन्तिम हर को $\frac{1}{2^n}$ से गुणा करके समस्त भिन्नों को दू दो।

$$1 = \frac{1}{2} + \frac{1}{3} + \frac{1}{4} + \frac{1}{5} + \dots + \frac{1}{2^{n-1}} + \frac{1}{2^n}$$

(२) १ को एक विषम संख्या के रूपांशक भिन्नों में विभक्त करना—

एकांशकराशीनां द्वाद्या रूपांतरा भवन्ति हराः ।

स्वासन्नपराम्यस्तास्वर्वे दलिता फले रूपे ॥ ७७ ॥

नियम—२ से आरंभ करके १ बढ़ाते जाओ और इन राशियों को रूपांशक भिन्नों हरा के रूप में रखते जाओ। यतः भिन्नों की संख्या विषम रखनी है, अतः अन्तिम हर २स होगा—

$$\frac{1}{2}, \frac{1}{3}, \frac{1}{4}, \dots, \frac{1}{2s-1}, \frac{1}{2s}$$

प्रत्येक हर को अगले हर से गुणा करके आधा कर दो। अन्तिम हर के आगे कोई भी हर नहीं है, अतः उसे गुणा नहीं करना होगा, केवल आधा करना होगा—

$$1 = \frac{1}{2 \cdot 3 \cdot \frac{1}{2}} + \frac{1}{3 \cdot 4 \cdot \frac{1}{2}} + \dots + \frac{1}{(2s-1) 2s \cdot \frac{1}{2}} + \frac{1}{2s \cdot \frac{1}{2}}$$

(३) एक रूपांशक भिन्न को कई रूपांशक भिन्नों में विभक्त करना—

लब्धहरः प्रथमस्यच्छेदः सस्वांशकोऽयमपरस्य ।

प्राक्स्वपेरण हतोऽन्त्यः स्वांशेनैकांशके योगे ॥ ७८ ॥

यहाँ हम इस नियम की एक विशिष्ट दशा देते हैं—

प्रत्येक हर दो पूर्णांकों का गुणनफल होगा। पहला हर दिये हुए योग के हर और उसके अगले पूर्णांक का गुणनफल, दूसरा हर इस अगले पूर्णांक और उसके अगले पूर्णांक का गुणनफल होगा। अन्तिम हर में एक ही पूर्णांक होगा।

उदाहरण—मान लो कि $\frac{1}{8}$ के ७ टुकड़े करने हैं। तो एकात्म्य निम्नलिखित होगा—

$$\frac{1}{8} = \frac{1}{8 \cdot 4} + \frac{1}{4 \cdot 6} + \frac{1}{6 \cdot 7} + \frac{1}{7 \cdot 8} + \frac{1}{8 \cdot 9} + \frac{1}{9 \cdot 10} + \frac{1}{10}$$

महावीर ने इसी प्रकार के और भी कई नियम दिये हैं। महावीर के अतिरिक्त और किसी भी भारतीय गणितज्ञ ने इस विषय को स्पर्श भी नहीं किया है।

महावीर ने भित्तो पर अनेक प्रश्न बनाये हैं जिन्हें बहुत ही रोचक भाषा में प्रस्तुत किया है। यहाँ हम कुछ नमूने देते हैं।

फलभारनभ्रकम्बे शालिक्षेने शुकास्समुपविष्टा ।

सहस्रोत्थिता मनुष्यै सर्वे सन्वासितास्सन्त ॥ १२ ॥

तेषामर्धं प्राचीमान्नेयी प्रति जगाम पङ्माग ।

पूर्वाग्नेयीशेष स्वदलोन स्वार्धवर्जितो यामीम् ॥ १३ ॥

याम्याग्नेयीशेषं स नैर्ध्वंति स्वद्विपञ्चमागोन ।

यामीनैर्ध्वत्यसकपरिशेषो वारणीमाशाम् ॥ १४ ॥

नैर्ध्वत्यपरविशेषो वायव्या सस्वकनिसप्ताश ।

वायव्यपरविशेषो युतस्वसप्ताष्टमः सौनीम् ॥ १५ ॥

वायव्युत्तरयोर्युतिरैशानी स्वन्निमागपुगहीना ।

दशगुणिताष्टाविशानिरर्वाशिष्टा व्याम्नि कनि कोरा ॥ १६ ॥

भाषार्थ—एक धान के खेत में, जिसका धाना एक चुका था और बालें बोस से झुकी जा रही थी, तोतो का एक झुण्ड उतरा। रखवालो ने उन्हें डराकर उड़ा दिया। उनमें से आधे पूर्व दिशा की चले गये और १ दक्षिण पूर्व की ओर। इन दोनों के अन्तर में से अपना आधा घटा कर जो बच रहे उसमें से फिर उसी का आधा घटाने पर जितने बच रहे, वे दक्षिण दिशा में गये। जो दक्षिण गये और जो पूर्व दक्षिण-पूर्व गये उनके अन्तर में से उसी का १ घटाने से जितने बच रहे, वे दक्षिण-पश्चिम गये। जितने दक्षिण गये और जितने दक्षिण-पश्चिम गये जितना इन दोनों का अन्तर हो, उतने पश्चिम गये। जितने दक्षिण-पश्चिम गये और जितने पश्चिम गये उनके अन्तर में उसी का १ जोड़ने से जो आये, उतने उत्तर-पश्चिम गये। जितने उत्तर-पश्चिम गये और जितने पश्चिम गये उनके अन्तर में उसी का १ मिलाने से जो फल आये उतने उत्तर गये। जो उत्तर-पश्चिम गये और जो उत्तर गये, उनके जोड़ में से उन्नी का १ घटाने से जो प्राप्त हो उतने ही उत्तर-पूर्व गये। और २८० तोते आकाश में बिखरने रह गये। तो कुल मिलाकर झुण्ड में कितने तोते थे ?

(२) आनीतवत्यान्नफलानि पुसि प्रागेकमादाय पुनस्तदधम् ।

गतेऽपुत्रे च तथा जघन्यस्तत्रावशेषार्धमथो तमन्य ॥ १३१३ ॥

भाषार्थ—एक व्यक्ति घर पर कुछ आम लाया। आते ही उसके ज्येष्ठ पुत्र ने एक आम खा लिया और फिर जितने आम बचे, उनके आधे खा लिये। जितने आम बच

नके साथ छोटे लड़के ने भी वैसा ही व्यवहार किया। जितने आम बच रहे भी आवे वही लड़का खा गया और शेष बड़ा लड़का खा गया। बताया पिता आम लाया था ?^१

यह प्रश्न अनिर्णीत है।

(३) सप्तहते को राशिस्त्रिगुणो वर्गीकृतः शरैर्युक्तः ।

त्रिगुणितपञ्चांशहतस्त्वधितमूलं च पञ्चरूपाणि ॥२८७॥

वह कौन-सी राशि है जिसको पहले ७ से भाग दें, फिर ३ से गुणा करें, तब उसका करें, तब उस फल में ५ जोड़ें, फिर ३ से भाग दें, तब उसका आधा करें और में उसका वर्गमूल निकालें तो संख्या ५ प्राप्त हो ?^२

(४) शून्य के विषय में महावीर कहते हैं कि—

ताडितः खेन राशिः खं सोऽविकारी हतो युतः ।

हीनोऽपि खवधादिः खं योगे खं योज्यरूपकम् ॥ ४ ९ ॥

“यदि किसी संख्या को शून्य से गुणा करें तो फल शून्य होता है। किसी भी ० को शून्य से भाग दें अथवा उसमें शून्य जोड़ें या उसमें से शून्य घटावें तो संख्या की-त्यों बनी रहती है। गुणा और अन्य क्रियाओं से शून्य का शून्य बना रहता केन्तु यदि शून्य में कोई संख्या जोड़ें तो फल वही संख्या हो जाता है।”^३

महावीर के उक्त कथन में से यह बात गलत है कि किसी संख्या को शून्य से भाग पर भजनफल शून्य होता है।

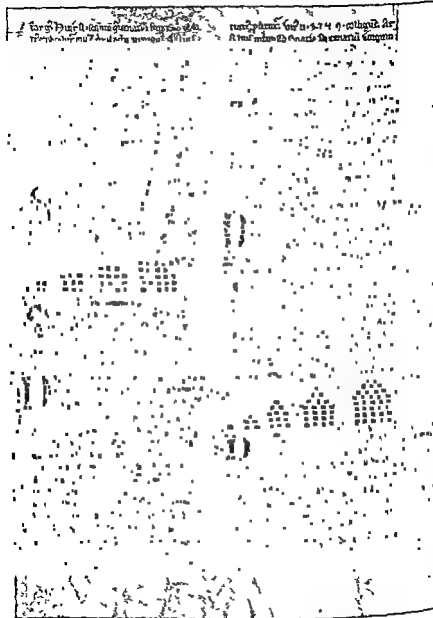
अन्य देश

हम ऊपर भारतीय गणितज्ञों की अंकगणितीय कृतियों का दिग्दर्शन करा चुके अन्य देशों में उस समय लोग ज्यामिति और ज्योतिष पर अधिक ध्यान देते थे। दिनों वरदाद भी विद्याध्ययन का एक केन्द्र था। वरदाद के बादशाह अलमंसूर (१२-७७५) के राज्यकाल में एक भारतीय विद्वान् जिसका नाम कदाचित् कन्कः वरदाद गया। वह अपने साथ एक गणितीय ग्रन्थ ले गया था जिसका नाम वहाँ के भेलेखों में ‘सिन्द हिन्द’ दिया हुआ है। यह संभव है कि उक्त ग्रन्थ ब्रम्हगुप्त का ‘सिद्धान्त’ रहा हो और ‘सिद्धान्त’ का ही विकृत रूप ‘सिन्द हिन्द’ बन गया हो।

१. गणित सार संग्रह, पृ० ८२।

२. तत्रैव, पृ० १०२।

३. तत्रैव, पृ० ६।



चित्र १४—बोमियस अथवा गणित की पांडुलिपि ।

[तिन दण्ड मयली की अनुमति से डेविड यूजीन स्मिथ द्वारा 'दिल्ली ऑफ मैथेमैटिक्स' से प्रत्युत्पन्न]

यूरोप में उन दिनों व्यापार विनिमय तेज़ी पर था। अतः वहाँ व्यापारिक अंकगणित का ही विकास हो रहा था। उन दिनों का रोम का एक गणितज्ञ, जिसका नाम बोथियस (Botheus) था, उल्लेखनीय है। उसने अंकगणित, ज्यामिति और संगीत पर पुस्तकें लिखी हैं। उसका अंकगणित निकोमेकस की कृतियों पर और ज्यामिति यूक्लिड के 'एलिमेंट्स' (Elements) पर आधारित है। एक अन्य गणितज्ञ अल्कुइन (Alcuin) हुआ है। उसका जीवन काल (७३५-८०४) था। उसने इटली में शिक्षा पायी और यॉर्क (York) में अध्यापन कार्य किया। उसकी कृतियाँ अंकगणित, ज्यामिति और ज्यामिति पर हैं। उसकी विशेष प्रसिद्धि इस बात से हुई कि उसने पहेलियों का एक संग्रह तैयार किया। लीडेन (Leyden) में एक पाण्डुलिपि मिली है, जिसमें उक्त पहेलियाँ दी गयी हैं। यह सन्दिग्ध है कि उक्त पाण्डुलिपि अल्कुइन की ही है। यदि हो भी तो लोगों का अनुमान है कि उसने ये पहेलियाँ किसी प्राचीन ग्रन्थ से नक़ल की हैं।

रोम के पतन के साथ-साथ ऐलैग्जेंड्रिया के पाण्डित्य का भी सूर्यास्त हो गया। इसके अतिरिक्त सन् ६४२ में भयंकर आग लगी, जिससे ऐलैग्जेंड्रिया का पुस्तकालय जलकर भस्म हो गया और इस प्रकार ऐलैग्जेंड्री विद्या प्रणाली का अन्त हो गया।

(३) १००० से १५०० ई० तक

जिस समय का हम उल्लेख कर रहे हैं उसके पूर्वार्ध में यूरोप में मौलिक कार्य तो बहुत कम हुआ, किन्तु अनुवाद बहुत हुए। यूरोप महाद्वीप में बहुत-से अनुवादक उत्पन्न हो गये। उन्होंने पूर्व के वैज्ञानिक ग्रन्थों का अनुवाद किया। यूनान और अरब के बहुत से ग्रन्थों का अनुवाद हुआ। टालेमी के अल्माजस्त (Almagest) का अनुवाद विशेष उल्लेखनीय है। इटली के घेराडो (Gherardo) ने तो टोलेडो (Toledo) तक की यात्रा केवल अल्माजस्त के अध्ययन के कारण ही की थी। उसने अल्माजस्त और यूक्लिड की ज्यामिति का इटैलियन भाषा में अनुवाद किया। इंग्लैंड के ऐडिलार्ड (Aidclard) ने यूनान, लघु एशिया और मिस्र की यात्रा की और इन देशों से बहुत से गणितीय ग्रन्थ अपने साथ लाया। उसने यूक्लिड का लैटिन (Latin) में अनुवाद किया और अलख्वारिज्मी के अंकगणित पर टीका लिखी।

यों तो स्पेन (Spain) में भी उन दिनों कुछ गणितज्ञ हुए, किन्तु उनमें से थोड़े सों के ही नाम उल्लेखनीय हैं। उक्त देश में कई यहूदी गणितज्ञ भी हुए हैं। बार्सिलोना (Barcelona) के सवासोर्दा (Sawasorda) का जीवनकाल कदाचित् १०७० से ११३६ ई० तक था। उसकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक एक विश्वकोष

(Encyclopaedia) है जिसमें ज्यामिति, अंकगणित और गणितीय भूगोल का समावेश है। रबी बें ऐज़रा (Rabi Ben Ezra) एक बहुत प्रसिद्ध विद्वान् हुआ है जिसने सत्याओं, तिथिपत्र, ज्योतिष और माया वर्गों (Magic Squares) पर कई ग्रन्थ लिखे हैं। उसका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सफर ह मिस्रार' है। उक्त ग्रन्थ हिन्दू अंकगणित पर आधारित है।

तेरहवीं शती ई० में उत्तरी अफ्रीका में भी एक गणितज्ञ अलमर्राकुसी नाम का हुआ है। उसके सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ का नाम 'ताल्बीस' है जो उसने अंकगणित पर लिखा है। स्पेन के उस समय के गणितज्ञों में अलबल सादी का नाम उल्लेख्य है।

ससकी कृतियों अंकगणित पर और सत्या सिद्धान्त पर हैं।

तेरहवीं शताब्दी में यूरोप ने करवट ली और शताब्दियों की नींद से जागा। स्थान-स्थान पर आधुनिक ढंग के विश्वविद्यालय बनने लगे। पेरिस, ऑक्सफोर्ड (Oxford) और केम्ब्रिज (Cambridge) के विश्वविद्यालयों की स्थापना इसी शताब्दी में हुई। विद्यार्थी अंकगणित बोथियस (Botheus) की प्रणाली से सीखता था, ज्यामिति यूक्लिड की प्रणाली से, ज्योतिष टोलेमी की प्रणाली से और समीन पिथगोरस की प्रणाली से।

पिसा का ल्योनार्डो (Leonardo of Pisa)

ल्योनार्डो फिबोनाकी (Leonardo Fibonacci) १२ वीं शताब्दी का एक बड़ा गणितज्ञ था। उसका जन्म पिसा नगर में ११७० ई० के लगभग हुआ और मृत्यु १२५० के आस पास हुई। उसका पिता उत्तरी अफ्रीका के तटवर्ती नगर बुगिया का निवासी और एक प्रतिष्ठित नागरिक था। ल्योनार्डो में प्राथमिक शिक्षा बुगिया में ही पायी। सत्प्रस्थात् उसने यूरोप के बहुत से देशों का भ्रमण किया और सन् १२०२ ई० में वह पिसा लौट आया और लौटते ही अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'लिबर अबाकी' की रचना की, जिसमें उसने प्रारम्भिक अंकगणित और बीजगणित का विवेचन किया है। सन ग्रन्थ यूरोप वालों ने बड़े चाव से पढ़ा और उक्त महाद्वीप के बहुत से विद्वानों ने उसके आधार पर कई अन्य ग्रन्थ लिखे। उक्त पुस्तक में १५ अध्याय हैं—

- | | |
|--------------------------------------|-------------------------------------|
| १ हिन्दू मर्यादा लेखन और पठन-पद्धति। | ५ पूर्णांकों का भाग। |
| २ पूर्णांकों का गुणन। | ६ पूर्णांकों का भिन्नो द्वारा गुणन। |
| ३ पूर्णांकों का जोड़। | ७ भिन्नो का व्यवहार। |
| ४ पूर्णांकों का घटाना। | ८ वस्तुओं के मूल्य। |

१. अदला-बदली (प्राचीन भारतीय १२. भाषायुक्त प्रश्नों के हल ।
पद—भाण्ड प्रति भाण्ड अर्थात् १३. मिथ्या स्थिति नियम ।
वर्तन के बदले वर्तन) । १४. वर्ग और घन मूल ।
१०. साक्षा । १५. मापिकी (Mensuration)
११. मिश्रण (Alligation) । और बीजगणित ।

ल्योनार्डो बहुधा अपने नाम के आगे 'विगोलो' लिखा करता था । टस्कनी (Tuscany) में विगोलो का अर्थ है 'पर्यटक' । ल्योनार्डो यात्रा बहुत किया करता था । संभव है उसने इसी कारण अपने नाम के आगे यह उपाधि लगायी हो । किन्तु कुछ लोग इसका दूसरा ही कारण बताते हैं । 'विगोलो' का एक अर्थ 'मूर्ख' भी है । अतः वह जिन विद्वानों का छात्र नहीं रहा था, वह उसे जलन के मारे 'विगोलो' कहा करते थे । और वह भी यह दिखाने के लिए अपने आप को विगोलो लिखने लगा कि 'देखो, एक मूर्ख क्या-क्या कर सकता है ।' सन् १२२५ में उसे सम्राट फ्रेडरिक (Frederick) द्वितीय के दरबार में उपस्थित किया गया । उक्त अवसर पर दरबार में एक गणितीय दंगल भी किया गया । जिसमें पॅलर्मो (palermo) का जॉन (John) कठिन प्रश्न करता था और ल्योनार्डो उनका हल करता जाता था । वाँकम्पनी ने ल्योनार्डो की कृतियों का दो भागों में सम्पादन किया है जो रोम से सन् १८५७ और १८६२ में प्रकाशित हुई ।

यूरोप (Europe)

इंग्लैण्ड में एक गणितज्ञ सॅक्रोबॉस्को (Sacrobosco) नाम का हुआ है जिसका प्रवेश १२३० में पेरिस विश्वविद्यालय में हुआ । उसने गोले पर एक ग्रन्थ लिखा है जो अपने समय में बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुआ । इसके अतिरिक्त उसी के द्वारा यूरोप के बहुत-से विद्वानों को हिन्दू अंकों का ज्ञान हुआ ।

फ्रांस में १३ वीं शताब्दी में कोई बड़ा गणितज्ञ नहीं हुआ । केवल एक 'विलेद्यू (Viledeau) के (Alexandre) लैँऐंजेन्द्र का नाम उल्लेखनीय है । यह पेरिस में अध्यापक था । इसने लैटिन पद्य में एक लघु पुस्तिका अंकगणित पर लिखी है जिसके द्वारा हिन्दू अंकों की ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी । १२७५ के लगभग फ्रांस की पाटीगणित की पहली पुस्तक प्रकाशित हुई ।

१४ वीं शताब्दी में क़ुस्तुन्तुनिया (Constantinople) में एक यूनानी मिश्रु हुआ है जिसका मौलिक नाम मॅनुएँल प्लॅन्यूड्स (Manual Planudes) था । मिश्रु होने पर उसने अपना नाम मॅक्सिमस प्लॅन्यूड्स (Maximus Planudes) में

परिणत कर लिया। वह अपने समय का लटिन का बड़ा भारी विद्वान् समझा जाता था। उन दिना वेनिस (Venice) ने पीरे (Piere) के जीवोआ निवास पर आक्रमण किया था। उमरा प्रतिवाद करने के लिए मक्सिमम को राजदूत बनाकर वेनिस भेजा गया। प्लॅन्युइस ने साहित्यिक और धार्मिक विषयों पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। उसने

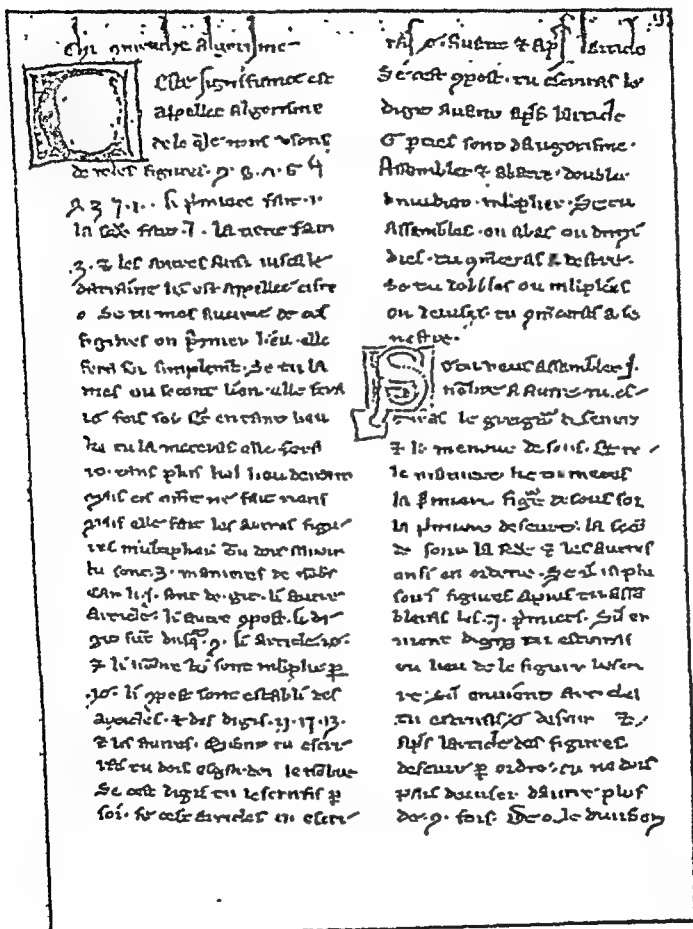


चित्र १५—संजोर्बाको की एक हस्तलिपि से। इसमें संख्याक स्पष्ट दिखाई पड़ रहे हैं।

[इन पाँच संख्या की अनुसंधान]। देखिए मूलान विमल वृत्त 'द्वितीय भाग में पेंदरित से प्रत्युपादि।]

अबगणित पर भी एक ग्रन्थ लिखा है जो हिन्दू यहाँ पर आपुन है। उसने उक्त ग्रन्थ में खोजा कि उसने भी यहाँ और अन्य के विद्वान् हिन्दू गणित से लिये हैं।

इंग्लैण्ड में १४ वीं शताब्दी में कई गणितज्ञ हुए हैं। टॉमस ब्रैडवार्डिन (Thomas Bradwardine) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसका जीवन काल



चित्र १६—फ्रांस के प्राचीनतम 'पाटीगणित' का प्रथम पृष्ठ ।

[जिन एण्ट कम्पनी की अनुमति से टेविड यूजीन रिमथ कृत "हिस्ट्री ऑफ मैथेमैटिक्स से प्रत्युत्पादित।]

१२९०-१३४९ ई० माना जाता है। इसकी शिक्षा दीक्षा ऑक्सफोर्ड के मेर्टन (Merten) कॉलज में हुई और अन्ततः यह उसी विश्वविद्यालय का कुलगुरु

(Chancellor) हो गया। धार्मिक क्षेत्र में इसने बहुत से पदों को मुशोमिन किया और अन्त में कॅन्टरबरी (Canterbury) का महन्त (Archbishop) हा गया। सन् १३४९ में लॅम्बेथ (Lambeth) नगर में महामारी से इसका देहान्त हो गया।

ग्रिड्गडिन् ने गणित पर चार पुस्तकें लिखी हैं। अपने अकगणित में इमने बोधियन की पद्धति का अपनाया है। उक्त ग्रन्थ में सख्या सिद्धान्त का ही विवेचन किया गया है। इसकी शेष पुस्तकें ज्यामिति और अनुपात पर हैं।

१५वीं शताब्दी में मुद्रण का आविष्कार हुआ। इस महत्त्वपूर्ण घटना का प्रभाव सामान्य और गणितीय साहित्य पर पड़ना ही था। अबतक अधिकांश विद्या का वितरण मौखिक रूप में हुआ करता था। कुछ पाण्डुलिपियों की अनेक प्रतियाँ तैयार कराकर बाँटी जाती थी और कभी-कभी इनका विनय भी हुआ करता था। किन्तु बहुत सी पुस्तकें बिना प्रकाशित हुए ही रह जाती थी। इटली के फ्लोरेंस (Florence) नगर में बेंनीडेटो (Benedetto) नाम का एक गणितज्ञ हुआ है। उसने सन् १४६० के लगभग एक अकगणित लिखा। उक्त पुस्तक के अधिकांश में व्यापार गणित दिया गया है। यह पुस्तक १५वीं शताब्दी की बहुत महत्त्वपूर्ण पुस्तकों में गिनी जाती है, किन्तु यह अभी तक छप नहीं पायी।

सन् १४६५ में एक मिश्र जुअन तुर्रेक्रेमाटा (Juan Turekremata) द्वारा इटली में मुद्रण कला का आविर्भाव हुआ और पहली मुद्रित पुस्तक प्रकाशित हुई। सन् १४७८ में पहला मुद्रित अकगणित प्रकाशित हुआ। वैनिस में थोड़ी दूर पर त्रविजो (Traviso) नाम का एक नगर है, जहाँ यह पुस्तक छपी। पुस्तक पर किसी लेखक का नाम नहीं दिया हुआ है। आजतक उक्त अकगणित की कुल आठ प्रतियाँ ही उपलब्ध हुई हैं, जिनमें से कई तो पढ़ने योग्य भी नहीं रह गयी हैं।

इटली का एक मिश्र जिमका नाम लूसा पसियाशी (Luca Pacioli) था, बहुत प्रसिद्ध हो गया है। यह टस्कनी का निवासी था और इसका जीवन काल १४४५-१५०९ समझा जाता है। इसने सन् १४७० के आस पास बीजगणित पर एक पुस्तक लिखी जो कभी प्रकाशित नहीं हुई। १४८१ में इमने एक अन्य पुस्तक लिखी, किन्तु वह भी न छप पायी। इसकी सर्वविख्यात पुस्तक सूमा (Suma) है, जो इमने १४८७ में लिखी और जो १४९८ में छपी। उक्त पुस्तक में इमने एक प्रकार से समस्त पूँव लेखकों के कार्य का सवत्न किया है। पुस्तक में व्यापार गणित, बीजगणित, मूलिक का सारांश, त्रिकोणमिति और पुस्तक-भालन (Book-Keeping) जैसे विषय हैं। इस समय तक हिन्दू अंकों का प्रचलन हो चुका था। इसीलिए उक्त पुस्तक की संकेत-लिपि हमारी आधुनिक संकेत लिपि से बहुत कुछ मिलनी जुलती है। उक्त ग्रन्थ में

पेंसियोली ने आठ प्रकार के गुणन का वर्णन किया है, जिनमें से कई एक तो हिन्दू विधियाँ ही हैं।

सन् १४९७ में पेंसियोली ने एक और पुस्तक लिखी जिसका नाम “दैवी अनुपात” रखा। उक्त पुस्तक में उसने सम ठोसों (Regular Solids) की आकृतियाँ दी

Sūma de Arithmetica Geometria Proportioni et Proportionalita.

Continentia de tutta lopera.

De numeris e misure in tutti modi occorrenti.
 Proportioni e proportionalita anothia del. 5^o de Euclide e de tutti li altri soi libri.
 Chiani ouero euidentie numero. 13. p le q̄tta continue. proportionali del. 6^o e 7^o de Euclide extrate.
 Tutte le pte del algorithmo: cioe releuare. p̄tir. multiplicar. sumare. e sottrare cō tutte sue p̄ue i sani e rotte. e radici e progressioni.
 De la regola mercantilesca dicta del. 3. e soi fōdamenti con casi exemplari per c^o m^o 8. 6. guadagni. p̄rdite. transpositioni: e inuestire.
 Partir. multiplicar. summar. e sottrar de le proportioni e de tutte lozi radici.
 De le. 3. regole del catayn dicta positioe e sua origie.
 Euidentie generali ouer conclusioni n^o 66. absolute e ogni caso che per regole ordinarie nō si podesse.
 Tutte l'ore binomii e recisi e altre linee irrationali del decimo de Euclide.
 Tutte regole de algebra dicta de la cosa e loz fabriche e fundamenti.
 Compagnie i tutti modi. e loz partire.
 Socide de bestiami. e loz partire
 Fimi. pescioi. cottimi. liuelli. logagioni. egodimenti.
 Darami i tutti modi semplici. composti. e col tempo.
 Cambi reali. scchi. fittizij. e diminuti ouer comuni.

चित्र १७—पेंसियोली की पुस्तक से।

[जिन एण्ट कम्पनी की अनुमति से टेविड वूजीन रिमथ दृत “हिन्दू ऑफ मैथेमैटिक्स” से प्रत्युत्पादित।]

हैं। समय को देखते हुए कहना चाहिए कि आकृतियाँ बहुत सुन्दर हैं। सन् १५० में उसने यूक्लिड का भी एक संस्करण निकाला जो बहुत बढ़िया नहीं रहा।

प्राकृतिक नुस्खाओं की मालाएँ, गुणन, नाग, शून्य, वर्ग, घन, वर्ग मूल, घन मूल, निम्न, त्रैशुक्तिक, व्याज, मिश्रण, साझा, मापिकी और छाया मापन (Shadow Reckoning) ।

श्रीधर ने नी गुणन की चार विधियाँ दी हैं—(१) कपाट-सन्धि (२) तत्त्व (३) रूप-विभाग (४) स्थान-विभाग । कपाट-सन्धि विधि का श्रीधर ने इन गव्दों में वर्णन किया है—

“गुण्य को गुणक के नीचे रखकर एक-एक करके गुणा करो, जाहे अनुक्रम में जाहे उत्क्रम में, और प्रत्येक बार, गुणक को खिसकाते जाओ ।”

उदाहरण—२५४ को १६ से गुणा करो ।

पहले गुणक और गुण्य को इस प्रकार रखो—

१६

२५४

गुण्य के पहले अंक ४ को गुणक के अंकों से बारी-बारी से गुणा करो । $४ \times ६ = २४$; ४ को ६ के नीचे रख दो और २ को वहाँ अलग लिख दो । यह २ हमारे ‘हाथ लगे’ अर्थात् हमारे पास विद्यमान हैं । इन्हें उपयुक्त अवसर पर काम में लायेंगे ।

अब ४ को १ से गुणा किया तो ४ आये । इस ४ में ‘हाथ लगे’ २ जोड़ने से ६ हो गये । अब गुण्य वाले ४ को मिटाकर उसके स्थान पर ६४ लिख दो—

१६

२५६४

अब गुणक को एक स्थान बायीं ओर खिसकाओ ।

१६

२५६४

अब गुण्य के अगले अंक ५ को १६ से गुणा करो । $५ \times ६ = ३०$, इस गुणनफल में से ० को ६ में जोड़ दो । तो ६ के ६ ही रह जायेंगे । हाथ लगे ३ । अब $५ \times १ = ५$; इस ५ में ३ जोड़ने से ८ हो गये । ५ को मिटाकर उसके स्थान पर ८ लिख दो । फिर गुणक को एक स्थान बायीं ओर और खिसकाओ ।

१६

२८६४

अब २ को १६ से गुणा करना रह गया । $२ \times ६ = १२$ । इसमें से दाहिने अंक २ को पिछले अंक ८ में जोड़ने से १० मिला । ८ को मिटाकर उसके स्थान पर ० रख

यतः यहां ये दोनों अंक २ ही हैं, अतः गुण्य का अंक ज्यों का त्यों रहेगा। अब $२ \times १ = २$ । इसमें हाथ वाला १ जोड़ने से ३ हो गये। अब गुणन को दाहिनी ओर खिसकाया

$$\begin{array}{r} १६ \\ ३२५४ \end{array}$$

अब $५ \times ६ = ३०$ । अतः गुण्य में ५ के स्थान पर ० रख देंगे और ३ हमारे हाथ लगेंगे। और $५ \times १ = ५$ । इसमें ३ जोड़ने से ८ होते हैं। अतएव गुण्य के २ के स्थान पर $२ + ८$ अर्थात् १० रख देंगे। इस प्रकार गुण्य में २ को मिटाकर ० लिखना होगा और १ हाथ लगेगा। इस १ को गुण्य के अन्तिम अंक ३ में जोड़ने से ४ प्राप्त होंगे। गुणक को एक स्थान और दाहिनी ओर खिसकाने से यह स्थिति प्राप्त होगी—

$$\begin{array}{r} १६ \\ ४००४ \end{array}$$

अब $४ \times ६ = २४$ और $४ \times १ = ४$ । अतः अन्त में गुणनफल ४०६४ प्राप्त हो जायगा।

प्राचीन भारत में ये क्रियाएँ पाटी पर की जाती थीं। अब भी बहुत-सी पाठशालाओं में पाटी का प्रचलन है। 'हाथ लगे' अंक पाटी पर कहीं कोने में लिख लिये जाते हैं। अंकगणित का एक प्राचीन नाम 'पाटीगणित' भी है। उपरिलिखित विधि में बार-बार एक अंक को मिटाकर उसके स्थान पर दूसरा अंक लिखा जाता है। इसलिए गुणन को कुछ पुरानी पुस्तकों में 'हनन' अथवा 'वध' की संज्ञा दी गयी है। उपर्युक्त विधि में बार-बार गुणक को खिसकाकर इस प्रकार रखना पड़ता है कि जिस अंक से गुणक को गुणा करना है, वह गुणक के इकाई के अंक के ठीक नीचे रहे। इसीलिए इस क्रिया का नाम 'कपाट-सन्धि' पड़ा।

Fraction का प्राचीन नाम 'मिश्र' है जो आज तक प्रचलित है। इसका अर्थ है 'टूटा हुआ'। मिश्रों के लिखने का प्राचीन ढंग यह था कि अंश और हर को आजकल की भाँति ऊपर-नीचे लिखते थे। किन्तु उनके बीच में क्षैतिज रेखा नहीं खींचते थे। श्रीवर और महावीर दोनों ने ६ प्रकार के मिश्रों का वर्णन किया है।

(१) भाग—ये मिश्र इस प्रकार के होते हैं—

$$\left(\frac{क}{ख} \pm \frac{ग}{घ} \pm \frac{च}{छ} \pm \dots \right)$$

उन दिनों ऋण चिह्न के स्थान पर अंक के ऊपर बिन्दी लगायी जाती थी। अतः उपरिलिखित मिश्र इस प्रकार भी लिखे जाते थे—

१. त्रिशतिका, पृष्ठ १०; गणित सार संग्रह, पृ० ३३।

क	ग	च		और	क	ग	च
ख	घ	छ			ख	घ	छ

(२) प्रमाण^१ — $\left(\frac{\text{क}}{\text{ख}} \text{ का } \frac{\text{ग}}{\text{घ}} \text{ का } \frac{\text{च}}{\text{छ}} \text{ का } \dots \right)$

अथवा

क	ग	च
ख	घ	छ

इस संकेतलिपि का दोष स्पष्ट है। इसमें यह पता नहीं चलता कि दो-निर्णयों में बीच में + चिह्न है अथवा 'का'।

(३) भागानुबन्ध^२ — $क + \frac{\text{ख}}{\text{ग}}$

जिसको इस प्रकार भी लिखा जाता था

क
ख
ग

(४) भागापवाह^३ — $क - \frac{\text{ख}}{\text{ग}}$

अथवा

क
ख
ग

(५) भाग-भाग^४ — $\frac{\text{क}}{\text{ख}} - \frac{\text{ग}}{\text{घ}}$

अथवा

क
ख
ग
घ

१. त्रिगतिषा, पृ० १०; गणित सार सप्तह, पृ० ३९।

२. " " १०; " " ४१।

३. " " १०; " " ४३।

४. " " ११; " " ३९।

उन दिनों कदाचित् भाग के लिए कोई स्वतंत्र निह्न नहीं था।

(६) 'भागमात्र'—इस श्रेणी में ऐसे समस्त भिन्नों का समावेश होता था जिनमें उपरिलिखित दो या अधिक भिन्नों का संयोग होता था।

श्रीधर ने भिन्नों को लघुतम रूप में लाने और उनके जोड़ने, घटाने आदि के कार्य नियम दिये हैं। विस्तार के भय से हम उन्हें यहाँ उद्धृत नहीं कर सकते। यहाँ हम श्रीधर के शून्य-संवन्धी प्रकरण में थोड़ा सा अंश देकर इस विषय को समाप्त करते हैं। त्रिशतिका के पृष्ठ ४ पर श्रीधर ने शून्य के गुणों का इस प्रकार वर्णन किया है—

“यदि किसी संख्या में ० जोड़ें तो संख्या ज्यों-की-त्यों बनी रहेगी। किसी संख्या में से ० घटाने में भी संख्या में कोई परिवर्तन नहीं होता। किसी संख्या से ० को गुणा करें तो फल ० होता है। किसी संख्या को शून्य से गुणा करें तो भी फल ० ही होता है। इसी प्रकार यदि ० पर अन्य क्रियाएँ की जायें तो भी फल ० ही होता है।”

इस विवेचन से दो बातें स्पष्ट हैं—

(क) प्राचीन हिन्दू गणितज्ञ इन दो क्रियाओं

क \times ० और ० \times क

में भेद मानते थे यद्यपि फल दोनों का ० ही होता था।

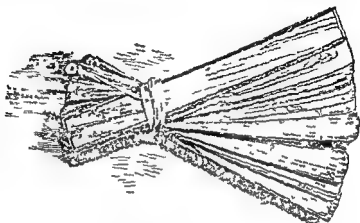
(ख) अन्य क्रियाओं से तात्पर्य है—० को किसी संख्या से भाग देना, ० का वर्गण, ० का वर्ग मूलन, ० का घनन अथवा घन मूलन इत्यादि। उक्त प्रकरण में 'शून्य द्वारा भाग' का कहीं संकेत नहीं है।

भास्कर

भास्कर को उसकी विद्वत्ता के कारण अधिकतर लोग भास्कराचार्य के नाम से अभिहित करते हैं। इस मनीषी का जन्म सन् १११४ में हुआ था। मृत्यु के समय का तो निश्चित रूप से पता नहीं है, किन्तु अनुमान है कि ११८५ के लगभग हुई होगी। भास्कर भारत का सबसे बड़ा गणितज्ञ माना जाता है। यह दकन के विदर (कदाचित् आधुनिक बीदर) का निवासी माना जाता है। भास्कर उज्जैन की वेधशाला (Observatory) का निदेशक (Director) था।

भास्कर का सर्व प्रसिद्ध ग्रन्थ 'लीलावती' माना जाता है जिसमें उसने अंकगणित, बीजगणित और ज्यामिति के सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया है। भास्कर अपने पूर्वजों की कृतियों से परिचित था और उसने यदा-कदा अपने ग्रन्थों में उनका

आभार प्रदर्शित भी किया है। लीलावती का आदि अंग्रेजी अनुवाद सन् १८१६ में टेलर (Taylor) ने किया था। पार्सी में उसका पहला अनुवाद फैडी ने सन् १५८७ में किया था। यह विद्वान् मुगल सम्राट् अवधर के मंत्री अबुल फजल का



चित्र २०—लीलावती की भोजपत्रीय हस्तलिपि।

[जिन पण्ट कम्पनी की अनुमति से बेविङ्ग यूजीन रिमथ
हून हिन्दी भाषा में मैथिलीय से प्रत्युत्पादित।]

भाई था। यह अनुवाद सन् १८२७ में कलकत्ते में छपा था। उस समय के हिमाचल से लीलावती इनकी उच्च कोटि का ग्रन्थ माना गया कि उसकी रूपाति यूरोप तक फैल गयी।

फैडी ने लिखा है कि लीलावती भास्कर की लड़की का नाम था। ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि लीलावती का वैवाहिक जीवन सुखी नहीं रहेगा। अतः उसका विवाह करना ही नहीं चाहिए। किन्तु भास्कर ने उसके विवाह के लिए एक शुभ मुहूर्त निकाल लिया। उसने एक बटोरी बनायी जिसके पदे में एक छेद कर दिया। वह छेद इतना छोटा था कि बटोरी का पानी में रखने से बटोरी ठीक एक घट में डूब जाती। शुभ मुहूर्त से ठीक एक घंटे पहले भास्कर ने बटोरी को पानी के एक बरतन में डाल दिया। उसने सोचा था कि ज्यों ही बटोरी पानी में डूबगी ठीक उसी समय वह लीलावती का विवाह कर देगा। किन्तु विधि का विधान अटल है। शुभ मुहूर्त से कुछ देर पहले लीलावती बटोरी के जल का निरीक्षण करने लगी। यह कुतूहल स्वभाविक ही था। अनजाने में उसके गहन का एक मोती गिरकर बटोरी में जा पड़ा

मास्कर ने दो अन्य पुस्तकें भी लिखी हैं—(१) बीजगणित—जिसका उल्लेख यथास्थान किया जायगा। (२) सिद्धान्त शिरामणि—जिसके विषय ज्योतिष और गणित हैं। बीजगणित वाले भाग का अनुवाद कोलब्रुक (Colebrooke) ने किया है। इस अनुवाद का उल्लेख पहले हो चुका है। ज्योतिष वाले भाग का अनुवाद विल्किंसन (Wilkinson) ने किया जो कलकत्ते में १८४२ में प्रकाशित हुआ।

यहाँ हम लीलावती के 'शकच व्यवहार' नामक अध्याय का उद्धरण देने हैं। यह असा सामान्यतः अन्य अकर्मणितो में उपलब्ध नहीं है।

पिण्डयोगदलमग्नमूलयो—

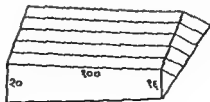
द्वैधसंगुणितमङ्गुलात्मकम् ॥११२॥

दाह्यारणपथे समाहृत

पदस्वरेषु (५७६) विहित करात्मकम् ।

शकच का अर्थ है 'लकड़ी चीरना'। यदि लकड़ी की मोटाई ऊपर नीचे एक-सी हो तो तब तो उसका हिसाब लगाना सरल होता है। किन्तु यदि मोटाई एक-सी न हो तो मुख और तल की मोटाई नापकर उनका मध्यक (Mean) ले लेते हैं। उस मध्यक को ही मोटाई मान लेते हैं। इस मध्यक मोटाई को लम्बाई से गुणा करते हैं। जितने स्थानों पर लकड़ी को चीरना हो उनकी संख्या में उक्त गुणनफल को गुणा करते हैं। इस गुणनफल को ५७६ से भाग देने पर जो संख्या आती है वह चिराई का 'हस्तात्मक फल' कहलाती है।

उदाहरण—एक लकड़ी की लम्बाई १०० अंगुल है। लकड़ी सिरे पर १६ अंगुल मोटी है और तल पर २० अंगुल। उसको चार स्थानों पर चीरना है तो हस्तात्मक चिराई क्या होगी ?



चित्र २२—भिन्न मोटाई वाली लकड़ी की आकृति।

मुत्र की मोटाई = १६ अंगुल

तल की मोटाई = २० अंगुल

दोनों का योग = ३६ अंगुल

∴ मध्यक मोटाई = १८ अंगुल

अब मध्यक मोटाई × लम्बाई = १८ × १०० = १८०० ।

चिराई की संख्या = ४

अतः अन्तिम गुणनफल = ७२००

$$\therefore \text{हस्तात्मक फल} = \frac{७२००}{५७६} = \frac{२५}{२}$$

छिद्यते तु यदि तिर्यगुक्तव-

त्पिण्डविस्तृतिहृतेः फलं तदा ॥११३॥

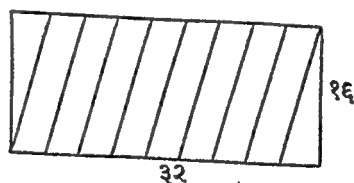
इष्टकाचितिदृपच्चित्तिखात-

काकचव्यवहृती खलु मूल्यम् ।

कर्मकारजनसंप्रतिपत्त्या

तन्मृदुत्वकठित्ववशेन ॥११४॥

यदि लकड़ी को तिरछा चीरना हो तो मोटाई को चौड़ाई से गुणा करो । फिर इस गुणनफल को चिराई के स्थानों की संख्या से गुणा करो । उक्त गुणनफल में ५७६ का भाग देने से जो प्राप्त हो वही हस्तात्मक फल होगा ।



चित्र २३—समान मोटाई वाली लकड़ी की आकृति ।

उदाहरण—एक लकड़ी की चौड़ाई ३२ अंगुल है और मोटाई दोनों ओर १६-१६ अंगुल । उसे ९ स्थानों पर तिरछा चीरना है । हस्तात्मक फल क्या होगा ?

मोटाई = १६ अंगुल

चौड़ाई = ३२ अंगुल

दोनों का गुणनफल = ५१२

चिराई की संख्या = ९

∴ अंतिम गुणनफल = $(९ \times ५१२) = ४६०८$

इस गुणनफल में ५७६ का भाग देने से चिराई का हस्तात्मक फल = ८।

एशिया के अन्य देश

११ वीं और १२ वीं शताब्दियों में चीन में कोई विशेष गणितीय कार्य नहीं हुआ। इतना अवश्य हुआ कि पूर्व और पश्चिम में लेन-देन के साथ-साथ ज्ञान विज्ञान का आदान-प्रदान भी होने लगा। १३ वीं शताब्दी में चीन ने गणितीय क्षेत्र में कुछ प्रगति दिखायी। इस सम्बन्ध में चिन क्यू शाव का नाम उल्लेख्य है। यह अपने प्रारम्भिक जीवन में एक सिपाही था। सन् १२४४ में सरकारी सेवा में नियुक्त हो गया और बढ़ते-बढ़ते दो प्रान्तों का राज्यपाल बन गया। सन् १२४७ में इसने एक पुस्तक लिखी जिसका नाम वदाचित् सू धू फिउ चांग था। उक्त ग्रन्थ में इसने उच्च सख्यात्मक समीकरणों के हल का विवेचन किया है और एक प्रकार से हॉर्नर (Horner) की विधि की भूमिका बांध दी है। इसका समीकरण

$$y^5 - ७६३२०० y^3 + ४०६४२५६००० = ०$$

का हल विशेष उल्लेखनीय है। उन्हीं दिनों चीन में और भी दो एक गणितज्ञ हुए हैं, किन्तु उन्होंने बीजगणित और ज्यामिति में ही अधिक रुचि दिखायी है।

उस समय के गणितज्ञों में वग्दाद के अलवरखी का नाम उल्लेखनीय है। उसके जीवन के विषय में कुछ विशेष विवरण प्राप्त नहीं है। इतना पता चला है कि उसकी मृत्यु सन् १०२९ के लगभग हुई। उसने अकगणित पर एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम 'काफी फिल हिसाब' है। उक्त पुस्तक सन् १०१२ के आस पास लिखी गयी थी। और उसमें बहुत सी बातें हिन्दू गणित से गृहीत हैं।

सन् १२०६ से १२२७ तक चंगेज खाँ के आक्रमण चारों ओर होते रहे। उसने और उसके पुत्र ने उत्तरी चीन, तुर्किस्तान, ईरान और उत्तर पश्चिम तक घावे किये। ऐसी स्थिति में शान्तिमय जीवन ही दूर था, साहित्यिक सर्जन कहीं से होता। हम यहाँ ईरान के केवल एक लेखक का उल्लेख करेंगे जिसका नाम नसीरुद्दीन था। उसका जीवन काल तेरहवीं शताब्दी माना जाता है। यह एक बड़ा भारी विद्वान् था। इसने ज्यामिति, त्रिकोणमिति, पाटीगणित और ज्योतिष पर किताबें लिखी हैं।

अरबों ने विज्ञान में बहुत रुचि दिखायी। किन्तु उनमें मौलिकता की कमी थी। उन्होंने ज्यामिति और बीजगणित में यूनानी ग्रन्थों से स्फुरण प्राप्त किया और त्रिकोणमिति तथा ज्योतिष में हिन्दू ग्रन्थों से ज्ञानार्जन किया। उनकी प्रतिभा मौलिक कृतियों में उतनी नहीं थी जितनी अनुवादों में। यदि अनुवादों द्वारा उन्होंने बहुत से यूनानी

ग्रन्थों को सुरक्षित न रखा होता तो उनमें से कितने ही आज तक लुप्त होकर विस्मृति के गर्भ में समा गये होते।

अरब-ईरान के गणित के प्रतिनिधियों में उलूग बेग का नाम उल्लेखनीय है। इसका मुख्य विषय ज्योतिष था और इसने अपने संरक्षण में कुछ ज्योतिषीय सारणियाँ बनवायी थीं जिनकी ख्याति यूरोप तक में फैल गयी। उलूग बेग का एक शिष्य था अलकशी। इसकी मृत्यु १४३६ के लगभग हुई थी। इसने अंकगणित और ज्यामिति पर एक छोटा-सा ग्रन्थ लिखा था जिसका नाम था 'रिसालये हिसाब।' उक्त पुस्तक में अलकशी ने एक गुणन-सारणी दी है जो उस समय के लोगों के लिए बहुत रोचक थी। उक्त सारणी में और गुणन-संवन्धी अन्य नियमों में भारतीय गणित की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। उसकी गुणन सारणी हम यहाँ देते हैं—

९	८	७	६	५	४	३	२	१	
९	८	७	६	५	४	३	२	१	१
१८	१६	१४	१२	१०	८	६	४	२	२
२७	२४	२१	१८	१५	१२	९	६	३	३
३६	३२	२८	२४	२०	१६	१२	८	४	४
४५	४०	३५	३०	२५	२०	१५	१०	५	५
५४	४८	४२	३६	३०	२४	१८	१२	६	६
६३	५६	४९	४२	३५	२८	२१	१४	७	७
७२	६४	५६	४८	४०	३२	२४	१६	८	८
८१	७२	६३	५४	४५	३६	२७	१८	९	९

मान लीजिए कि आपको ७ को ५ से गुणा करना है। सबसे ऊपर की पंक्ति में ७ का स्थान ज्ञात करो और आँख को ठीक उसके नीचे की ओर दौड़ाओ। अब सबसे दाहिनी ओर के स्तंभ में ५ का स्थान ज्ञात करो और अपनी आँख को क्षैतिज (Horizontal) दिशा में अपने बायीं ओर ले जाओ। देखो कि पिछली ऊर्ध्वाधर (Vertical) रेखा और यह क्षैतिज रेखा किस कुटी (Cell) पर मिलती हैं। उस कुटी की संख्या को पढ़ो। संख्या ३५ प्राप्त होती है। यही अभीष्ट गुणनफल है।

गुणन सारणी के अतिरिक्त गुणन-संवन्धी कई मौलिक युक्तियाँ भी खुलासतुल हिसाब में दी गयी हैं —

(१) दो संख्याओं का गुणन जिनमें से प्रत्येक १० से कम हो —

उनमें से एक को १० से गुणा करो। फिर उसी संख्या को दूसरी संख्या और १० के अन्तर से गुणा करो। दोनों गुणनफलों का अन्तर निकाल लो।

उदाहरण —

$$७८ = ७१० - ७ (१० - ८) \\ = ५६$$

(२) दोनों सख्याओं के जोड़ में से १० घटाओ। इस अन्तर को १० से गुणा करो। १० का दोनों सख्याओं से अलग-अलग अन्तर निकाल लो और इन दोनों अन्तरो को गुणा कर दो। अन्त में दोनों गुणनफल को जोड़ दो।

उदाहरण — $३९ = (३९ - १०) \cdot १० - (१० - ३) (१० - ९) \\ = २० + ७ = २७$

(३) दो ऐसी सख्याओं का गुणा जो १० और २० के बीच में स्थिति हो — एक सख्या की इकाई का अब दूसरी सख्या में जोड़ दो और इस जोड़ को १० से गुणा करो। १० का दोनों सख्याओं से अलग-अलग अन्तर निकाल लो और दोनों अन्तरो को गुणा कर दो। अन्त में दोनों गुणनफल को जोड़ दो।

उदाहरण — $१३१८ = १० (१३ + ८) + (१३ - १०) (१८ - १०) \\ = २१० + २४ = २३४$

(४) यदि एक सख्या १० से कम हो और दूसरी १० और २० के मध्यस्थ हो तो (२) में दी गयी विधा (Process) को अपनाओ और अन्त में दोनों गुणनफल के जोड़ के बदले उनका अन्तर निकाल लो।

उदाहरण — $७१३ = १० (७ + १३ - १०) - (१० - ७) (१३ - १०) \\ = ९१$

(५) दो सख्याओं का गुणन जो २० और १०० के बीच में स्थित हो —

दोनों सख्याओं के जोड़ के आधे का वर्ग निकालो। फिर दोनों सख्याओं के अन्तर के आधे का वर्ग निकालो। अन्त में दोनों वर्ग का अन्तर निकाल लो।

उदाहरण — $३४५६ = \left(\frac{३४ + ५६}{२} \right)^२ - \left(\frac{५६ - ३४}{२} \right)^२ \\ = ४५^२ - ११^२ \\ = १९०४$

यह विधि किन्हीं भी दो सख्याओं पर प्रयुक्त हो सकती है।

(६) किसी सख्या को ५, ५० अथवा ५०० से गुणा करने के लिए क्रमशः एक, दो अथवा तीन शून्य बढ़ाओ और दो में भाग दो।

(७) दो बड़ी सख्याओं का गुणा —

उदाहरण — ३२५६ को ४५७ से गुणा करो —

४ से. मी. लम्बा और ३ से० मी० चौड़ा एक आयत नींचो । आयन को १२ वर्गों में और प्रत्येक वर्ग को दो त्रिभुजों में विभाजित करो, जैसा निम्नलिखित आकृति में दिया गया है—

	३	२	५	६
४	३ २	२ ८	५ ०	६ ४
५	१ ५	१ ०	२ ५	३ ०
७	२ १	१ ४	३ ५	४ २
	१	४	९	२

चित्र २४—चारह वर्गों में विभाजित एक आयत ।

गुण्य के अंकों को आयत के ऊपर रखो, प्रत्येक स्तंभ के ऊपर एक अंक । गुणक के अंकों को इसी प्रकार आयत के बायीं ओर रखो । अब गुण्य के हजार के अंक को गुणक के अंकों से अलग-अलग गुणा करो और गुणनफलों को उनके नीचे के वर्ग में रखते जाओ, इकाई का अंक नीचे के त्रिभुज में और दहाई का अंक ऊपर के त्रिभुज में । इसी प्रकार गुण्य के अन्य अंकों को भी गुणक के अंकों से गुणा करो । अन्त में विकर्ण रेखाओं की संख्याओं को जोड़ने से गुणनफल प्राप्त हो जायगा ।

४. सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियाँ

यूरोप

सोलहवीं शताब्दी में मुद्रण का आरंभ हो चुका था । अतः उक्त शती में मुद्रित पुस्तकों का आविर्भाव होने लगा था । यूरोप के कई देशों में अंकगणित पर मुद्रित पुस्तकें प्रकाशित हुई । इनमें सर्व प्रथम उल्लेखनीय पुस्तक इटली के दो गणितज्ञ जिरोलेमो (Girolamo) और ज्यानन्तोनियो तैग्लियेन्ते (Giannantonio Tagliente) की थी जो उन्होंने सन् १५०० के लगभग लिखी थी ।

उक्त पुस्तक का विषय व्यापार अंकगणित था । पुस्तक का प्रकाशन वेनिस (Venice) में १५१५ में हुआ था । यह पुस्तक इतनी लोकप्रसिद्ध हुई कि सोलहवीं शती में ही इसके तीस संस्करण निकल गये ।

इटली का एक गणितज्ञ लॅज़ीसियो (Lazcsio) था, जिसका जन्म १४९० के लगभग वैंरोना (Verona) में हुआ था। उसने १५१७ के आस-पास एक ग्रन्थ लिखा था, जिसमें अंकगणित, बीजगणित और व्यावहारिक ज्यामिति के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया था। यह ग्रन्थ भी इतना लोकप्रिय हुआ कि १६ वीं शताब्दी में ही इसके १४ संस्करण निकल गये। इसी ग्रन्थ को दुहराकर लॅज़ीसियो ने एक अन्य पुस्तक भी प्रकाशित की।

सोलहवीं शताब्दी में फ्रांस में अंकगणितज्ञों के एक नये सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ था जिसे 'लियॉस (Lyons) का सम्प्रदाय' कह सकते हैं। यों तो उक्त सम्प्रदाय में बहुत से गणितज्ञ हुए हैं, किन्तु विस्तार के भय से हम उनमें से अधिकांश का उल्लेख नहीं कर सकते। उक्त सम्प्रदाय का कदाचित् सबसे मेधावी अंकगणितज्ञ राँश (Roche) था जिसका जन्म लियॉस में १४८० के लगभग हुआ था। उसने अंकगणित पर एक बहुत सुन्दर पुस्तक लिखी जिसमें परिकलन (Calculation) और व्यापारिक अंकगणित के प्रकरणों का विवेचन किया गया था। राँश जितना मेधावी था, उतना ही मिथ्याशील। उसने अपने अंकगणित में बहुत सी ऐसी सामग्री समाविष्ट कर ली थी जो उसने अपने गुरु चुके (Chuquet) की एक पाण्डुलिपि से चुरायी थी। जब उक्त पाण्डुलिपि का प्रकाशन हुआ तब सारा भण्डा फोड़ हो गया। अंग्रेज़ी के शब्दों 'मिलियन (दस लाख), बिलियन (दस खरब)...' का प्रयोग कदाचित् सब से पहले चुके ने ही आरंभ किया था।

लियॉस के ही सम्प्रदाय का एक अन्य अंकगणितज्ञ था पीडमॉन्टोइस (Piedmontois)। यह पेरिस विश्वविद्यालय में अंकगणित का प्राध्यापक था। इसने संख्याओं पर बहुत सी सारणियाँ तैयार कीं। सन् १५७५ में उनमें से कुछ सारणियाँ वेनिस में प्रकाशित हुईं। किन्तु समस्त सारणियाँ १५८५ में लियॉस में ही प्रकाशित हुईं। उक्त सारणियों में उसने संख्याओं के १००×१००० तक के गुणनफल दिये हैं। अब उक्त सारणियाँ दुष्प्राप्य हैं।

कश्वर्ट, टन्स्टॉल (Cushbert Tonstall) का जीवन काल १४७४-१५५९ था। उसने ऑक्सफोर्ड, केम्ब्रिज और पदुआ (Padua) में अध्ययन किया था। वह अपने जीवन में दर्जनों प्रकार के पदों पर नियुक्त हुआ। वर्षों गिरजा का पदाधिकारी रहा, कई बार उसने राजनीतिक कार्य में योग दिया और एक बार वह जेल भी गया। सन् १५५९ में लॅम्बैथ की जेल में ही उसकी मृत्यु हुई।

टन्स्टॉल ने एक अंकगणित लिखा है। उक्त पुस्तक में मौलिकता तो कम है, किन्तु उपस्थापन बढ़िया है। वह पुस्तक में ही लिखता है कि उसे एक बार संदेह हो गया था

कि नगर के सुनारों के हिसाब-नितान में कुछ गड़बड़ है। अब हमने इसी कारण अगणित का अध्ययन द्वारा आरम्भ किया और तत्पश्चात् उन पुस्तकें लिखीं। पुस्तक में उसने स्वीकार किया है कि उसने बहुत सी सामग्री पेंसिलों की तथा अन्य इटैलियन लेखकों की कृतियों से ली है।

सन् १५३७ में इंग्लैंड का पहला लोकप्रिय अगणित छपा। इसके लेखक का नाम अज्ञात है, किन्तु इतना पता है कि यह पुस्तक सेंट ऐल्बंस (Saint Albans) में प्रकाशित हुई थी। साठ वर्ष के अन्दर इसकी ६ आवृत्तियाँ हो गयीं।

इंग्लैंड का १६ वीं शती का सबसे प्रभावशाली गणितज्ञ राबर्ट रैकड (Robert Record) था। उसका जीवन काल १५१०-५८ के लगभग था। रैकड ने ऑक्सफोर्ड और केम्ब्रिज में अध्ययन किया और १५४५ में केम्ब्रिज विश्वविद्यालय से औपधि-विज्ञान की उपाधि प्राप्त की। तब वह रैडवर्ड (Edward) धनुष और रानी मेरी (Mary) का गृहबैद्य हो गया। अन्तिम दिनों में उसे कारागार में बन्द कर दिया गया। इसके कारण का ठीक ठीक तो पता नहीं है, परन्तु कुछ लोगों का अनुमान है कि उसके ऊपर कृषि का बोझ लगा हुआ था, इसी कारण उसे जेल हुई। कारागार में ही उसकी मृत्यु हो गयी।

रैकड ने गणित पर चार पुस्तकें लिखी हैं। उन दिनों की परिपाटी के अनुसार चारों पुस्तकें सवाद के रूप में लिखी गयी हैं।

(१) ग्राउंड ऑफ आर्ट्स (बला के मूलतत्त्व) — यह रैकड की सबसे पहली पुस्तक है। यह पुस्तक इतनी लोकप्रिय सिद्ध हुई कि छपने के १५० वर्ष के अन्दर इसके २९ संस्करण प्रकाशित हो गये। इसमें अगणित और अकों द्वारा परिवर्तन करने की विधियाँ और व्यापार अगणित के अन्य विषय दिये गये हैं।

(२) कौंसिल आफ नॉलिज (ज्ञान दुर्ग) — इस पुस्तक का विषय ज्योतिष है।

(३) पाथ वे टु नॉलिज (ज्ञान का मार्ग) — इस पुस्तक में यूक्लिड की ज्यामिति का संक्षेपण किया गया है।

(४) स्ट्रैट्टोन ऑफ बिट (बुद्धि की बसौटी) — यह पुस्तक बीजगणित के निम्न-लिखित विषयों पर लिखी गयी है — वर्ग मूलन, समीकरण सिद्धान्त, वर्णीयत सत्यापन।

इसी पुस्तक में रैकड ने सबसे पहले समीकरण चिह्न = का प्रयोग किया था। उसने उस पुस्तक में एक स्थल पर लिखा भी है कि “मेरे समीकरण के लिए यह चिह्न इसलिए लगाता हूँ कि सप्ताह में कोई दो वस्तुएँ इसमें अधिक समान नहीं हो सकती जितनी ये दोनों रेखाएँ = हैं।”

जॉन डी (John Dee) का जीवन काल १५२७-१६०८ था। इसका जन्म लन्दन में हुआ और इसने केम्ब्रिज के सेण्ट जॉन्स (St. John's) कालेज में शिक्षा पायी। इसने १५४३ में बी० ए० पास किया और यह ट्रिनिटी (Trinity) कालेज का मौलिक अधिसदस्य (Original Fellow) बना लिया गया। यह दो वर्ष तक लूवेन (Luven) और रीम्स (Reims) में अध्ययन करता और व्याख्यान देता रहा और १५५१ में इंग्लैंड लौट आया। एडवर्ड पष्ठम से इसे पेंशन मिलती थी, किन्तु रानी मेरी के गद्दी पर आसीन होते ही इसे क्रैद कर लिया गया। इस पर यह आरोप लगाया गया कि यह रानी को जादू से मारना चाहता था। १५५५ में इसे मुक्त कर दिया गया। तत्पश्चात् यह रानी ऐलिजाबेथ (Elizabeth) का कृपापात्र बन गया। कई बार यह राजकार्य से इंग्लैंड के बाहर भेजा गया। १५८१ में इसका साहचर्य एडवर्ड कैली (Edward Kelly) से हुआ जिसकी कथोक्ति थी कि उसने आत्माओं को बस में कर लिया था। दोनों ५-६ वर्ष तक यूरोप में घूमते रहे। १५८९ में डी इंग्लैंड लौट आया। १५९५ में यह मैनचेस्टर (Manchester) कॉलिज का अभिरक्षक (Warden) हो गया। यह १६०८ में बड़ी विपन्नावस्था में मार्टलेक (Martlake) में मर गया।

डी बहुत ही अध्ययनशील था। उसने स्वयं ही अपनी दिनचर्या के विषय में इस प्रकार लिखा है—“मैं रात को चार घंटे सोता था। खाने, पीने और आराम करने के लिए मैं दिन भर में केवल दो घंटे दिया करता था। शेष अट्ठारह घंटे मैं बराबर अध्ययन करता था।” डी अपने समय का बड़ा विद्वान् माना जाता था और उसकी अभिव्यंजना शक्ति बड़ी प्रबल थी। बिलिंग्सली (Billingsley) लन्दन का शेरिफ (Sheriff) था। उसने यूक्लिड की ज्यामिति का सबसे पहला अंग्रेजी अनुवाद किया था। उक्त अनुवाद की प्रस्तावना उसने डी से ही लिखायी थी। १५७० में डी ने यूक्लिड की एक टीका भी प्रकाशित की थी। १५६३ में उसे एक पाण्डुलिपि मिली थी जो किनी मुहम्मद बग्दादिनस द्वारा लॅटिन में लिखी हुई थी। उसने उक्त पाण्डुलिपि कमान्डिनस (Commandinus) को दे दी जिसने उसे दोनों के नाम से १५७० में प्रकाशित कर दिया। उसमें इस समस्या का विवेचन किया गया है कि किनी आकृति को दिये हुए अनुपात के दो भागों में किस प्रकार विभाजित किया जाय।

ग्रेमेटियस (Grammateus) का जन्म अफ्रंट में १४९६ में हुआ था। उसने विषय में शिक्षा पायी और बाद में वहीं शिक्षक नियुक्त हो गया। उसकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक अंकगणित है जो उसने जर्मन में लिखी थी। उक्त पुस्तक में उनमें अंकगणक और अंकों द्वारा परिवर्तन, संख्या निदान, पुस्तकपालन (Book-keeping)

लिखी हैं। इसके अनिखित उसकी कई कृतिया समानुपात सिद्धांत (Theory of proportion) और मापिकी पर भी हैं। कदाचित् वह जर्मनी का पहला गणितज्ञ था जिसने बीजगणितीय राशियों के जोड़ने और घटाने के लिए $+$ और $-$ चिह्नों का प्रयोग किया।

जर्मनी के १६ वीं शताब्दी के अंकगणितज्ञों में ऐडम रीज (Adam Riesz) का नाम भी उल्लेखनीय है। इसका जीवन काल कदाचित् १४८९-१५५९ था। यह पहला जर्मन गणितज्ञ था जिसने अपनी पुस्तकों में जाया वर्ग (Magic Square) को स्थान दिया। इसने अंकगणित पर चार पुस्तकें लिखी हैं जिनमें से दूसरी बहुत ही लोकप्रिय सिद्ध हुई। इसकी पुस्तकों ने पुरानी अंकगणकों की पद्धति के स्थान पर अंकों द्वारा हिसाब करने की प्रणाली को प्रचलित किया। इसकी पहली पुस्तक १५१८ में छपी थी। दूसरी पुस्तक प्रथम बार १५२२ में छपी और १६०० तक उसके सैंतीस संस्करण निकल गये।

हॉल्लंड में एक प्रभावशाली गणितज्ञ हुआ है गैमा फ्रीसियस रेनियर (Gemma Frisius Regnier)। इसका जीवन काल १५०८-५५ था। बत्तीस वर्ष की अल्पावस्था में ही इसने अंकगणित लिखा, जिसमें इसने सैद्धान्तिक और व्यापारिक अंकगणित का समन्वय किया था। उक्त ग्रन्थ इतना लोकप्रिय सिद्ध हुआ कि सोलहवीं शताब्दी के अन्दर ही उसके उत्सृष्ट संस्करण निकल गये। इसने भूगोल और ज्योतिष पर भी पुस्तकें लिखी हैं। ज्योतिष में इसने एक विशेष प्रकार के कैमरा (Camera obscura) का भी प्रयोग किया था।

साइमन स्टीविनस (Simon Stevinus) (१५४८-१६२०) भी हॉल्लंड का ही एक गणितज्ञ था। इसने प्रशा, पोलैण्ड, नॉर्वे आदि देशों का भ्रमण किया था। इसने वर्षों सैनिक सेवा की। यह अपनी सैनिक उपज्ञाओं (Inventions) के लिए प्रसिद्ध हो गया था। इसने एक ऐसी गाड़ी का आविष्कार किया था जो पतवार से चलती थी और जिसमें २६ यात्री बैठकर स्थल पर यात्रा कर सकते थे। इसकी अंकगणित लीडें में १५८५ में छपी और अगले वर्ष ही उसका फ्रेंच अनुवाद छप गया। उक्त पुस्तक में इसने दशमलव भिन्नों का प्रयोग किया है। यों तो दशमलव भिन्नों का प्रयोग पाँच सौ वर्ष से वर्ग मूलन आदि में होता आ रहा था, किन्तु इन भिन्नों का दैनिक, व्यावहारिक प्रयोग सबसे पहले स्टीविनस ने ही करके दिखाया था। इसने यह पूर्वानुमान भी किया था कि एक न एक दिन संसार को दशमलव पद्धति के वटखरों, पैमानों और सिक्कों का प्रयोग करना पड़ेगा। यह $\frac{1}{10}$ के घातों के लिए छोटे वृत्तों का प्रयोग किया करता था, जैसे—

१७३ $\frac{४२९}{१०००}$ को यह इस प्रकार लिखता था—

१७३ $\odot ४ (१) २ (२) ९ (३)$

इस संकेत लिपि का अर्थ हुआ—

$$१७३ \times \left(\frac{१}{१०}\right)^४ + ४ \times \left(\frac{१}{१०}\right)^३ + २ \times \left(\frac{१}{१०}\right)^२ + ९ \times \left(\frac{१}{१०}\right)^१.$$

स्टेविनस ने डायफण्टस (Diophantus) की इलिया का अनुवाद किया। इससे अनिरिकन १५८६ में इसने स्थैतिकी और द्रवस्थैतिकी (Statics and Hydrostatics) पर अपनी पुस्तक छपी जिसमें त्रिभुज (Triangle of forces) प्रमेय का प्रतिपादन किया। उस समय तक स्थैतिकी उसोलक (Lever) सिद्धान्त पर आधारित थी। स्टैविनस ने ही द्रवस्थैतिकी के इस सिद्धान्त का आविष्कार किया कि किसी द्रव का नीचे की ओर दबाव केवल उसकी ऊँचाई और आधार पर ही अवलम्बित है, घर्षण की आवृत्ति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

सोलहवीं शतीमें पोलण्ड में कई गणितज्ञ हुए हैं जिन्होंने अगणित पर पुस्तकें लिखी हैं। १५३८ में क्राक (Cracow) नगर में थॉमस क्लास (Thomas Klasse) की पुस्तक छपी। १८८९ में इस पुस्तक की पुनरावृत्ति उसी नगर में बरानुकी (Boranucci) ने छपी। १५७७ में गार्लिंस्टीना (Garlstinna) का अगणित पोलिश भाषा में छपा। इसमें व्यापारिक प्रकरणों का समावेश है।

एशिया

भास्कर के देहान्त के पश्चात् प्रायः २०० वर्ष तक भारत में कोई बड़ा गणितज्ञ उत्पन्न नहीं हुआ। जो हुए भी उनकी मुख्य रुचि ज्योतिष में थी। तथापि दो नाम उल्लेखनीय हैं—गणेश और सूर्यदास।

गणेश के जन्म की तिथि का ठीक-ठीक तरीका पता नहीं चल पाया है तथापि इनका सर्वप्रथम ग्रन्थ 'ग्रहलाघव' है जो इन्होंने सन् १५२१ ई० के लगभग आरम्भ किया था। उस समय इनकी अवस्था २०-२१ वर्ष की अवस्था ही रही होगी। इससे पता चलता है कि इनका जन्म १५०० ई० के आस-पास हुआ था। इनके विषय में कई दल कथाएँ प्रसिद्ध हैं। इनके पिता जी भी एक ज्योतिषी थे जिनका नाम केशव था। एक बार केशव ने ग्रहण का समय निकाला। ग्रहण के समय में कुछ अन्तर पड़ गया। इस पर तत्कालीन किसी राजा ने उनका उपहास किया। इस पर उन्हें बड़ा मोघ आया। वे गणेश जी के एक मन्दिर में जाकर तपस्या करने लगे। कहते हैं कि गणेशजी इनसे

सन्न हो गये और उन्होंने केशव को स्वप्न में दर्शन दिया और कहा कि 'अब तुमसे ज्योतिष कार्य नहीं हो सकेगा। मैं तुम्हारे घर में तुम्हारे ही पुत्र रूप में जन्म लूँगा और तुम्हारे अवशिष्ट कार्य को पूर्ण करूँगा।' तत्पश्चात् केशव को पुत्र लाभ हुआ। अतः उन्होंने पुत्र का नाम गणेश ही रखा। इसीलिए बहुत से आधुनिक ज्योतिषी गणेश को अवतार स्वरूप मानते हैं।

गणेश को वचपन से ही ज्योतिष का शौक था। इनका जन्म स्थान कोंकड़ प्रदेश था। इनका स्वभाव था कि समुद्र के किनारे किसी शिला पर बैठकर घंटों आकाश की ओर देखा करते थे। चलते समय भी इनकी दृष्टि आकाश की ओर ही रहा करती थी। इसीलिए इनके विषय में यह कथा प्रचलित हो गयी कि इनके पैरों में भी आँखें थीं। अतः चलते समय इन्हें भूमि की ओर देखने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी।

गणेश ने ज्योतिष पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। ग्रहगणित पर तो जितने ग्रन्थ इनके प्रचलित हैं, उतने कदाचित् ही किसी अन्य व्यक्ति के हों। इन्होंने लीलावती पर भी एक टीका लिखी है, जो बहुत प्रसिद्ध हो गयी है। उक्त टीका में इन्होंने गुणन की एक विधि इस प्रकार लिखी है —

“गुण्य को गुणक के नीचे लिखो। इकाई को इकाई से गुणा करो और गुणनफल को उसके नीचे रख दो। तत्पश्चात् इकाई को दहाई से और दहाई को इकाई से गुणा करो। इन दोनों को जोड़कर गुणनफल को पंक्ति में दहाई के नीचे रखो। अब इकाई को सैकड़े से, सैकड़े को इकाई से और दहाई को दहाई से गुणा करो। तीनों को जोड़कर सैकड़े के नीचे लिखो। इसी प्रकार आगे बढ़ते चलो। अन्त में गुणनफल प्राप्त हो जायगा।”

यह विधि आठवीं शताब्दी अथवा उसके पूर्व के हिन्दू गणितज्ञों को याद थी। यह विधि अरब पहुँची और वहाँ से इसका यूरोप में आविर्भाव हुआ। पॅसियोली के सूमा नामक ग्रन्थ में इसका उल्लेख मिलता है। पॅसियोली का कहना है कि यह विधि अन्य विधियों की अपेक्षा अधिक कौतुक और चातुर्यपूर्ण है। गणेश ने भी लिखा है कि 'यह विधि बहुत कौतुकपूर्ण है और मन्दबुद्धि विद्यार्थी परंपरागत मौखिक शिक्षा के बिना इसे सीख नहीं सकता।'।

सूर्यदास का जन्म १५०९ के लगभग हुआ था। इन्होंने निम्नलिखित ग्रन्थों की रचना की है—

१. देखिए, दत्त और सिंह—हिन्दू गणित का इतिहास, भाग १, पृ० १३९।

लीलावती टीका, बीज टीका, शीघ्रपट्टिगणित गणित, तानिका ग्रन्थ, वाचस्पति यौगमुखाकर।

इन ग्रन्थों में से अधिकांश टीकाएँ हैं। पहले दो ग्रन्थ तो भास्कर के गणित की टीकाएँ हैं। इनके अतिरिक्त सूर्यदास ने गणित पर दो स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखे हैं—बीजगणित और गणितमात्सी। लीलावती पर इन्होंने एक टीका और भी लिखी है गणितामृत वृषिका। इस का रचना काल १५४२ है।

मुसलमानी देशों के उस समय के गणितज्ञों में बेबर बहाउद्दीन का नाम उल्लेखनीय है। इनका जन्म कदाचित् अमोल नगर में १५४७ में हुआ था और मृत्यु इस्फहान में १६२२ में हुई। उन्होंने अवगणित पर एक पुस्तक खुलासतुल हिसाब (अर्थात् गणित के मूलतत्त्व) लिखी थी। इसके अतिरिक्त उसी विषय पर एक बहुत ही ग्रन्थ लिखना आरम्भ किया, जिसका नाम बहकल हिसाब (अवगणित का सागर) था, किन्तु इस पुस्तक का एक ही भाग छप पाया।

खुलासतुल हिसाब में बहाउद्दीन ने एक सारणी दी है, जो इस प्रकार है—

							२	
						१	४	२
				४	९	६		३
		५	१६	१२	८			४
	६	२५	२०	१५	१०			५
	७	३६	३०	२४	१८	१२		६
	८	४९	४२	३५	२८	२१	१४	७
९	६४	५६	४८	४०	३२	२४	१६	८
८१	७२	६३	५४	४५	३६	२७	१८	९

चीन

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में चीन ने गणित में कोई मौलिकता नहीं दिखायी। केवल चांग तई वई का नाम उल्लेखनीय है जिसने अंकगणित पर एक ग्रन्थ 'स्वान फ्रा तांग सुंग' (अंकगणित पर व्यवस्थित ग्रन्थ) लिखा। उक्त ग्रन्थ में सर्व प्रथम चीनी ढंग के परिकलन का उल्लेख किया गया है जिसे 'सुअन पान' परिकलन कहते हैं।

सत्रहवीं शती के प्रारंभ में चीन में इटली के पादरी मॅटियो रिसी (Mateo Ricci) का आविर्भाव हुआ। इसका जन्म १५५२ में इटली के एक भले घराने में हुआ था। इसने पहले क़ानून का अध्ययन किया। किन्तु फिर अपना जीवन धार्मिक सेवा में अर्पित कर दिया। १५७७ में इसने अपना नाम पूर्व भारतीय प्रचार मण्डल में दे दिया। १५७८ में यह गोआ पहुँचा। चार वर्ष भारत में बिताकर यह चीन गया। प्रचार मण्डल में कई पादरी थे। रिसी का गणितीय ज्ञान सुविस्तृत था और अन्य पादरियों के पास कुछ मानचित्र, घड़ियां और पुस्तकें थीं। इन वस्तुओं को देखकर चीनी लोग चकित हो गये और इन लोगों को कुतूहल और आदर की दृष्टि से देखने लगे। रिसी ने वर्षों चीन के नगरों में प्रचार किया। १६१० में पीकिंग में इसका देहान्त हो गया।

रिसी स्वयं कोई भारी गणितज्ञ न भी रहा हो, किन्तु इसने चीन में यूरोपीय विधियों का पर्याप्त प्रचार किया। इसने चीनी भाषा में दर्जनों पुस्तकें लिखीं और चीनी रंग ढंग को अपना लिया। इसीलिए चीन में इसकी पुस्तकों का बड़ा प्रचार हुआ। चीन में कदाचित् किसी भी अन्य यूरोपवासी का इतना नाम नहीं हुआ जितना 'लि मात्यू' का जो रिसी का चीनी नाम था।

यों तो रिसी के पश्चात् कई और पादरी हुए जिन्होंने रिमी के काम को आगे बढ़ाया, किन्तु उनमें से स्मो गोलिस्की का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिसने चीन में लघुगणकों का प्रचार किया। इसी के शिष्य सी फ्रांग नू ने १६५० के लगभग उक्त विषय पर पहला चीनी ग्रन्थ लिखा। सत्रहवीं शती में चीन में गणित के कई विद्वान् हुए हैं, जिन्होंने गणित पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, किन्तु समस्त ग्रन्थ यूरोपीय गणित पर आधृत हैं। मेवेन टिंग का नाम अवश्य उल्लेखनीय है जिसने गणित पर कई ग्रन्थ लिखे, जिनसे हमें चीनी गणित के इतिहास की बहुत जानकारी प्राप्त हुई है। इसका जीवन काल १६३३-१७२१ था।

जापान

सोलहवीं शताब्दी में जापान ने गणित में कोई विशेष प्रगति नहीं दिखायी। किन्तु एक घटना उल्लेखनीय है। जब जापान के बीर तईको ने सारा देश जीत लिया तब उसका यह धुन सवार हुई कि अपने दरबार को विद्या का एक केन्द्र बना दे। इस हनु उसने देश के एक विद्वान् मारी का चीन भेजा ताकि वह चीन से गणित की शिक्षा प्राप्त करके आये।

मारी ने भ्रमण किया, किन्तु यह निश्चित नहीं है कि वह चीन तक गया अथवा कोरिया में ही रह गया। इतना अवश्य निश्चित है कि वह चीनी अङ्कगणक के प्रयोग में दक्ष हो गया और उसने जापान में उक्त यन्त्र का प्रचलन किया। वह चीनी गणित का विद्वान् माना जाने लगा और कुछ लोग तो यहाँ तक कहने लगे कि 'माग-किया का संसार भर में सबसे बड़ा शिक्षक मारी ही है।' इसके तीन शिष्य प्रसिद्ध हो गये हैं जो 'तीन अङ्कगणितज्ञों के नाम से विख्यात थे।

मोरी के शिष्या में कौयू सबसे प्रसिद्ध हुआ है। इसका जीवन काल १५९७-१६७२ था। जापान में अङ्कगणित पर सबसे पहला ग्रन्थ इसी का था। उक्त ग्रन्थ के पूरे नाम का अर्थ है 'छोटी, बड़ी सख्याओं का ग्रन्थ।' संक्षेप में ग्रन्थ को 'जिकोकी' कहते हैं। इस ग्रन्थ की देश भर में इतनी प्रसिद्धि हुई कि उक्त नाम 'अङ्कगणित' का पर्याय ही बन गया।

अमेरिका

सन् १४९२ में कोलम्बस ने अमेरिका को खोज निकाला। १५३७ में अमेरिका में सबसे पहला मुद्रणालय स्थापित हो गया और १५५६ में अमेरिका में गणित की सर्वप्रथम पुस्तक प्रकाशित हुई। इसका लेखक जुअन डीझ (Juan Diez) था। इनके कई पुस्तकें लिखी हैं जिनमें से एक गणित पर थी जिसका नाम 'सुमेरियो कम्पेंडियोसा' (Sumario Compendioso) था। उक्त पुस्तक में चाँदी, साने आदि के भाव और प्रतियोगिता पर सारणियाँ दी गयी हैं। इसके अनिश्चित बटुन में प्रश्न व्यापार गणित पर और सख्या सिद्धान्त पर भी दिये हैं। सख्या सिद्धान्त पर जो नियम दिये गये हैं उनमें से बहुत से फिबोनाकी और डायफेण्टस की दृष्टि से मिलते हैं। उस समय के गणित के स्तर को देखते हुए कहना पड़ता है कि पुस्तक बहुत सुन्दर है। यही हम दो परिभाषाएँ देना आवश्यक समझते हैं—

अनुरूपी और ससोयी सख्याएँ (Congruous and Congruent Numbers)
—यदि सख्याओं में से कुछ अनुरूपी गरवाएँ कहानी हैं। कुछ अन्य सख्याएँ ससोयी

संख्याएँ कहलाती हैं। ये ऐसी होती हैं कि यदि किसी अनुरूपी संख्या में उसकी संगत संशेपी संख्या जोड़ दी जाय अथवा उसमें से घटा दी जाय तो दोनों दशाओं में फल एक सम्पूर्ण वर्ग ही होगा।

उदाहरण—६२५ एक सम्पूर्ण वर्ग है। यदि इसमें ३३६ जोड़ें तो ९६१ होता है जो ३१ का वर्ग है। और यदि उसमें से ३३६ घटाएँ तो २८९ बचता है जो १७ का वर्ग है। अतः ६२५ एक अनुरूपी संख्या हुई और ३३६ उसकी संगत संशेपी संख्या। इसी प्रकार १०० और ९६ भी क्रमशः अनुरूपी और संशेपी संख्याएँ हैं।

जुअन डीज के उक्त ग्रन्थ में अनुरूपी और संशेपी संख्याओं की भी एक सारणी दी गयी है। इस सारणी से उक्त पुस्तक का मूल्य और भी बढ़ गया है।

हमने इन पृष्ठों में सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक का अंकगणित का इतिहास दिया है। इसके पश्चात् गणित की अन्य शाखाओं में तो आशातीत प्रगति हुई, किन्तु अंकगणित ज्यों का त्यों रह गया। अंकगणित में हम आजकल के स्कूल के विद्यार्थियों को जो कुछ पढ़ाते हैं, प्रायः इसी रूप में वह सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक आविष्कृत हो चुका था। उसके अध्यापन के ढंग में और उपस्थापन प्रणाली में अनेक परिवर्तन हुए हैं। पाठ्य पुस्तकों के लिखने की शैली भी बहुत कुछ बदल गयी है। किन्तु विषय सामग्री में कोई मौलिक हेर फेर नहीं हुआ है। इतना अवश्य हुआ है कि प्राचीन काल में संख्या सिद्धान्त भी अंकगणित का ही एक अंग माना जाता था। अब वह एक स्वतन्त्र विषय बन गया है। अतः अब अंकगणित के इतिहास के अन्तर्गत संख्या सिद्धान्त नहीं दिया जाता, केवल प्रसंगवश कहीं कहीं उसका उल्लेख करना पड़ता है। ऐसा ही हमने भी किया है।

अध्याय ४

बीजगणित

(१) बीजगणित का नाम और प्रकृति

बीजगणित से साधारणतः तात्पर्य उस विज्ञान से होता है जिसमें अको को अक्षरों द्वारा निरूपित किया जाता है। इस विषय में क्रियाओं के चिह्न

$$+ \quad - \quad \times \quad \div \quad = \quad > \quad <$$

तो वे ही रहते हैं जो अंकगणित में, केवल अको के स्थान पर अक्षर क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, लिखे जाते हैं। मान लीजिए कि हमें यह लिखना है कि किसी त्रिभुज का क्षेत्रफल उसके आधार और उच्चत्व के गुणनफल का आधा होता है। तो हम इन तथ्यों को इस प्रकार व्यक्त करेंगे

$$A = \frac{1}{2} b \times h$$

अब तबिक इस समीकरण पर विचार कीजिए—

$$y^2 - 13y + 42 = 0.$$

इस समीकरण का यह अर्थ है कि 'य' एक ऐसी राशि है कि यदि उसके वर्ग में से उसका सान गुना घटा कर १२ जोड़ दे तो फल शून्य हो जाता है।

बीजगणित में केवल समीकरणों का ही समावेश नहीं होता। उस में इन सब प्रकारों का अध्ययन किया जाता है —

वृद्धि, श्रेणियाँ, सतत मिश्र, अनन्त गुणनफल, मर्यादा अनुक्रम, रूप, सारणिक, श्रेणिक (Matrix)।

अब तो अक्षरों द्वारा केवल समस्याओं का ही निरूपण नहीं होता। स्थैतिकी (Statics) में इनके द्वारा बल निरूपित किये जाते हैं और गतिविज्ञान (Dynamics) में वेग (Velocity), ऊर्जा (Energy) आदि। आधुनिक समय में बीजगणित का क्षेत्र और उपयोग बहुत बड़ा गया है। अब तो यह गणित की बहुत सी शाखाओं में प्रयुक्त होने लगा है जैसे कलन, त्रिकोणमिति और फलन सिद्धांत (Theory of Functions)। चिन्तु अब भी बीजगणित का एक मुख्य विषय समीकरणों का साधन ही है। बीजगणित का आधारभूत प्रमेय यह है —

प्रत्येक समीकरण का एक मूल अवश्य ही होता है।

बीजगणित के आधुनिक संकेतवाद का विकास तो पिछली तीन नार शताब्दियों के अन्दर ही हुआ है, किन्तु समीकरणों के माधन की समस्या बहुत पुरानी है। पूर्व ऐतिहासिक काल ने हमारे पूर्वज रम समस्या का मौखिक रूप में अध्ययन करने आये है। सन् २००० ई० पू० के आस-पास तो वे लोग अटकल में समीकरणों का हल निकालने भी लगे थे। ३०० ई० पू० के लगभग हमारे पूर्वज समीकरणों को शब्दों में लिखने लगे थे और ज्यामितीय आकृतियों की सहायता से उनके हल भी निकाल लेते थे। समीकरणों को संकेतों द्वारा व्यक्त करने की परिपाटी ३०० ई० के लगभग आरम्भ हुई। सोलहवीं शताब्दी में मुद्रण के आविष्कार से बीजगणित का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया। बीजगणित सार्वभौम अंकगणित का रूप लेने लगा और उसमें वर्णमाला के अक्षरों का भी प्रयोग होने लगा। सत्रहवीं शताब्दी में बीजगणितीय संकेतवाद पूर्ण रूप से विकसित हो गया और पिछली तीन शतियों में उसमें थोड़ा सा ही संशोधन हुआ है।

बीजगणित का नाम

बीजगणित के जिस प्रकरण में अनिर्णीत समीकरणों (Indeterminate Equations) का अध्ययन किया जाता है, उसका पुराना नाम 'कुट्टक' (Pulveriser) है। हिन्दू गणितज्ञ ब्रम्हगुप्त ने उक्त प्रकरण के नाम पर ही इस विज्ञान का नाम ६२८ ई० में 'कुट्टक गणित' रखा। बीजगणित का सबसे प्राचीन नाम कदाचित् यही है। सन् ८६० में पृथ्वक स्वामी ने इसका नाम बीजगणित रखा। इस विद्या का नाम 'कुट्टक गणित' तो इसलिए रखा गया था कि 'कुट्टक' बीजगणित का एक मुख्य अंग है। यह नाम ऐसा ही है जैसे आजकल के बहुत से कहानी लेखक किसी कहानी संग्रह का नाम उसके अन्तर्गत दी हुई एक कहानी के नाम पर रख देते हैं। यह प्रवृत्ति विचारों की अल्पता का द्योतक है। या यों कहिए कि लेखक को कोई ढंग का नाम दिखाई ही नहीं पड़ता। 'बीजगणित' नाम अधिक सार्थक है। 'बीज' का अर्थ है 'तत्त्व'। अतः 'बीजगणित' का अर्थ हुआ 'वह विज्ञान जिसमें तत्त्वों द्वारा परिगणन किया जाता है।'

अंकगणित में समस्त संकेतों का मान विदित रहता है। बीजगणित में व्यापक संकेतों से काम लिया जाता है जिनका मान आरम्भ में अनिश्चित रहता है। इसीलिए इन दोनों विज्ञानों के अन्य प्राचीन नाम 'व्यक्त गणित' और 'अव्यक्त गणित' भी हैं।

अंग्रेजी में बीजगणित को 'ऐल्जब्रा' (Algebra) कहते हैं। यह नाम अरब देश से आया है। नवीं शताब्दी में अरब में एक गणितज्ञ 'अलख्वारिज्मी' हुआ है जो 'ख्वारिज्मी' नगर का निवासी था। उसने ८२५ ई० में बग़दाद में एक पुस्तक लिखी

जिमवा नाम 'अल-जब्र-नल-मुकाबला' रखा। उस समय तो उसने देशवासियों को समझ में पुष्पक के नाम का अर्थ नहीं आया। आधुनिक भाषाविदों का विचार है कि अरबी में 'अल-जब्र' और फारसी में 'मुकाबला' समीकरण को ही कहते हैं। अतः लेखक ने फारसी, जरबी दोनों भाषाओं के 'समीकरण' के पर्यायों में अपनी पुस्तक का नाम बना लिया था। अलम्बारिज्मी के ग्रन्थ का महत्त्व इसी से जाना जाता है कि बाद के लेखक ने उसका विज्ञान के लिए उसी नाम को अपना लिया और अरबी में वही नाम आज तक चला आता है।

अन्य देशों में बीजगणित के नाम इस प्रकार हैं—

चीन—तियेन युयेन (स्वर्गीय तत्त्व)।

जापान—काइगोन मी डा (अज्ञात को जानना)।

बगदाद—फस्तो—इस नाम की उत्पत्ति इस प्रकार है कि बगदाद के एक गणितज्ञ अल फार्सी ने १०२० ई० के लगभग बीजगणित पर एक पुस्तक लिखी जिम्मा नाम अपने गुरु 'फन्जुलमुत्त' के नाम पर 'फर्यी' रख दिया।

इटली—रैमोला द ला को सा (अज्ञात राशि का नियम)।

फ्रांस—अर्म मन्ना (महान् बला)—साइसे पह्ले बार्देन ने १५४५ में इस नाम का प्रयोग किया था।

जर्मनी—डी वाम (अज्ञात राशि) (मोडहबी सनाय्दी)।

(२) पूर्व ऐतिहासिक काल से ३०० ई० पू० तक

अग्नि प्राचीन काल में भारत में मित्र-मित्र आहुतिया की यज्ञ वेदियाँ बनायी जाती थी। ऋग्वेद का समय ३००० ई० पू० में भी पढ़ने का माना जाता है। और ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर यज्ञ वेदियों का उल्लेख मिलता है। इन वेदियों की रचना के लिए विशेषज्ञ व्यक्तियों को चुना जाता था। इनकी रचना द्वारा यज्ञ में बीजगणितीय समीकरणों का भाग्य होता है। इस प्रकार यह कह सकते हैं कि बीजगणितीय समीकरणों का जन्मभूमि अथवा भारत में ३००० ई० पू० से भी पहले आरम्भ हो गया था। 'गणपद प्रमाण' में भी यज्ञ वेदियों की रचना की विधि की गयी है। और इन्द्राय दाशय का समय २००० ई० पू० के लगभग माना जाता है।

वेदा रचना के विषय का टीना मान्य था कि इस पर प्रमाण में एक स्थान गणित में नहीं आया था। इस कथा को 'गुण्य सूत्र' का नाम दिया गया है। इस विधि में प्रमाण इस का मत है कि यज्ञ यज्ञ वेदियों के 'वर्ण्य सूत्रों' के ही भग्न थे। इसका रचना काल १०००-५०० ई० पू० माना जाता है। प्राचीन भारत में इस प्रकार के कई

ग्रन्थ थे^१—अब उन में से केवल सात शुल्ब सूत्र प्राप्त हैं जो क्रमशः इन नामों से विख्यात हैं—

वौधायन, आपस्तम्ब, कात्यायन, मानव, मैत्रायण, वाराह, वाबूल ।

हम यहाँ शुल्ब सूत्रों की कुछ ज्यामितीय रचनाएँ दे रहे हैं जिनके द्वारा बीज-गणितीय समीकरणों के हल निकलते हैं ।

(क) किसी वर्ग के बराबर एक आयत बनाना जिसकी एक भुजा दी हो ।

इस रचना के लिए आपस्तम्ब में यह नियम दिया गया है^२—

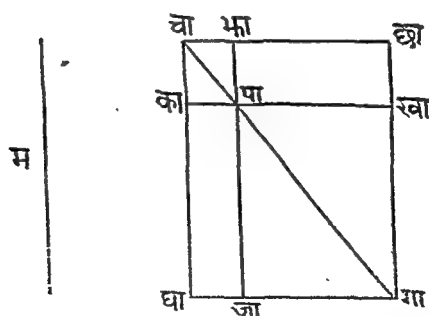
“वर्ग की एक भुजा को बढ़ा कर इतनी बड़ी काट लो जितनी बड़ी आयत की भुजा दी हुई है । जितना बढ़ती बचे उसे उपयुक्त स्थान पर बिठा दो ।”

वौधायन ने इसी नियम को इन शब्दों में दिया है^३—

“यदि वर्ग की एक भुजा पर ही आयत बनाना हो तो उस भुजा में से आयत की दी हुई भुजा के बराबर खण्ड काट लो । जो बढ़ती बचे उसे दूसरी भुजा की ओर जोड़ दो ।”

दोनों ग्रन्थों में नियम का अन्तिम भाग अस्पष्ट है । भिन्न-भिन्न टीकाकारों ने उक्त भाग के भिन्न-भिन्न अर्थ लगाये हैं । इन में से सुन्दरराज और द्वारकानाथ यज्वा का दिया हुआ अर्थ ठीक जैचता है । उनके दिये हुए अर्थ के अनुसार हम यहाँ उक्त रचना देते हैं—

मान लीजिए कि का खा गा घा दिया हुआ वर्ग है और म अभीष्ट आयत की दी हुई भुजा ।



चित्र २७—आपस्तम्ब के नियम से सम्बन्धित आकृति ।

१. देखिए B. B. Dutt : Science of the sulba—Calcutta (1932) p. 1

२. आपस्तम्ब० (iii) १ ।

३. वौधायन शुल्ब (i) ९३ ।

गा या और घा का जो प्रमस छा चा तक इतना बढ़ाओ कि घा चा=गा छा=म। आयत घा या छा चा का पूरा कर लो। मान लो कि विकर्ण गा चा रेखा गा या का पा पर काटना है। ता पा या अमीष्ट आयत की दूसरी भुजा होगी। पा के मध्येन जा पा या खींचा गा छा के समानान्तर जो घा गा, छा चा को प्रमस जा, सा पर काट। ता इस प्रकार हम इच्छित आयत जा गा छा या प्राप्त हो गया। उपरान्त आइति स स्पष्ट है।

यदि वग का भुजा का क माना जाय तो उपरिलिखित रचना स हमें बीजगणितीय सगल समीकरण

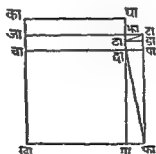
$$म य = क^२$$

का हल प्राप्त होना है।

(ग) किसी आयत के बराबर एक वर्ग बनाना।

बीज्यायन और वाव्यायन दाना ने इसकी विधियाँ दी हैं। हम एक उदाहरण द्वारा बीज्यायन की विधि समझाते हैं।

मान लो कि का या गा घा दिया हुआ आयत है।



चित्र २८—बीज्यायन की विधि से सम्बन्धित आइति।

अब गा या म म बीज्यायन गा या के बराबर गा या काटकर वग गा या छा या की पूरा कर लो। अब आयत छा या का क मध्य में रेखा जा सा खींच कर उसको समद्विभाजित कर लो। या छा का पा तक इस प्रकार बढ़ाओ कि छा पा=चा जा। वग छा या का और आयत छा गा या का पूरा कर लो। अब स्पष्ट है कि

आयत का गा या या वग गा या दा जा—वग छा या दा सा।

अब अब हम एक एक वग की रचना करना है जिसका क्षेत्रफल उपरिलिखित दाना वर्गों के क्षेत्रफल के अन्तर के बराबर हो।

मुनिषा के लिए हम मान लेते हैं कि नये आकार में समरूप का क्षेत्रफल मौलिक क्षेत्रफल का m गुना है। तो

$$9.02 : m = 9.00 : m,$$

$$\text{अर्थात् } m = 9.00 (m-1)$$

$$(x) \text{ में, } y = \sqrt{m} :$$

यही फल गुन्ना से दिया गया है।

इसकी निमित्त दशांश $m=16$ अथवा $18\frac{2}{3}$ शतक का अनुमान में भी दी गयी है।

इस प्रश्न की विधि में बीजगणितीय समीकरण

$$x^2 = y^2$$

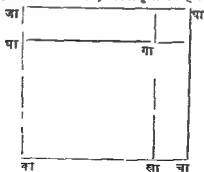
का हल निकलना है। यह एक शुद्ध वर्ग समीकरण (Pure Quadratic Equation) है। गुन्ना में दी हुई अन्य विधायी द्वारा जगुद्ध वर्ग समीकरण (A defected Quadratic Equation)

$$x^2 + px = q$$

के हल भी निकल आते हैं।

(घ) वर्ग समीकरण का हल एक अन्य प्रकार की वेदिया की परिवृद्धि में भी सम्भव है। कमी-कमी कोई वेदी वर्ग की आकृति की होती है और उसके १॥ गुने अथवा २॥ गुने आकार की एक अन्य वर्गाकार वेदी बनानी होती है। या यों कहिए कि एक वर्ग दिया हुआ है और एक अन्य वर्ग ऐसा बनाना है जिसके क्षेत्रफल और इस वर्ग के क्षेत्रफल में एक निदिष्ट राशि का अन्तर हो। गुन्ना के तत्सम्बन्धी नियम को हम उदाहरण द्वारा समझाते हैं।

मान लीजिए कि का गा गा या एक दिया हुआ वर्ग है।



१ (x) २, ३, ७। २ आपस्तम्ब शुल्ब० (iii) ९, बौधायन शुल्ब० (iii)

१९२-४ भी देखिए।

मान लीजिए कि उमकी भुजाओं में खा चा के बराबर वृद्धि करनी है। तो वर्ग की भुजाओं खा गा, गा घा पर दो आयत बनाइए जिन में से प्रत्येक की भुजा खा चा के बराबर हो। कोने गा पर एक वर्ग बनाइए जिसकी भुजा भी खा चा के बराबर हो। तो का चा छा जा ही अभीष्ट वर्ग होगा।

यह रचना बीजगणितीय एकात्म्य (Identity)

$$(क+ख)^२=क^२+२ क ख+ख^२$$

का ज्यामितीय सदृश (Analogue) हुई।

अब मान लीजिए कि हमें किसी वर्ग क^२ की वृद्धि म वर्ग मात्रकों से करनी है।

यदि अभीष्ट वर्ग की भुजा य हो तो, उपरिलिखित रचना से,

$$य^२+२ क य=म, \quad (इ)$$

$$\text{अर्थात्} \quad य^२+२ क य+क^२=म+क^२,$$

$$\text{अर्थात्} \quad (य+क)^२=म+क^२$$

$$\therefore य=\sqrt{म+क^२}-क \quad ।$$

इस प्रकार हमने वर्ग समीकरण (३) का ज्यामितीय विधि से हल निकाल लिया।

(ङ) कुछ रचनाओं में निम्नलिखित अनिर्णीत समीकरण का भी हल मिलता है:—

$$य^२+२२=ल^२ \quad ।$$

कात्यायन ने एक सूत्र दिया है जो आधुनिक संकेतलिपि में इस प्रकार लिखा जा सकता है—

$$क^२ (\sqrt{स})^२ + क^२ \left(\frac{स-१}{२}\right)^२ = क^२ \left(\frac{स+१}{२}\right)^२$$

इस सूत्र को हम इस रूप में ढाल सकते हैं—

$$प^२ + \left(\frac{प^२-१}{२}\right)^२ = \left(\frac{प^२+१}{२}\right)^२ \quad (उ)$$

स्पष्ट है कि राशियाँ प, $\frac{प^२-१}{२}$, $\frac{प^२+१}{२}$ एक सुमेय समकोण त्रिभुज (Rational right-angled triangle) की भुजाओं की लम्बाइयाँ हैं।

करविन्द स्वामी^१ ने उक्त समीकरण का हल इस रूप में दिया है —

$$य, \left(\frac{प^२+२ प}{२ प+२}\right) य, \left(\frac{प^२+२ प+२}{२ प+२}\right) य \quad ।$$

यह हल (उ) से सरलता से निकल सकता है।

१. देखिए, उनकी आपस्तम्ब की टीका (i) ४।

उक्त समीकरण का एक अधिक सार्विक हल इस प्रकार है—

$$(\sqrt{ps})^2 + \left(\frac{p-s}{2}\right)^2 = \left(\frac{p+s}{2}\right)^2$$

यह हल उस रचना पर आधारित है जिसके द्वारा हम किसी आयत को एक वर्ग में परिणत करते हैं। इस सूत्र की राशियों को सुमेय बनाने के लिए हम इसे इस प्रकार भी लिख सकते हैं—

$$p^2 - s^2 + \left(\frac{p^2 - s^2}{2}\right)^2 = \left(\frac{p^2 + s^2}{2}\right)^2$$

इसी प्रकार गुल्ब सूत्रों में और भी अनेक प्रकार के अनिर्णीत समीकरणों के हल मिलते हैं।

जिस काल का हम उल्लेख कर रहे हैं उसमें भारत के अतिरिक्त यूनान ही एक ऐसा देश था जहाँ बीजगणित का कुछ आभास पाया जाता है। किन्तु उक्त देश में भी उस समय तक बीजगणित ज्यामिति पर ही आधारित था। यूनानियों ने भी एकात्म्य

$$(k+x)^2 = k^2 + x^2 + 2 \text{ क ख}$$

को ज्यामितीय विधि से ही सिद्ध किया था।

यूनानियों ने निम्नलिखित एकात्म्या के भी ज्यामितीय रूप सिद्ध कर दिये थे—

$$(k-x)^2 = k^2 + x^2 - 2 \text{ क ख},$$

$$(k+x)(k-x) = k^2 - x^2,$$

$$k(k+r+l) = k^2 + k^2 r + k^2 l$$

वे द्विपद व्यंजकों

$$k^2 + 2 \text{ क ख},$$

$$k^2 - 2 \text{ क ख}$$

को पूर्ण बनाना भी जानते थे। किन्तु वे ये सब क्रियाएँ ज्यामितीय विधि से ही किया करते थे। बीजगणित का ज्यामिति से पृथक्करण बहुत दिन पीछे हुआ है।

(३) ३०० ई० पू० से ५०० ई० तक

जिस काल का इतिहास हम लिख रहे हैं उस काल में यूरोप और मिस्र में अनेक गणितज्ञ हुए हैं किन्तु उनमें से अधिकांश की रुचि ज्यामिति और ज्योतिष में थी। उनकी कृतियाँ का उल्लेख उपर्युक्त स्थान पर किया जायगा। आर्किमिडीज भी मुख्यतः ज्यामितिज्ञ ही था किन्तु उसने बीजगणित में भी थोड़ी सी रुचि दिखायी थी, विशेषकर ज्यामितीय बीजगणित में। आर्किमिडीज ने समकक्ष त्रिभुजों के वर्गों का योग

क ख	ख ^२
क ^२	क ख

$$1^3 + 2^3 + 3^3 + \dots + n^3$$

निकाला था। उन से पहले किसी ने भी इस ढंग की किसी श्रेणी का पद्धतिगोल विवेचन नहीं किया था। उसने एक विगिष्ट प्रकार के घन समीकरणों का भी हल निकाला था। उक्त समीकरणों को आधुनिक संकेतलिपि में इस प्रकार लिखा जायगा—

$$y^2 = kx^2 \pm nx^3 \quad g=0.$$

आकिमैण्डोज ने शांकवों (conics) के कटान बिन्दु निकाल कर इन समीकरणों का साधन किया था।

ऐलैग्जेंड्रिया का डायफ्रॉण्टस (Diophantus of Alexandria)

यूनानी गणितज्ञों में डायफ्रॉण्टस का नाम जगत् प्रसिद्ध हो चुका है। अब यह प्रायः निश्चित हो चुका है कि इसका जीवन काल तीसरी शताब्दी ई० का मध्य भाग था। माइकेल पैलस (Michael Psellus) ने, जिसका जीवन काल ११वीं शताब्दी था, डायफ्रॉण्टस की जीवनी में लिखा है कि वह अनाटोलियस (Anatolius) से पहले जन्म ले चुका था क्योंकि अनाटोलियस ने अपनी पुस्तकें डायफ्रॉण्टस को समर्पित की हैं। और अनाटोलियस लाओडोसिया (Laodicea) का पादरी २७० ई० में हुआ। अतः डायफ्रॉण्टस का जीवन काल २५० ई० के लगभग रहा होगा। इस बात का प्रमाण इससे भी मिलता है कि निकोमेकस (Nicomachus) और स्मर्ना के थियन (Theon of Smyrna) ने डायफ्रॉण्टस का कोई उल्लेख अपनी कृतियों में नहीं किया है। और इन दोनों का जीवन काल १०० और १३० ई० के आस पास था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि डायफ्रॉण्टस का समय इन दोनों के समय के बाद आता है। दूसरी ओर ऐलैग्जेंड्रिया वाले थियन ने और उसकी लड़की हाइपेसिया (Hypatia) ने अपनी कृतियों में डायफ्रॉण्टस का उल्लेख किया है। और यह पता है कि थियन ने ऐलैग्जेंड्रिया में ३६५ ई० में एक ग्रहण देखा था और हाइपेसिया की मृत्यु ४१५ ई० में हुई थी। इन दोनों बातों से पता चलता है कि डायफ्रॉण्टस का समय ३५० ई० से पहले का ही रहा होगा। अतः उसका जीवन काल जो हमने तीसरी शताब्दी का मध्य माना है, ठीक ही दिखाई पड़ता है।

डायफ्रॉण्टस के जीवन के विषय में बहुत कम जानकारी प्राप्त हुई है। यूनानी वाङ्मय में उसके जीवन के सम्बन्ध में एक प्रश्न दिया हुआ है जो कदाचित् चौथी शताब्दी में प्रकाशित हुआ था—

‘उसका बाल्यपन उसके जीवन के $\frac{1}{2}$ वें भाग तक रहा। उसके $\frac{1}{3}$ वें भाग पश्चात् उसके दादी निकलने लगी। उस समय से (जीवन के) $\frac{1}{6}$ वें भाग पश्चात् उसने विवाह किया और विवाह के ५ वर्ष पीछे उसके लड़का हुआ। पुत्र ने पिता से आधी आयु पायी और पिता पुत्र से चार वर्ष पश्चात् मरा।’

इस विवरण से लोग ने अनुमान लगाया है कि डायफण्टस का विवाह ३३ वर्ष की अवस्था में हुआ और मृत्यु ८४ वर्ष की आयु में।

डायफण्टस ने तीन ग्रन्थ लिखे हैं—

(१) ऐरिथमेटिका (Arithmetica) जो १३ भागों में लिखी गयी थी जिनमें से अब केवल ६ ही उपलब्ध हैं।

(२) पॉलीगॉनल नम्बरस (Polygonal Numbers) जिसका भी अब थोड़ा सा ही भाग मिलता है।

(३) पोरिज्मस (Porisms)

डायफण्टस की कृतियों का पहला संस्करण बेसिल (Basel) में १५७५ ई० में निकला। दूसरा संस्करण पेरिस से १६२१ में प्रकाशित हुआ जिसमें मौलिक यूनानी पाठ दिया हुआ था। तीसरा टूलूस् (Toulouse) में १६७० में निकला जिसमें फर्मा (Fermat) ने टिप्पणियाँ दी हैं। ऐरिथमेटिका के प्रथम चार भागों का प्रकाशन लीडेन (Leyden) में १५८५ में हुआ और अन्य संस्करण १६२५ और १६१४ में हुए।

डायफण्टस के नाम पर सब से प्रसिद्ध पुस्तक है

Heath Diophantus of Alexandria—द्वितीय संस्करण—केम्ब्रिज (Cambridge) १९१०।

उक्त पुस्तक में हीन ने लिखा है कि डायफण्टस की कृतियों की २५ हस्तलिखितियाँ उपलब्ध हुई हैं। डायफण्टस की कृतियों का दूसरा टीकाकार टैन्गेरी (Tannery) है। इनने डायफण्टस का जीवन बाल निश्चित करने की एक निराली युक्ति निकाली है। इन ने पता चलाया कि सन् २५० ई० के आसपास यूनान में मंदिरों का क्या भाव था। यह भाव डायफण्टस ने दिये हुए भाव से मेल खा गया। इस प्रकार डायफण्टस के जीवन बाल की निधि की पुष्टि हो गयी।

डायफण्टस की सबसे प्रसिद्ध पुस्तक ऐरिथमेटिका ही है। आलोचकों का अनुमान है कि उसकी तीसरी पुस्तक पोरिज्मस वास्तव में ऐरिथमेटिका का ही एक ग्राह्य अंग थी, बार्द पुष्प पुष्पा नहीं थी। अन्य के उक्त अंग में सत्यापित करने के कुछ राक्षस ग्राह्य दिये गये हैं जिनमें से एक प्रसिद्ध ग्राह्य यह है—

“उसका बालपन उसके जीवन के $\frac{1}{2}$ वें भाग तक रहा। उसके $\frac{1}{2}$ वें भाग पश्चात् उसके दाढ़ी निकलने लगी। उस समय से (जीवन के) $\frac{1}{3}$ वें भाग पश्चात् उसने विवाह किया और विवाह के ५ वर्ष पीछे उसके लड़का हुआ। पुत्र ने पिता से आधी आयु पायी और पिता पुत्र से चार वर्ष पश्चात् मरा।”

इस विवरण से लोगो ने अनुमान लगाया है कि डायफॉण्टस का विवाह ३३ वर्ष की अवस्था में हुआ और मृत्यु ८४ वर्ष की आयु में।

डायफॉण्टस ने तीन ग्रन्थ लिखे हैं—

(१) ऐरिथमेटिका (Arithmetica) जो १३ भागो में लिखी गयी थी जिनमें से अब केवल ६ ही उपलब्ध हैं।

(२) पालीगॉनल नम्बरस (Polygonal Numbers) जिसका भी अब थोड़ा सा ही भाग मिलता है।

(३) पोरिज्म्स (Porisms)

डायफॉण्टस की कृतियों का पहला संस्करण बेसिल (Basel) में १५७५ ई० में निकला। दूसरा संस्करण पेरिस से १६२१ में प्रकाशित हुआ जिसमें मौलिक भूगोलीय पाठ दिया हुआ था। तीसरा टूलूस (Toulouse) में १६७० में निकला जिसमें फर्मा (Fermat) ने टिप्पणियाँ दी हैं। ऐरिथमेटिका के प्रथम चार भागों का प्रकाशन लीडेन (Leyden) में १५८५ में हुआ और अन्य संस्करण १६२५ और १६३४ में हुए।

डायफॉण्टस के कार्य पर सब से प्रसिद्ध पुस्तक है

Heath Diophantus of Alexandria—द्वितीय संस्करण—केम्ब्रिज (Cambridge) १९१०।

उक्त पुस्तक में हीड ने लिखा है कि डायफॉण्टस की कृतियों की २५ हस्तलिपियाँ उपलब्ध हुई हैं। डायफॉण्टस की कृतियों का दूसरा टीकाकार टैनरी (Tannery) है। इसने डायफॉण्टस का जीवन काल निर्दिष्ट करने की एक निराली मुक्ति निकाली है। इस ने पता चलाया कि सन् २५० ई० के आसपास यूनान में मदिरा का बड़ा भाव था। यह भाव डायफॉण्टस के दिये हुए भाव से मेल खा गया। इस प्रकार डायफॉण्टस के जीवन काल की तिथि की पुष्टि हो गयी।

डायफॉण्टस की सबसे प्रसिद्ध पुस्तक ऐरिथमेटिका ही है। आलोचकों का अनुमान है कि उसकी तीसरी पुस्तक पोरिज्म्स वास्तव में ऐरिथमेटिका का ही एक स्वतन्त्र अंग थी, बौर्द पृथक् पुस्तक नहीं थी। ग्रन्थ के उक्त अंग में सख्या सिद्धान्त के कुछ रोचक साध्य दिये गये हैं जिनमें से एक प्रसिद्ध साध्य यह है—

मान लीजिए कि

$$य = त + प ल, \quad र = थ - फ ल \quad ।$$

तो हमें प्राप्त हैं—

$$२ त प ल + प^२ ल^२ - २ थ फ ल + फ^२ ल^२ = ०.$$

$$\therefore ल = \frac{२ (थ फ - त प)}{प^२ + फ^२}.$$

$$\text{इस प्रकार, } य = त + \frac{२ प (थ फ - त प)}{प^२ + फ^२} = \frac{२ थ प फ + त (फ^२ - प^२)}{प^२ + फ^२}$$

$$\text{और } र = थ - \frac{२ फ (थ फ - त प)}{प^२ + फ^२} = \frac{२ त प फ + थ (प^२ - फ^२)}{प^२ + फ^२} ।$$

(ग) भाग ३ (१)—ऐसी तीन संख्याएँ ज्ञात करना कि यदि उनमें से किसी का वर्ग तीनों के जोड़ में से घटाये तो अन्तर एक पूर्ण वर्ग हो ।

मान लीजिए कि संख्याओं में से दो य और २ य हैं । तो यदि हम तीनों संख्याओं का जोड़ ५ य^२ मान लें तो दो शर्तें पूरी हो जाती हैं क्योंकि—

$$५ य^२ - य^२ = ४ य^२, \text{ एक पूर्ण वर्ग,}$$

$$\text{और } ५ य^२ - ४ य^२ = य^२, \text{ एक पूर्ण वर्ग ।}$$

अब ५ को (ख) में दी हुई विधि से दो वर्ग में तोड़ो । मान लीजिए कि $\frac{१}{३}$ और $\frac{२}{३}$ प्राप्त हुए । $\frac{१}{३}$ का मूल $\frac{१}{३}$ है ।

अतः तीसरी संख्या को $\frac{१}{३}$ य मान लीजिए । इस प्रकार

$$य + २ य + \frac{१}{३} य = ५ य^२, \text{ अतः } य = \frac{१}{३} ।$$

तो संख्याएँ $\frac{१}{३}$, $\frac{२}{३}$, $\frac{३}{३}$ प्राप्त हो गयीं ।

पुस्तक के भाग ६ में समकोण त्रिभुजों पर प्रश्न दिये हुए हैं । ये त्रिभुज ऐसे हैं कि इनकी भुजाओं की लम्बाइयाँ और क्षेत्रफल भी पूर्ण वर्ग हों । इनमें से अधिकांश प्रश्न बहुत रोचक हैं । पुस्तक के शेष भाग में संख्या सिद्धान्त के कुछ साध्य दिये गये हैं जैसे—

(i) यदि संख्या २ स + १ दो वर्गों का जोड़ हो तो स विपम नहीं हो सकता । इसका अर्थ यह हुआ कि इस प्रकार की कोई संख्या

$$४ स - १ \quad \text{अथवा} \quad ४ स + ३$$

दो वर्गों का जोड़ नहीं हो सकती ।

(ii) इस प्रकार : (८ स + ७) की कोई संख्या तीन वर्गों का जोड़ नहीं हो सकती ।

है। पुस्तक में कतिपय तृतीय और चतुर्थ घात समीकरणों का भी समावेश है और एक समीकरण षष्ठ घात का भी है। प्रायः समस्त प्रश्नों में एक से ही समस्या है ऐसी दा, तीन अथवा चार समस्याएँ निराकरता जिनसे विभिन्न व्यंजक पूर्ण वर्ग, पूर्ण घन अथवा दोना का सम्मिश्रण बन जायें। हम यहाँ उक्त प्रकार के दा तीन प्रश्न देते हैं।

(क) भाग १ (२७)—ऐसी दा सख्याएँ उपलब्ध करना जिनसे जोड़ और गुणनफल दिये हुए हों।

आवश्यक अनुबन्ध—जोड़ के आधे का वर्ग गुणनफल से बड़ा होना चाहिए और दोना का अन्तर एक वर्ग सख्या होनी चाहिए।

दिया हुआ जाह = २०, गुणनफल ९६

मान लीजिए कि सरयाभा का अन्तर २ य है। तो सख्याएँ $१० + य$, $१० - य$ हुई।

$$१०० - य^२ = ९६$$

$$\text{अतः } य = २$$

इस प्रकार अभीष्ट सख्याएँ १२ और ८ हुई।

(ख) भाग २ (९)—एक ऐसी सख्या दी हुई है या दो वर्गों का योग है। उसे अन्य दो वर्गों के योग के रूप में व्यक्त करना है।

दी हुई सख्या $१३ = २^२ + ३^२$

इन वर्गों के मूल २ और ३ हैं। अतः एक वर्ग को $(य + २)^२$ और दूसरे को $(मय - ३)^२$ मानो जिसमें य कोई पूर्णांक है।

$$\text{तो } (य^२ + ४ य + ४) + (म^२ म^२ - ६ म य + ९) = १३,$$

$$\text{अर्थात् } (१ + म^२) य^२ + (४ - ६ म) य = ०$$

$$. य = \frac{६ म - ४}{म^२ + १}$$

$$\text{यदि } म = ३ \text{ तो } य = २$$

अतः अभीष्ट सख्याएँ $२^२$ और $३^२$ हुई।

म के अन्य पूर्णांक मान लेने से अनेक हल निकाल सकते हैं।

ऑयलर (Euler) ने इसी प्रश्न को सार्विक रूप दिया है। यदि त, य दो दी हुई सरयाएँ हैं तो समीकरण

$$य^२ + २^२ = त^२ + य^२$$

से य, २ के मान निकालने हैं।

स्पष्ट है कि यदि $य > त$, तो $२ < य$ ।

हो सकता। इन प्रकार प्रत्येक समीकरण एक नमूना बन गया है। इन यहाँ भाग २ में एक उदाहरण देते हैं।

प्रश्न १०—दो वर्ग संख्याएँ निकालना, जिनका अन्तर दिया हो।

दिया हुआ अन्तर = ६०.

मान लीजिए कि एक संख्या y^2 है। तो दूसरी संख्या इस प्रकार $(y+3)^2$ की होंगी। मान लीजिए कि $k=3$. तो प्रश्न के न्यास से,

$$(y+3)^2 - y^2 = 60.$$

∴ $y=4\frac{1}{2}$ और अभीष्ट वर्ग संख्याएँ $20\frac{1}{4}$, $24\frac{1}{4}$ प्राप्त हो गयी।

डायफ्रॉण्टस ने $k=3$ क्यों लिया, इसका उत्तर हमारे लिए देना कठिन है। जो प्रश्न उसने उठाया था उसका हल तो उसने निकाल लिया, किन्तु आधुनिक पद्धति में तो हम इस प्रकार चलेंगे—

मान लीजिए कि दिया हुआ अन्तर T है और y^2 , $(y+k)^2$ अभीष्ट संख्याएँ हैं। तो

$$(y+k)^2 - y^2 = T \quad ।$$

$$\therefore 2y+k^2 = T,$$

$$\text{अर्थात्} \quad y = \frac{T - k^2}{2k} \quad ।$$

अब y का मान सार्विक पदों में निकल आया। इस में T और k के विभिन्न मान रखने से हमें y के मानों की एक माला प्राप्त हो जायगी।

यहाँ डायफ्रॉण्टस की बीजगणितीय संकेतलिपि के विषय में भी दो शब्द कहना आवश्यक प्रतीत होता है। डायफ्रॉण्टस के समय तक बीजगणित में एक बहुत ही भौंडी संकेतलिपि का प्रयोग होता था। डायफ्रॉण्टस ने उसमें सुधार किया और इस प्रकार बीजगणितीय सूत्रों की लेखन विधि को सुगम बनाया। उसने जोड़ के लिए कोई स्वतन्त्र चिह्न निश्चित नहीं किया था। केवल पदों को एक के बाद एक रखने से वह $+$ चिह्न का काम निकाल लिया करता था। ऋण चिह्न के लिए उसने यह संकेत \uparrow निश्चित किया था।

इसमें सन्देह नहीं कि डायफ्रॉण्टस में विलक्षण प्रतिभा थी। वह किस गुरु के चरणों में बैठा और उसने कौन कौन सी पुस्तकें पढ़ीं इसका हमें कुछ पता नहीं। किन्तु उस समय यूनान की गिरी हुई गणितीय अवस्था को देखकर यह कहना पड़ता है कि वह “गुदड़ी का लाल” था।

ढायफण्टी समीकरणों पर व्यावहारिक प्रश्न—हमें भारतवर्ष में प्रचलित नये दशमलव सिक्कों की कई बार आवश्यकता पड़ेगी। अब हम यहाँ उनके नाम रखे देते हैं—

१००	नये पैस	=	१ रुपया
५०	"	=	१ धेली
२५	"	=	१ पाउली
१०	"	=	१ दहली
५	"	=	१ पजी
२	"	=	१ टक्को

मान लीजिए कि कोई महाजन एक रुपये की रेजगी पाउलिया में और पजिया में ही लेना चाहता है। धर्त यह है कि दोनों मिक्का में से कम-से-कम एक सिक्का अवश्य लेगा। तो वह कितने प्रकार से रुपया गुना सकता है। स्पष्ट है कि इसका उत्तर है—तीन प्रकार से—

- (I) ५ पजिया, ३ पाउलिया
- (II) १० पजिया, २ पाउलिया
- (III) १५ पजिया, १ पाउली।

उक्त प्रश्न से यह समीकरण

$$५ य + २५ र = १००, \text{ अर्थात् } य + ५ र = २०$$

बनता है। इस समीकरण का साविक रूप

$$क य + स र = ग$$

है। आधुनिक सहया मिद्धात की विधियों से उक्त विणिष्ट समीकरण का हल यह हागा—

$$य = ५ + ५ व, \quad र = ३ - व,$$

जिसमें व एक प्राचल (parameter) है। स्पष्ट है कि केवल धन पूर्णांक हल ही अपेक्षित हैं। और इन व्यंजकों में $व = ०, १$ अथवा २ रखने से ही ऐसे हल प्राप्त होते हैं। अतः उपरिलिखित हल म व के ये मान रखने से हमें यह उत्तर मिलता है—

$$य = ५, १०, १५$$

$$र = ३, २, १$$

उच्चघात ढायफण्टी समीकरण—एक से उच्च घात (Higher Degree) के ढायफण्टी समीकरणों को हल करना प्रायः कठिन होता है। इन समीकरणों पर बटून से गणिता ने सिर मारा है। अब इस विषय पर बहुत सा गणितीय साटिच इकट्ठा हो गया है। किन्तु एक कठिनाई यह आ पत्नी है कि प्रत्येक प्रश्न को हल करने का ढायफण्टस का एक निराग हो दग है। अब इसकी विधिया का मार्गीकरण नहीं

(४) भक्षाली गणित

भूमिका

भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रदेश में, जो अब पाकिस्तान का अंग बन गया है, पेशावर जिले में मर्दान एक तहसील का नाम है। उक्त तहसील में भक्षाली नाम का एक गाँव है। भक्षाली की सड़क के पूर्वी ओर कुछ टीले बने हुए हैं। सम्भव है कि ये टीले किसी पुरानी बस्ती के भग्नावशेष हों। सन् १८८१ में एक किसान एक टीले पर खुदाई कर रहा था। अकस्मात् उसे पृथ्वी में से ये वस्तुएँ प्राप्त हुईं—

- (क) पत्थर का एक त्रिभुजाकार दिया,
- (ख) सेल्वड़ी की एक कलम,
- (ग) काली मिट्टी का एक बड़ा लोटा जिसकी पेंदी में छेद किये हुए थे,
- (घ) भोजपत्र पर लिखी हुई एक हस्तलिपि।

हस्तलिपि बड़ी जीर्ण दशा में थी और उक्त किसान उसके मूल्य से अनभिज्ञ था। अतः उसे उठाकर लाने में भी उसके कई पृष्ठ नष्ट हो गये। केवल ७० पन्ने सुरक्षित रह गये हैं जिनमें से भी कुछ तो वज्रियों के रूप में ही हैं। इसी हस्तलिपि का नाम 'भक्षाली हस्तलिपि' पड़ गया है। डा० होर्नल (Hoernle) उन दिनों भारतीय इतिहास के विशेषज्ञ माने जाते थे। अतः उक्त पाण्डुलिपि परीक्षण के लिए उनके पास भेज दी गयी। डा० होर्नल ने उक्त पाण्डुलिपि पर तीन लेख लिखे जिनके अभिदेश ये हैं—

(१) Indian Antiquary XII (1883) 89—90

(२) Verhandlungen des VII Internationalen Orientalisten Congresses, Arische section p. (1886) p. 127

(३) Indian Antiquary XVII (1888) pp. 33—48, 271—9.

तत्पश्चात् हस्तलिपि इंग्लैंड भेज दी गयी और आज भी ऑक्सफ़ोर्ड (Oxford) के बॉड्लियन (Bodlian) पुस्तकालय में रखी हुई है। भारतीय सरकार ने उसका जी. आर. के (Kaye) द्वारा सम्पादन और प्रकाशन कराया है। हस्तलिपि तीन भागों में छापी गयी है। पहले दो भाग कलकत्ते के भारतीय पुरातत्त्व विभाग (Archaeological Survey of India) से १९२७ में प्रकाशित हुए थे। तीसरा भाग १९३३ में प्रकाशित हुआ। उक्त प्रकाशनों में पाठ के अतिरिक्त हस्तलिपि के फ़ोटो और वर्णान्तर (Transliteration) भी दिये गये हैं।

टायपेंडम की मृत्यु के पश्चात् के गणितज्ञों में आयम्ब्लिकस (Iamblicus) का नाम उल्लेखनीय है। इमका जन्म सीरिया के एक सम्मानित परिवार में हुआ था। जन्म तिथि का ठीक पता नहीं है, किन्तु मृत्यु ३३० ई० के लगभग हुई थी। इमने रोम में पोर्फायरी (Porphyry) से शिक्षा प्राप्त की और ग्रीस में अम्प्लियन काँ किया। इसने पिथगोरस और निकोमेखस पर बड़ी टीकाएँ लिखी हैं, किन्तु इमके अतिशय ग्रन्थ दर्शन सम्बन्धी थे। इमने गणितीय ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

(१) On the Pythagorean Life (पिथॅगोरी जीवन पर) काइसलिंग (Kießling) सस्वरण (१८१५), अंग्रेजी अनुवाद टेलर (Tay'or) (१८१८)

(२) On the general science of Mathematics (गणित के सार्वत्रिक विज्ञान पर) फ्रीस (Früs) कोपेनहॅगन (Copenhagen) (१७९०)

(३) On the Arithmetic of Nicomachus (निकोमेखस के अंकगणित पर)—टॅन्नुलियस (Tennulius) (१६८८)

(४) The Theological principles of Arithmetic (अंकगणित के धर्मशास्त्रीय सिद्धान्त)—अस्ट (Ast) लाइप्ज़िग (Leipzig) (१८१७)

आयम्ब्लिकस ने सख्या सिद्धान्त का निम्नलिखित प्रमेय सिद्ध किया था जो अब प्रसिद्ध हो गया है—

यदि हम प्रचार के ३ स, ३ स—१, ३ स—२ कोई से तीन क्रमागत पूर्णांक जोड़ें जायें और प्राप्त सख्या के अका को जोड़ा जाय और फिर इस जोड़ के अको को जोड़ें, और इसी प्रकार जोड़ते चले जायें तो अन्त में सख्या ६ ही प्राप्त होगी।

उदाहरण—एक सरया ले लीजिये जो ३ से भाज्य हो। मान लीजिए हमने १७४३ लिया। अब इसमें इससे ठीक पहले के दो पूर्णांक १७४१ और १७४२ जोड़ दीजिए। जोड़ ५२२६ हुआ। इसके अका का जोड़ $५+२+२+६$ अर्थात् १५ हुआ। इस सरया के अका का जोड़ $= १+५$ अर्थात् ६

हमने इस विभाग में केवल यूरोप के गणितज्ञों का ही उल्लेख किया है। कारण यह है कि उक्त काल में एशिया में जो गणितज्ञ हुए वे प्रायः ज्यामितीय अथवा ज्योतिषीय थे। ज्योतिष हमारे क्षेत्र में बाहर का विषय है और उनके ज्यामितीय कार्य का विवरण आगामी अध्याय में यथास्थान आ ही जायगा।

हस्तलिपि प्राचीन पारदा लिपि में लिखी गयी है। पृष्ठ का वर्तमान आकार $६" \times ३\frac{१}{४}"$ है। किन्तु प्रायः सभी पत्रों के ऊपर और नीचे के भाग नष्ट हो चुके हैं। इसलिए यह पता चलाना कठिन है कि पृष्ठ का मूलिक आकार कितना था। डा० हेनरिल ने लिखा है कि पुस्तक के मत्ताश्रयें सूत्र वाले पृष्ठ के ऊपर और नीचे कदाचित् दो वर्ग आकृतियाँ बनी हुई थीं जिनके भग्नावशेष दृष्टिगोचर हो रहे हैं। उनसे पता चलता है कि पृष्ठ का मूलिक आकार $७" \times ८\frac{१}{४}"$ के लगभग रहा होगा। इस कथन को पुष्टि इस बात से भी मिलती है कि बहुत सी प्राचीन पाण्डुलिपियाँ वर्गाकार कागज पर लिखी जाती थीं।

हस्तलिपि के आदि और अन्त के कितने पन्ने नष्ट हो चुके हैं, यह जानने का कोई साधन दिखाई नहीं देता। इतना अवश्य पता चलता है कि पुस्तक का आकार बृहत् था और उसका जितना भाग बच रहा है वह आधे से भी कम है। सम्भवतः पुस्तक अध्यायों अथवा खण्डों में बाँटी हुई थी। पुस्तक का सबसे पहला सूत्र जो सुरक्षित रह गया है, नवां है और सबसे अन्तिम सूत्र ५७ वां। अधिकांश पत्रों के दाहिने और बायें भाग भी नष्ट हो चुके हैं। पुस्तक का आदि और अन्त नष्ट हो जाने के कारण न तो पुस्तक के नाम का पता चल पाया है, न लेखक के नाम का।

पुस्तक सूत्रों में दी गयी है। प्रत्येक सूत्र के पश्चात् उदाहरण दिये गये हैं। तत्पश्चात् वही उदाहरण अंकों और संकेतों द्वारा व्यक्त किये गये हैं। प्रकरण के इस अंश को स्थापना कहते हैं। स्थापना के बाद प्रश्न का हल दिया गया है जिसे करण कहते हैं। अन्त में उपपत्ति आती है जिसका नाम प्रत्यय दिया गया है। यह परिपाटी ब्रह्मगुप्त और भास्कर की परिपाटी से भिन्न दीख पड़ती है। ये दोनों गणितज्ञ प्रश्नों के उत्तर दिया करते थे, साधारणतया पूरा हल अथवा उपपत्ति नहीं देते थे।

संकेतलिपि (Notation)

हस्तलिपि में साधारणतया ब्रह्मगुप्त और भास्कर की संकेतलिपि का ही प्रयोग किया गया है, किन्तु एक अपवाद बड़ा महत्वपूर्ण है। उक्त हस्तलिपि में ऋण चिह्न के लिए + चिह्न का प्रयोग किया गया है जो आजकल धन चिह्न का काम देता है और यह चिह्न जिस अंक पर लगाया गया है उसके पीछे लिखा गया है। जैसे—

१८ ११+

१ १

का अर्थ है १८—११ अर्थात् ७।

हस्तलिपि प्राचीन गारदा लिपि में लिखी गयी है। पृष्ठ का वर्तमान आकार $६" \times ३\frac{१}{४}"$ है। किन्तु प्रायः सभी पत्रों के ऊपर और नीचे के भाग नष्ट हो चुके हैं। इसलिए यह पता चलाना कठिन है कि पृष्ठ का मौलिक आकार कितना था। डा० हॉर्गेल ने लिखा है कि पुस्तक के सत्तादसवें सूत्र वाले पृष्ठ के ऊपर और नीचे कदाचित् दो वर्ग आकृतियाँ बनी हुई थीं जिनके भग्नावशेष दृष्टिगोचर हो रहे हैं। उनसे पता चलता है कि पृष्ठ का मौलिक आकार $७" \times ८\frac{१}{४}"$ के लगभग रहा होगा। इस कथन की पुष्टि इस बात से भी मिलती है कि बहुत सी प्राचीन पाण्डुलिपियाँ वर्गाकार कागज पर लिखी जाती थीं।

हस्तलिपि के आदि और अन्त के कितने पन्ने नष्ट हो चुके हैं, यह जानने का कोई साधन दिखाई नहीं देता। इतना अवश्य पता चलता है कि पुस्तक का आकार बृहत् था और उसका जितना भाग बच रहा है वह आवे से भी कम है। सम्भवतः पुस्तक अध्यायों अथवा खण्डों में बाँटी हुई थी। पुस्तक का सबसे पहला सूत्र जो सुरक्षित रह गया है, नवां है और सबसे अन्तिम सूत्र ५७ वां। अधिकांश पत्रों के दाहिने और बायें भाग भी नष्ट हो चुके हैं। पुस्तक का आदि और अन्त नष्ट हो जाने के कारण न तो पुस्तक के नाम का पता चल पाया है, न लेखक के नाम का।

पुस्तक सूत्रों में दी गयी है। प्रत्येक सूत्र के पश्चात् उदाहरण दिये गये हैं। तत्पश्चात् वही उदाहरण अंकों और संकेतों द्वारा व्यक्त किये गये हैं। प्रकरण के इस अंग को स्थापना कहते हैं। स्थापना के बाद प्रश्न का हल दिया गया है जिसे करण कहते हैं। अन्त में उपपत्ति आती है जिसका नाम प्रत्यय दिया गया है। यह परिपाटी ब्रह्मगुप्त और भास्कर की परिपाटी से भिन्न दीख पड़ती है। ये दोनों गणितज्ञ प्रश्नों के उत्तर दिया करते थे, साधारणतया पूरा हल अथवा उपपत्ति नहीं देते थे।

संकेतलिपि (Notation)

हस्तलिपि में साधारणतया ब्रह्मगुप्त और भास्कर की संकेतलिपि का ही प्रयोग किया गया है, किन्तु एक अपवाद बड़ा महत्वपूर्ण है। उक्त हस्तलिपि में ऋण चिह्न के लिए + चिह्न का प्रयोग किया गया है जो आजकल घन चिह्न का काम देता है और यह चिह्न जिस अंक पर लगाया गया है उसके पीछे लिखा गया है। जैसे—

$$१८ \ ११ +$$

$$१ \ १$$

का अर्थ है १८—११ अर्थात् ७।

जानते हैं कि प्रत्यय के रूप में क छोटे का द्योतक है जैसे पुस्तक, बालक, पत्रक में। इस वर्ण का 'छोटे' से कैसे सम्बन्ध हुआ यह इन शब्दों पर ध्यान देने से निम्नलिखित प्रकट हो जायगा—

कन अथवा कण	= छोटा टुकड़ा
कनीयस्	= छोटा
कनिष्ठ	= सबसे छोटा
कन अंगुली	= सबसे छोटी अंगुली
कन्या	= बर्बारी (छोटी) लड़की

इन शब्दों का मूल संस्कृत धातु 'कनै' है जिसका अर्थ है 'छोटा करना' अथवा 'कम करना'। इस धातु से भूत कृदन्त बनेगा 'कनित' जिसका अर्थ होगा 'कम किया हुआ'। अतएव संभव है कि प्राचीन समय में गणितज्ञों ने क को 'कनिन' का संक्षिप्त रूप मान लिया हो और उसका प्रयोग ऽण चिह्न के लिए किया हो। और जब अशोक लिपि के वर्ण का रूपान्तर शारदा लिपि के वर्णों में हुआ हो तब अन्य वर्ण के रूपों में तो मौलिक अन्तर हो गया हो, किन्तु क का रूप प्रायः ज्यों-का-त्यों रह गया हो।

डा० होर्नल ने एक अनुमान यह दिया है कि + न्यून के संक्षिप्त रूप नू (प्राकृत न्यू) का विकार है। न्यून का अर्थ है घटाया हुआ और अशोक लिपि के अक्षर नू का रूप बहुत कुछ + चिह्न से मिलता जुलता है। हमें उपरिलिखित अनुमान उनके इस अनुमान से अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

डा० दत्त का विचार है कि + क्ष का रूपान्तर है जो संस्कृत शब्द 'क्षय' का संक्षिप्त रूप है। 'क्षय' का अर्थ है 'घटना'। अतः अर्थ तो ठीक ठीक बैठ जाता है। ब्राह्मी वर्णमाला और मक्षाली वर्णमाला दोनों के क्ष का रूप + से बहुत कुछ मिलता जुलता है। केवल इतना अन्तर है कि उक्त वर्ण में खड़ी रेखा के निम्न भाग में एक घुण्डी सी बनी रहती है। यह संभव है कि उक्त वर्ण के अधिक प्रयोग के कारण घुण्डी उड़ गयी हो और + रह गया हो। हम यह नहीं कह सकते कि डा० दत्त का यह अनुमान कहाँ तक सत्य है, किन्तु यह मानना पड़े गा कि यह सुझाव देने में उन्होंने दूर की कोड़ी मारी है।

मक्षाली हस्तलिपि में पूर्णांक लिखने की यह पद्धति है कि अंक के नीचे १ लिखा दिया जाता है, किन्तु दोनों के बीच में भाग रेखा (Solidus) नहीं दी गयी है। यह परिपाटी भारत के कुछ भागों में अभी तक प्रचलित है।

हस्तलिपि की सकेतना इस उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी—

०	१	१	१	१	भा दो १६	फल ८१
१	१	१	१	१	१	
	३+	३+	३+	३+		

इसका अर्थ है—

$$य = \frac{१६}{(१-३)(१-३)(१-३)(१-३)} = ८१.$$

अज्ञात राशि के लिए हस्तलिपि में बिन्दी ० का प्रयोग किया गया है। आजकल उसे य से निरूपित किया जाता है। अतः पहले स्तम्भ का अर्थ हुआ $\frac{य}{१}$ अर्थात् य। अगले चार स्तम्भों में से प्रत्येक का अर्थ है $(१-३)$ मिश्र मर्यापे ऊपर नीचे लिखी गयी हैं। इस प्रकार

१
१
३

का अर्थ होगा $१+३$ । किन्तु यदि ३ के पश्चात् + चिह्न हो तो उक्त व्यंजक का मान $(१-३)$ होगा। गुणा के लिए हस्तलिपि में किसी विशेष चिह्न का प्रयोग नहीं किया गया है। केवल जिन मर्यापों को गुणा करना हो उन्हें पास पास लिख दिया जाता है। अतएव दूम्बरे, तीसरे, चौथे, पाववे स्तम्भों का मिलाकर अर्थ हुआ

$$\left(१-\frac{१}{३}\right)\left(१-\frac{१}{३}\right)\left(१-\frac{१}{३}\right)\left(१-\frac{१}{३}\right).$$

भा दो = भाग दो।

साधर्म्य यह है कि उपरिलिखित गुणनफल से १६ को भाग दो। तो फल ८१ मिलेगा।

यहाँ तक तो ठीक है। किन्तु एक प्रश्न यह रह जाता है कि इस प्रसंग में 'दो' का क्या प्रयोजन है। डा० के ने इसका एक निर्वचन (Interpretation) दिया है। हमें हम्नगन है

$$\frac{१६}{(१-३)(१-३)(१-३)(१-३)} = ८१.$$

० The Bhakshali manuscript Pts I, II, III आगे इन्हें इस प्रकार भगवती I, II, III लिखा जायगा—देखिए, III २०७।

अर्थात् $८१ (१-\frac{१}{३}) (१-\frac{१}{३}) (१-\frac{१}{३}) (१-\frac{१}{३}) = १६$.

अब एक एक पग पग विचार कीजिए। ८१ को $(१-\frac{१}{३})$ ने गुणा करने से

$८१ - \frac{८१}{३}$ अर्थात् ८१-२७ मिलता है। इन 'शेष' का मान ५४ हुआ। अब

$$५४ (१-\frac{१}{३}) = ५४ - \frac{५४}{३}; \quad \text{शेष} = ३६,$$

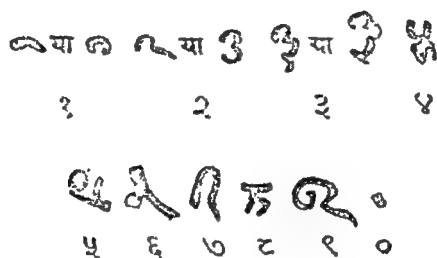
$$३६ (१-\frac{१}{३}) = ३६ - \frac{३६}{३}, \quad \text{शेष} = २४$$

$$\text{अन्त में, } २४ (१-\frac{१}{३}) = २४ - \frac{२४}{३} = १६.$$

उपरिलिखित प्रश्न को शब्दों में इस प्रकार लिखा जायगा—

वह कौन सी संख्या है जो १६ को $(१-\frac{१}{३}) (१-\frac{१}{३}) (१-\frac{१}{३}) (१-\frac{१}{३})$ से भाग देने पर प्राप्त होती है? उत्तर ८१.

हस्तलिपि में दशमिक पद्धति की संकेतलिपि का प्रयोग किया गया है। उसके अंक इस प्रकार हैं—



चित्र ३२—भक्षाली हस्तलिपि के अंक।

स्पष्ट है कि उक्त हस्तलिपि में बिन्दी का प्रयोग अज्ञात राशि के अतिरिक्त शून्य के लिए भी किया गया है। आधुनिक पद्धति में इसका प्रयोग केवल शून्य के अर्थ में ही रह गया है और अब इसका आकार बिन्दी से बढ़ कर पूरा वृत्त 0 हो गया है। डा. के ने यह सिद्ध करने की प्राणपण से चेष्टा की है कि दशमिक अंकों और शून्य का आविष्कार विदेश में हुआ और विदेश से यह प्रणाली भारत में आयी। किन्तु अब यह वाद निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुकी है कि दशमिक पद्धति और शून्य दोनों की जननी भारत भूमि ही है। इतना अवश्य है कि ० का आरम्भ 'आदि संख्या' (Initial Number) के रूप में नहीं हुआ, वरन् 'रिक्ति' अथवा 'अभाव' के रूप में हुआ। 'शून्य' का अर्थ ही है 'रिक्ति' और आजकल भी बहुत सी वैज्ञानिक पुस्तकों में यह शब्द vacuum अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है।

इस प्रकार (४६) का अर्थ होता था 'छियालीस' किन्तु (४६) का अर्थ होता था 'चार सौ छ'। यदि दोनों अर्थों के बीच में जितना स्थान छूटना चाहिए उससे कम छोड़ा जाता था तो पाठक को भ्रम हो जाता था कि लेखक का तात्पर्य ४६ से है या ४०६ से। इस भ्रम के निवारण के लिए उसे इस प्रकार (४. ६) लिखा जाने लगा। इसी प्रणाली का आपुनिक रूप (४०६) हो गया है। अब प्रश्न यह रह जाता है कि जो चिह्न शून्य के लिए निर्धारित किया गया उसीसे अज्ञात राशि का निरूपण क्यों किया गया। किसी प्रश्न के बचन में अज्ञात राशि ही ऐसी राशि है जो आरम्भ में भरी नहीं जा सकती। अतः वह एक ऐसी राशि है जिसका मान निश्चित कर रिकन स्थान पर भरना है। इसीलिए जो बिन्दी रिकन के लिए निर्धारित की गयी उसी से अज्ञात राशि का नाम भी लिया गया। किन्तु यह कहना गलत होगा कि ० को अज्ञात राशि के चिह्न के रूप में निश्चित कर दिया गया था जैसा कि डा० होर्नल और डा० के मान बैठे हैं। शून्य मुख्यतः 'रिकन स्थान' के लिए ही निर्धारित था। अज्ञात राशि के लिए कोई निश्चित चिह्न था ही नहीं। ऐसा समझने के लिए हमारे पास दो कारण हैं—

(१) यदि ० वास्तव में अज्ञात राशि का चिह्न होता तो प्रश्नों के हल करने की क्रियाओं में अनेक स्थानों पर इसका प्रयोग होता। किन्तु समस्त हस्तलिपि में वही पर भी प्रश्न के बचन के पश्चात् ० का प्रयोग नहीं देना।

(२) वही वही उक्त चिह्न के बदले 'शून्य स्थान' लिखा गया है। देखिए अध्यायी II पृष्ठ १२५

कुछ प्राचीन पुस्तकें इस प्रकार लिखी जाती थी कि किसी भी पृष्ठपुग्म के दाएँ ओर बाएँ पन्ने पर एक ही सत्या पहनी थी। इस पृष्ठपुग्म को अंग्रेजी में फोलियो (Folio) कहते हैं। दाहिना पृष्ठ रेक्टो (Recto) और बायाँ पृष्ठ वर्सो (verso) कहलाता है। हम इन शब्दों के लिए निम्नलिखित समानार्थी (equivalents) का प्रयोग करेंगे—

Folio जोशी

Recto दायाँ

Verso बायाँ

यह ध्यातव्य है कि वही वही शब्दों की ध्यातव्यी से ली है। उपरिर्लिखित सन्दर्भ जोशी २५ बाएँ और २६ दाएँ पर आते हैं। पहले स्थान पर तो 'शून्य स्थान' ही लिखा हुआ है। दूसरे स्थान पर केवल 'शून्य' लिखा है, किन्तु उसके बाद के बड़ा ग बाएँ बाएँ हा पूरे हैं। अनुमान है कि वही वही भी 'शून्य स्थान' ही होगा। ० का प्र

प्रयोग भक्षाली हस्तलिपि में कोई निगल्य नहीं है। श्रीधर और भास्कर ने भी उन अर्थ में ० का प्रयोग किया है। श्रीधर की त्रिगुणिका में पृष्ठों १९ और २९ पर इसके उदाहरण मिलते हैं। लीलावती के पृष्ठ २१५ पर यह उदाहरण आता है:—

कोई दाता पहले दिन तीन द्रम्म देकर, प्रति दिन दो द्रम्म की वृद्धि से देता रहा। उस प्रकार उस दाता ने तीन सौ गठ द्रम्म दिये। तो कितने दिन में ३६० द्रम्म दे चुका, यह बताओ।

न्यास : आदि ३, चय २, गच्छ ०, सर्वघन ३६० .

यह प्रश्न समान्तर श्रेणी (Arithmetical Progression) का है और इसमें गच्छ (पदों की संख्या) निकालनी है जिसके लिए ० का प्रयोग किया गया है। श्रेणी का प्रथम पद (First term) ३, सावन्तर (Common Difference) २ और पदों का योग (Sum of terms) ३६० दिये हुए हैं।

यों भास्कर के समय तक बीजगणित की संकेतलिपि काफी विकसित हो चुकी थी, फिर आचार्य महोदय ने अज्ञात राशि के संकेत य का प्रयोग न करके ० का प्रयोग क्यों किया? कारण यह है कि उक्त प्रकार के प्रश्न लीलावती में अंकगणित की विधि से किये गये हैं और अंकगणित में बीजगणित के संकेतों का प्रयोग वर्जित है।

डा० होर्नल लिखते हैं कि "समय की गति से शून्य का दूसरा प्रयोग (अज्ञात राशि वाला) भारत के बाहर के देशों में लुप्त हो गया और उसका प्रयोग स्थिति मान की दगमिक पद्धति की आदि संस्था के रूप में ही रह गया। उक्त चिह्न का दोहरा उपयोग भारत में कहीं कहीं पर अब भी दृष्टिगोचर होता है। यह तथ्य इस बात की पुष्टि करता है कि उक्त पद्धति की जननी भारत देश ही है।"

शब्दावली

भक्षाली हस्तलिपि के अविभाज्य पारिभाषिक शब्द वही हैं जो अन्य हिन्दू ग्रन्थों में प्रयुक्त हुए हैं। किन्तु कुछ शब्दों में अन्तर भी है। हम यहाँ ऐसे शब्दों की सूची देते हैं।

हस्तलिपि का शब्द	अन्य ग्रन्थों का शब्द	अंग्रेजी समानक
वर्ग	श्रेणी	Progression or Series
सदृशीकरण } ^२	सर्वर्णन	Reduction to a
हर साम्यकरण }		denominator

१. The Bhakshali Manuscript—The Indian Antiquary XVII (1888) p. 35.

२. B. B. Dutt : The Bakhshali Mathematics—Bull. cal. Math. soc. XXI (1929) 1—60 p. 37.

स्थापना }
न्यास स्थापना }

न्यास

Data, or the statement
of a problem.

इस सूची में 'स्थापना' का शब्द महत्वपूर्ण है। मध्यकालीन समय में प्रायः सर्वत्र इसके स्थान पर 'न्यास' का प्रयोग हुआ है। हस्तलिपि में कहीं पर 'स्थापना' का और कहीं पर 'न्यास स्थापना' प्रयुक्त हुआ है। इस तथ्य से यह निष्कर्ष निकलता है कि 'स्थापना' प्राचीन है। धीरे-धीरे इसके स्थान पर 'न्यास' का प्रयोग होने लगा। बीस के दिनों में एक समय ऐसा आया जब स्थापना का प्रयोग बन्द होने लगा और न्यास का प्रयोग बढ़ने लगा। ऐसे ही परिवर्तन युग में ब्रह्मचिन्त मशाली गणित का प्रादुर्भाव हुआ।

'संवर्णन' पर भी विचार कीजिए। आर्यभट्ट के समय (५९९ ई०) से पिछली नई शताब्दियों तक बराबर 'संवर्णन' का प्रयोग होता रहा है। किन्तु मशाली हस्तलिपि में यह शब्द केवल एक स्थान पर आया है। इससे यह प्रमाणित होता है कि मशाली हस्तलिपि आर्यभट्ट के समय से पहले की है। इसका अर्थ यह हुआ कि हस्तलिपि सम्भवतः तीसरी या चौथी शताब्दी ई० की है।

मशाली पाण्डुलिपि में नई ऐसे शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं जो और किसी भी प्राचीन हिन्दू ग्रन्थ में नहीं पाये जाते।

शब्द	अर्थ	अंग्रेजी समानक
पर्यं	श्रेणी	Series
धात	क्षेप, बिस्त	Instalment
प्रवृत्ति	मूल धन	Original amount
श्रम	अनुक्रम	Sequel ce

किन्तु एक बात में मशाली पाण्डुलिपि और अन्य ग्रन्थों में समानता है। तब्यों के प्रथमाक्षरों का प्रयोग शब्दों की संक्षिप्तिकाओं (Abbreviations) के रूप में किया गया है। इसका एक सुन्दर उदाहरण जोड़ी २७ बायें में मिलता है—

१ प्र	७ द्वि	१० तृ	८ च	११ प
७ द्वि	१० तृ	८ च	११ प	९ प्र

युग जान प्रत्येक | १६ | १७ | १८ | १९ | २०

इस प्रश्न में पाँच अज्ञात राशियाँ हैं। प्र, द्वि, तृ, च, पं क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम की संक्षिप्तिकाएँ हैं। प्रश्न में निम्नलिखित पाँच समीकरण दिये हुए हैं—

$$\begin{aligned} y_1 + y_2 &= 16, & y_1 + y_3 &= 17, & y_1 + y_4 &= 18, \\ y_2 + y_5 &= 19, & y_3 + y_4 &= 20 \end{aligned}$$

हस्तलिपि की विषयवस्तु (Contents)

हस्तलिपि की विषयवस्तु के विषय में डा० होर्नल ने अपने उपरिलिखित लेख के पृ० ३३ पर लिखा है—

पुस्तक का विषय अंकगणित है। पुस्तक में दैनिक जीवन सम्बन्धी बहुत से प्रश्न दिये हुए हैं। यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

(१) एक गाड़ी में १० के बदले ५ घोड़े जोते गये हैं। १० घोड़े मिलकर १०० (योजन) चले जाते थे। ५ घोड़े कितनी दूर जा सकेंगे ?

(२) दूसरा उदाहरण जटिल है—

एक व्यक्ति पहले दिन ५ योजन चलता है और फिर प्रत्येक दिन (पिछले दिन से) ३ योजन अधिक चलता है। एक दूसरा व्यक्ति उससे ५ दिन पहले चलता है और प्रति दिन ७ योजन चलता है। कितने समय पश्चात् दोनों मिलेंगे ?

(३) यह प्रश्न और भी जटिल है—

तीन व्यापारियों में से एक के पास ७ घोड़े हैं, दूसरे के पास ९ खच्चर और तीसरे के पास १० ऊँट। उनमें से प्रत्येक इस शर्त पर ३ पशु दे देता है कि इन पशुओं को तीनों में इस प्रकार बराबर बराबर बाँटा जाय कि अन्त में तीनों की सम्पत्ति समान हो जाय। प्रत्येक व्यापारी की मौलिक सम्पत्ति कितनी थी और प्रत्येक पशु का क्या मूल्य था ?

इन प्रश्नों को हल करने के जो नियम दिये गये हैं उनकी विधि विलकुल यान्त्रिक है और उसमें विचार करने की बहुत कम आवश्यकता पड़ती है। अन्तिम प्रश्न का हल इस प्रकार है—

“दान के पशुओं की संख्या (३) को प्रत्येक व्यापारी के पशुवन की संख्या (७, ९, १०) में से घटाओ। तीनों शेषों (४, ६, ७) को गुणा करो। गुणनफल १६८ आया। इस गुणनफल को क्रमशः तीनों शेषों से भाग दो—

$$\frac{168}{4} = 42; \quad \frac{168}{6} = 28; \quad \frac{168}{7} = 24.$$

अब तीना पणुआ का मूल्य आ गया—

$$१ \text{ घाडे का मूल्य } ४२$$

$$१ \text{ गन्वर } " = २८$$

$$१ \text{ ऊँट } = २४$$

इस प्रकार तीना की सम्पत्ति के मूल्य मान

$$४२ \times ७ = २९४,$$

$$२८ \times ९ = २५२,$$

$$२४ \times १० = २४०$$

हुग। दान के पश्चात् उनकी सम्पत्तियाँ बराबर हो गयी क्योंकि

$$४२ \times ४ = १६८,$$

$$२८ \times ६ = १६८,$$

$$२४ \times ७ = १६८$$

तत्पश्चात् तीना का दान के पणुआ में १ घोड़ा, १ गन्वर, १ ऊँट मिला जिसका
मूल्य $= ४२ + २८ + २४ = ९४$

अतः, अन्त में तीना के पास $१६८ + ९४$ अर्थात् २६२ मूल्य की सम्पत्ति हो गयी।

नियम बहुत ही सुमित मापा में दिये गये हैं और उदाहरणों द्वारा समझाये गये हैं। प्रत्येक सूत्र के पश्चात् साधारणतया वा उदाहरण और कहीं कहीं पर अनेक उदाहरण दिये गये हैं। २५ वें सूत्र पर तो १५ उदाहरण दिये गये हैं।

प्रगट रूप में मशाली हस्तलिपि का विषय अकगणित है, किन्तु प्रश्नों के हल इतने व्यापक रूप में दिये गये हैं कि उन्हें बीजगणितीय हल कहना अधिक उपयुक्त होगा, यद्यपि कहीं पर भी बीजगणितीय सकेतलिपि का प्रयोग नहीं किया गया है। नियम इतनी सूत्रिक मापा में दिये गये हैं कि यदि उनके पश्चात् उदाहरण न दिये गये होते तो उनका अर्थ समझना भी कठिन हो जाता। उदाहरणों के अन्त में उनकी उपपत्तियाँ अथवा सत्यापन विस्तारपूर्वक दिये गये हैं।

हस्तलिपि में तान प्रकार के प्रश्न दिये गये हैं—अकगणितीय, बीजगणितीय और ज्यामितीय। किन्तु ज्यामितीय प्रश्न तो बहुत ही कम हैं। यह सम्भव है कि हस्तलिपि का जो अंश नष्ट हो चुका है उसमें और भी ज्यामितीय प्रश्न रहे हों। किन्तु इस आधार पर प्रश्नों का विभाजन सुनिश्चित रूप में नहीं किया जा सकता क्योंकि कुछ प्रश्नों के विषय में यह कहना कठिन है कि वे तीना में से कौन से क्षेत्र के हैं। उनमें दो और कभी-कभी तीनों क्षेत्र समाविष्ट दिखाई पड़ते हैं। कृति के मापों का विभाजन इस प्रकार किया जाय तो अच्छा है—(क) विद्योचित (ख) व्यापारिक (ग) विविध।

व्यापारिक प्रश्न बहुत थोड़े हैं। हानि-लाभ के प्रश्न एक छोटे से अंश में हैं और व्याज पर केवल एक प्रश्न है। विविध प्रश्न प्राचीन हिन्दू संस्कृति से सम्बद्ध हैं। कुछ प्रश्न सीता, राम और रामायण के अन्य पात्रों पर हैं, कुछ शिव, पार्वती पर, कुछ सूर्य देव के रथ इत्यादि पर।

पाठकों और गवेषकों की सुविधा के लिए हस्तलिपि की विषयवस्तु को कई विभागों में बाँटा गया है जिन्हें रोमन वर्णों से निरूपित किया गया है—

(१) वर्ग मूल (Square Roots)	C
(२) एकघात समीकरण (Linear Equations)	A
(३) विशेष प्रश्न	G
(४) वर्ग समीकरण (Quadratic Equations)	C
(५) समान्तर श्रेढ़ियाँ (Arithmetical Progressions) B और	C
(६) द्विघात अनिर्णीत समीकरण (Indeterminate Quadratic Equations) A और K	
(७) मिश्र श्रेणियाँ (Compound Series)	F
(८) सुवर्ण गणित (Computations relating to gold)	H
(९) आय-व्यय, हानि-लाभ	L, D, और E
(१०) विविध प्रश्न	M

इनके अतिरिक्त कुछ प्रश्न मापिकी पर भी दिये गये हैं। हम यहाँ हस्तलिपि की विषयवस्तु के कुछ नमूने देते हैं।

पाठ के नमूने

(क) वर्ग मूल आदि

(१) हस्तलिपि में कुछ प्रश्न ऐसे दिये गये हैं जिनमें समान्तर श्रेढ़ी, वर्ग-मूल और वर्ग-समीकरण में से दो या तीनों प्रकरणों का समावेश हो जाता है।

(१) जोड़ी ७ वार्याँ

आ ३	उ ४	प०	नित्यदत्त ७
१	१	१	१

आदि विगोध्य आदि $\boxed{३}$ नियत $\boxed{७}$ विगोध्य $\boxed{४}$
 उत्तगर्धेन भाजित । उत्तर $\boxed{४}$ अनेन भाजित $\boxed{४}$ जातम $\boxed{२}$

लघ्व मरूप एष रूपाधिक $\boxed{३}$ एष काल

आ ३ । उ ४ । प ३ । रूपाण करणेन फल ह २१
 १ । १ । १ ।

इसके पश्चात् उक्त नियम का सत्यापन और एक उदाहरण दिया गया है।

उक्त प्रश्न में एक समान्तर श्रेणी दी गयी है जिसमें

प्रथम पद = ३, सावान्तर = ४, सर्वधन = ७ × (गच्छ)

तो गच्छ (पदा की संख्या) निकालनी है।

कायविधि इस प्रकार की प्रतीत होती है

यदि गच्छ = ग तो

$$७ ग = \left[(ग - १) \frac{४}{२} + ३ \right] ग,$$

$$\text{अर्थात् } ७ = (ग - १) २ + ३ \quad ग = ३$$

अतः सर्वधन = २१

उक्त प्रश्न में यह सूत्र निहित दिखाई पड़ता है—

$$\text{सर्वधन} = गच्छ \left[(गच्छ - १) \frac{चय}{२} + \text{आदि} \right]$$

यदि सर्वधन = स, गच्छ = ग, चय = च, आदि = अ रखे तो सूत्र का यह रूप हो जायगा —

$$स = ग \left[(ग - १) \frac{च}{२} + अ \right]$$

यह सूत्र समान्तर श्रेणी के योग के आधुनिक सूत्र से पूरा पूरा मेल खाता है। इस सूत्र से वर्ग समीकरण

$$च स^२ + (२ अ - च) स - २ स - ०$$

प्राप्त होता है।

इस समीकरण का हल करने से

$$स = \frac{-(२ अ - च) + \sqrt{(२ अ - च)^२ + ८ च स}}{२ च}$$

मशाली हस्तलिपि में यह सूत्र स्पष्ट रूप से नहीं दिया गया है, किन्तु इसका प्रयोग कई स्थानों पर हुआ है, जैसे इस प्रश्न में—

अष्टोत्तरधने गुणिते । ४० । द्विधनम वादि च.....

शुद्ध तस्मान्

अकृति शिल्पः.....तद् द्विमंगुण कृत

२५	११८३३	ह	१८४८	कृतिक्षय कृतिम्
१८४८		१८४८			

जाता १९८५समभक्तं उत्तरम् द्विगुणं २ अनेन
१८४८

भक्त्वा १९८५ एष पञ्च कस्य पदम् ॥ अस्यप्र.....
१८४८

प्रश्न के आरम्भ का भाग नष्ट हो चुका है। डा० के ने उसकी पूर्ति इस प्रकार की है—

अ=१, च=१, स=५.

$$\begin{aligned} \text{अतः स} &= \frac{\sqrt{(2\alpha - \beta)^2 + 4\beta\gamma} - (2\alpha - \beta)}{2\beta} \\ &= \frac{1}{2} \left[\sqrt{(2-1)^2 + 4 \cdot 1 \cdot 4} - (2-1) \right] = \frac{\sqrt{17}-1}{2} \end{aligned}$$

करणी $\sqrt{81}$ का प्रथम सन्निकटन (Approximation) निकालने के लिए इस सूत्र

$$\sqrt{k^2 + x} = k + \frac{x}{2k}$$

का प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार

$$\sqrt{४१} = \sqrt{३६+५} = ६ + \frac{५}{१२} = \frac{७७}{१२}.$$

द्वितीय मन्त्रिवटन का सूत्र उपरिलिखित उदाहरण में निहित है। “अवृत्ति श्लिष्ट वृत्ति क्षय” वाले अक्ष का निर्वचन डा० दत्त ने इस प्रकार दिया है—

“अयमं सख्या के मूल का निवट मान निकालने के लिए समीपतम वर्ग सख्या को घटाओ। शेष का उबन सख्या के मूल के दुगुने से भाग दो। इस भिन्न के वर्ग के आधे का मूल और भिन्न के जोड़ से भाग दो। लब्ध सख्या को घटा दो। तो मूल का निवट मान, वर्ग माया से हीन, निरल आवेगा।”

इस सूत्र के अनुसार,

$$\sqrt{k^2 + x} - k = \frac{x}{2k} - \frac{\left(\frac{x}{2k}\right)^2}{2\left(k + \frac{x}{2k}\right)}.$$

इस प्रकार

$$\begin{aligned}\sqrt{४१} &= \sqrt{६^2 + ५} = ६ + \frac{५}{१२} - \frac{\left(\frac{५}{१२}\right)^2}{2\left(६ + \frac{५}{१२}\right)} \\ &= ६ + \frac{५}{१२} - \frac{२५}{१४४} \times \frac{६}{७७} = \frac{११८३३}{१८४८}.\end{aligned}$$

और हस्तलिपि के पाठ में यही मान दिया भी है।

$$\begin{aligned}\text{अतः } \pi &= \frac{१}{२} (\sqrt{४१} - १) = \frac{१}{२} \left(\frac{११८३३}{१८४८} - १ \right) \\ &= \frac{१}{२} \cdot \frac{९९८५}{१८४८} = \frac{९९८५}{३६९६}\end{aligned}$$

वर्ग मूल के इस सूत्र के अन्य प्रयोगों के लिए देखिए—

(क) जोड़ी ४५ दायीं—

$$\sqrt{१०५} = \sqrt{१००+५} = १० + \frac{५}{२०} - \frac{\left(\frac{५}{२०}\right)^2}{२\left(१० + \frac{५}{२०}\right)} = \frac{३३६१}{३२८}$$

(ख) जोड़ी ५६ दायीं और जोड़ी ६५ दायीं—

$$\sqrt{४८१} = \sqrt{४४१+४०} = २१ + \frac{४०}{४२} - \frac{\left(\frac{४०}{४२}\right)^2}{२\left(२१ + \frac{४०}{४२}\right)}$$

(ग) जोड़ी ४५ बायाँ और ४६ दायाँ—

$$\sqrt{३३६००९} = \sqrt{५७९^२ + ७६८}$$

$$= ५७९ + \frac{७६८}{२ \times ५७९} - \frac{(७६८)^२}{२ (५७९ + ७६८)}$$

डा० के ने वर्ग मूल के सूत्र का कुछ दूसरा ही अर्थ दिया है। कदाचित् वह उसका ठीक ठीक आशय नहीं समझ पाये। हमें डा० दत्त वाला निर्वचन ही उपयुक्त जान पड़ता है।

(ख) मिश्र श्रेणियाँ

हम जान चुके हैं कि भक्षाली गणितज्ञ समान्तर श्रेणी के नियमों से भली भाँति परिचित थे। वे लोग ज्यामितीय श्रेणी से भी अनभिज्ञ नहीं थे। इतना ही नहीं, समान्तर-ज्यामितीय श्रेणियों का योग निकालना भी जानते थे। इनमें से कुछ के अमिदेश (References) इस प्रकार हैं—

(i) जोड़ी २२ बायाँ—इसमें इस प्रकार की श्रेणी का प्रयोग है—

$$५ + २५ + ३५ + ४५ + \dots \dots \dots ग५।$$

(ii) मान लीजिए कि हम किसी श्रेणी के विभिन्न पदों को p_1, p_2, p_3, \dots से निरूपित करते हैं। तो २३ दायें में इस प्रकार की श्रेणी आती है—

$$५_१ + २५_१ + ३५_१ + ४५_१ + \dots \dots \dots ग५_{ग-१}।$$

(iii) २३ बायें में इस प्रकार की श्रेणी का प्रयोग आता है—

$$५_१ + २५_१ + ३ (५_१ + ५_२) + ४ (५_१ + ५_२ + ५_३) + \dots \dots$$

इस प्रकार की श्रेणी को 'धृति वर्ग क्रम' कहा गया है।

हम उक्त प्रश्न को विस्तार पूर्वक देते हैं^१—

.....कृत्वा चतुर्थ.....

.....प्रथमस्य तु किं भवेत्

०	२	१	३	३	१२	४	६३००
१	१	१	१	१	१	१	१

कामिकं यून्य पिन्यस्तं कामिकं १ ॥ एष न्यस्तं....

तदा चैव क्रमेण गुणितं । १ । २ । ९ । ४८ । एषां

$$\text{यु } \boxed{६०} \text{ अनेन दृश्य भाजित } \left| \begin{array}{c|c} १ & ३०० \\ \hline ६० & १ \end{array} \right| \text{ जाता } \boxed{५}$$

ए अनेन क्षेत्र गुणये १ ५ । १० । ४५ । २४० ।
युति वर्ग गणित ॥

इस श्लोक में 'कामिक' का वही अर्थ है जो प्राचीन पुस्तकों में 'इच्छा' अथवा 'यदुच्छा' का होता था। कुछ गणितज्ञों ने इसी के लिए 'इष्ट' का प्रयोग किया था।

उपरिलिखित उदाहरण का हम अपने शब्दों में इस प्रकार लिखते हैं—

एक राजा चार व्यक्तियों में ३०० दीनार बाँटता है। वह जितने दीनार पहले व्यक्ति को देता है उससे दुगुने दूसरे को देता है। जितने पहले दोनो व्यक्तियों को मिलाकर देता है, उससे तिसरे को देता है। उसने इस प्रकार जितने दीनार पहले तीन व्यक्तियों को दिये, उससे चौगुने दीनार चौथे को दिये। और तब समस्त दानार् समाप्त हो गये। उसने प्रत्येक को कितने दीनार दिये ?

स्पष्ट है कि

$$x_1 + 2x_1 + 3(x_1 + x_2) + 4(x_1 + x_2 + x_3 + x_4) = 300$$

मदाली गणित की विधि के अनुसार यदि $x_1 = 1$ रखे तो हमें बायीं ओर हस्तगत हुआ—

$$1 + 2 + 9 + 46 \text{ अर्थात् } 60.$$

$$\text{इस प्रकार } x_1 = \frac{300}{60} = 5$$

अतः पहले व्यक्ति को ५ दीनार मिले। तो शेष तीनों व्यक्तियों को क्रमशः १०, ४५ और २४० दीनार मिले।

(iv) २५ बायाँ और २६ दायाँ—

$$x_1 + (2x_1 \pm f) + \{3x_1 \pm (f + v)\} + \{4x_1 \pm (f + 2v)\} +$$

(v) २४ दायाँ—

$$x_1 + (2x_1 + f) + \{3x_1 + (f + v)\} + \{4x_1 + (f + 2v)\} +$$

(vi) २४ बायाँ—

$$x_1 + (2x_1 - f) - \{3(x_1 + x_2) \pm (f + v)\} \\ - \{4(x_1 + x_2 + x_3) \pm (f + 2v)\} -$$

इस प्रकार की श्रेणी का नाम 'युतगुणित युतव्रम' है।

(vii) ५१ दायाँ और बायाँ—इन पृष्ठों में दो उदाहरण दिये गये हैं जिनमें समान्तर ज्यामितीय श्रेणियों का प्रयोग किया गया है। हम बायें पृष्ठ की सामग्री यहाँ देते हैं—

१	३	९	२७	८१	दृ ३२९ १
---	---	---	----	----	-------------

करणम् । उत्तर.....तत्रोत्तर राशिनां योग ८७ एष घना दृश्या शोधनीया जाता २४२.....। पुरुष । १ । ३ । ९ । २७ । ८१ ।

योग १२१ अनेन.....जाता २ एष द्वौ प्रथमस्य घनम्

२ । ६ । १८ । ५४ । १६२ उत्तर राशि संयुतं जातं

२	१५	४८	१४७	४४४	एषां
१	२	२	२	२	

आधुनिक संकेतलिपि में हम इस उदाहरण को इस प्रकार लिख सकते हैं—

$$p_1 + 3^1 p_1 + 3^2 p_1 + 3^3 p_1 + 3^4 p_1 \\ + \frac{3}{2} [p_1 + (p_1 + p_2) + (p_1 + p_2 + p_3) \\ + (p_1 + p_2 + p_3 + p_4)] = 329.$$

भक्षाली गणित की विधि के अनुसार $p_1 = 2$ रखने से पहली श्रेणी
 $= 2 + 6 + 18 + 54 + 162 = 242$

∴ दूसरी श्रेणी का योग $= 329 - 242 = 87$,

अर्थात् $p_1 + (p_1 + p_2) + (p_1 + p_2 + p_3) + (p_1 + p_2 + p_3 + p_4) = 116$

वाम पक्ष $= 2 + (2 + 6) + (2 + 6 + 18) + (2 + 6 + 18 + 54)$
 $= 2 + 8 + 26 + 80 = 116$ ।

∴ हमारा अनुमान $p_1 = 2$ ठीक ही निकला । यदि वाम पक्ष का योग ११६ के स्थान पर और कुछ होता तो उससे ऐकिक नियम के अनुसार ११६ को भाग दे देते जैसा पिछले दो एक उदाहरणों में हम कर भी चुके हैं ।

प्रश्न से स्पष्ट है कि

$$p_3 = 3^3 p_1, \quad p_4 = 3^4 p_1, \quad p_5 = 3^5 p_1.$$

अब यदि हम दिये हुए प्रश्न को इस प्रकार लिखें—

$$p_1 + \{3p_1 + \frac{3}{2}p_1\} + \{3^3p_1 + \frac{3}{2}(p_1 + p_1)\}$$

$$+ \{3^3p_1 + (p_1 + p_1 + p_1)\} + \{3^4p_1 + (p_1 + p_1 + p_1 + p_1)\} = 329,$$

तो हमें हस्तगत होगा—

$$p_1 = 2,$$

$$3p_1 + \frac{3}{2}p_1 = 6 + \frac{3}{2} = \frac{15}{2},$$

$$3^3p_1 + \frac{3}{2}(p_1 + p_1) = 24 + \frac{3}{2} \cdot 2 = 27 = \frac{54}{2},$$

$$3^3p_1 + \frac{3}{2}(p_1 + p_1 + p_1) = 24 + \frac{3}{2} \cdot 3 = 27 = \frac{54}{2},$$

$$3^4p_1 + \frac{3}{2}(p_1 + p_1 + p_1 + p_1) = 48 + \frac{3}{2} \cdot 4 = 54 = \frac{108}{2},$$

$$= 222 = \frac{444}{2}$$

और इस प्रकार उदाहरण के अन्त में दिये हुए भिन्नो का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। स्पष्ट है कि उपरिनिर्णित उदाहरण में इस प्रकार की समान्तर-ज्यामितीय श्रेणी का प्रयोग हुआ है—

$$p + (च प + प न) = \{च (प + प न) + प न^3\}$$

$$+ \{च (प + प न + प न^3) + प न^3\} + \dots \dots \dots$$

(ग) द्विघात अनिर्णीत समीकरण

(1) ५९ दायी—

'बहु कौन सी सख्या है जिसमें ५ जोड़ने से अथवा जिसमें से ७ घटाने से पूर्ण वर्ग प्राप्त होता है ?'

हमें हस्तगत है—

$$x + 5 = 2^2 \text{ और } x - 7 = 3^2.$$

हल—जोड़ी और घटायी हुई सरयाओ को जोड़ो।

$$x + 5 = 12$$

जोड़ को आधा करो, तो ६ प्राप्त हुआ।

२ घटाने से ४ हस्तगत हुआ।

इसका आधा २ हुआ।

इसका वर्ग ४ हुआ।

इसमें वियोज्य ७ को जोड़ो।

इस प्रकार ११ प्राप्त हुआ। यही उत्तर हुआ।

जाँच करने से यह उत्तर ठीक दिखाई पड़ता है क्योंकि

$$११+५=१६, \text{ पूर्ण वर्ग}$$

$$\text{और } ११-७=४, \text{ पूर्ण वर्ग ।}$$

अब हम उक्त उदाहरण का पाठ देते हैं जिसे पढ़ने से उपरिलिखित प्रत्येक पग स्पष्ट हो जायगा ।

॥ को राशि पंच युता मूलदः सा राशिस सप्त हीन मूलद को सो राशिर इति प्रश्नः ।

०	५	यु	मू	०	सा	०	७+	मू	०
१	१			१		१	१		१

करणम् । युत हीनं चमेकत्वं १२ तद दलम् ६ द्वि हणम् ४ दलं २ वर्ग ४ हीन युतिम् च कर्तव्या । हीनं ७+अनेन युति ११ एष सा राशि ॥ अस्य प्रत्यानयं कृत्यते

११	यु	५	मू	४	११	७+	मू	२
१		१		१	१	१		१

पंचाशं सूत्रम् ५०

सूत्रम् । गवां विशेष कर्तव्यं घनं चैव पुन.....

उपरिलिखित उदाहरण में इस प्रकार के समीकरणों का अध्ययन किया गया है—

$$य+क=८^२, \quad य-ख=८^२ ।$$

यदि ग कोई पूर्णांक हो तो इन समीकरणों का हल

$$य=\left\{\frac{१}{२}\left(\frac{क+ख}{ग}-ग\right)\right\}^२+ग$$

होगा । य का यह मान लेने से (य+क) और (य-ख) दोनों पूर्ण वर्ग हो जाते हैं ।

उपरिलिखित उदाहरण में ग=२ लिया गया है । भक्षाली हस्तलिपि में केवल उपरिलिखित विशिष्ट समीकरण हल किये गये हैं ।^१ साविक समीकरणों को हल करने की विधि नहीं दी गयी है ।

(ii) २७ दायँ—

करणं । पृथक् रूपं विनिक्षिप्य । पृथक् रूपं क्षिप्तं जातम्.....भ्यासो तत्र

गुण

३

४

 अभ्यासं

१२

 रूपहीनं १.....अभ्यासा चतु पंचका ।

अथ क्षिप्तं जातं

१५

१६

 एष त्रिगुण.....ता मूल.....नि चतु पंचा

५

४

 एष^२

आधुनिक संकेतलिपि में यह प्रश्न इस प्रकार लिखा जायगा—

$$य र - ३ य - ४ र \pm १ = ०$$

$$\text{हल,} \quad य (र - ३) = ४ र \mp १.$$

अतः यदि $र = ३ + म$ रखे जिसमें $म$ कोई भी राशि है, तो

$$र = ३ + म$$

$$\text{और} \quad य = \frac{४ (३ + म) \mp १}{म} = \frac{४३ \mp १}{म} + ४.$$

$$म = १ \text{ रखने से,} \quad र = ४, \quad य = (११ \text{ अथवा } १३) + ४.$$

अतः घन चिह्न वाले समीकरण का हल हुआ १५, ४

और ऋण चिह्न वाले समीकरण का हल हुआ १७, ४.

$म$ को अन्य मान देने से अनेक अन्य हल निकल सकते हैं।

एक दूसरे रूप में हल इस प्रकार भी निकल सकता है—

$$(य - ४) र = ३ य \mp १,$$

अतः, $य = ४ + म$ रखने से,

$$र = \frac{३ (४ + म) \mp १}{म} = \frac{३४ \mp १}{म} + ३.$$

$$म = १ \text{ लेने से,} \quad य = ५, \quad र = (११ \text{ अथवा } १३) + ३$$

अतः घन चिह्न वाले समीकरण का हल यह हुआ ५, १४, और ऋण चिह्न वाले समीकरण का हल यह हुआ ५, १६

उक्त समीकरण सार्वत्रिक समीकरण

$$म र - व य - ख र - ग = ०$$

के विभिन्न रूप हैं जिनके हल ये हैं—

$$य = \frac{व ख + ग}{म} + ख, \quad र = व + म,$$

$$\text{अथवा} \quad य = ख - म, \quad र = \frac{व ग + ग}{म} व.$$

भक्षाली हस्तलिपि एक टीका है

डा० होर्नल लिखते हैं कि “भक्षाली हस्तलिपि का रचना बाल और भक्षाली गणित का प्रादुर्भाव बाल दो भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं। हमारा विचार है कि भक्षाली

गणित उक्त हस्तलिपि से बहुत प्राचीन है। हमें विश्वास है कि भक्षाली गणित का आरम्भ सन् ईस्वी की प्रारम्भिक शताब्दियों में हुआ था। सम्भव है कि तीसरी अथवा चौथी शताब्दी में हुआ हो।”

किन्तु डा० के का मत इससे विलकुल भिन्न है। उन्होंने लिखा है कि “हमारे पास इस बात का कोई समुचित प्रमाण नहीं है कि भक्षाली गणित उक्त हस्तलिपि से पुराना है।”

‘उक्त कथन से सम्बद्ध पाद टिप्पणी में डा० के लिखते हैं कि “हस्तलिपि किसी अन्य मौलिक कृति की नक़ल नहीं है। किन्तु वह कई लेखकों द्वारा लिखी गयी है। उसमें अन्तर्निदेश (cross-references) हैं। एक स्थान पर एक सूत्र की संख्या ग़लत डाली गयी थी और उस ग़लती का संशोधन एक विभिन्न लिखावट में किया गया है।” डा० के इस बात को भूल गये कि उपरिलिखित वक्तव्य का पहला अंश अन्तिम अंश से मेल नहीं खाता।

डा० दत्त का विचार है कि हस्तलिपि एक प्राचीन ग्रन्थ की प्रतिलिपि है और यह समझने के लिए उनके पास पर्याप्त प्रमाण हैं। गणित के प्राचीन हिन्दू ग्रन्थ प्रायः अव्यवस्थित रूप से लिखे जाते थे। हमने पिछले अध्यायों में कई उदाहरण दिये हैं जिनमें एक ही ग्रन्थ में अंकगणित, बीजगणित और रेखागणित के प्रकरण दिये हुए हैं और वह भी इस प्रकार कि ग्रन्थ को उक्त भागों में बाँटना भी कठिन हो जाता है। कहीं कहीं पर तो एक ही सावित प्रश्न में गणित की अनेक शाखाओं का सम्मिश्रण मिलता है। इतना ही नहीं, प्राचीन समय में ऐसे ग्रन्थ भी लिखे गये हैं जिन में केवल गणित के बहुत से सूत्रों को एक साथ बिना किसी क्रम के भर दिया गया है।

अब मान लीजिए कि कोई व्यक्ति किसी पुराने ग्रन्थ पर टीका लिख रहा है। वह देखता है कि § १२ में एक ऐसे सूत्र का प्रयोग किया गया है जो § २७ में आता है। तो या तो वह टीका करते समय प्रकरणों का क्रम बदल देगा या दोनों स्थानों पर अन्तर्निदेश दे देगा। प्रायः टीकाकार मौलिक ग्रन्थ में अत्यधिक परिवर्तन करना नहीं चाहते। अतः वे अन्तर्निदेश देकर ही सन्तोष कर लेते हैं। अब तनिक जोड़ी ३ दायें के इस पद पर विचार कीजिए—

सप्तं पत्रे मिलिखित स्थित^१

अर्थ—“सातवें पृष्ठ पर लिखा हुआ है।”

१. होर्नल: वही पृ० ३६।

२. भक्षाली § १२२।

३. भक्षाली III १७१।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि जिस मूल का प्रयोग हम कर रहे हैं, वह सातवें पृष्ठ पर मिलेगा। उपरिलिखित वाक्य १४ वें मूल में आता है और तीसरे पृष्ठ पर दिया हुआ है। अतः लेखक तीसरे पृष्ठ पर ऐसे मूल का प्रयोग कर रहा है जो अभी तक प्रतिपादित ही नहीं हुआ है।

कभी कभी लेखक से ऐसी भूल भी हो जाया करती है। किन्तु एक और उदाहरण लीजिए—

हस्तलिपि का १० वां मूल जोड़ी १ दायाँ पर दिया हुआ है। उक्त प्रकरण में यह वाक्य आता है—

एव मूल ॥ द्वितीय पत्रे विवरितस्ति

अर्थ—इस मूल का विवरण दूसरे पृष्ठ पर दिया हुआ है।

यहाँ भी उसी प्रकार की भूल है। इनके अतिरिक्त इसी प्रकार की भूलों के और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं। जैसे जोड़ी ४ बायाँ पर यह पद आता है—

मूलं भ्रान्तिम अस्ति

अर्थ—मूल भ्रमोत्पादक है।

इन तथ्या से केवल एक ही निष्कर्ष निकलता है कि हस्तलिपि किसी टीकाकार की कृति है।

एक बात और भी है। हस्तलिपि का लिखने का ढंग भी ऐसा है जो साधारण तथा मौलिक ग्रन्थों में नहीं अपनाया जाता। एक बात को कई कई उदाहरणों द्वारा समझाया गया है। कहीं कहीं पर पदों की व्याख्या की गयी है, पारिभाषिक शब्दों का स्पष्टीकरण किया गया है। प्रश्नों के हल विस्तारपूर्वक दिये गये हैं, छोटी-छोटी और सरल बातों को भी विस्तृत ढंग से समझाया गया है। कहीं कहीं पर तो पुनरावृत्ति भी हो गयी है। यह सब तथ्य इस बात की ओर इंगित करते हैं कि हस्तलिपि किसी मौलिक ग्रन्थ की सहगामी टीका (Running commentary) है। सबसे अवांछ्य प्रमाण तो उपरिलिखित वाक्य है। क्या कोई भी लेखक अपनी ही लेखनी के विषय में यह लिखेगा कि “मूल भ्रमोत्पादक है।” यदि उक्त वाक्य का यह अर्थ लगाया जाय कि “मूल गलत है” तो क्या कोई लेखक जब अपनी ही कृति को दुहरायेगा और देवेगा कि वह एक मूल गलत लिख गया है तो केवल इतना लिख कर छोड़ देगा कि “मूल गलत है।” कदापि नहीं। वह उक्त मूल को काट कर यथायं मूल लिख कर ही चैन की सांस लेगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त हस्तलिपि एक पुरानी टीका की नकल है और नकल भी किसी एक ही लेखक ने नहीं की है, वरन् कई लेखकों ने, क्योंकि डा० के

नुसार भी हस्तलिपि में चार पाँच प्रकार की लिखावट दिखाई पड़ती है। अब तनिक जोड़ी ४ दायें के चित्र पर विचार कीजिए जो भक्षाली II के प्लेट IV में दिया हुआ है। उसी में यह वाक्य आता है—सूत्रे भ्रान्तिम अस्ति, जिसका हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं। पहली बात तो यह है कि यह वाक्य भी उसी लिखावट में लिखा हुआ है जिसमें उक्त पूरा पृष्ठ, जिससे सिद्ध होता है कि उक्त टिप्पणी का लेखक वही है जो सारे पृष्ठ का। दूसरी बात यह है कि यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य लेखक की कृति में पंक्तियों के बीच में कोई टिप्पणी लिखेगा तो स्पष्ट पता चल जायगा कि उक्त टिप्पणी मौलिक लेखक की नहीं है क्योंकि टिप्पणी दो सामान्य पंक्तियों के बीच में आ पड़ेगी। मौलिक लेखक जान बूझ कर तो उक्त स्थल पर अधिक स्थान छोड़ेगा नहीं क्योंकि किसी टीकाकार को उन पंक्तियों के बीच में कोई टिप्पणी लिखनी है। किन्तु जहाँ उपरिलिखित टिप्पणी दी हुई है उस स्थान पर ऊपर और नीचे की पंक्तियों के बीच में अधिक स्थान छूटा हुआ है। अतः यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि टिप्पणी और सूत्र एक ही लेखक के लिखे हुए हैं। अर्थात् उक्त पृष्ठ का लेखक मौलिक लेखक नहीं है, वरन् एक प्रतिलिपिक है।

एक बात और भी है। जब हम दो पंक्तियों के बीच में कुछ लिखते हैं तो स्वभावतः हमारे अक्षर स्थान की कमी के कारण छोटे पड़ जाते हैं। इसी कारण डा० के ने उक्त वाक्य 'सूत्रे भ्रान्तिम अस्ति' छोटे अक्षरों में लिखा है।^१ इस प्रकार वह यह सिद्ध करना चाहते हैं कि यह वाक्य वाद को पंक्तियों के बीच में लिखा गया है। किन्तु उक्त वाक्य के अक्षर भी उतने ही बड़े हैं जितने सूत्र के शेष अंश के। अतः उनका उक्त वाक्य को छोटे अक्षरों में देना भ्रमोत्पादक है।

अब तनिक निम्नलिखित उद्धरण पर ध्यान दीजिए जो जोड़ी ५० दायें से लिया गया है;

.....वशिष्ठ पुत्र

- सिकस्यार्थे पुत्र पौत्र उपयाग्ये भवतु

लिखितं च्छाजकपुत्र गणकराजे ब्राह्मणेन । .

इस अंश के विषय में डाक्टर के लिखते हैं^२ कि "ऐसा प्रतीत होता है कि इस पृष्ठ पर पुस्तक का परिचय पत्र दिया गया है। आशय विलकुल स्पष्ट तो नहीं है,

१. देखिए, भक्षाली II पृ० १०८ और III प्लेट IV.

२. देखिए, भक्षाली III पृ० २३७ पादटिप्पणी और I पृष्ठ १९।

किन्तु इतना पता चलता है कि ग्रंथ किन्नी ब्राह्मण द्वारा लिखा गया था जिसके पिता का नाम छाजक था।

“छाजक कदाचित् सज्जक नाम का पात्र ही है जिसका उल्लेख राजनरंगिणी में कई बार हुआ है। सज्जक कल्हण के समय में (बारहवीं शताब्दी में) सेद कार्यालय में अधीश्वर था, किन्तु इस व्यक्ति का हमारी हस्तलिपि के लेखक से संबंध जोड़ने का हमारे पास कोई कारण नहीं है।”

बलिहारी है इस तर्क की। डाक्टर के किन्नी न किसी प्रकार यह दिखाने का प्रयत्न कर रहे हैं कि भक्षाली हस्तलिपि बारहवीं शताब्दी की रचना है और अंत में स्वयं ही अपनी उक्तियों को काट देते हैं। जब वे यह मानते हैं कि छाजक और सज्जक को एक सिद्ध करने का उनके पास कोई प्रमाण नहीं है तो सज्जक के नाम का उल्लेख ही क्यों करते हैं। क्या केवल नामों की समानता के कारण? किन्तु समानता भी तो कोई विरोध नहीं है।

एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। उपरिलिखित उद्धरण में ‘लिखितम्’ का प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ यह है कि छाजक-पुत्र केवल एक प्रतिलिपिक (Copyist) ही था। यदि वह ग्रन्थ का मूल लेखक रहा होता तो ‘कृतम्’ अथवा ‘विरचितं’ का प्रयोग किया गया होता। हिन्दी में तो author, writer, scribe सबके लिए ‘लेखक’ का ही प्रयोग होता है, किन्तु संस्कृत में अविकतर उपरिलिखित दोनों शब्द प्रयुक्त होते हैं।

हस्तलिपि का रचना काल

डाक्टर होर्नल का विचार है कि भक्षाली हस्तलिपि ऐसे समय में लिखी गयी होगी जब देश में हिन्दू सम्प्रदाय और ब्राह्मण विद्वत्ता का आधिपत्य था। इसका पूरा तो ग्रंथ की विषय वस्तु से ही चलता है। एक समय था जब कावुल में हिन्दुओं का राज्य था। भक्षाली गाँव उसी राज्य का एक अंग था। जब महमूद गज़नवी ने भारत पर आक्रमण किये तब कावुल का राज्य हिन्दुओं के हाथ से जाता रहा। ये घटनाएँ दसवीं शताब्दी के अंत और बारहवीं शताब्दी के आरम्भ की हैं। उन दिनों यह सामान्य प्रथा थी कि सकट के समय हिन्दू अपनी मूल्यवान् वस्तुएँ भूमि में गाड़ दिया करते थे। सम्भवतः भक्षाली हस्तलिपि भी इसी प्रकार ज़मीन में गाड़ दी गयी होगी। यदि डाक्टर होर्नल का यह अनुमान सत्य हो तो यह सिद्ध हो जाता है कि हस्तलिपि दसवीं शताब्दी के पश्चात् की नहीं है।

डाक्टर होर्नल के अनुमान के विषय में डाक्टर के लिखते हैं कि इस बात का कोई भी

प्रमाण नहीं है कि हस्तलिपि जान बूझ कर गाड़ी गयी थी। हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि इस बात का भी कोई प्रमाण नहीं है कि हस्तलिपि जान बूझ कर नहीं गाड़ी गयी थी। अब इन उक्तियों में कोई निश्चयात्मक निष्कर्ष नहीं निकलता।

हस्तलिपि में प्रयुक्त सकेता के विषय में तो हम पहले ही अपने विचार व्यक्त कर चुके हैं। हम यह भी लिख चुके हैं कि उक्त ग्रन्थ शारदा लिपि में लिखा गया था। इस आधार पर डाक्टर हार्नल ने यह अनुमान लगाया है कि कदाचित् हस्तलिपि बाठों अथवा नवीं शताब्दी में लिखी गयी हो। इस मन्त्र में डाक्टर के लिखते हैं कि पुराने प्राच्यभाषाज्ञों (Orientalists) का यह विचार गलत है कि शारदा लिपि बहुत प्राचीन है। बुहलर (Buhler) ने कहा था कि शारदा लिपि का सबसे पुराना शिलालेख वैजनाथ में मिला है जो सन् ८०४ ई० का है, किन्तु डाक्टर के का मत यह है कि उक्त शिलालेख वास्तव में १२०४ ई० का है। तत्पश्चात् डाक्टर के लिखते हैं कि शारदा लिपि के सबसे प्राचीन लेख नवीं शताब्दी के हैं जो कश्मीर के बर्मा राज-घरा के कुछ सिक्का पर पाये गये हैं। कई शिलालेख दमवी और बारहवीं शताब्दी के भी मिले हैं और तत्पश्चात् डाक्टर ने अपने विचार में यह सिद्ध कर देते हैं कि भक्षाली हस्तलिपि बारहवीं शताब्दी की ही है। यदि उनकी उपरिलिखित उक्तियाँ सत्य हों तो भी यह मानना पड़ेगा कि यह सम्भव है कि भक्षाली हस्तलिपि नवीं शताब्दी की हो।

भक्षाली हस्तलिपि में मूल तो पद्य में दिये गये हैं और उदाहरण गद्य में। पद्य भाग में श्लोक छन्द का प्रयोग किया गया है। प्राचीन गणितीय पुस्तकें अधिकतर श्लोक में ही लिखी जाती थीं, किन्तु पाँचवीं शताब्दी से आर्या छन्द का प्रयोग होने लगा। आर्यभट्ट, बराह मिहिर और ब्रह्मगुप्त ने अपनी कृतियाँ आर्या छन्द में ही लिखी हैं और इन समस्त गणितज्ञों का कार्यकाल छठवीं शताब्दी था। भक्षाली हस्तलिपि श्लोक छन्द में लिखी गयी है। इसमें यह निष्कर्ष निकलता है कि उक्त हस्तलिपि का रचना काल सम्भवतः पाँचवीं शताब्दी से पहले ही रहा होगा।

पिछले पृष्ठ में हमने डा० होर्नल का मत दिया है। उसके विषय में डा० के लिखते हैं कि "उन कथन अमात्पादक है। महावीर का गणित-गार-संग्रह (९ वीं शताब्दी) श्लोक छन्द में लिखा गया था। सूर्य सिद्धान्त (११०० ई० के लगभग) भी उन्नी छन्द में लिखा गया था। इसके अनिरिक्त शारदा लिपि के बारहवीं और बारहवीं शताब्दी के कई शिलालेख मिले हैं जिनमें श्लोक छन्द ही प्रयुक्त हुआ है। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि डा० होर्नल ने हस्तलिपि के रचना काठ के विषय में एक धारणा बना ली और उसे सिद्ध करने के लिए ऐसे तथ्यहीन तर्कों का प्रयोग किया। गणित के इतिहास

कॅण्टर (Cantor) ने अपने ग्रन्थ में उन्नी उन्नित को दुहराया है और उसपर जोर दिया है ।^१

डाक्टर होर्नल ने कोई पुरा धारणा बनायी हो या न बनायी हो, किन्तु डाक्टर के ने अवश्य यह धारणा बना ली थी कि भक्षाली हस्तलिपि का रचना काल बारहवीं शताब्दी से पहले का हो ही नहीं सकता । हमने डाक्टर होर्नल का जो मत ऊपर व्यक्त किया है उसमें उन्होंने यह कथ कहा है कि छठवीं शताब्दी में श्लोक छन्द का प्रयोग बिलकुल बन्द हो गया । उन्होंने तो केवल यह कहा है कि छठवीं शताब्दी से आर्या छन्द का प्रयोग होने लगा और गणितज्ञ उन्नी छन्द में अपनी पुस्तकें लिखने लगे । केवल इतना ही नहीं, श्लोक छन्द में लिखी हुई कुछ प्राचीन पुस्तकों की पुनरावृत्ति भी आर्या छन्द में हुई । इसलिये यह अनुमान होता है कि कदाचित् भक्षाली हस्तलिपि की रचना छठवीं शताब्दी में पहले हुई हो । डाक्टर के ने जो तथ्य दिये हैं उनसे केवल इतना निष्कर्ष निकलता है कि छठवीं शताब्दी के पश्चात् भी श्लोक छन्द का प्रयोग होता रहा । केवल इसी बिना पर यह नहीं कहा जा सकता कि डाक्टर होर्नल का अनुमान सर्वथा गलत था । अधिक से अधिक यह कह सकते हैं कि डाक्टर होर्नल का मत निश्चयात्मक नहीं है । किन्तु डाक्टर के को तो येन केन प्रकारेण डाक्टर होर्नल की बात को गलत सिद्ध करना था ।

डाक्टर होर्नल लिखते हैं कि भक्षाली हस्तलिपि उस विचित्र भाषा में लिखी गयी है जो पहले गाथा उपभाषा (Dialect) कहलाती थी और जो प्राचीन उत्तर पश्चिमी प्राकृत अथवा पाली का साहित्यिक रूप थी । उसमें संस्कृत और प्राकृत रूपों का विलक्षण संमिश्रण दिखाई पड़ता है । मथुरा के भारतीय सीथियन राजाओं के शिलालेखों से पता चलता है कि उक्त भाषा उत्तर पश्चिमी भारत में तृतीय शताब्दी तक साहित्यिक क्षेत्र में साधारणतया प्रयुक्त होती थी । तत्पश्चात् संस्कृत का प्रयोग, जो उस समय तक ब्राह्मण संप्रदाय की ही भाषा थी, लौकिक कार्यों में होने लगा । बौद्धों और जैनियों में प्राचीन साहित्यिक भाषा कुछ दिन और चली होगी, किन्तु उसका प्रयोग केवल धार्मिक कृत्यों में ही हुआ होगा । अतः भक्षाली हस्तलिपि में उसका प्रयोग यह इंगित करता है कि उक्त रचना तीसरी अथवा चौथी शताब्दी के पश्चात् की नहीं है ।

इस संबंध में डाक्टर के ने हस्तलिपि में से बहुत से उदाहरण भाषा-वैज्ञानिक विशेषताओं के दिये हैं और ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी के शिलालेखों की भाषा से

उनका सामञ्जस्य दिखाया है और अतः में फिर वही निष्कर्ष निवाला है कि शास्त्र होनल का विचार गलत है। इतना अच्छा किया है कि उन्होंने अपनी टिप्पणियाँ के मत में यह लिख दिया है कि इस विषय में 'मैं उन लोगों की सम्मति की बात देगा जो इस विषय (भाषा विज्ञान) में अधिक जानकारी हों, किन्तु मेरा प्रायोगिक निष्कर्ष तो यही है कि हस्तलिपि की भाषा हस्तलिपि से बहुत पुरानी नहीं है। हम इस विषय का विवेचन भाषाविदों और भाषा-वैज्ञानिकों के लिए छोड़ देते हैं।'

अब हम एक अन्य तथ्य की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं। रोम में सोने का एक सिक्का प्रचलित था जिसका नाम 'दिनारियस' था। सबसे पहले उक्त सिक्का २०७ ई० पू० में ढाला गया था। लटिन शब्द दिनारियस से ही हिन्दुस्तानी शब्द 'दीनार' बना है। हिन्दुस्तान में ये सिक्के भारतीय सीधियन राजाओं के समय प्रचलित थे। इन राजाओं का वंश प्रथम शताब्दी ई० पू० से तृतीय शताब्दी ई० तक माना जाता है। अन्वेषणों से पता चला है कि ई० की प्रथम शताब्दियों में हमारे देश में हिन्दुस्तानी दीनारों के साथ साथ वही कहीं पर रोम के दिनारियस भी चलते थे। सोने के दीनार जो अब तक पाये गये हैं बनिप्स और हुविप्स के राज्य काल के हैं। रोम के जो दिनारियस पाये गये हैं वह ट्रैजान, (Trajan) हेड्रियन (Hadrian) और एन्टोनाइनस पायस (Antoninus Pius) के समय के हैं और इन समस्त राजाओं का राज्य द्वितीय शताब्दी ई० में हुआ है। अब इस बात पर विचार कीजिए कि भक्षाली पाण्डुलिपि में कई उदाहरणों में दीनारों का प्रयोग किया गया है। इस तथ्य से भी यह संकेत मिलता है कि भक्षाली हस्तलिपि की रचना ई० की पहली तीन शताब्दियों में ही हुई थी।

अब डा० के की उचित मुद्रिए। आप भक्षाली II के § ११० में लिखते हैं कि "दीनार सदैव सोने का ही नहीं होता था, और भक्षाली हस्तलिपि में वह सम्भवतः एक ताँबे का सिक्का था क्योंकि उसमें पृष्ठ ६० पर एक दिन का पारिधमिक १३ से ३ दीनार तक दिया हुआ है" और महावीर (६) २३१ में एक कुली का दैनिक पारिधमिक १८ दीनार के लगभग तर्क दिया हुआ है।"

इस सम्बन्ध में हम मूर्जर की पुस्तक *Ancient Indian Mathematics and Vedha* (1947) के पृष्ठ ५५ की एक कण्डिका का अनुवाद देते हैं—

'धाते से विचार विमर्श से ही यह पता चल जायगा कि वे वे तर्कों में कोई तथ्य नहीं है क्योंकि पहली बात तो यह है कि पाठ्य पुस्तकों में दिये हुए पारिधमिक पर

हम बहुत विस्मय नहीं कर सकते । दूसरी बात यह है कि मशाली हस्तलिपि में दिये गये १½ या २ दीनार वाले पारिश्रमिक को हम अव्यक्त नहीं कर सकते क्योंकि मान्य उन दिनों सम्मान, सम्मान का बदले सम्मान देना था । यदि हम यह दूसरी उक्ति न भी स्वीकार करें तो भी यह बर्तन न मानें कि इनने जैसे पारिश्रमिक (विद्या-भित्तियों को) पारिश्रमिक के अन्तर्गत के लिए दिये गये थे ? क्या वैराग्य और निष्ठों के अभ्यास के लिए पुस्तकों में सामानिक बातें नहीं दिये जाने ?

हम सुनने में सहमत नहीं हैं । मासिकपत्रों या गणित की पुस्तकों में भी व्यावहारिक प्रश्न ही दिये जाते हैं । जहाँ जहाँ ऐसा अवश्य करना पड़ता है कि काल्पनिक, अवायव-हारिक आंकड़ों का प्रयोग किया जाय । जान लीजिए कि हमें कमरों के क्षेत्रफल पर प्रश्न देना है । तो अभ्यास के लिए हम ऐसा प्रश्न देने हैं—

‘एक कमरा ४०० गज लम्बा, २५० गज चौड़ा है...’

किन्तु ऐसे प्रश्न बहुत कम होते हैं । ऐसे स्वयं पर हमारे पास और कोई उपाय नहीं होता । हम विद्यार्थी को ऊँचे अंकों के पारिश्रमिक या अभ्यास करना चाहते हैं और विषय कमरों के क्षेत्रफल का चला रहा है । तो विचन होकर हमें उन प्रकार के अवायवहारिक प्रश्न बनाने पड़ेंगे । परन्तु जब हम ऐसा प्रश्न देते हैं कि ‘एक कुली का पारिश्रमिक १८ दीनार प्रति दिन है’ तो प्रश्न को व्यावहारिक बनाने के लिए हम कुली के स्थान पर किसी कौनघाल अथवा राजमन्त्री का वेतन १८ दीनार प्रतिदिन दे सकते हैं ।

अतः हम यह मानते हैं कि महावीर के उक्त प्रश्न में यदि किसी कुली का वेतन १८ दीनार प्रति दिन है तो वह दीनार ताँबे का ही रहा होगा । किन्तु इस स्वीकारोक्ति से भी हमारे मन की ही पुष्टि होती है । वस्तुओं के दाम घटते बढ़ते रहते हैं । यदि महावीर के समय (१वीं शताब्दी) में एक कुली का पारिश्रमिक १८ दीनार प्रति दिन था तो उससे कई शताब्दी पहले ही पारिश्रमिक की दर १½ या २ दीनार रही होगी । हम यह मानने को तैयार हैं कि मशाली हस्तलिपि वाला दीनार ताँबे का रहा होगा । तब इस तथ्य से अवश्य ही यह निष्कर्ष निकलता है कि मशाली का समय महावीर के समय से कई शताब्दी पहले रहा होगा क्योंकि महावीर के समय में कुलियों का पारिश्रमिक १½ या २ दीनार नहीं, १८ दीनार था । २ दीनार से १८ दीनार तक पहुँचने में स्वभावतः कई शताब्दियाँ लग गयी होंगी । इस प्रकार डा० के स्वयं अपने तर्कों के जाल में फँस गये हैं ।

१. डा० के ने स्वयं यही बात अपने कथन की पादटिप्पणी में कही है ।

अब डा० के की कुछ और उक्तियों पर विचार कीजिए।

मसाली II § ६९

‘वर्ग मूल नियम का हिन्दुओं ने १६ वीं शताब्दी तक प्रयोग नहीं किया था। इतना ही नहीं, उन्हें उसका पता भी नहीं था।’

मसाली II § १२०

“हस्तलिपि में करणियों के निकट मान निकालने का नियम दिया हुआ है जो भारतीय नहीं है। विधि इस नियम

$$\sqrt{a^2 + x} = a + \frac{x}{2a}$$

में निरूपित होती है और इस विधा (process) को और आगे बढ़ाने से निकटतर मान निकाले जा सकते हैं। तत्सम्बन्धी सूत्र तीन स्थानों पर दिया हुआ है और प्रथम और द्वितीय निकट मानों के कई उदाहरण दिये गये हैं। बलियों कहना चाहिए कि वर्ग मूल विधि की कृति के विषयों में प्रमुख स्थान दिया गया है। इस (विधि) का इतिहास हम मली मालि जानते हैं। (देखिए § ६९)। उक्त विधि हॅरॉन (Heron) के समय से बहुत सी पश्चिमी कृतियों में दी गयी है, किन्तु भारत में १२ वीं शताब्दी से पहले किसी ग्रन्थ में नहीं दी गयी। मच पूछिए तो इसका भारतीय कृतियों में, मसाली हस्तलिपि को छोड़कर, सबसे पहला उल्लेख मुझे १६ वीं शताब्दी में ही मिला है।”

मसाली II § १३४

“प्रमाण तो नहीं, किन्तु कई अन्य संकेत हस्तलिपि के रचना काल के विषय में पाईय मामग्री में ही मिलते हैं। यदि वर्ग मूल नियम, जिसका उल्लेख हम कर चुके हैं, आर्यभट्ट के समय में किसी भी भारतीय कृति में मिलता तो हस्तलिपि में उसके दिये जाने से कोई आश्चर्य न होता। किन्तु भारतीय पुस्तक में उक्त नियम बहुत पीछे के समय में आया है। अब मसाली हस्तलिपि में उसका प्रादुर्भाव प्रत्यक्ष पश्चिमी प्रभाव, सम्भवतः मुस्लिम प्रभाव, के कारण हुआ है।”

डा० के जा चाहें सा मन बदलवाने लिय सकते हैं। उनकी कलम रोवने वाला कोई नहीं है। किन्तु तथ्य कुछ और ही है। रोडे (Rodet) का मत है कि उक्त नियम मूल्य गूणों में दिया हुआ है जिनमें से सबसे पुराने का रचना काल ८०० ई० पू० के लगभग है। उस नियम में उनके रचयिताओं ने $\sqrt{5}$ का प्रयोग नहीं चतुर्धं मंत्रिबदन निराश था—

$$\sqrt{2} = 1 + \frac{1}{3} + \frac{1}{3 \cdot 4} - \frac{1}{3 \cdot 4 \cdot 3 \cdot 4}$$

अतः डा० के के तर्क बिलकुल निरावार ठहरते हैं।

उपसंहार

(१) डा० के ने जिस अध्यवसाय और लगन से भक्षाली हस्तलिपि का सम्पादन किया है, वह प्रशंसनीय है। उन्होंने गवेषकों के लिए इस दिशा में पर्याप्त सामग्री उपस्थित कर दी है। किन्तु उसके रचना काल के सम्बन्ध में जितने निष्कर्ष निकाले हैं, प्रायः सब गलत हैं।

(२) हस्तलिपि के रचना काल के सम्बन्ध में गणित के प्रमुख इतिहासज्ञ बृह्लर^१, कण्टर^२ और कजोरी (Cajori)^३ सब डा० होर्नेल से इन बात में सहमत हैं कि हस्तलिपि का रचना काल ई० की प्रारम्भिक शताब्दियाँ हैं। डा० दत्त का भी यही मत है। हम डा० दत्त के निष्कर्ष का समर्थन करते हैं।

(३) डा० के ने यह भी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि भक्षाली हस्तलिपि विदेशी गणित से प्रभावित थी। विस्तार की आशंका से हम उक्त प्रश्न पर गहरे में नहीं जाना चाहते। जिन पाठकों को इस विषय में रुचि हो, डा० दत्त का उपरिलिखित लेख पढ़ सकते हैं। वहाँ उन्होंने अकाट्य प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया है कि भक्षाली गणित की उपज सोलह आने इसी देश में हुई थी। डा० के को स्वयं भी अपने तर्कों पर पूर्ण विश्वास नहीं है क्योंकि वह भक्षाली I के § १२१ में लिखते हैं कि—

“किन्तु निस्सन्देह पश्चिमी प्रभाव के प्रमाणों का यह अर्थ नहीं है कि कृति भारतीय नहीं है। वह उतनी ही भारतीय है जितनी उस काल की कोई अन्य गणितीय कृति। उसमें हिन्दू पुराणों और हिन्दू देवताओं के अभिदेश हैं और साया भी एक प्रकार से भारतीय ही है। लिपि भी उत्तरी भारत की प्राचीन लिपि की एक शाखा ही है।

carres, comme dans l' Inde anterieurement a' la conquête d' Alexandre”, Bull. Soc. Math. d. France VII (1879) pp. 98-102; “Sur les méthodes d'approximation chez les anciens”. ibid pp. 159-67.

1. Indian Paleography p. 82.

2. Geschichte der Math. I p. 598.

3. History of Math. 2nd ed. (Boston) 1922 p. 85.

उपस्थापन का रूप भी भारतीय है। और अधिकांश उदाहरणों की विषय वस्तु भी भारतीय है।"

इस प्रकार डा० वे ने स्वयं ही अपने तर्कों पर पानी फेर दिया है। जादू वह है जो सिर पर चढ़कर बोले।

(५) ५०० से १००० ई० तक

जहाँ तक बीजगणित का सम्बन्ध है, चीन में ५०० और १००० ई० के बीच में दो तीन ही गणितज्ञ हुए हैं जिनका नाम लिया जा सके। पाँचवीं शताब्दी तो प्रायः कौरी ही रही। छठी शताब्दी में पहला नाम चांग य्यू काइन का आता है। इसका जीवन काल ५७५ ई० के आस पास था। इमने तीन भागों में अंकगणित लिखा है जो अभी तक उपलब्ध है। पुस्तक में अंकगणितीय विषयों के अनिश्चित समांतर श्रेणी (Arithmetical Progression) और अनिर्णीत एकघात समीकरणों का भी विवेचन किया गया है।

सातवीं शताब्दी में एक गणितज्ञ बांग स्याओ सुग हुआ है जिसका जीवन काल ६२५ ई० के लगभग माना जाता है। उसका प्रिय विषय निधिपत्र (Calendar) था जिसमें उसने दक्षता प्राप्त कर ली थी। उस की प्रसिद्ध पुस्तक चि कू स्वान चि है। पुस्तक में मापिकी पर बीस प्रश्न दिये गये हैं जिनमें से कुछ में घन समीकरण प्राप्त होते हैं। इस प्रकार कह सकते हैं कि बांग स्याओ सुग पहला चीनी गणितज्ञ था जिसने घन समीकरणों पर लेखनी उठायी।

आठवीं शताब्दी में चीन का गणितीय कार्य नगण्य रहा। एक गणितज्ञ आई सिंग अवश्य हुआ जिसने ७२७ ई० में एक नया निधिपत्र बनाया, जिसका नाम तार्ई येन निधिपत्र है। सन् ९२५ के आस पास ज्योतिष पर एक अन्य पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसका नाम काइ-यू-आन चान चि था। किन्तु उक्त दोनों पुस्तकों में निधिपत्र के अतिरिक्त और कोई गणितीय विषय नहीं दिये गये थे।

जिस समय का हम उल्लेख कर रहे हैं, उस समय चीन का गणित जापान को प्रभावित करने लगा था। ६७० ई० के लगभग अंकगणित के एक स्कूल की स्थापना हुई और साथ ही साथ जापान में चीन की माप पद्धति को अपना लिया गया। इसके अनिश्चित एक वेधशाला स्थापित हुई और ७०१ ई० में अध्यापन की विधिविद्यालय पद्धति चालू हो गयी। विद्यार्थियों के लिए निम्नलिखित ९ चीनी ग्रन्थ निर्धारित किये गये—

१. चौ-पई स्वान-किंग
२. मून-जी स्वान-किंग
३. ल्यू-चौग
४. सान-कई चुंग-चा
५. वू-त्साओ स्वान-शू
६. हई-तौ स्वान-शू
७. क्यू-स्ज़ू
८. क्यू-चंग
९. क्यू-शू

अब इनमें से तीसरे, चौथे और सातवें ग्रन्थ अप्राप्य हैं। इन ग्रन्थों ने शताब्दियों तक जापानी गणित पर अपनी छाप डाली है।

तत्कालीन जापानी गणितज्ञों में एक ही और नाम उल्लेखनीय है—तेनजिन। इसका जीवन काल ८९० ई० के आस पास था। इसका मौलिक नाम मिचीजेन था। यह एक अध्यापक और सामन्त था। विज्ञान और साहित्य के क्षेत्रों में इसकी ख्याति इतनी फैली कि इसके देहान्त के पश्चात् जनता ने इसका नाम तेनजिन रख दिया। जापानी भाषा में इस शब्द का अर्थ होता है 'दैवी पुरुष'।

भारत

आर्यभट्ट

हम ऊपर लिख आये हैं कि ५००—१००० ई० तक भारत में अनेक गणितज्ञ हुए हैं। उनमें प्रमुख नाम आर्यभट्ट का है। आर्यभट्ट के अंकगणितीय कार्य का उल्लेख हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। उनके बीजगणितीय कार्य के कुछ नमूने हम यहाँ देते हैं।

(१) आर्यभटीय का २४ वाँ श्लोक इस प्रकार है—

द्विकृतिगुणात् मंवर्गाद् द्वचन्तरवर्गेण संयुतान्मूलम् ।

अन्तरयुक्तं हीनं तद्गुणकारद्वयं दलितम् ॥२४॥

अर्थ—दो राशियों के गुणनफल के चौगुने में उनके अन्तर का वर्ग जोड़कर वर्ग मूल लेने पर राशियों का अन्तर जोड़ अथवा घटाकर दो ने भाग देने से उक्त राशियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

आधुनिक मनेनलिपि में हम उक्त सूत्र को इस प्रकार लिखेंगे—

$$1 \left\{ \frac{(4-1)}{2} + \frac{(4-1)}{2} \right\} = 4 \text{ अथवा } 4$$

(२) आर्यभटीय का २३ वाँ श्लोक इस प्रकार है—

मपर्वस्य हि वर्गाद्विगोचेयदव वर्गमपर्वम् ।

यत्तस्य भवत्यर्थं विद्याद्गुणसारगवर्गम् ॥२३॥

अर्थ—राशियों के जोड़ के वर्ग और वर्गों के जोड़ के अन्तर को दा से भाग देने से (दा-दो राशियों के) गुणनफल का योग प्राप्त होता है ।

आधुनिक मनेनलिपि में यह सूत्र इस प्रकार लिखा जायगा—

$$\frac{(4^2 - 1^2)}{2} = (4 + 1) = 5 \text{ अथवा } 5$$

स्पष्ट है कि यह सूत्र इस बीजगणितीय सूत्र का विस्तार है—

$$\frac{(4^2 - 1^2)}{2} = (4 + 1) = 5$$

अर्थात् $(4 - 1) = 3$ अथवा 3 ।

आर्यभटीय के बीजगणितीय भाग का प्रमुख प्रकरण श्रेढी व्यवहार (Progressions) है । हम यहाँ उक्त ग्रन्थ के तत्सम्बन्धी सूत्र देते हैं ।

(३) आर्यभटीय का १९ वाँ श्लोक—

इष्ट द्वेक दलित सपूर्वमुत्तरगुण समुत्पद्यम् ।

इष्टगुणितमिष्टघन स्वयवाचान्त पदार्थहतम् ॥१९॥

श्लोक के प्रथम भाग का अर्थ—पदों की मत्स्या में से १ घटाकर शेष का 'वर्ग' से गुणा करो । गुणनफल में प्रथम पद जोड़ने से अन्तिम पद प्राप्त होगा ।

मान लो कि हमारी समान्तर श्रेढी यह है—

४, ७, १०, १३, १६, १९ पदों तक ।

इस श्रेढी में,

आदि अर्थात् प्रथम पद = ४

'वर्ग' अर्थात् सार्वन्तर = ३

'गच्छ' अर्थात् पदों की मत्स्या = १९

अतएव उपर्युक्त सूत्र से

$$\text{'अन्त्यघन' अर्थात् अन्तिम पद} = (19 - 1) \times 3 + 4 = 56$$

अतः हमारी समान्तर श्रेढ़ी यह हो गयी

४, ७, १०, १३, ५५, ५८.

श्लोक के मध्य भाग का अर्थ—‘अन्त्यधन’ में ‘आदि’ जोड़कर आधा करने से मध्यधन प्राप्त होगा।

ऊपर दिये हुए उदाहरण में

$$\text{मध्यधन} = \frac{५८+४}{२} = ३१।$$

स्पष्ट है कि यह संख्या श्रेढ़ी का मध्य पद अर्थात् दसवां पद है। किन्तु ‘मध्यधन’ का अस्तित्व मध्य पद पर आश्रित नहीं है। यदि श्रेढ़ी के पदों की संख्या विषम हो तो मध्य पद और मध्यधन एक ही होंगे। परन्तु यदि पदों की संख्या सम हो तो श्रेढ़ी में कोई मध्यपद होगा ही नहीं। श्रेढ़ी

२, ५, ८, ११, २२ पदों तक

में कोई मध्य पद नहीं है। किन्तु ऊपर दिये हुए सूत्र से

$$\text{अन्त्यधन} = २१. २+२ = ६५$$

$$\text{और मध्यधन} = \frac{६५+२}{२} = ३३\frac{१}{२}।$$

श्रेढ़ी का दसवां पद ३२ है और ग्यारहवां ३५ और मध्यधन इन दोनों का मध्यक (Mean) है।

श्लोक के अन्तिम भाग का अर्थ—मध्यधन को ‘गच्छ’ से गुणा करने से सर्वधन प्राप्त होगा।

इस प्रकार उपरिलिखित श्रेढ़ी का सर्वधन अर्थात् पदों का योग

$$= ३३\frac{१}{२} \times २२ = ७३७।$$

मान लीजिए कि किसी श्रेढ़ी में

आदि	= आ,	चय	= च,
मध्यधन	= म,	सर्वधन	= स,
अन्त्यधन	= अं,	गच्छ	= ग ।

तो उपरिलिखित सूत्र इस प्रकार लिखे जायेंगे—

$$\text{अं} = (ग-१) च+आ,$$

$$\text{म} = \frac{\text{अं}+आ}{२} = \frac{(ग-१) च+२ आ.}{२},$$

$$स = ग \times \frac{अ + आ}{२} = \frac{ग}{२} \{ (ग - १) च + २ आ \} \quad (क)$$

यह सूत्र श्रेढी गणित के आधुनिक सूत्रा से अभिन्न है।

(४) आर्यभटीय का २० वां श्लोक —

गच्छोऽष्टात्तरगुणिताद्द्विगुणाद्युत्तरविशेषवमयुतात् ।

मूल द्विगुणाद्यून स्वोत्तरमाजित सरूपाधम् ॥२०॥

इस श्लोक में गच्छ निकालने की विधि दी गयी है। अर्थ इस प्रकार है—

सर्वधन को ८ से गुणा करके गुणनफल को चय से गुणा करो। आदि को द्विगुणित करके उसमें स चय घटा दो और शेष का वर्ग करो। इस वर्ग को उपर्युक्त गुणनफल में जोड़कर वर्ग मूल निकालो। वर्ग मूल में से द्विगुणित आदि घटा कर शेष को चय से भाग दो। मजतफल में १ जोड़ कर योग को आधा करने से गच्छ प्राप्त होगा।

सांकेतिक भाषा में हम यह सूत्र इस प्रकार लिखेंगे।

$$\frac{2 \left\{ \frac{\sqrt{8 स च + (२ अ - च)^2 - २ आ} + १}{४} \right\}}{२} = ग ।$$

यह सूत्र भी आधुनिक श्रेढी गणित के सूत्रा से पूरा पूरा मेल खाता है।

(५) आर्यभट्ट ने श्रेढी व्यवहार के अन्तर्गत कुछ अन्य सूत्र भी दिये हैं जो आधुनिक गणित में भी इसी प्रवरण के साथ दिये जाते हैं।

मान लीजिए कि किसी समान्तर श्रेढी में

$$अ = च = १$$

तो यह श्रेढी प्राप्त होगी—

$$१ + २ + ३ + ४ + \dots \quad ग पदा तक । \quad (क)$$

आधुनिक पारिभाषिक शब्दों में इस श्रेढी के योग को 'ग प्राकृतिक संख्याओं का योग' कहते हैं।

ऊपर (३) में दिये हुये सूत्र स इस श्रेढी का सर्वधन

$$म_n = \frac{ग}{२} (ग + १) . \quad (क)$$

आर्यभटीय में यह सूत्र स्पष्ट रूप से नहीं दिया गया है। किन्तु यह असम्भव है कि आर्यभट्ट का यह सूत्र ज्ञान न रहा हो। इसका एक कारण तो यह है कि यह सूत्र कोई नया नहीं है (३) में दिये गये सूत्र (क) का ही विसिष्ट रूप है। दूसरा कारण

है कि आर्यभट्ट ने इसी सूत्र के पदों में अन्य सूत्र दिये हैं जैसा कि निम्नलिखित से स्पष्ट हो जायगा।

संख्याओं (क्ष) को 'संकलित' अथवा 'चिति' कहते हैं। अतएव हम सूत्र (त्र) को इस प्रकार लिख सकते हैं—

$$\text{चिति ग अथवा संकलित ग} = \frac{ग}{२}(ग+१).$$

आधुनिक संकेतलिपि में इसी सूत्र को इस प्रकार लिखेंगे—

$$\sum ग = \frac{ग}{२}(ग+१).$$

अब मान लो कि हम १ से लेकर ग तक इन चितियों का संकलन करें। तो यह श्रेणी (Series) प्राप्त होगी—

$$१ + (१+२) + (१+२+३) + (१+२+३+४) + \dots + (१+२+३. \dots + ग).$$

आर्यभट्ट ने इस श्रेणी के योग का नाम 'चितिघन' रखा है।

आर्यभटीय के २१ वें श्लोक में इस श्रेणी के योग का सूत्र दिया हुआ है—

एकोत्तराद्युपचितेर्गच्छाद्येकोत्तरत्रिसंवर्गः ।

पङ्मक्तस्स चितिघनस्सैकपदघनो विमूलो वा ॥२१॥

भावार्थ—गच्छ को प्रथम राशि मानो।

गच्छ में १ जोड़ो। यह दूसरी राशि हुई।

दूसरी राशि में १ जोड़ो। यह तीसरी राशि हुई।

तीनों राशियों के गुणनफल को ६ से भाग देने से श्रेणी का योग प्राप्त होगा।

अथवा, दूसरी राशि के घनफल में से दूसरी राशि घटाकर ६ से भाग देने से चितिघन प्राप्त होगा।

अतः हमें हस्तगत है—

$$\text{चितिघन} = \frac{ग(ग+१)(ग+२)}{६} = \frac{(ग+१)^३ - (ग+१)}{६}.$$

• (६) आर्यभट्ट ने ग प्राकृतिक संख्याओं के वर्गों के योग को 'वर्ग चितिघन' और उनके घनों के योग को 'घन चितिघन' कहा है। इनका मान निकालने के लिए आर्यभट्ट ने २२ वाँ श्लोक दिया है—

मैत्रयगच्छरदाना प्रपात्रितवर्गिनस्य पटोऽग्रा ।

वर्गचिनिधनस्त मवेच्चितिवर्गो धनचिनिधनश्च ॥२२॥

इसके प्रथम भाग का अर्थ—गच्छ को प्रथम राशि मानो। गच्छ में १ जोड़ो यह दूसरी राशि हुई। उसने गच्छ में १ जोड़ो। यह तीसरी राशि हुई। तीनों राशियों से गुणनफल को ६ से भाग देने से वर्ग चिनिधन प्राप्त होगा। अतः

$$1^2 + 2^2 + 3^2 + \dots + n^2 = \frac{n(n+1)(2n+1)}{6}$$

इसके अन्तिम भाग का अर्थ—चिनि का वर्ग धनचिनि धन होता है। अतएव

$$1^2 + 2^2 + 3^2 + \dots + n^2 = \left\{ \frac{n}{2} (n+1) \right\}^2$$

ब्रह्मगुप्त

श्रेष्ठियों पर ब्रह्मगुप्त का कार्य भी उल्लेखनीय है। इतना ही नहीं, ब्रह्मगुप्त ने सूत्र अधिक स्पष्ट भाषा में दिये हैं। हम यहाँ ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त के तत्सम्बन्धी श्लोक देते हैं।

(I) श्लोक १७—

पदमेवहीनमुत्तरगुणित संयुक्तमादिनाऽन्यधनम् ।

आदिमुतान्यधनार्थं मध्यधन पदगुण गणितम् ॥१७॥

इस श्लोक से समान्तर श्रेढी के सर्वधन का वही सूत्र निकलता है जो आर्यभट्ट का सूत्र (अ) है।

(II) श्लोक १८—

उत्तरहीनद्विगुणादिसेयवर्गं धनोत्तगच्छवधे ।

प्रक्षिप्य पद सेयोन द्विगुणोत्तरहृत गच्छ ॥१८॥

इस श्लोक से गच्छ निकालने के लिए यह सूत्र प्राप्त होता है—

$$n = \frac{\sqrt{(2A - c)^2 + 4nc} - (2A - c)}{2c}$$

यह सूत्र आर्यभट्ट के २० वें श्लोक के सूत्र से अमिश्र है।

(III) श्लोक १९—

एकोत्तरमेकाद्य यदीष्टगच्छम्य भवति सङ्कलितम् ।

तद्विगुणगच्छगुणित त्रिहृत सङ्कलितसङ्कलितम् ॥१९॥

इस श्लोक के पहले भाग से तो संकलित ग का ही सूत्र निकलता है—

$$s_n = \frac{n(n+1)}{2},$$

किन्तु हमारे भाग से यह सूत्र प्राप्त होता है—

$$\sum_{1}^n s_n = \frac{n(n+1)}{2} \cdot \frac{n+2}{3}.$$

यह सूत्र वही है जो आर्यभट्ट शीर्षक के अन्तर्गत (५) में दिया गया है।

(iv) श्लोक २०—

द्विगुणपदसैकगुणितं तन् त्रिहृतं भवति वर्गसङ्कलितम् ।

घनसङ्कलितं तत्कृतिरेषां समगोलकैश्चित्तयः ॥२०॥

इस श्लोक से वही सूत्र प्राप्त होता है जो आर्यभट्ट (६) में दिया गया है।

महावीर

महावीर के गणित सार संग्रह के ५ वें अध्याय का शीर्षक 'मिश्रक व्यवहार' है। उक्त अध्याय का अन्तिम भाग 'श्रेढीवद्ध संकलित' (Summation of Series) है। उक्त भाग में महावीर ने समान्तर श्रेढी, प्राकृतिक संख्याओं, उनके वर्गों और घनों के योग तो दिये ही हैं। इनके अतिरिक्त गुणोत्तर श्रेढी (Geometrical Progression) का प्रकरण भी दिया है। इसी विषय के कुछ सूत्र परिकर्म व्यवहार नामक अध्याय के 'संकलितम्' शीर्षक के अन्तर्गत भी दिये गये हैं। साथ ही कुछ बहुत ही रोचक प्रश्न दिये हैं। अन्त में दो एक नियम छन्द-शास्त्र (Prosody) की मात्राओं की संख्या पर भी दिये हैं। हम यहाँ महावीर की कृतियों के कुछ नमूने देते हैं।

(१) श्रेणियों के संकलन से पूर्व महावीर ने एक प्रकरण 'विचित्र कुट्टीकार' दिया है जिसका श्लोक २८९ इस प्रकार है—

परिविशरा अष्टादश तूणीरस्थाः शराः के स्युः ।

गणितज्ञ यदि विचित्रे कुट्टीकारे श्रमोऽस्ति ते कथय ॥२८९॥

श्लोक का शब्दार्थ न देकर हम उसका आशय आधुनिक परिभाषा में देते हैं।

यदि एक वृत्त दिया हो तो उसके चारों ओर हम ६ समान वृत्त ऐसे खींच सकते हैं जिनमें से प्रत्येक अपने प्रतिवेशी दोनों वृत्तों को छुएँ और केन्द्रीय वृत्त को भी छुएँ।

इसी प्रकार इन ६ वृत्ता के चारों ओर ऐसे ही १२ वृत्त गीचे जा सकते हैं। इन १२ वृत्तों के चारों ओर इसी प्रकार के १८ वृत्त सीवना सम्भव है।

अतः पहले चक्र में ६ वृत्त, दूसरे में १२ वृत्त, तीसरे में १८ वृत्त हुए,
इसी प्रकार, ५ वें चक्र में ६५ वृत्त सम्भव होंगे। स्पष्ट है कि ५ चक्रों में वृत्तों की
पूर्णा संख्या

$$\begin{aligned}
 &= 1 + 1 \times 6 + 2 \times 6 + 3 \times 6 + \dots + 5 \times 6 \\
 &= 1 + 6 (1 + 2 + 3 + \dots + 5) = 1 + 6 \frac{5(5+1)}{2} \\
 &= 1 + 3 \times 5(5+1)
 \end{aligned}$$

अब प्रश्न यह है कि यदि किसी चक्र के बाह्य वृत्तों की संख्या दी हो तो सप्तम वृत्तों की संख्या क्या होगी—

यदि दी हुई संख्या स है तो $s = 6 \times 5$

$$\text{अतः वृत्तों की पूर्ण संख्या} = 1 + 3 \frac{s}{6} \left(\frac{s}{6} + 1 \right)$$

उपरिलिखित श्लोक में यह सूत्र इस रूप में दिया गया है—

$$\frac{(s+3)^2 + 3}{12}$$

(२) परिकर्म व्यवहार श्लोक ९५—

गुणसङ्कलितान्प्रयत्न विगतेवपदस्य गुणघनं भवति ।

तद्गुणगुणं भुक्तोन् व्येकोत्तरमाजितं सारम् ॥९५॥

इस श्लोक में गुणोत्तर श्रेणी का योग निकालने का सूत्र दिया गया है।

गुण = सार्व अनुपात (Common ratio)

अन्त्यघन = अन्तिम पद

उक्त सूत्र से ग पदों का योग

$$S_n = \frac{\text{अन्त्यघन} \times \text{गुण} - \text{आदि}}{\text{गुण} - 1}$$

मान लीजिए कि किसी गुणोत्तर श्रेणी में

गुण = n , आदि = a ,

$$\text{तो } S_n = \frac{a n^{n-1} \times n - a}{n-1} = \frac{a(n^n - 1)}{n-1}$$

यह सूत्र गुणोत्तर श्रेणी के योग के प्राचुरिक सूत्र से अभिन्न है।

उदाहरण—एक व्यक्ति एक नगर में दो मोहरें प्राप्त करता है। वह नगर नगर घूमता है और प्रत्येक नगर में उसे पिछले नगर में तिगुनी मोहरें मिलती हैं। बताओ कि आठवें नगर में उसे कितनी मोहरों की प्राप्ति होगी।

(३) परिक्रम व्यवहार श्लोक १०१—

असकृद्येकं भुग्महतविनं येनोद्धृतं भवेत्त चयः ।

व्येकगुणगुणितगणितं निरेकगदमात्रगुणवधाप्तं प्रभवः ॥१०१॥

इस श्लोक के पहले भाग में गुण निकालने की विधि दी गयी है, यदि श्रेढी का 'योग', 'आदि' और 'गच्छ' दिये हों।

भावार्थ—योग को आदि में भाग देकर भजनफल में से १ घटाओ। किसी जाँच भाजक से शेष को भाग दो। भजनफल में से एक घटाकर फिर उसी जाँच भाजक से भाग दो। इसी प्रकार बार बार करते जाओ। यदि अन्त में भजनफल १ आ जाय तो जाँच भाजक ही गुण का मान होगा। अन्यथा किमी और जाँच भाजक से आरंभ करो।

उदाहरण—किमी गुणोत्तर श्रेढी का आदि ३, गच्छ ६ और योग ४०९५ है। गुण उपलब्ध करो।

४०९५ को ३ से भाग देने से भजनफल १३६५ आता है।

भजनफल में से १ घटाने पर १३६४ प्राप्त होते हैं।

यतः ४ से १३६४ भाज्य है, अतः हम ४ को जाँच भाजक मानकर आगे चलते हैं। शेष विधा इस प्रकार होगी—

$$\frac{१३६४}{४} = ३४१;$$

$$३४१ - १ = ३४०;$$

$$\frac{३४०}{४} = ८५;$$

$$८५ - १ = ८४;$$

$$\frac{८४}{४} = २१;$$

$$२१ - १ = २०;$$

$$\frac{२०}{४} = ५;$$

$$4-1=3,$$

$$\frac{4}{3} = 1\frac{1}{3}$$

अतः ४ ही गुण का मान हुआ ।

यह विधि इस सिद्धान्त पर आवृत्त है—

$$\frac{आ (न^n - 1)}{न - 1} = आ - \frac{न^n - 1}{न - 1}$$

$$\frac{न^n - 1}{न - 1} - 1 = \frac{न^n - न}{न - 1}$$

$$\frac{न^n - न}{न - 1} - न = \frac{न^{n-1} - 1}{न - 1}$$

घोष त्रिया इस व्यञ्जक (Expression) में स्पष्ट हो जाती है ।

इलाक के दूसरे भाग में 'आदि' निकालने की विधि दी गयी है, यदि घेड़ी का 'योग', 'गच्छ' और 'गुण' दिये हों ।

भाषार्थ—गुण में से एक घटाने पर घोष से योग को गुणा करेंगे । गुण का गच्छवाँ घात रखकर उसमें से एक घटा देंगे । इस घोष से पिछले गुणनफल को भाग देंगे तो आदि प्राप्त हो जायगा ।

उस त्रिया में यह सिद्धान्त निहित है—

$$\frac{आ (न^n - 1)}{न - 1} \times (न - 1) = आ (न^n - 1),$$

$$\frac{आ (न^n - 1)}{न^n - 1} = आ ।$$

(४) यदि 'गुण', 'योग' और 'आदि' दिये हों तो 'गच्छ' निकालने के लिए परिवर्तन व्यवहार में इलाक १०३ दिया गया है—

एकोनगुणाभ्यस्त प्रभवहृत रूपसयुत वित्तम् ।

यावत्कृत्वो भक्त गुणन तद्भारसम्मितिगच्छ ॥१०३॥

भाषार्थ—गुण में से १ घटाने पर घोष में योग को गुणा करेंगे । गुणनफल को 'आदि' से भाग देकर १ जोड़ेंगे । इस अन्तिम फल को बार बार गुण से भाग देंगे । देखा कि गुण उसमें कितनी बार जाता है । उक्त संख्या ही गच्छ का मान होगी ।

इस प्रकार की संरचनाओं (Structures) में सबसे ऊपर के परत में सबसे कम ईंटें होती हैं और प्रत्येक निचले परत की लम्बाई अथवा चौड़ाई में एक ईंट बढ़ती जाती है। यदि सबसे ऊपर के परत में ईंटों की संख्या 'आ' हो और परतों की संख्या 'स', तो उपरिलिखित इलाक का भावार्थ सांकेतिक भाषा में इस प्रकार लिखा जायगा—

$$\text{ईंटों की संख्या} = \frac{s^2 - 1}{2} \times \text{आ} + \text{आ} \times \frac{s(s+1)}{2}$$

बगदाद

अलख्वा रिज्मी

बगदाद के तत्कालीन गणितज्ञों में अलख्वा रिज्मी सबसे प्रसिद्ध हुआ है। इसका असली नाम अबू अब्दुल्ला था। यह द्बारिस्म प्रदेश का रहने वाला था। इसलिए इसका नाम मुहम्मद इब्न मूमा अलख्वा रिज्मी पड़ा। इसका जीवन काल ८२५ ई० के आस पास था। यह बगदाद के राजा अलमामून के दरबारिया में से था। इसने अकगणित पर एक पुस्तक लिखी, जिसमें 'हिन्दू संख्या पद्धति' का विवेचन किया। मौलिक अरबी पुस्तक तो अब अप्राप्य है। किन्तु उसका अनुवाद चैस्टर के रॉबर्ट (Robert of Chester) अथवा बाथ के एडेलार्ड (Adelard of Bath) ने लॉटिन में किया था, जो अब भी प्राप्य है। उक्त अनुवाद का नाम अलगोरिज्मी की न्यूमैरो इण्डोरम (Algorithmi de numero Indorum) था। इसी नाम से अंग्रेजी शब्द अलगोरिज्मस, अलगोरिज्म और अलगोरिज्म (Algorithmus Algorithm Algorithm) निकले हैं।

अलख्वा रिज्मी ने ज्योतिष पर कई पुस्तकें लिखीं। किन्तु उसकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक बीजगणित पर थी, जिसका नाम इल्म-अल जब्र बल मुवाबला था। इस पुस्तक का उल्लेख हम इस अध्याय के आरम्भ में कर चुके हैं। कुछ लोग इस नाम का अनुवाद लघुकरण (Reduction) और निरसन (Cancellation) करते हैं। कुछ अन्य अनुवादकों ने इसका अर्थ पुनर्स्थापन (Restoration) और समीकरण (Equation) भी दिया है। किन्तु इसमें तनिज भी संदेह नहीं कि उक्त पुस्तक के लॉटिन अनुवादों से ही शब्द अलजब्र यूरोप में पहुँचा। और उसी से आधुनिक शब्द ऐलजब्रा बना। उन्नीसवीं शती के मध्य तक इस शब्द से केवल समीकरण विज्ञान का बोध होता था। किन्तु पिछले गी वर्षों में उक्त शब्द समस्त बीजगणित विज्ञान का पर्याय बन गया है।

के हैं। उन पुस्तक में लेम्ब ने अलख्वा रिसमी के ग्रन्थ के नाम का बहुत सुन्दर उद्धरण किया है। वह लिखते हैं—

‘किन्ती समीकरण के जिस पक्ष में ऋण चिह्न लगा हो, उसे बड़ा दो और उतना दूसरे पक्ष में जोड़ दो। इस क्रिया को अलजत्र कहते हैं। तब समान (Homogeneous) और समान पक्षों को काट दो। इस क्रिया को अलमुकाबला कहते हैं।’

मान लीजिए कि इस प्रकार का समीकरण दिया है—

$$य^२ - २ फ = य^१ - खय - फ ।$$

अलजत्र से इस समीकरण का यह रूप हो जायगा—

$$खय - २ फ - फ = य^१ - खय ।$$

और तब अलमुकाबला से हमें प्राप्त होगा—

$$३ फ = य^१ ।$$

अलख्वा रिसमी के ग्रन्थ का सबसे प्रसिद्ध अंग्रेजी अनुवाद यह है—

L. C. Karpinski, Robert of Chester's Latin Translation of Algebra of al-khowarizmi, New York, 1915.

या रोसैन (Rosen) ने भी एक अंग्रेजी अनुवाद १८३१ में लंदन में प्रकाशित था।

यूक्लिड ने अपने ग्रन्थ ऐंलीमेंट्स में इस प्रकार के समीकरणों का अध्ययन किया है,
 $य^१ - खय = क^१ ।$

यूक्लिड ने इस प्रकार के समीकरणों का एक हल निकाला था। अलख्वा रिसमी ‘छ द्विघात समीकरणों के दोनो हल निकाले हैं। वह उन हलों को मूल ही कहता है कि आधुनिक गणित में कहा जाता है। उसने निम्नलिखित समीकरण

$$य^१ - २१ = १० य$$

का मूल ३ और ७ निकाले थे। उसकी विधि इस प्रकार की थी—

मान लीजिए कि हमारा समीकरण

$$य^१ - पय = फ$$

तो एक वर्ग इस प्रकार का बनाइए जैसा चित्र ३५ में दिया है। इस वर्ग में दिये भागा का क्षेत्रफल $(य^१ - पय)$ है। अतएव यह क्षेत्रफल दिये हुए समीकरण के समान होगा। समीकरण के बायें पक्ष को पूर्ण वर्ग बनाने के लिए उसमें

कोनों के छात्रि वर्ग जोड़ने होंगे, जिनमें से प्रत्येक ता क्षेत्रफल $\frac{1}{2} \times 5 \times 5$ है।
चारों का क्षेत्रफल मिलाकर $\frac{1}{2} \times 5 \times 5$ हुआ। उनके जोड़ने से हमें प्राप्त हुआ—

$$(य + \frac{1}{2}प)^2 = फ + \frac{1}{2}प^2$$

समीकरण के दक्षिण पक्ष का मूल निकाल
वह $य + \frac{1}{2}प$ का मान निकाल देना था।
इस प्रकार $य$ का मान निकल आता था।
अतः दक्षिण पक्ष का वर्ग मूल निकालने में वह
बहुधा धनात्मक चिह्न ही लिया करता था।
तब इस प्रकार वह अधिकांश समीकरणों का
ही मूल निकाला करता था। उसने उपरि-
लिखित विधि शब्दों में इस प्रकार व्यक्त की है—

“मूलों की संख्या’ को आधा करो। लब्ध मर्या को उसी ने गुणा करो। वर्गफल
के दक्षिण पक्ष में जोड़कर योग का वर्ग मूल निकाल लो। इस वर्ग मूल में से मूलों की
संख्या का आधा घटा दो। जोड़ फल ही मूल का मान होगा।”

हम यह क्रिया समीकरण

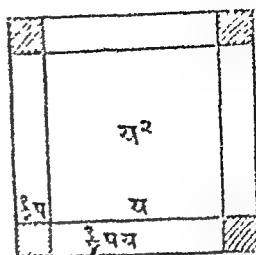
$$य^2 + १० य = ३९$$

पर लगाते हैं, जिसको उसने इसी प्रकार हल किया था। इस समीकरण में ‘मूलों की
संख्या’ १० है। इसे आधा करने से ५ प्राप्त हुए। ५ को ५ से गुणा करने पर हमें
२५ हस्तगत हुए। २५ को ३९ में जोड़ने से योगफल ६४ हुआ। ६४ का वर्ग मूल ८
आया। ८ में से ५ घटाने से ३ प्राप्त हुए। यही ‘य’ का मान है।

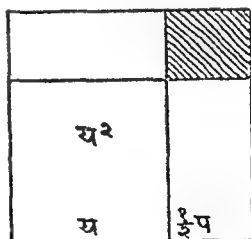
इस प्रसर में एक बात बड़ी अद्भुत दिखाई
पड़ती है। अलखवा रिज़मी ने ‘मूलों की संख्या’
पद का प्रयोग किया है। उपरिलिखित व्याख्या
से स्पष्ट है कि समीकरण

$$य^2 + ५ य = फ$$

में ‘मूलों की संख्या’ से अलखवा रिज़मी का तात्पर्य
‘प’ से था। आधुनिक गणित हमें बताता है कि
उक्त समीकरण के मूलों का जोड़ (—प) होता
है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कदा-
चित् अलखवा रिज़मी को समीकरण सिद्धान्त का भी आभास मिल चुका था।



चित्र ३५—अलखवा रिज़मी के
समीकरण का एक वर्ग।



चित्र ३६—अलखवा रिज़मी के
समीकरण का एक अन्य वर्ग।

अलख्वा रिजमी ने उपरिलिखित समीकरण को हल करने की एक दूसरी विधि भी दी है। वह विधि भी ज्यामितीय ही है। पहले एक वर्ग इस प्रकार का बनाइए जैसा चित्र ३६ में दिया हुआ है। इस वर्ग में अच्छादिन भागा का क्षेत्रफल $(य^१ + पय)$ है। इस आकृति के एक कोने में $\frac{३}{४} प$ का वर्ग जाह देने में एक पूर्ण वर्ग बन जाता है। इस प्रकार हमें समीकरण

$$य^१ - पय + \frac{३}{४} प^१ = \frac{३}{४} प^१ + फ$$

प्राप्त हो गया। शेष त्रिया पहले की भांति है।

हमने ऊपर इस समीकरण

$$य^१ + २१ = १० य$$

का भी उल्लेख किया है। यह समीकरण इस प्रकार का है—

$$य^१ + फ = पय$$

अलख्वा रिजमी इसे हल करने की एक अन्य विधि देता है। हमें हस्तगत है

$$फ = पय - य^१ = य (प - य)$$

$$= (\frac{३}{४} प)^१ - (\frac{३}{४} प - य)^१$$

$$(\frac{३}{४} प - य) = \frac{३}{४} प^१ - फ।$$

$$\text{अतः } \frac{३}{४} प - य = \sqrt{\frac{३}{४} प^१ - फ}।$$

$$\text{अतएव } य = \frac{३}{४} प - \sqrt{\frac{३}{४} प^१ - फ}।$$

इस विधि से हम उपरिलिखित समीकरण का हल इस प्रकार निकालेंगे—

$$२१ = १० य - य^१ = य (१० - य)$$

$$= २५ - (५ - य)^१।$$

$$(५ - य)^१ = २५ - २१ = ४$$

$$\text{अतः } ५ - य = \sqrt{४}$$

अब यदि $\sqrt{४}$ का घनात्मक मान लिया जाय तो य का मान ३ प्राप्त होता है और ऋणात्मक मान लेने से \blacksquare हस्तगत होता है।

अलख्वा रिजमी का कार्य गणित के इतिहास की दृष्टि से बड़े महत्त्व का है क्योंकि उसीके द्वारा भारतीय सख्याको और अरबी बीजगणित का आविर्भाव यूरोप में हुआ।

अन्य लेखक

यों तो उस काल में अरब और ईरान में अनेक गणितज्ञ हुए हैं। किन्तु उनकी विशेष रुचि ज्यामिति और ज्योतिष में रही है। उनमें से प्रमुख व्यक्तियों का उल्लेख यथा स्थान किया जायगा। केवल दो चार गणितज्ञ हुए हैं, जिन्होंने बीजगणित में भी रुचि दिखायी है।

अबू हनीफ़ अल दीनावरी ने कुछ पुस्तकें बीजगणित, हिन्दू आगणन विधियों और ज्योतिष पर लिखी थीं। उसकी मृत्यु ८९५ ई० में हुई। उसका अधिकांश जीवन दीनावर में बीता, जो उसका जन्म स्थान था। उसका पूरा नाम अहमद इब्न दाऊद अबू हनीफ़ा अलदीनावरी था।

अबू जाफ़र अलख़ाज़िन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसने यूक्लीडीय ज्यामिति और ज्योतिष पर अपनी लेखनी उठायी और शंकुओं (Conics) की सहायता से घन समीकरण के हल करने का प्रयत्न किया। उसके जीवन के विषय में केवल इतना पता है कि उसकी मृत्यु ९६५ ई० के आस पास हुई।

अबू कामिल का उल्लेख भी अनुपयुक्त न होगा। यह मिस्र का निवासी था और इसका जीवन काल ९०० के आस पास था। इसका पूरा नाम अबू कामिल शोजा इब्न असलम इब्न मुहम्मद इब्न शोजा था। यह प्रतिभाशाली व्यक्ति था। इसका मुख्य कार्य समीकरणों पर हुआ है यद्यपि इसने पुस्तकें अंकगणित और पञ्चभुज और दशभुज पर भी लिखी हैं।

उसी समय के आस पास ही एक लेखक अबी याक़ूब अल्नदीम हुआ है। इसका मुख्य ग्रन्थ किताब अलफ़हरिस्त (सूचियों की पुस्तक) था जो इसने लगभग ९८७ ई० में लिखा था। उक्त पुस्तक में इसने बहुत से यूनानी और मुसलमान गणितज्ञों की जीवनियाँ दी थीं।

(६) १००० से १५०० ईसवी तक

यूरोप

जिन ५०० वर्ष का हम उल्लेख कर रहे हैं, उनमें बीजगणितज्ञ बहुत कम हुए हैं। फ्रांस का एक गणितज्ञ हुआ है जिन दः म्यूरिस (Jean de Muris)। इसका जन्म नॉर्मण्डी (Normandy) में १२९० के आस पास हुआ था और मृत्यु १३६० के लगभग। इसके प्रिय विषय थे अंकगणित, ज्योतिष और संगीत। इमने लगभग

१३०१ में अकगणित पर कई पुस्तकें लिखी थी। इसकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक क्वाड्रो-पार्टीटम (Quadrupartitum) थी जो पद्य में लिखी गयी थी। उक्त पुस्तक में बीजगणित का भी समावेश था। इसकी कृतिषा की सूची इस ग्रन्थ में दी गयी है—

A. Nagl Abhandlungen. V, 135; p. 139

इसने बीजगणितीय समीकरणों का भी अध्ययन किया है। उक्त समीकरणों में एक तो

$$x - \frac{3}{x} y^2 = 100$$

है जिसे जलम्बा रिचमी और फिबोनाची ने भी हल किया था। इसके दो अन्य समीकरण उल्लेखनीय हैं—

$$3y - 12 = y^2$$

$$\text{और } y^2 - 12 = 4y$$

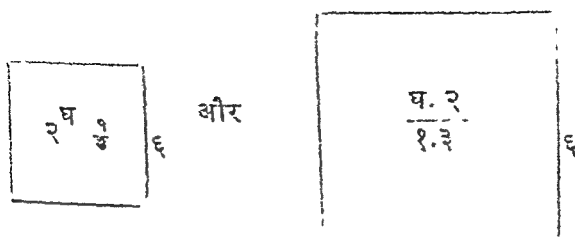
लेगस की मगीत सम्बन्धी पुस्तक म्यूजिका स्पेकुलेटिवा (Musica Speculativa) भी प्रसिद्ध हो गयी है जो उसने १३०३ में लिखी थी। उस पुस्तक में उसने समस्त बाजा का विवरण दिया है जो उस समय प्रचलित थे।

सौंदर्यशास्त्री मही एवं अन्य फ्रेंच लेखक हुआ है निकोल ओरेंसमे (Nicole Oresme)। इसका जन्म सम्भवतः १३०३ में केन (Caen) में हुआ था। यह पश्चिम के एक क्राइि में कुछ दिन प्राध्यापक रहा। यह पचम चार्ल्स (Charles) का राज दरबारी था और इसका प्रवेश अकगण्य में भी था। इसी के बगल हुए गिडाल्ना पर चार्ल्स ने अपने राजकीय गिहरे बजवाये थे। इसकी मृत्यु लियो (Lisieux) में १३८० में हुई। जीवन का अन्तिम कई वर्ष यह इसी नगर का वादरी रहा।

ओरेंसमे ने बीजगणित और ज्यामिति पर कई पुस्तकें लिखी और अरबू की एक पुस्तक का अनुवाद भी किया। इसकी एक पुस्तक ऐल्गोरिथ्म प्रोपोर्तोनम (Algorismus Proportionum) प्रसिद्ध हो गयी है। उक्त ग्रन्थ में चार्ल्स के निम्नलिखित वाक्यों का प्रकाश किया गया है। 3^2 और 4^2 को यह चार्ल्स एक प्रकाश किया करता था—

$$3^2 \text{ और } 4^2$$

६^{२५} को लिखने के इसके ये दो ढंग थे—



लगभग १३६० में ओरेंज़े ने एक अन्य ग्रन्थ लिखा—

Tractatus de figuracione potentiarum et mensurarum difformitatum.

उक्त ग्रन्थ में ओरेंज़े ने 'क्रमचय और संचय' (Permutations and Combinations) के कुछ सूत्र दिये हैं। कदाचित् उसे संचयों का सांख्यिक नियम ज्ञात था यद्यपि उसने उसे स्पष्ट शब्दों में नहीं दिया है। किन्तु उसने इस प्रकार

$$6s_8 = 14, \quad 6s_4 = 6$$

के कई विशिष्ट उदाहरण दिये हैं।

चीन

लाइ येह का जीवन काल ११७८-१२६५ था। जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में यह जन सेवी था और १२३२ में यह चून चौ का राज्यपाल हो गया। इसकी प्रसिद्ध पुस्तक 'त्सो युअन है किंग' है जो इसने सम्भवतः १२४८ में लिखी थी। उक्त शीर्षक का अर्थ 'वृत्त माप का समुद्र दर्पण' है। यह ग्रन्थ और इसका एक अन्य ग्रन्थ 'आइ क्यू येन तुआन' प्राप्य हैं। इसने भी चिन क्यू शाव की भांति, जिसका उल्लेख हम एक पिछले अध्याय में कर चुके हैं, संख्यात्मक समीकरणों का अध्ययन किया था। इसके उपरिलिखित दोनों ग्रन्थ आज तक चीन में आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं।

यांग ह्वी का नाम भी उल्लेखनीय है। यह काइन को यांग भी कहलाता था। इसने १२६१ में एक ग्रन्थ लिखा 'स्यांग किये क्यू चांग सुअन-फ्रा' जिसका अर्थ होता है "ती विभागों के गणितीय नियमों का विश्लेषण।" उक्त पुस्तक में इसने समान्तर श्रेणी के संकलन के नियम दिये हैं। इसने अंकगणित पर और भी कई पुस्तकें लिखी हैं। इसका एक अन्य ग्रन्थ है 'स्वान-फ्रा तुंग-पियेन पेन-मो' जिसमें इस श्रेणी

$$1 + (1+2) + (1+2+3) + \dots + (1+2+3+\dots+g)$$

का योग दिया है। इसने अतिरिक्त हमने प्राकृतिक सभ्याओं के वर्गों के योग का नाम भी दिया था।

शू शी चिये येन शान का निवासी था। इसने जीवन के विषय में केवल इतना पता चला है कि बीस वर्ष तक यह स्थान स्थान पर अध्यापन कार्य करता रहा। मन् १२९९ में इसकी पहिली पुस्तक निरली—

स्वान हिवा वि मूग (गणितीय अध्ययन की भूमिका)'

यह चीन की पहली पुस्तक थी जिसमें क्रणात्मक सस्याआ का उल्लेख किया गया था और चिह्न नियम को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया था। लेखक की दूसरी पुस्तक 'ज्यू-युएन यू वियेन (चार तत्त्वों का अनमाल दर्पण)' १३०३ में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में हमने उच्च बीजगणित के कई प्रश्नों का छेड़ा है। एक से अधिक अज्ञात राशियों के समीकरणों को इसने जिन प्रकार हल किया है उसमें पता चलता है कि इसे सारणिका का भी कुछ ज्ञान था। इसने उच्च घात सस्यात्मक समीकरणों के साधन में बड़ी मौलिकता दिखायी है।

भारत

श्रीधर

श्रीधर का उल्लेख हम अकगणित के अध्याय में कर चुके हैं। हम ने उक्त स्थान पर इसकी 'त्रिशक्तिका' का वर्णन किया था। निरालिका के आरम्भ में श्रीधर ने लिखा है—

नत्वा शिव स्वविरचित पादया गणितस्य सारमुद्गत्य ।

लोबव्यवहाराय प्रबदयति श्रीधराचार्य ॥

इससे पता चलता है कि इसने पाटीगणित पर त्रिशक्तिका के अतिरिक्त एक और ग्रन्थ भी लिखा था। न्यायशास्त्र के एक ग्रन्थ का पता चला है जिसका नाम 'न्याय कन्दली' था। उसके रचयिता का नाम श्रीधर था जिसके पिता का नाम बलदेव और माता का नाम अम्बोका था। मुघावर द्विवेदी लिखते हैं कि इस देश की यह परिपाटी रही है कि ज्योतिषियों के अतिरिक्त अन्य लेखक पुस्तकों में अपना नाम नहीं दिया करते थे। और न्याय कन्दली में लेखक का नाम दिया हुआ है। इसमें यह निष्कर्ष निकलता है कि उक्त ग्रन्थ का लेखक कोई ज्योतिषी था। इसी बिना पर मुघावर

द्विवेदी यह उक्ति देने हैं कि ग्यायकन्दन्दी के रचयिता श्रीधर और त्रिशक्तिका के लेखक श्रीधर दोनों एक ही व्यक्ति थे ।

श्रीधर की सबसे प्रसिद्ध कृति उनकी वर्ग समीकरण के हल की विधि है । उनके बीजगणित सम्बन्धी ग्रन्थ का तो लोप हो चुका है । किन्तु उनके वर्ग समीकरण के हल की विधि कई लेखकों ने उद्धृत की है । हम यहाँ भास्कर का उद्धरण देते हैं । दक्षिण—

दुर्गा प्रसाद द्विवेदी—(भास्कर का) बीजगणित (लगभग) द्वितीयावृत्ति १९१७.

इस ग्रन्थ के पृ० ३०९ पर भास्कर ने श्रीधर का सूत्र इस प्रकार दिया है ।

चतुराहत वर्ग नमै र्द्वयः पक्षद्वयं गुणयेत् ।

पूर्वाव्यक्तस्य कृतेः समरूपाणि क्षिपेन्वोदेव ॥

भावार्थ—(समीकरण के) दोनों पक्षों का अज्ञात राशि के वर्ग के गुणांक के बीजगुने से गुणा करो । दोनों में अज्ञात राशि के मूलिक गुणांक का वर्ग जोड़ दो ।

श्रीधर के सूत्र का यह पाठ कृष्ण (लगभग १५८०) और रामकृष्ण (लगभग १६४८) ने दिया है । और इसी पाठ को कोल्ब्रुक ने प्रामाणिक माना है । किन्तु जानराज ने अपने बीजगणित में, जो उन्होंने १५०३ में लिखा था, उपरिलिखित सूत्र को दूसरी पंक्ति इन शब्दों में दी है —

अव्यक्त वर्ग द्वैर्युक्ती पक्षी ततो मूलम् ।

भावार्थ—(समीकरण के) दोनों पक्षों में अज्ञात राशि के (मूलिक) गुणांक का वर्ग जोड़ दो । तत्पश्चात् मूल (निकालो) ।

सूर्यदास ने १५४१ में भास्कर के बीजगणित की एक टीका लिखी है । उसमें भी सूत्र की दूसरी पंक्ति का यही पाठ दिया है, और सुधाकर द्विवेदी ने भी इसी पाठ को प्रामाणिक माना है ।

दोनों पाठों का आशय एक ही निकलता है । किया इस प्रकार होगी—

मान लीजिए कि हमारा समीकरण

$$क य^२ + ख य = ग$$

है । तो समीकरण के दोनों पक्षों को ४ क से गुणा करने पर हमें प्राप्त होगा—

$$४ क^२ य^२ + ४ क ख य = ४ क ग ।$$

अतः, दोनों ओर ख^२ जोड़ने से,

$$४ क^२ य^२ + ४ क ख य + ख^२ = ४ क ग + ख^२,$$

$$\text{अर्थात् } (२ व य + ग)^२ = ४ व ग + ग^२ ।$$

$$\therefore २ व य + ग = \sqrt{४ व ग + ग^२}$$

$$\therefore य = \frac{\sqrt{४ व ग + ग^२} - ग}{२ व}$$

यह विधि हार्ड स्कूल के विद्यार्थियों को आज भी सिखायी जाती है। इस विधि में हम हम समीकरण

$$६ य^२ + ७ य = ३$$

का हल करते हैं।

७४ से गुणा करने पर समीकरण का यह रूप

$$१४४ य^२ + १६८ य = ७२$$

हा जायगा।

४९ जोड़ने से,

$$१४४ य^२ + १६८ य + ४९ = ७२ + ४९ = १२१$$

$$\text{अतः } (१२ य + ७)^२ = ११^२$$

$$\therefore १२ य + ७ = \pm ११$$

$$\text{अतएव, } १२ य = \pm ११ - ७ = ४ \text{ अथवा } -१८$$

$$\therefore य = \frac{४}{१२} \text{ अथवा } -\frac{३}{२} ।$$

श्रीधर ने समान्तर श्रेणी के भी नियम दिये हैं। उपरिलिखित विधि में उसने समान्तर श्रेणी के पदों की मर्यादा का सूत्र इस रूप में निकाला है—

$$ग = \frac{\sqrt{८ च या + (२ आ - च)^२} - २ आ + च}{२ व},$$

जिसमें ग (=गच्छ) पदों की संख्या है, च (=चय) सार्वान्तर है, आ (=आदि) प्रथम पद है, और यो (=योग) श्रेणी के पदों का जोड़ है। हमने इस प्रकार के कई सूत्र पिछले प्रकरणों में भी दिये हैं।

भास्कर

भास्कर के बीजगणित में निम्नलिखित प्रकरणों का समावेश है,

- (१) करणियाँ
- (२) शून्य गणित

- (३) मरुल समीकरण
- (४) वर्ग समीकरण
- (५) कुट्टक।

भास्कर ऋषि राशियों के निरूपण के लिए उनके ऊपर बिन्दु लगाया करते थे। उन्हें काल्पनिक राशियों का अस्तित्व स्वीकार नहीं था। उन्होंने एक स्थान पर कहा है "किसी ऋणात्मक राशि का वर्ग मूल हो ही नहीं सकता क्योंकि ऐसी राशि (पूर्ण) वर्ग हो ही नहीं सकती।" अज्ञात राशि के लिए ये 'याचनावन (जितना हो उतना)' का प्रयोग करते थे। किन्तु जब कई अज्ञात राशियों का प्रयोग करना होता था तो ये रंगों के नामों का उपयोग करते थे—

कालक, नीलक, पीतक, रूयक।

यह इन शब्दों के प्रयोजन के लिए लिखा करते थे, जैसे—

का०, नी०, पी०, रू०।

अनिर्णीत समीकरणों का अध्ययन आर्यभट्ट से आरम्भ हो गया था और उसके पश्चात् के सभी भारतीय गणितज्ञों ने उक्त विषय का विवेचन किया था, किन्तु भास्कर ने इस प्रकरण को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया। भास्कर की विधियाँ और उपस्थापन बहुत ही स्पष्ट हैं। इनके कुछ प्रश्नों के हल तो बिल्कुल मौलिक हैं। इन्होंने अपनी कृतियों में एकघात अनिर्णीत समीकरणों, युगपद् एकघात समीकरणों और द्विघात समीकरणों—तीनों का साधन किया है। यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि अनिर्णीत समीकरणों का हल समस्त संसार में सबसे पहले निकालने वाले हिन्दू ही थे। कुछ इतिहासज्ञों को भास्कर की विधियों में डायफ्रॉन्टस के कार्य की छाप दिखाई पड़ती है। किन्तु भास्कर का कार्य डायफ्रॉन्टस की कृतियों से दो वानों में बहुत बड़ा बढ़ा था—

(१) डायफ्रॉन्टस ने कहीं सार्विक समीकरण नहीं लिये हैं। उसने सदैव विशिष्ट समीकरणों का ही अध्ययन किया है। इसके विपरीत भास्कर ने सार्विक समीकरण लेकर उनके साधन की व्यापक विधियाँ दी हैं।

(२) डायफ्रॉन्टस साधारणतः किसी समीकरण का एक ही हल निकाल कर सन्तोष कर लेता था, किन्तु भास्कराचार्य समीकरण के समस्त सम्भव हल निकाल कर ही दम मारते थे।

इसी विना पर हैकेल (Hankel) ने कहा है कि अनिर्णीत समीकरणों के साधन

$$\text{अर्थात् } (२क ग + ख)^२ = ४क ग + ख^२ ।$$

$$\therefore २क ग + ख = \sqrt{४क ग + ख^२}$$

$$\therefore ग = \frac{\sqrt{४क ग + ख^२} - ख}{२क}$$

यह विधि हाई स्कूल के विद्यार्थियों को आज भी सिखायी जाती है। इस विधि से हम इस समीकरण

$$६ य^२ + ७ य = ३$$

को हल करते हैं।

२४ से गुणा करने पर समीकरण का यह रूप

$$१४४ य^२ + १६८ य = ७२$$

हो जायगा।

४९ जोड़ने से,

$$१४४ य^२ + १६८ य + ४९ = ७२ + ४९ = १२१.$$

$$\text{अतः } (१२ य + ७)^२ = ११^२.$$

$$\therefore १२ य + ७ = \pm ११$$

$$\text{अतएव, } १२ य = \pm ११ - ७ = ४ \text{ अथवा } -१८.$$

$$\therefore य = \frac{१}{३} \text{ अथवा } -\frac{३}{२} ।$$

श्रीधर ने समान्तर श्रेणी के भी नियम दिये हैं। उपरिलिखित विधि में उसने समान्तर श्रेणी के पदों की मध्यमा का सूत्र इस रूप में निकाला है—

$$ग = \frac{\sqrt{८ च या + (२ आ - च)^२} - २ आ + च}{२ च},$$

जिसमें ग (=गच्छ) पदों की संख्या है, च (=चय) सार्वान्तर है, आ (=आदि) प्रथम पद है, और यो (=योग) श्रेणी के पदों का जोड़ है। हमने इस प्रकार के कई सूत्र पिछले प्रकरणों में भी दिये हैं।

भास्कर

भास्कर के बीजगणित में निम्नलिखित प्रकरणों का समावेश है,

(१) करणियाँ

(२) दृग्य गणित

वज्राभ्यासौ ज्येष्ठलघ्वोस्तदैनयं
ह्रस्वं लघ्वोराहतिश्च प्रकृत्या ।
क्षुण्णा ज्येष्ठाभ्यासयुग्ं ज्येष्ठमूलं
तत्राभ्यास. शेषयोः क्षेपकः स्यात् ॥४२॥

प्रथम विधि—

किसी भी संख्या को कनिष्ठ मानकर उसका वर्ग कर दो। वर्ग को गुणक से गुणा करके, पूर्ण वर्ग बनाने के लिए, क्षेपक को जोड़ दो अथवा घटा दो। फल का वर्ग मूल निकालो और लघ्वि को ज्येष्ठ कहो।

कनिष्ठ और ज्येष्ठ मूलों और क्षेपक को एक रेखा में लिख दो। फिर इन्हीं तीनों के नीचे तीनों को दुबारा लिख दो। तत्पश्चात् तिर्यग्गुणन करो अर्थात् कनिष्ठ को ज्येष्ठ से और ज्येष्ठ को कनिष्ठ से गुणा करो। दोनों गुणनफलों को जोड़ दो। अब इस योग को कनिष्ठ मूल कहो।

दोनों कनिष्ठ मूलों के गुणनफल का गुणक से गुणन करो और फल में दोनों ज्येष्ठ मूलों के गुणनफल को जोड़ दो। फल एक ज्येष्ठ मूल होगा।

अज्ञात राशियों के अन्य मानों (Values) के कुलक (Set) निकालने के लिए नये कनिष्ठ और ज्येष्ठ मूल लेकर आगे चलो। नया क्षेपक पिछले क्षेपकों का गुणनफल होगा।

इस विधि से हम निम्नलिखित समीकरण के हल निकालते हैं—

$$३य^२ + १ = २^२ ।$$

य का सबसे सरल मान १ है। अतः हम इसी को कनिष्ठ मूल मानते हैं।

१ का वर्ग करके ३ से गुणा करने पर ३ प्राप्त होता है।

३ में १ जोड़ने से पूर्ण वर्ग मिलता है।

$$\text{अतः } २^२ = ४$$

$$\therefore \text{ज्येष्ठ मूल} = २$$

अब कनिष्ठ मूल, ज्येष्ठ मूल और क्षेपक को इस प्रकार लिखो—

कनिष्ठ मूल	ज्येष्ठ मूल	क्षेपक
१	२	१
१	२	१

अब कनिष्ठ और ज्येष्ठ मूलों के तिर्यग्गुणन का जोड़ $= २ + २ = ४ ।$

की भारतीय विधि की सर्वथा मौलिक थी और उन पर डायफेरेन्स का तर्क भी प्रभाव नहीं था।

भास्कर ने अनिर्णीत वर्ग समीकरण

$$x^2 + 1 = r^2 \quad (अ)$$

के हल की जो विधि दी है, वह बहुत प्रतियोगिता और मौलिक है। इन्होंने उसका नाम 'चक्रवाल विधि (Cyclic Method)' रखा है। भास्कर ने उस विधि सत्तर की १२ वीं शताब्दी में दी। यूरोप के गणितज्ञों ने यही विधि १६वीं शताब्दी में निवाली। इसमें सन्देह नहीं कि यूरोपीय गणितज्ञों के हाथ भास्कर की विधि नहीं लगी, अतः उन्हें उस समीकरण का हल मथे मिरे से निकालना पड़ा। किन्तु उस विधि के आविष्कार का प्राथमिक श्रेय भास्कर को ही मिलना चाहिए। वास्तव में पश्चिमी गणितज्ञों गलास (Galois), ऑयलर (Euler), लैग्रान्ज (Lagrange) ने जो चक्रीय विधि निवाली है, वह भास्कर की विधि का ही उल्टा है। अतः हम श्री गुर्जर के इस कथन से सहमत हैं कि उपरिलिखित समीकरण को 'पेल का समीकरण' (Pell's Equation) न बल्कि 'भास्कर समीकरण' कहना चाहिए।

हम यहाँ भास्कर की विधियों के कुछ नमूने देने हैं। हम इस शब्दावली का प्रयोग करेंगे : उपरिलिखित समीकरण (अ) में

क को गुणक (Multiplier) कहेंगे,

१ अथवा जो सख्या कम में जोड़ी जाय, उसे क्षेपक (Augment) कहेंगे। सार्विक समीकरण

$$x^2 - 1 = r^2 \quad (आ)$$

में १ क्षेपक है।

य का न्येष्ठ (Least) कहेंगे,

र को ज्येष्ठ (Greatest) कहेंगे।

बीजगणित के ४१ वें और ४२ वें श्लोक इस प्रकार हैं—

ह्रस्वज्येष्ठक्षेपस्तन्वस्य तेषां
तानन्यान्वाऽऽनो निवेद्य क्रमेण ।
साध्यान्वेष्यो भावनाभिर्बहूनि
मूलान्येषा भावना प्रोच्यन्तेऽन ॥४१॥

वज्राभ्यासौ ज्येष्ठलघ्वोस्तदैक्यं
ह्रस्वं लघ्वोराहतिश्च प्रकृत्या ।
क्षुण्णा ज्येष्ठाभ्यासयुग् ज्येष्ठमूलं
तत्राभ्यासः शेषयोः क्षेपकः स्यात् ॥४२॥

प्रथम विधि—

किसी भी संख्या को कनिष्ठ मानकर उसका वर्ग कर दो। वर्ग को गुणक से गुणा करके, पूर्ण वर्ग बनाने के लिए, क्षेपक को जोड़ दो अथवा घटा दो। फल का वर्ग मूल निकालो और लघ्वि को ज्येष्ठ कहो।

कनिष्ठ और ज्येष्ठ मूलों और क्षेपक को एक रेखा में लिख दो। फिर इन्हीं तीनों के नीचे तीनों को दुबारा लिख दो। तत्पश्चात् तिर्यग्गुणन करो अर्थात् कनिष्ठ को ज्येष्ठ से और ज्येष्ठ को कनिष्ठ से गुणा करो। दोनों गुणनफलों को जोड़ दो। अब इस योग को कनिष्ठ मूल कहो।

दोनों कनिष्ठ मूलों के गुणनफल का गुणक से गुणन करो और फल में दोनों ज्येष्ठ मूलों के गुणनफल को जोड़ दो। फल एक ज्येष्ठ मूल होगा।

अज्ञात राशियों के अन्य मानों (Values) के कुलक (Set) निकालने के लिए नये कनिष्ठ और ज्येष्ठ मूल लेकर आगे चलो। नया क्षेपक पिछले क्षेपकों का गुणनफल होगा।

इस विधि से हम निम्नलिखित समीकरण के हल निकालते हैं—

$$३य^२ + १ = २२$$

य का सबसे सरल मान १ है। अतः हम इसी को कनिष्ठ मूल मानते हैं।

१ का वर्ग करके ३ से गुणा करने पर ३ प्राप्त होता है।

३ में १ जोड़ने से पूर्ण वर्ग मिलता है।

$$\text{अतः } २^२ = ४$$

$$\therefore \text{ज्येष्ठ मूल} = २$$

अब कनिष्ठ मूल, ज्येष्ठ मूल और क्षेपक को इस प्रकार लिखो—

कनिष्ठ मूल	ज्येष्ठ मूल	क्षेपक
१	२	१
१	२	१

अब कनिष्ठ और ज्येष्ठ मूलों के तिर्यग्गुणन का जोड़ $= २ + २ = ४$ ।

अब अगला कनिष्ठ मूल ४ हुआ।

अब कनिष्ठ मूलों का गुणनफल १ और ज्येष्ठ मूलों का गुणनफल ४ है।

१ को गुणन ३ से गुणा करके ज्येष्ठ मूलों का गुणनफल ४ जोड़ने का फल $= ३ + ४ = ७$ ।

इस प्रकार अज्ञात राशियों का दूसरा कुलक ४ और ७ प्राप्त हुआ।

मानों का अगला कुलक निकालने के लिए पहले और दूसरे मूलों और क्षेपकों को इस प्रकार लिखो—

कनिष्ठ मूल	ज्येष्ठ मूल	क्षेपक
१	२	१
४	७	१

मूलों के तिर्यग्गुणन का जोड़ $= ७ - ८ = १५$ । यही कनिष्ठ हुआ।

अब कनिष्ठ मूलों का गुणनफल $= ४$ ।

इसको गुणक से गुणा करने का फल $= ४ \times ३ = १२$ ।

और ज्येष्ठ मूलों का गुणनफल $= २ \times ७ = १४$ ।

इन दोनों गुणनफलों का योग $= १२ + १४ = २६$ ।

इस प्रकार अगला ज्येष्ठ २६ हो गया और अज्ञात राशियों के मानों का अगला कुलक (१५, २६) प्राप्त हो गया।

अन्य मान निकालने के लिए फिर उसी प्रकार चलो—

कनिष्ठ मूल	ज्येष्ठ मूल	क्षेपक
१	२	१
१५	२६	१

अगला कनिष्ठ मूल = मूलों के तिर्यग्गुणन का जोड़

$$= १ \times २६ + २ \times १५ = ५६$$

और अगला ज्येष्ठ मूल $= १ \times १५ + २ \times २६$

$$= ९७$$

इस प्रकार मानों का अगला कुलक (५६, ९७) प्राप्त हो गया।

आइए, एक कुलक और निकाल लें—

कनिष्ठ मूल	ज्येष्ठ मूल	क्षेपक
४	७	१
१५	२६	१

अगला कनिष्ठ वरावर है : $४ \times २६ - १५ \times ७ = २०९$ ।

और अगला ज्येष्ठ वरावर है : $४ \times १५ \times ३ - ७ \times २६ = ३६२$ ।

इस प्रकार इस विधि में हमें निम्नलिखित मान कुलक प्राप्त हो गये—

(१, २), (४, ७), (१५, २६), (५६, ९७), (२०९, ३६२)

इसी ढंग से अनगिनत मान कुलक निकाले जा सकते हैं ।

बीजगणित के श्लोक ४३ और ४४ इस प्रकार हैं—

ह्रस्वं वज्राभ्यासयोरन्तरं वा

लघ्वोर्धातो यः प्रकृत्या विनिघ्नः ।

घातो यश्च ज्येष्ठयोस्तद्वियोगो

ज्येष्ठं क्षेपोऽत्रापि च क्षेपघातः ॥४३॥

इष्टवर्गहृतः क्षेपः क्षेपः स्यादिष्टमाजिते ।

मूले ते स्तोऽथवा क्षेपः क्षुणः क्षुणो तदा पदे ॥४४॥

दूसरी विधि—

उपरिलिखित क्रिया में तिर्यग्गुणन के पश्चात् दोनों राशियों के जोड़ के बदले उनका अन्तर ले लो और उसी को कनिष्ठ मूल मान लो ।

पहले की भाँति दोनों कनिष्ठ मूलों के गुणनफल को गुणक से गुणा करो । फिर दोनों ज्येष्ठ मूलों का गुणनफल निकालो । इन दोनों गुणनफलों का अन्तर ही ज्येष्ठ मूल होगा ।

यदि क्रिया के पश्चात् क्षेपक वही आये, जो मालिक क्षेपक था, तब तो ठीक ही है । किन्तु यदि लघ्व क्षेपक उससे भिन्न हो तो उसके वर्ग मूल से अज्ञात राशियों के लघ्व मानों को भाग दे दो । भजनफल ही अज्ञात राशियों के इच्छित मान होंगे ।

यह अन्तिम प्रावधान (Provision) दोनों विधियों पर लागू है ।

उदाहरण— $६ य^२ + १ = २३$ ।

(इ)

कनिष्ठ=१ और क्षेपक=३ लेने में ज्येष्ठ=३

कनिष्ठ मूल

ज्येष्ठ मूल

क्षेपक

१

३

३

१

३

३

दूसरी विधि से तो अगला कनिष्ठ शून्य हो जायगा । अतः हम पहली विधि से ही आगे चलते हैं ।

$$\text{वनिष्ट} = १ \times ३ + १ \times ३ = ६$$

$$\text{ज्येष्ठ} = १ \times १ \times ६ + ३ \times ३ = १५$$

$$\text{मान लीजिए कि } y_1 = ६, \quad r_1 = १५$$

किन्तु ये राशियाँ समीकरण (६) को सन्तुष्ट नहीं करतीं, परन्तु इस समीकरण को सन्तुष्ट करनी है—

$$६ y^2 + ९ = २^2 \text{ क्याकि } ६६^2 + ९ = १५^2$$

$$\text{अतः } ९ \text{ से भाग देने से, } ६२^2 + १ = ५^2$$

इस प्रकार ९ के वर्ग मूल ३ से y_1 और r_1 के मानों को भाग देने में हमें y के मान २.५ प्राप्त हो गये।

अब हम इसी विधि से एक और मान कुलव प्राप्त करते हैं।

यदि हम वनिष्ट ३ और क्षेपक (-५) ले तो ज्येष्ठ = ७।

आगे की क्रिया इस प्रकार होगी—

वनिष्ट मूल	ज्येष्ठ मूल	क्षेपक
३	७	-५
३	७	-५

$$\text{अगला वनिष्ट मूल} = ३ \times ७ + ३ \times ७ = ४२।$$

$$\text{और अगला ज्येष्ठ मूल} = ३ \times ३ \times ६ + ७ \times ७ = १०३।$$

ये मूल निम्नलिखित समीकरण को सन्तुष्ट करते हैं।

$$६ y^2 + २५ = २^2।$$

अतः $\sqrt{२५}$ से इन राशियाँ को भाग देने से हमें प्राप्त होगा—

$$y = \frac{४२}{५}, \quad r = \frac{१०३}{५}.$$

अब हम अगला मान कुलव दूसरी विधि से प्राप्त करते हैं।

वनिष्ट मूल	ज्येष्ठ मूल	क्षेपक
२	५	१
$\frac{४२}{५}$	$\frac{१०३}{५}$	१

$$\text{अगला वनिष्ट मूल} = ४२ - \frac{२०६}{५} = \frac{४}{५},$$

$$\text{अगला ज्येष्ठ मूल} = १०३ - \frac{८४}{५} \times ६ = \frac{११}{५} ।$$

इस प्रकार हमें निम्नलिखित मान कुलक प्राप्त हो गये—

$$(२, ५), \left(\frac{४२}{५}, \frac{१०३}{५}\right), \left(\frac{४}{५}, \frac{११}{५}\right) ।$$

शून्य गणित

बीजगणित के 'खण्डिवधम' नामक अध्याय के आरंभ में यह श्लोक आता है—

खयोगे वियोगे धनर्णं तथैव
च्युतं शून्यतस्तद्विपर्यासमेति ॥

भावार्थ—शून्य को किसी राशि में जोड़ने अथवा शून्य में किसी राशि को जोड़ने अथवा शून्य को किसी राशि में से घटाने से राशि के चिह्न में कोई परिवर्तन नहीं होता । अर्थात् धनात्मक राशि धनात्मक रहती है और ऋणात्मक राशि ऋणात्मक रहती है । किन्तु शून्य में से किसी राशि को घटाने से राशि में चिह्न परिवर्तन हो जाता है ।

आधुनिक बीजगणितीय संकेतलिपि में हम इन सूत्रों को इस प्रकार लिखेंगे—

$$\begin{aligned} (\pm a) \pm 0 &= \pm a; & 0 + (\pm a) &= \pm a; \\ 0 \pm 0 &= 0; & 0 - (\pm a) &= \mp a । \end{aligned}$$

भास्कराचार्य ने इन सूत्रों की उत्पत्ति इस प्रकार दी है—

'यदि दो संख्याएँ जोड़नी हों तो पहली संख्या को योज्य और दूसरी को याजक कहते हैं । योज्य और योजक के मध्यस्थ जितना ह्रास योजक का होगा उतना ही योगफल का होगा । इस प्रकार योज्य में योजक का समावेश हो जाने से योगफल में भी योजक के समान ही वृद्धि होगी । अतः योज्य के समान योगफल हो जायगा । और जब योज्य-योजक में योज्य के समान ह्रास होगा तो योगफल में भी उतना ही ह्रास होगा । अतः योजक के तुल्य योगफल हो जायगा ।'

इस प्रकार शून्य को किसी राशि में जोड़ने से अथवा शून्य में किसी राशि को जोड़ देने से राशि ज्यों की त्यों रह जाती है ।

यदि एक संख्या में से दूसरी घटानी हो तो बड़ी संख्या को वियोज्य और छोटी को वियोजक कहते हैं । वियोज्य का वियोजक के समान ह्रास होने से उनके अन्तर में

भी उतना ही ह्रास होगा। अर्थात् वियोज्य में से जितना घटायेगे उतना ही अन्तर आयेगा। इसलिए शून्य को किसी राशि में से घटाने से राशि ज्यों की त्यों रह जाती है।

वियोज्य का जितना ह्रास होता जायेगा उतना ही ह्रास अन्तर का भी होता जायेगा। यदि वियोज्य ७ और वियोजक ४ है तो अन्तर ३ हुआ। यदि वियोज्य ३ के बदल ६ हो तो अन्तर २ होगा। यदि वियोज्य ५ हो तो अन्तर १ होगा। यदि वियोज्य भी ४ हो तो अन्तर शून्य होगा। अब स्पष्ट है कि यदि वियोज्य और घटे तो अन्तर ऋणात्मक हो जायेगा। यदि वियोज्य ३ हो तो अन्तर (—१) हो जायेगा। यदि वियोज्य २ हो जाय तो अन्तर (—२) हो जायेगा।

इन्हीं फलों को हम सारणी रूप में इस प्रकार लिख सकते हैं—

$$७ - ४ = ३, \quad ६ - ४ = २$$

$$५ - ४ = १, \quad ४ - ४ = ०$$

$$३ - ४ = -१, \quad २ - ४ = -२$$

$$१ - ४ = -३, \quad ० - ४ = -४$$

इस प्रकार हम देखते हैं कि जो राशि घटायी जाती है यदि वह धनात्मक हो तो ऋणात्मक हो जाती है। इसी प्रकार हम यह भी गिद्ध कर सकते हैं कि यदि शून्य में से कोई ऋणात्मक राशि घटायी जाय तो वह धनात्मक बन जायगी।

बीजगणित का अगला श्लोक यह है—

वेधादी वियत्तास्य स त्वेन घाते

महारी भवेत्तोन मन्तरश्च राशि ॥ ५ ॥

जैसे शून्य का भाग और अन्तर दो प्रकार का होता है, वैसे ही गुणन और भाजन भी दो प्रकार का होता है। वर्ग, वर्ग मूल, घन और घन मूल ये एक ही प्रकार के होते हैं, क्योंकि इनके करने में किसी दूसरी राश्या की अपेक्षा नहीं रहती।

शून्य का किसी राशि से गुणा करने अथवा किसी राशि को शून्य से गुणा करने पर गुणनफल शून्य ही होता है।

शून्य को किसी राशि से भाग देने में शून्य ही होता है। किन्तु किसी राशि का शून्य से भाग देने का पद 'गहर' अथवा 'गहरे' होता है।

गहर अथवा 'गहरे' का अर्थ है वह राशि जिसका हर (Denominator) शून्य हो।

आधुनिक संकेतलिपि में ये सूत्र इस प्रकार लिखे जायेंगे—

$$0 \times a = 0, \quad a \times 0 = 0$$

$$\frac{0}{a} = 0, \quad \frac{a}{0} = \text{खहर}$$

उपपत्ति—

अंक के अभाव में शून्य चिह्न ० लिखा जाता है। यदि एक राशि को दूसरी से गुणा करना हो तो पहली को गुण्य (Multiplicand) और दूसरी को गुणक (Multiplier) कहते हैं। गुण्य को जितनी बार आवृत्ति की जाय, उसी हिसाब से गुणनफल प्राप्त होता है। इस कारण गुण्य के अभाव से गुणनफल का भी अभाव हो जाता है।

इसी प्रकार भाज्य के ह्रास से लव्वि का भी ह्रास होता जाता है। यदि भाज्य शून्य हो तो लव्वि भी अवश्य ही शून्य होगी। जैसे जैसे भाजक का ह्रास होता जायगा वैसे वैसे लव्वि की वृद्धि होती जायगी। जब भाजक का परम ह्रास हो जायगा तब लव्वि की परम वृद्धि हो जायगी। इसीलिए उक्त लव्वि को अनन्त (Infinity) कहा जाता है।

भास्कर के वर्ग और घन संबन्धी सूत्र इस प्रकार लिखे जायेंगे—

$$0^3 = 0^3 = 0; \quad \sqrt{0} = 0; \quad \sqrt[3]{0} = 0;$$

बीजगणित का छठा श्लोक इस प्रकार है—

अस्मिन्विकारः खहरे न राशा-

वपि प्रविष्टेष्वपि निःसृतेषु ।

बहुष्वपि स्याल्लयसृष्टिकाले

अन्तेऽप्युते भूतगणेपु यद्वत् ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस खहर राशि में कोई राशि जोड़ दी जाय अथवा उसमें से कोई राशि घटा दी जाय तो उसमें कोई विकार नहीं होता। जैसे प्रलय काल में परमेश्वर के शरीर में अनेक जीव प्रविष्ट हो जाते हैं, किन्तु इससे उनके शरीर में कोई मुटापा नहीं आ जाता और सृष्टि के समय परमेश्वर के शरीर में से अनेक जीव निकल आते हैं, किन्तु शरीर दुबला नहीं पड़ जाता। यद्यपि इस 'खहर' राशि में कोई अंक जोड़ने आदि से उसके स्वरूप में विकार पड़ जाता है तो भी उसका अनन्तत्व नष्ट नहीं होता। जैसे अवतारों के भेद से ईश्वर के स्वरूप में तो अन्तर पड़ जाता है, किन्तु उसके ईश्वरत्व में कोई विकार नहीं आता। ऐसे ही 'खहर' राशि को मानना चाहिए।

मान लीजिए कि $\frac{५}{०}$ में ६ जोड़ने हें। तो यदि इन राशियों पर अकगणित के नियम लगाये जायें तो त्रिया इस प्रकार की होगी—

$$\begin{aligned}\frac{५}{०} + ६ &= \frac{५}{०} + \frac{६}{१} \\ &= \frac{५ \times १ + ० \times ६}{० \times १} = \frac{५}{०}\end{aligned}$$

इस प्रकार 'सहर' राशि $\frac{५}{०}$ ज्या की त्यां रह गयी और उसने स्वरूप में कोई बिकार नहीं पडा। किन्तु अब मान लीजिए कि हमें $\frac{५}{०}$ में $\frac{२}{७}$ जोड़ना है। तो अकगणित के नियमों के अनुसार त्रिया इस प्रकार होगी—

$$\begin{aligned}\frac{५}{०} + \frac{२}{७} &= \frac{५ \times ७ + ० \times २}{० \times ७} \\ &= \frac{३५}{०}\end{aligned}$$

यह भी 'सहर' राशि ही है। इस दशा में उक्त राशि के स्वरूप में तो बिकार हो गया। किन्तु उसकी प्रकृति में कोई अन्तर नहीं पडा। जैसी 'सहर' राशि $\frac{५}{०}$ है वैसी ही $\frac{३५}{०}$ है। हम यह नहीं कह सकते कि ५ को ० से भाग देने से जो मजनपल आता है, वह ३५ को ० से भाग देने से जो लब्धि आती है, उससे भिन्न है। 'सहर' राशि के स्वरूप में तो बिकार हो जाता है, किन्तु उसकी अनन्तता का ह्रास नहीं होता।

एशिया के अन्य देश।

अकगणित के अध्याय में हम बगदाद के अल करखी का उल्लेख कर चुके हैं। इसकी पुस्तक काफी-फिल हिसाब मुख्यतः अकगणित पर लिखी गयी है। किन्तु उसमें कुछ सूत्र बीजगणित के भी दिये गये हैं, जैसे—

$$(१० क + क) (१० ख - ख) = [(१० क + क) ख - क ख] १० + क ख$$

$$\text{और } (१० क + ख) (१० क + ग) = (१० क + ख + ग) क १० + ख ग।$$

इसके अतिरिक्त कुछ सूत्र इस प्रकार के भी दिये गये हैं—

$$\left(\frac{क + ख}{२}\right)^२ - \left(\frac{क - ख}{२}\right)^२ = क ख।$$

यह सूत्र उसने समस्त हिन्दुओं से प्राप्त किया था।

अल-करखी ने अपनी कृतियों में करणियों का भी विवेचन किया है। उसमें इस प्रकार के सूत्र दिये गये हैं—

$$1\overline{2} + 1\overline{2} = 1\overline{40}, \quad 1\overline{48} - 1\overline{2} = 1\overline{16} \quad ।$$

अल-करखी के वर्ग मूलों के निकट मानों के सूत्रों में ये उल्लेखनीय हैं—

$$\sqrt{k^2 + \tau} = k + \frac{\tau}{2k + 1}$$

और यदि $\tau \leq k$ तो $\sqrt{k^2 + \tau} = k + \frac{\tau}{2k} \quad ।$

किन्तु अल-करखी की सबसे प्रसिद्ध पुस्तक फ़ख़री है जो उसने बीजगणित पर लिखी थी। इस पुस्तक के नाम के संबन्ध में स्मिथ के इतिहास भाग २ के पृष्ठ ३८८ का यह पैरा पठनीय है—

“बीजगणित का नाम कदाचित् फ़ख़री पड़ जाता, क्योंकि अल-करखी ने, जो अरब के सबसे बड़े गणितज्ञों में से था, अपनी पुस्तक को यही नाम दिया था। जैसे अलख्वारिज़्मी की कृति का लैटिन में अनुवाद हुआ था, यदि वैसे ही अल-करखी के ग्रन्थ का भी हुआ होता तो कदाचित् यूरोपीय जगत् उसी के नाम की ओर आकृष्ट हो जाता। अल-करखी लिखता है कि उस समय की जनता पर जितना अत्याचार और हिंसा हुई, उसके कारण उसके कार्य में बड़ी बाधाएँ पड़ीं। आगे वह कहता है कि एक दिन ‘मगवान्’ ने जनता की सहायता के लिए एक रक्षक अबू ग़ालिब भेजा जो शासनिक कार्य में एकाकी था, दीनानाथ था और मंत्रियों का मंत्री था।’ अबू ग़ालिब का लोक-प्रिय नाम फ़ख़-उल-मुल्क था। अतः उसी के नाम पर अल-करखी ने अपनी कृति का नाम अल-फ़ख़री रखा।”

‘फ़ख़री’ में निम्नलिखित विषयों का समावेश है—

१. बीजगणितीय राशियाँ
२. मूल
३. एकघात और द्विघात समीकरण
४. अनिर्णीत समीकरण
५. भाषायुक्त प्रश्नों का साधन।

अलख्वारिज़्मी अज्ञात राशि को ‘जिद्र’ और उसके वर्ग को ‘मल’ कहता था। अल-करखी ने उक्त शब्दावली को और आगे बढ़ाया। उसके कुछ शब्द इस प्रकार के थे—

$y^1 = \text{कव}$

$y^2 = \text{मल मल}$

$y^3 = \text{मल कव}$

$y^4 = \text{कव कव}$

$y^5 = \text{मल मल कव} ।$

यह समझ है कि अल-करखी का 'कव' और जग्रेजी का Cube एक ही मूल निकले हा ।

अल-करखी ने वर्ग समीकरणों में से हम समीकरण

$$x^2 + ax = b$$

का यह मूल दिया है

$$x = \left[\sqrt{\left(\frac{a}{2}\right)^2 + b} - \frac{a}{2} \right] \quad \text{क}$$

अल-करखी ने इस प्रकार के उच्च घात समीकरणों के हल भी निवाले हैं—

$$x^2 + r^2 = l^2,$$

$$x^2 - r^2 = l^2,$$

$$x^2 r^2 = l^2,$$

$$x^2 - r^2 = l^2,$$

$$x^2 + r^2 = l^2 ।$$

अल-करखी ने एकघात और द्विघात अनिर्णीत समीकरणों का भी साधन किया था और उनके पूर्णांकीय और मिश्रात्मक हल निवाले थे । इसमें अनिर्दिष्ट उत्तरों श्रेणियों का भी विवेचन किया था । प्राकृतिक समस्याओं सबकी उसके दो सूत्र यहाँ दिये जाते हैं ।

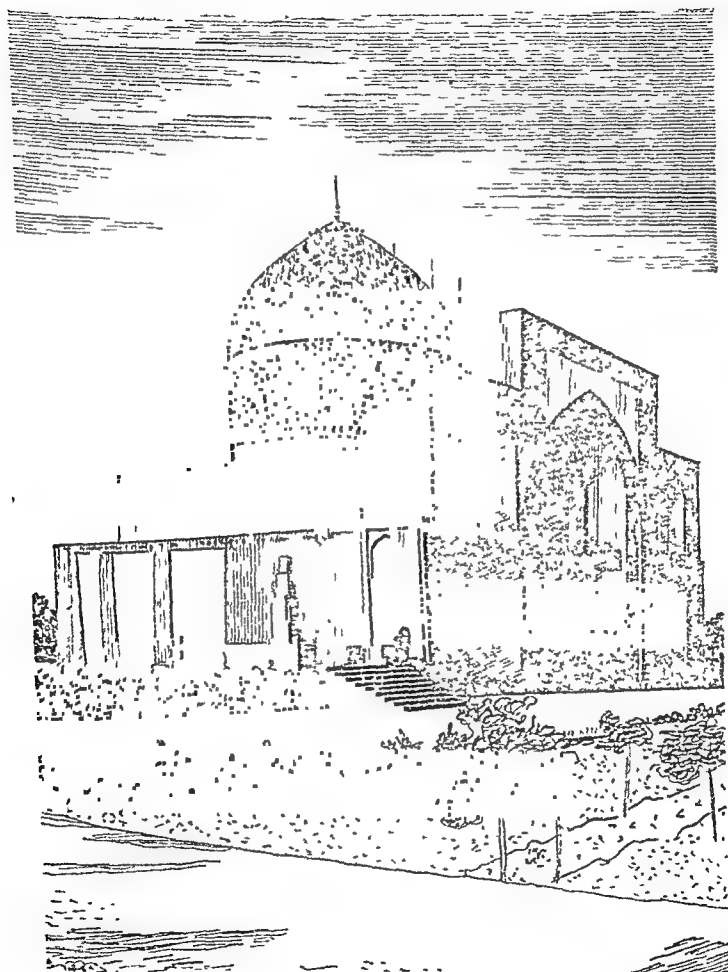
$$\sum_{i=1}^n x^i = (1 + 10) 10 \left(\frac{10}{3} + \frac{1}{6} \right) = 365,$$

$$\sum_{i=1}^n x^i = \left(\sum_{i=1}^n x \right)^2$$

उमर खय्याम

उमर खय्याम एक कवि, ज्योतिषी, गणितज्ञ और दार्शनिक था । उमरा जम्मू नौशापुर के आस पास हुआ था और मृत्यु नौशापुर में ही मन् ११२३ में हुई । उनके

स्थान पर उसकी एक सुन्दर कब्र बनी हुई है। उसका पूरा नाम 'घियातुद्दीन अब्दुल्फतेह उमर बिन इब्राहीम अल-खय्यामी' था। 'खय्याम' का अर्थ है 'ढेरा बनाने वाला'। उसके पिता का यही व्यवसाय था, कदाचित् इसीलिए वह इस नाम



चित्र ३७—जीजापुर में उमर खय्याम की कब्र ।

[रीवर पब्लिकेशन्स, रूमाफोरेस्ट, न्यूयॉर्क-१०, की अनुज्ञा से, टी० स्ट्रुइक क्लन 'द कॉन्साइज्ड हिस्ट्री ऑफ मैथेमेटिक्स' (१.७५ डालर) से प्रत्युत्पादित ।]

से प्रसिद्ध हुआ। उसने बीजगणित पर एक ग्रन्थ लिखा जिसमें उसकी ख्याति फैल गयी। १०७४ में सुन्तान मलिक साह ने उसको बुला भेजा और उसे तिथिपत्र मुधारने का काम सौंप दिया। उसने ज्योतिषीय सारणियों का संशोधित संस्करण निकाला और जलाश्री सवन् को जन्म दिया जो १५ मार्च १०७९ से आरम्भ होता है।

उमर खय्याम की ख्याति उसकी रवाइयों से अधिक हुई और ससार उसे मुख्यतः कवि के रूप में ही जानता है। उसने रवाइयों में ५०० भूगोल वाक्य लिखे हैं जिनका हमारे की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

(क-१४)^१ के प्रसार की विधि, जिसमें स कोई पूर्णांक है, पूर्व में पश्चिम की अपेक्षा बहुत पहले ज्ञान हो चुकी थी। यूक्लिड को उक्त सूत्र की विशिष्ट दाता $m=2$ का पता था, किन्तु स के अन्य मानों का सूत्र सर्वप्रथम उमर खय्याम ने ही दिया था। उसने एक स्थान पर लिखा है कि वह संख्याओं के चौथे, पाँचवें, छठे,

मूल एक नियम के अनुसार निवारणा जानता है। अपने बीजगणित में उसने उक्त नियम दिया नहीं है, किन्तु यह लिखा है कि वह नियम उसने एक अन्य पुस्तक में दिया है। उल्लिखित ग्रन्थ की कोई भी प्रति आज तक किसी के देखने में नहीं आयी है।

आधुनिक गणित में समीकरणों का वर्गीकरण घातों के अनुसार किया जाता है। उमर खय्याम का वर्गीकरण इससे भिन्न था, किन्तु वर्गीकरण का सबसे पहला व्यवस्थित प्रयास उसी ने किया था। उसने प्रथम तीन घातों के समीकरणों को दो वर्गों में बाँटा था—

(क) सरल (Simple)

(ख) समुक्त (Compound)

सरल समीकरण वह इस प्रकार के समीकरणों का कहता है—

$$ax = by, \quad ax = by^2, \quad ax = by^3,$$

$$axy = by^2, \quad axy = by^3, \quad axy^2 = by^3.$$

इस प्रकार समस्त त्रिपद समीकरणों को उमर खय्याम 'सरल समीकरण' कहता है। त्रिपद और चतुष्पद समीकरणों को वह 'समुक्त समीकरण' कहता है। त्रिपद समीकरणों में वह निम्नलिखित बारह प्रकार गिनाता है—

$$x^3 + axy = by, \quad x^3 + ax = by, \quad axy + y = by^2, \quad x^3 + y = by^2,$$

$$x^3 + axy^2 = by, \quad x^3 + axy = by^2, \quad axy + x = by^2, \quad axy + x = by^3,$$

$y^1 + गय = घ$, $y^1 + घ = गय$, $गय + घ = y^1$;

$y^1 + खय^2 = घ$, $y^2 + घ = खय^2$, $खय^2 + घ = y^2$ ।

चतुष्पद समीकरणों को उमर खय्याम पाँच वर्गों में विभाजित करता है —

$y^1 + खय^2 + गय = घ$, $y^1 + खय^2 + घ = गय$,

$y^1 + खय^2 = गय + घ$, $y^1 + गय = खय^2 + घ$,

$y^1 + घ = खय^2 + गय$ ।

अब के गणितज्ञों की यह परिपाटी थी कि समीकरणों का भाषा के रूप में व्यक्त किया करते थे । उपरिलिखित समीकरण

$$y^1 + खय^2 = गय$$

को उमर खय्याम इस प्रकार लिखता था—

“एक घन और एक वर्ग, मूलों के बराबर है ।”

इसी प्रकार समीकरण

$$y^1 + घ = खय^2 + गय$$

के लिखने का उसका ढंग यह था—

“एक घन और एक अन्य संख्या वर्गों और मूलों के बराबर है ।”

वर्ग समीकरण

$$y^2 = पय + फ$$

को उमर खय्याम ने इस प्रकार हल किया था—

$$फ = y^2 - पय = य(य - प)$$

$$= (य - \frac{1}{2}प)^2 - (\frac{1}{2}प)^2$$

$$\therefore (य - \frac{1}{2}प)^2 = (\frac{1}{2}प)^2 + फ$$

वर्ग मूल लेकर दोनों ओर $\frac{1}{2} प$ जोड़ देने से य का मान प्राप्त हो जाता है ।

उमर खय्याम का वर्ग समीकरण

$$y^2 + फ = पय$$

का हल इस सर्वसमिका (Identity) पर आवृत्त है—

$$य(प - य) + (य - \frac{1}{2}प)^2 = (\frac{1}{2}प)^2$$

वर्ग समीकरण

$$y^2 + पय = फ$$

के मूल के लिए उमर खय्याम यह नियम देता है—

“मूल के आधे को अपने आप से गुणा करो। गुणनफल को सहाय में जोड़ दो। भाग का वग मूल लेकर मूल का आधा घटा दो। शेष ही वग का मूल होगा।”

उपरिलिखित उद्धरण में ‘मूल’ का अर्थ ‘मूल के गुणन’, ‘सहाय’ का अर्थ ‘अधर पद’ और ‘वग’ का अर्थ ‘वग गमीकरण’ है। अब इस सूत्र से

$$य = \sqrt{\frac{1}{2} \times 100} = 7.07$$

इस विधि से उक्त गव्याम ने भी इसी समीकरण

$$य^2 + 10 य = 29$$

का साधन किया था जिसका अल-ज्वाज़िनी ने किया था।

स्पष्ट है कि उपरिलिखित विधि इस सर्वममिता पर आधारित है—

$$य(य+५) = (य+३५)^2 - (३५)^2$$

इस प्रकार,

$$29 = य(य+१०) = (य+५)^2 - ५^2$$

$$\therefore (य+५)^2 = 29 + 25 = 54$$

$$\text{अतः } य + ५ = ८$$

$$य = ३$$

$\sqrt{54}$ का ऋणात्मक मान लेने से दूसरा मूल प्राप्त होगा।

सन् ८६० में अलमाहानी ने निम्नलिखित घन समीकरण

$$य^3 + य^2 = १००$$

का अध्ययन किया। अलमाहानी के कार्य ने गणितीय जगत् को इतना आह्वित किया कि अरबी और ईरानी लेखकों में उपरिलिखित समीकरण का नाम ‘अलमाहानी समीकरण’ पड़ गया।

सन् ८७० के लगभग अलमाहानी ने एक समकालीन लेखक ताबित इब्न कोरा ने घन समीकरण की कुछ विशिष्ट दशाया का साधन किया। उसकी विधि मुख्यतः ज्यामितीय थी।

सन् १००० के आस पास अरब के निवासी अलहाज़िन ने भी घन समीकरणों पर कार्य किया है। उन्होंने उपरिलिखित समीकरण का हल एक परवलय (Parabola) और एक अतिपरवलय (Hyperbola) के कटान बिन्दु निकालकर किया, जिनके समीकरण इस प्रकार हैं—

$$य^२ = कर, \quad (\text{परवल्य})$$

$$\text{और} \quad र(ग-य) = कख \quad (\text{अतिपरवल्य})$$

तत्पश्चात् उमर खय्याम ने अपनी लेखनी घन समीकरणों पर उठायी कहा जाता है कि एकवार उसने यह वक्तव्य दिया था कि घन समीकरण

$$य^३ + र^३ = ल^३$$

का घन पूर्णाकों में हल नहीं निकाला जा सकता। पता नहीं कि इस कथन में तथ्य कितना है क्योंकि उमर खय्याम की कृतियों में ऐसा वक्तव्य कहीं नहीं मिलता। किन्तु उमर खय्याम ने अन्य कई प्रकार के घन समीकरणों का साधन तो किया है। उसने निम्नलिखित समीकरण

$$य^३ + ख^३ = ख^३ ग$$

का हल निम्नलिखित शांकवों (Conics) के कटान बिन्दु निकालकर किया—

$$य^२ = खर$$

$$\text{और} \quad र^२ = य (ग-य)।$$

इस प्रकार के समीकरणों

$$य^३ - कय^३ = ग^३$$

का हल उसने निम्नलिखित शांकवों के कटान बिन्दु निकालकर किया—

$$यर = ग^२$$

$$\text{और} \quad र^२ = ग (य+क)।$$

इसके अतिरिक्त इन शांकवों

$$र^२ = (य \pm क) (ग-य)$$

$$\text{और} \quad य (ख \pm र) = खग$$

के कटान बिन्दु निकालकर उसने निम्नलिखित समीकरणों का साधन किया—

$$य^३ \pm कय^३ + ख^३ य = ख^३ ग।$$

अन्य लेखक

अरबी लेखकों में इब्न अल-यास्मीन का नाम उल्लेखनीय है। इनका पूरा नाम 'अब्दुल्ला इब्न मुहम्मद इब्न हज्जाज, अबू मुहम्मद' था। यह मोरक्को का निवासी था और इनकी मृत्यु १२०३ और १२०५ के बीच हुई थी। इसकी प्रसिद्धि इसकी एक कविता 'अभूजा' से हुई जो इनने बीजगणित पर लिखी थी। उन रचना की कई हस्तलिपियाँ प्राप्य हैं और उसने बीजगणित को जनता में बहुत लोकप्रिय बना दिया।

एक अन्य लेखक अल तूमी का भी नाम लिया जा सकता है। इसका वास्तविक नाम 'अल मुजफ्फर इब्न मुहम्मद इब्न अल-मुजफ्फर शरफ उद्दीन अल तूमी' था। यह तूम का निवासी था और इसकी मृत्यु लगभग १२१३ में हुई थी। इसकी कृतियाँ ज्यामिति और बीजगणित पर हैं। इसने एक नक्षत्र-यन्त्र (Astrolabe) का भी आविष्कार किया था जो 'तूमी-दण्ड' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

(७) सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियाँ

यूरोप

सोलहवीं शताब्दी के गणितज्ञों में प्रमुख नाम इटली के जिरोलामो कार्डान (Girolamo Cardan) का आता है। इसका जीवन काल १५०१-१५७६ था। यह फेमियो कार्डेनो (Facio Cardano) का अवैध पुत्र था जो मिलन का एक कानून का विद्वान् था। कार्डेन का जन्म पविया (Pavia) में हुआ था। इसने पविया और पटुआ में शिक्षा पायी और यह औपधि विज्ञान का स्नातक हो गया। किन्तु इसके अवैध जन्म के कारण मिलन के वैद्यक कालिज से इसका निष्कासन हो गया। १५३४ में यह ज्यामिति का अध्यापक हो गया। सन् १५४३ में यह पविया विश्व-विद्यालय में औपधि विज्ञान का प्राध्यापक नियुक्त हो गया।

कार्डेन ने बीजगणित और फलित ज्योतिष (Astrology) पर जो पुस्तकें लिखीं उनमें उनकी ख्याति यूरोप भर में फैल गयी। जब वह अपनी प्रसिद्धि के शिखर पर पहुँचा तब उसके लड़के ने एक लड़की से विवाह कर लिया जो पति परायण नहीं निकली। उसके पति ने उसे विप दे दिया जिसके कारण उसे फाँसी पर चढ़ा दिया गया। इस घटना से कार्डेन की कमर टट गयी और उसकी ख्याति को भी बड़ा भारी धक्का लगा। उसे किसी अज्ञात अभियोग पर मिलन से निकाल दिया गया। सन् १५६२ में वह बोलीना (Bologna) में प्रापेगर नियुक्त हो गया। सन् १५७० में वह पदव्युक्त कर दिया गया और बन्दी बनाकर रोम भेज दिया गया। उसके जीवन के अन्तिम वर्ष रोम में ही बटे। अन्त समय तक उसे पोप से पेंशन मिलती रही।

कार्डेन के चरित्र के विषय में म्मिथ का यह पैरा उल्लेखनीय है जो उसने अपने गणित के इतिहास के प्रथम भाग के पृ० २९६ पर दिया है—

'कार्डेन में परस्पर विरोधी गुणा का समावेश था। वह एक ज्योतिषी भी था और दर्शन का गम्भीर विचारधी भी। वह एक जूजारी था, फिर भी एक उच्च कोटि का बीजगणितज्ञ था। वैद्यक में उसका निदान बड़ा मम्बक् था, तथापि

उसके कथन बड़े अविश्वसनीय होते थे। वैद्य होते हुए भी वह एक हत्यारे का प्रतिरक्षक था। एक समय वह बोलोना विश्वविद्यालय का प्राध्यापक था। किन्तु एक अन्य अवसर पर वह अनाथाश्रम का निवासी भी बन गया था। वह अन्ध-विश्वासी था, फिर भी मिलन के वैद्यक कालिज का कुलाचार्य (Rector) बन गया। वह एक उद्धर्मी (Heretic) था, जिसने ईसा की जन्मपत्री प्रकाशित करने का दुस्साहस किया। तथापि उसे पोप से पेंशन मिली। वह अतिवादी होते हुए भी प्रतिभाशाली था। तिस पर भी था वह विलकुल सिद्धान्तहीन।”

निकोलो टार्टॅग्लिया (Niccolo Tartaglia) भी इटली का ही एक गणितज्ञ था। इसका जन्म लगभग १५०६ में ब्रैस्किया (Brescia) में हुआ था और मृत्यु सन् १५५९ में। इसका बालपन दारुण दारिद्र्य में बीता। १५१२ में ब्रैस्किया के विध्वंस के समय फ्रांसीसी सिपाहियों के द्वारा इसके कई आघात लगे। व्रण तो धीरे धीरे ठीक हो गया, परन्तु इसकी जिह्वा पर कुछ प्रभाव रह गया जिसके कारण यह हकलाने लगा। इसीलिए इसका उपनाम ‘टार्टॅग्लिया’ पड़ गया, इटॅलियन भाषा में जिसका अर्थ ‘हकलाने वाला’ है। इसने स्वाध्याय द्वारा ही शिक्षा पायी। किन्तु फिर भी यह १५२१ में वेंरोना (Verona) में गणित का एक प्रतिष्ठित अध्यापक हो गया।

टार्टॅग्लिया की पहली मुद्रित पुस्तक ‘शातघ्निकी’ (Gunnery) पर थी जो वेंनिस (Venice) से १५३७ में प्रकाशित हुई। इसकी दूसरी पुस्तक एक प्रश्नोत्तरी के रूप में है जिसमें शातघ्निकी और संबद्ध विषयों के अतिरिक्त घन समीकरणों पर भी कुछ प्रश्न दिये गये हैं। इसने गणित पर भी एक ग्रन्थ लिखा है जिसमें व्यापार गणित के नियम दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त उक्त ग्रन्थ में जन-जीवन और व्यापारियों के रीति-रिवाज का भी विवेचन किया गया है। इसकी दो अन्य कृतियाँ उल्लेखनीय हैं—

१. आर्किमिडीज के ग्रन्थों की टीका (१५४३)
२. यूक्लिड का अनुवाद, जो इटॅलियन भाषा में, उक्त लेखक के ग्रन्थ का, सबसे पहला अनुवाद था। (१५४३)

कार्डन और टार्टॅग्लिया की जीवनियाँ एक दूसरे में गुँथी हुई हैं। टार्टॅग्लिया ने लिखा है कि १५३० में जॉन डा सोइ (John da coi) ने, जो ब्रैस्किया में एक अध्यापक था, उसको चुनौती के रूप में निम्नलिखित दो समीकरण हल करने के लिए भेजे—

$$y^3 + 3y^2 = 4$$

और

$$y^3 + 6y^2 + 4y = 1000.$$

टार्टे ग्लिया उस समय तो इन समीकरणों को हल नहीं कर सका। किन्तु १५३५ में उसने एक ऐसी विधि निकाल ली, जिससे वह निम्नलिखित प्रकार के त्रिमी भी समीकरण का साधन कर सकता था—

$$y^3 + 3y^2 = g.$$

सन् १५३५ में टार्टे ग्लिया का फ्लोरिडो (Florido) से द्वन्द्व निश्चित हुआ। टार्टे ग्लिया जानता था कि फ्लोरिडो ने इस प्रकार के समीकरण

$$y^3 + 3xy = g$$

का हल निकाल लिया था। अब उसने जबकि परित्यक्त किया और द्वन्द्व से कुछ ही समय पहले इस समीकरण का साधन करने में सफल हो गया। इस प्रकार उमरी जीन निश्चित हो गयी, क्योंकि वह जानता था कि वह फ्लोरिडो के त्रिमी भी प्रश्न का उत्तर दे गेगा, किन्तु उसके पास ऐसे प्रश्न विद्यमान थे जो फ्लोरिडो हल नहीं कर सकता था।

डामोइ ने टार्टे ग्लिया को लिखा कि वह अपने हल की विधि को प्रकाशित करने मैदान में आये। किन्तु टार्टे ग्लिया ने ऐसा करने से इनकार कर दिया। इस तरह में वार्डेन और टार्टे ग्लिया में भी कुछ पत्राचार हुआ और निश्चित हुआ कि दोनों आपस में मिलकर बात कर लें। टार्टे ग्लिया ने इस आश्वासन पर कि वार्डेन उगाँव रहस्य को गुप्त रखेगा, उसे अपने हल की विधि बना दी।

सन् १५४५ में वार्डेन ने अपना ग्रन्थ अर्समैग्ना (Ars magna) प्रकाशित किया और उगम घन समीकरण के हल की टार्टे ग्लिया की विधि भी छाप दी, जिसे गुप्त रखने का उगम वचन दिया था। टार्टे ग्लिया की विधि इस प्रकार है—

$$\text{यदि} \quad y^3 + 3xy = g$$

तो मान लो कि $g = p - q$ और $y^3 = 20pm$ ।

$$\text{तो} \quad y = p^{\frac{1}{3}} - m^{\frac{1}{3}}$$

$$\text{तबकि} \quad (p^{\frac{1}{3}} - m^{\frac{1}{3}})^3 + 3(p^{\frac{1}{3}} - m^{\frac{1}{3}})(p^{\frac{1}{3}} - m^{\frac{1}{3}})^2 = p - q.$$

वार्डेन का कथन है कि उगमिर्निर्गत घन समीकरण एवं वर्गिक समीकरणों के हल (Capitolo del libro) ने सन् १५१५ के आगमन की निराश किया था

और, उसने उसका रहस्य अपने शिष्य फ्लोरिडो को बता दिया था। टाटेंगिलिया भी इस बात को मानता है।

कार्डेन ने अपनी अर्समॅग्ना में निम्नलिखित समीकरणों का साधन भी किया था—

$$y^3 = ky^2 + g$$

और

$$y^3 + ky^2 = g$$

पहले समीकरण में उसने $y = r + \frac{1}{r}$ क रखकर y^3 के पद को अन्तर्हित कर दिया। दूसरे समीकरण में उसने $y = r - \frac{1}{r}$ क प्रतिस्थापित किया।

$$\text{कार्डेन ने } y = \frac{\sqrt[3]{g^2}}{r} \text{ रखकर इस समीकरण}$$

$$y^3 + g = ky^2$$

को भी हल किया। उसने y^3 के पद को लुप्त करने की यही विधि सार्विक घन समीकरण

$$y^3 + ky^2 + xy = g$$

पर भी लगायी। समीकरण

$$y^3 + xy = g$$

का हल उसने इस रूप में निकाला—

$$y = \sqrt{\sqrt{\frac{x^3}{27} + \frac{g^2}{4} + \frac{g}{2}}} - \sqrt[3]{\sqrt{\frac{x^3}{27} + \frac{g^2}{4} - \frac{g}{2}}}$$

इस प्रकार कार्डेन ने ऐसी राशियों

$$\sqrt[3]{k} + \sqrt{x}$$

का उपानयन किया जो यूक्लिड की राशि

$$\sqrt[3]{k} + \sqrt{x}$$

ने मिल थीं।

इसमें सन्देह नहीं कि कार्डेन में अद्भुत प्रतिभा थी। उसने घन समीकरण की अखण्डकरणीय दशा (Irreducible case) पर भी विचार किया। इसके अतिरिक्त उसे इसका भी ज्ञान था कि किसी समीकरण के किनने मूल होते हैं और उन्में एक प्रकार के सम्मित फलनों (Symmetric Functions) के निश्चान्त की भी नींव डाली। उनमें द्वीजगणित के अतिरिक्त अंकगणित, ज्यामिति, भौतिकी

और अन्य कई विषयों पर भी पुस्तकें लिखी ह। किन्तु वह जितना प्रतिभाशाली था उतना ही बेइमान भी था। उसका एक शिष्य फेरारी (Ferrari) था, जिसने चतुर्घात समीकरण (Quartic Equation)

$$y^4 + 6y^2 + 36 = 60y$$

का घन समीकरण

$$x^3 + 15x^2 + 36x = 864$$

में परिणत करके उसका हल निराला था। कार्डेन ने उक्त हल भी अपनी 'असं-मग्ना' में छाप दिया। और विशेषता यह थी कि डेसोइ ने कार्डेन को भी एक समस्या हल करने के लिए दी थी, जिसमें उपरिलिखित चतुर्घात समीकरण का साधन करना पड़ना था। जब कार्डेन ने स्वयं यह कार्य सम्पन्न न हुआ तो उसने उक्त प्रश्न फेरारी का दे दिया। जब फेरारी ने उस हल कर दिया तब कार्डेन ने उसे अपने नाम से प्रकाशित कर दिया।

लाडोविको फेरारी (Lodovico Ferrari) का जन्म १५२२ में बोलोना में विपत्तावस्था में हुआ था। उसकी मृत्यु लगभग १५६० में हुई थी। १५ वर्ष की अवस्था में उसे कार्डेन के घर में नीकरी मिल गयी। कार्डेन ने देखा कि लड़का हानहार है। अतः पहले तो उसे अपना सचिव बनाया और बाद में शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया। किन्तु फेरारी मित्राज का बड़ा तेज था। अतः कार्डेन में उसकी प्यारी नहीं थी। १८ वर्ष की अवस्था में उसने गुरु से सबन्ध तोड़ दिया और स्वयं अध्यापक हो गया। उसे पैसा भी प्राप्त हुआ और रयाति भी। तत्पश्चात् वह बालाना में प्राध्यापक हो गया। किन्तु एक वर्ष के अन्दर ही ३८ वर्ष की अवस्था में उसका देहान्त हो गया। लोग का अनुमान है कि उसकी बहिन ने उसे विष दे दिया था।

फेरारी ने चतुर्घात समीकरण

$$y^4 + 4y^2 + 4y^2 + 4y^2 + 4 = 0$$

के हल की जो विधि निराली है वह इस प्रकार है—

पहले चतुर्घात समीकरण को इस समीकरण

$$y^4 + 4y^2 + 4y^2 + 4 = 0$$

में परिवर्तित कर ली।

अब इस समीकरण से हमें प्राप्त होगा

$$y^1 + 2py^2 + p^2 = py^2 - py - 3 + p^2,$$

अथवा $(y^1 + p)^2 = py^2 - py + p^2 - 3$ ।

अतः $(y^1 + p + r)^2 = (p + 2r)y^2 - py + (p^2 - 3 + 2rp + r^2)$ ।

अब r का मान इस प्रकार निर्धारित करो कि दक्षिण पक्ष एक पूर्ण वर्ग हो जाय,

जिसके लिए आवश्यक अनुबन्ध

$$p^2 = 4(p + 2r)(p^2 - 3 + 2rp + r^2)$$

है ।

यह एक घन समीकरण है । इसका साधन करते ही मौलिक समीकरण का हल निकल आता है ।

राफ़ेल बॉम्बेली (Rafael Bombelli) बोलोना का निवासी था, जिसका जन्म लगभग १५३० में हुआ था । बॉम्बेली के जीवन के विषय में कुछ भी पता नहीं है । उसकी बीजगणित की पुस्तक की भूमिका से यह अनुमान होता है कि वह एक इंजीनियर था । उक्त पुस्तक १५७२ में प्रकाशित हुई, जो इटली की सर्व प्रथम पुस्तक थी, जिस पर अलजेब्रा का नाम पड़ा था । सन् १५५० में उसने ज्यामिति पर एक पुस्तक लिखी । दोनों पुस्तकों में उसने काल्पनिक सम्मिश्र राशियों (Imaginary complex quantities) का उपानयन किया है । उक्त राशियों की सहायता से बॉम्बेली ने घन समीकरण की अलघुकरणीय दशा का हल निकाला । उक्त हल में उसने यह सिद्ध किया है कि—

$$\sqrt[3]{42 + \sqrt{0 - 2209}} = 4 + \sqrt{0 - 1}.$$

इस प्रकार गणितीय जगत् को काल्पनिक राशियों का सर्व प्रथम परिचय घन-समीकरणों द्वारा मिला, और वह भी उस दशा में जबकि उक्त समीकरण के मूल वास्तविक होते थे । किन्तु आजकल काल्पनिक राशियों से विद्यार्थी की पहली मुठ-भेड़ वर्ग समीकरणों में होती है ।

बॉम्बेली की पुस्तक बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुई, और गणितीय जगत् में सम्मिश्र राशियों का जो डर बैठा हुआ था, वह जाता रहा ।

फ्रैंसॉय वीटा (Francois Vieta) फ्रांस का एक गणितज्ञ था, जिसका स्थिति काल १५४०-१६०३ था । यह क़ानून का अध्ययन करके एक वकील बन गया । इसकी प्रसिद्धि बढ़ती गयी और १५८९ में यह संसद की परिषद् का सदस्य हो गया ।

बीटा के हाथ में एक ऐसा मंदेश पड़ गया, जिसमें ५०० से अधिक वर्ण थे। बीटा उसका अर्थ निकाल लिया। तत्पश्चात् इस प्रकार के जितने भी मंदेश फ्रांसीसियों के हाथ में पड़ने थे, बीटा के पास भेज दिये जाते थे और वह सदैव उनका ठीक ठीक निकाल दिया करता था। जब फिलिप द्वितीय को इस बात का पता चला कि फ्रांस में उसकी सांकेतिक भाषा का अर्थ निकाल लिया जाता है तो उसने पोप के पत्रिकायत भेजी कि फ्रांस वाले उसके विरुद्ध जादू का प्रयोग कर रहे हैं।

बीटा को विज्ञान और अध्ययन से इतना प्रेम था कि वह जितने अभिलेख (Papers) लिखा करता था, सबको अपने ही दायरे पर छपवा कर यूरोप के सम्प्रदायों में भेज दिया करता था।

बीटा को आधुनिक बीजगणित का जन्म दाता कहते हैं। वह उन लेखकों में था जिन्होंने सर्व प्रथम बीजगणित में संख्याओं को निरूपित करने के लिए वर्णों का प्रयोग किया—ज्ञान राशियों के लिए व्यंजनों का और अज्ञात राशियों के लिए स्वरों का। समीकरण चिह्न को छोड़कर उसकी प्रायः समस्त संकेतलिपि वैसी ही थी जैसी आधुनिक बीजगणितीय पुस्तकों में प्रयुक्त होती है। वह अज्ञात राशि के लिए 'अक' लिखा करता था, घन के लिए 'अक' और चतुर्थघात के लिए 'अक'।

बीटा से पहले समीकरणों के हल के लिए ज्यामितीय विधि का प्रयोग किया जाता था। बीटा ने वैश्लेषिक विधि को अपनाया। वह वर्ग समीकरण

$$y^2 + कय + ख = ०$$

को इस प्रकार हल करता था—

$$y = ल + व$$

रखने से समीकरण का यह रूप हो जायगा—

$$ल^2 + (२व + क)ल + (व^2 + कव + ख) = ०.$$

अब व को इस प्रकार चुनो कि $२व + क = ०$, अर्थात् $व = -\frac{१}{२} क$ ।

तो
$$ल^2 - \frac{१}{४} (क^2 - ४ख) = ०.$$

$$\text{अतएव } ल = \pm \frac{१}{२} \sqrt{क^2 - ४ख}।$$

$$\therefore y = ल + व = -\frac{१}{२} क \pm \frac{१}{२} \sqrt{क^2 - ४ख}।$$

बीटा की घन समीकरण को हल करने की विधि यह थी—

$$\text{समीकरण } y^3 + पय^2 + फय + व = ०$$

में

$$y = र - \frac{१}{३} प$$

रखने से समीकरण इस रूप में आ जायगा—

$$x^3 - 3x^2 = 2x$$

अब $x = \frac{y - x^3}{x}$ रखने से यह समीकरण प्राप्त हो जायगा—

$$x^3 - 2x^2 - y^3 = 0$$

इस पष्ठधान समीकरण को वर्ग समीकरण की मानि हल करके x का मान निकाला जा सकता है। इस प्रकार 'र' का और फिर अन्त में 'य' का मान निकल आया।

बीटा ने घन समीकरण के और भी कई हल दिये हैं, किन्तु यही हल सर्वम सरल है।

बीटा ने चतुर्थी समीकरण का भी अध्ययन किया था। उसकी विधि इस प्रकार थी।

समीकरण

$$y^4 - 2xy^3 + x^2y = 0$$

को इस प्रकार लिखो—

$$y^4 + 2xy^3 = x^2 - x^2y$$

अब इस समीकरण के बायें पक्ष को पूर्ण वर्ग बनाकर आगे बढ़ो।

इस विधि में भी अन्त में हल एक घन समीकरण पर ही आबूत होता है।

बीटा ने इसकी विधि दी कि किसी सार्विक समीकरण के मूलों को किस प्रकार किसी दी हुई संख्या 'ट' से बढ़ाया अथवा घटाया जा सकता है। इसके अनिश्चित उमने मर्यादात्मक समीकरणों के मूलों के निकट मान निकालने की भी विधि बनायी।

बीटा ने किसी गुणोत्तर श्रेणी का, जिसका माव अनुपात (Common ratio) १ से कम हो, योग निकालने का सूत्र भी दिया था।

क्रिस्टोफ रुडोल्फ (Christoff Rudolff) एक जर्मन गणितज्ञ था। इसके जीवन के विषय में बहुत कम जानकारी प्राप्त हुई है। इमने १५२५ में एक बीजगणिता लिखा जो इस विषय की जर्मनी में प्रकाशित हुई पहली महत्वपूर्ण पुस्तक थी। उक्त पुस्तक का नाम कोस (Coss) था और उमने जर्मनी में बीजगणित को बहुत लोकप्रिय बना दिया। रुडोल्फ ने दो पुस्तकें और लिखी हैं जिनमें से दूसरी में प्रदत्तों का संग्रह है। वह १५३० ई० में प्रकाशित हुई थी।

मूल चिह्न $\sqrt{\quad}$ का प्रयोग सबसे पहले रुडोल्फ ने अपनी 'कोस' में ही किया था। कुछ इतिहासज्ञों का अनुमान है कि यह चिह्न अग्रेजी r का ही चिह्न रूप है और रुडोल्फ ने इमनिष् इसका प्रयोग किया था कि यह "root" का पहला

देते हैं। समझ है कि यह अनुमान सत्य हो क्योंकि १४ की घनराशि से और उसके पश्चात् भी बहुत दिन तक सत्य चिह्न इन तर्कों से प्रयुक्त होता रहा—

$$8, 8, \sqrt{8}, \sqrt{8}, \sqrt{8}, \sqrt{8}$$

चित्र ३३—बीजगणित के मूल चिह्न के विभिन्न रूप।

रडोल्फ ने इन समीकरणों में भी कुछ सचि दिखाये थे। हम उनका दिया हुआ एक इन समीकरण का हल यहाँ देते हैं—

$$y^2 = 10y^2 + 20y - 40.$$

हमें प्राप्त है—

$$y^2 - 40 = 10y^2 + 20y - 40$$

$$\text{अतः} \quad y^2 - 20 - 4 = 10y^2 - \frac{40}{y-2}$$

यहाँ तक तो ठीक है। किन्तु इसके पश्चात् रडोल्फ लिखता है कि

$$y^2 - 20 = 10y$$

$$\text{अतः} \quad y = \frac{40}{y-2}.$$

और इन समीकरणों से रडोल्फ $y=4$ निकाल लेता है।

आधुनिक गणित में इसको बिल्कुल भन माना जा कहेंगे।

जर्मनी का एक अन्य प्रतिष्ठित गणितज्ञ माइकेल स्टाइफेल (Michael Stifel) (१४८३-१५६३) था। इसकी गिफ्ट ऐसलिंग्टन (Esslington) में हुई थी। सब पूछिए तो यह धार्मिक व्यवसाय के लिए प्रयत्नित किया गया था और उस क्षेत्र में इसने प्रगति भी दिखायी, किन्तु वचन से ही इसे गणित का शौक था। उसने मरिचकवाणी की कि अनुकूल दिन संसार का लोभ हो जायगा। जब वह दिन आया, उसने कुछ खेतिहरों को इकट्ठा किया और 'स्वर्ग' की ओर चल दिया। मार्ग में वह नहीं पहुँचा, जेल के अन्दर अवश्य पहुँच गया। कुछ दिन जेल में रहने के पश्चात् यह छोड़ दिया गया।

स्टाइफेल ने गणित पर पाँच पुस्तकें लिखी हैं जिनके विषय संख्याओं के गुणधर्म, अंगगणित और बीजगणित हैं। इसकी मुख्य पुस्तक रडोल्फ के 'कॉर्स' का एक संस्क-

रण था जो इमने लगभग १५५३ में निकाला। इस पुस्तक से ही इमकी ख्याति बढ़ी। उक्त पुस्तक में इसने

$$x^0 \quad x^1 \quad x^2 \quad x^3 \quad x^4$$

के लिए इन चिह्नों का प्रयोग किया है

$$1, 1x, 1x^2, 1x^3, 1x^4, \dots$$

कुछ लम्बो का अनुमान है कि घातांक नियम (Index Law) के निम्नलिखित उदाहरण सबसे पहले स्टाइफेल ने ही दिये थे—

$$2^1 \cdot 2^1 = 2^2,$$

$$2^2 \cdot 2^1 = 2^3,$$

$$(2^1)^2 = 2^2,$$

$$(2^2)^{\frac{1}{2}} = 2^1$$

स्टाइफेल ने केवल ये उदाहरण ही नहीं दिये हैं। उसने चारों मूलभूत घातांक नियमों को शब्दों में व्यक्त किया है। इसके अनिरिक्त उसने ऋण घातांकों पर भी विचार किया है।

१७वीं शताब्दी में पदार्पण करते ही पियरे फर्मा (Pierre Fermat) का नाम प्रमुख रूप से आता है। यह फ्रांस का एक गणितज्ञ था और इमका जीवन काल १६०१-६५ था। इमने सख्याओं के गुणधर्मों पर बहुत सा गवेषणा कार्य किया है। इमका कार्य सख्याओं के क्षेत्र में इनकी उच्चकोटि का था कि इसे आधुनिक सख्या सिद्धान्त का जन्मदाता कहा जाता है। डायफण्टस के पश्चात् सख्या सिद्धान्त का इनका महान् जानकार कोई नहीं हुआ था। यह प्रतिभाशाली तो था ही, बदाचिन्तु कुछ सनकी भी था। तीस वर्ष की अवस्था तक तो इमने गणित पर ध्यान भी नहीं दिया था और इसका भी कारण समझ में नहीं आता कि इमने अपने गवेषणा कार्य के मुख्य फल का विवरण अपने मित्रों को लिखे गये पत्रों में क्यों दिया है। इमने डायफण्टस के ग्रन्थ पर अपनी टिप्पणियाँ और पत्र लिखे हैं जो टीका के रूप में इसकी मृत्यु के पश्चात् इमके पुत्र ने १६७० में छापे। इसका संपूर्ण कार्य उत्रे (Ouvres) नाम से १८९१ में पेरिस में प्रकाशित हुआ, जिसमें उपरिलिखित टिप्पणियों के अनिरिक्त इमके पत्र भी समाविष्ट हैं, जो इमने देकार्टे (Descartes), पामकल (Pascal) और रूवर्वाल (Roberval) इत्यादि को लिखे थे।

फर्मा ने लिखा है कि समीकरण

$$y^n + z^n = x^n$$

का कोई पूर्णांक हल हो ही नहीं सकता, यदि $n \geq 2$ से बड़ा कोई भी पूर्णांक हो। यह

प्रमेय फर्मा प्रमेय के नाम से प्रसिद्ध है। फर्मा ने इन प्रमेय की कोई गन्तोपजनक उपपत्ति नहीं दी है। जो कुछ भी उसके नीचे प्रमाण मिले है हायगेन्स (Huygens) को एक हस्तलिखित द्वारा प्राप्त हुए है जो १८७१ में नीडरलैंड में मिली थी। फर्मा ने डायफॉण्टस की कृति की मसाल पर पाथेन में एक न्यायन पर लिखा है कि 'मैंने इस प्रमेय की एक सुन्दर उपपत्ति निकाली है। किन्तु उसे यहाँ देने के लिए न्यायन बहुत थोड़ा है।'

यह प्रमेय आज विश्वविद्यालय हो गया है और बहुधा केवल इसे फर्मा का अन्तिम प्रमेय कहते हैं। फर्मा के समय में आज तक दशियों गणितज्ञों ने इस पर माथा पच्ची की है और कुछ विविष्ट दशाओं में इसकी उपपत्तिया भी निकाली है। किन्तु सार्विक प्रमेय की गन्तोपजनक उपपत्ति आज तक कोई भी नहीं दे पाया है। उन गणितज्ञों में निम्नलिखित के नाम विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं—

ऑयलर (Euler), लामे (Lame), कोशी (Cauchy), कुमर (Kummer), लेजाण्ड्र (Legendre), लेबेग (Lebesgue), डिकसन (Dickson)।

मन्दा सिद्धान्त पर अनेक लेखकों ने लगानी उठायी है। इस संयन्ध में बैचैट (Bachet) का नाम उल्लेखनीय है। यह कुछ दिनों तक इटली में रहा और इसका विचार वार्षिक क्षेत्र में पदार्पण करने का था। किन्तु कुछ समय पश्चात् यह पेरिस चला गया और फ्रांस की विज्ञान परिषद् (Academie des Sciences) का सदस्य बन गया। इसने डायफॉण्टस का अनुवाद किया, जो १६२१ में प्रकाशित हुआ। इसकी सर्वोत्कृष्ट कृति गणितीय मनोरंजन पर थी, जो आजतक आदर की दृष्टि से देखी जाती है।

टामस हॅरियट (Thomas Harriot) का जीवन काल १५६०-१६२१ था। यह इंग्लैंड का निवासी था और १५७९ में यह ऑक्सफोर्ड का स्नातक हो गया। यह सर वॉल्टर रैले (Sir Walter Raleigh) का सहायक नियुक्त हुआ, जिसने १५८५ में इसे वर्जीनिया (Virginia) का सर्वेक्षण करने के लिए अमेरिका भेजा। इंग्लैंड लौटने पर इसने अपनी यात्रा का वृत्तान्त (१५८८) प्रकाशित किया। इसने बीजगणित पर एक पाठ्य पुस्तक लिखी जो इसकी मृत्यु के दस वर्ष पश्चात् छपी। इसने अज्ञात राशियों के लिए छोटे स्वरों और ज्ञात राशियों के लिए छोटे व्यंजनों का प्रयोग किया था। 'से बड़ा है' और 'से छोटा है' के लिए इसने ये चिह्न $>$, $<$ प्रयुक्त किये थे। इसके ग्रन्थ में निम्नलिखित प्रकरणों का समावेश है—

दिये हुए मूलों के समीकरण बनाना, मूलों की संख्या का नियम, मूलों और

गुणाको का पारस्परिक संबन्ध, समीकरणों का रूपान्तर, सत्यात्मक समीकरणों का साधन ।

जॉन नेपियर (John Napier) (१५५०-१६१७) स्कॉटलैंड का एक गणितज्ञ और लघुगणक (Logarithms) का आविष्कारक था । इसने १५६३ में मेट्रिक परीक्षा पास की । तत्पश्चात् यह अध्ययन के लिए पेरिस चला गया और इसने इटली और जर्मनी में पर्यटन किया । लौटकर इसने विवाह किया । इसका एक लड़का था आर्चिबाल्ड (Archibald), जो बाद में लार्ड नेपियर कहलाया ।

नेपियर ने स्कॉटलैंड के घमंशास्त्र के इतिहास पर एक पुस्तक लिखी, जिसका बड़ा आदर हुआ । तत्पश्चात् इसने युद्ध के बहुत से उपकरणों का आविष्कार किया ।

१६१४ में इसकी पुस्तक डेस्क्रिप्शियो (Descriptio) निकली, जिसमें इसने लघुगणकों के आविष्कार का विवरण दिया था । उक्त पुस्तक में पहली बार लघुगणकों की परिभाषा और एक लघुगणक सारणी भी दी गयी थी । पुस्तक ने छपते ही बड़े बड़े गणितज्ञ—राइट (Wright) और ब्रिग्स (Briggs) का ध्यान आकृष्ट किया । राइट ने उसका अंग्रेजी में अनुवाद किया, जिसे उसकी मृत्यु के पश्चात् १६१६ में उसके पुत्र ने प्रकाशित किया ।

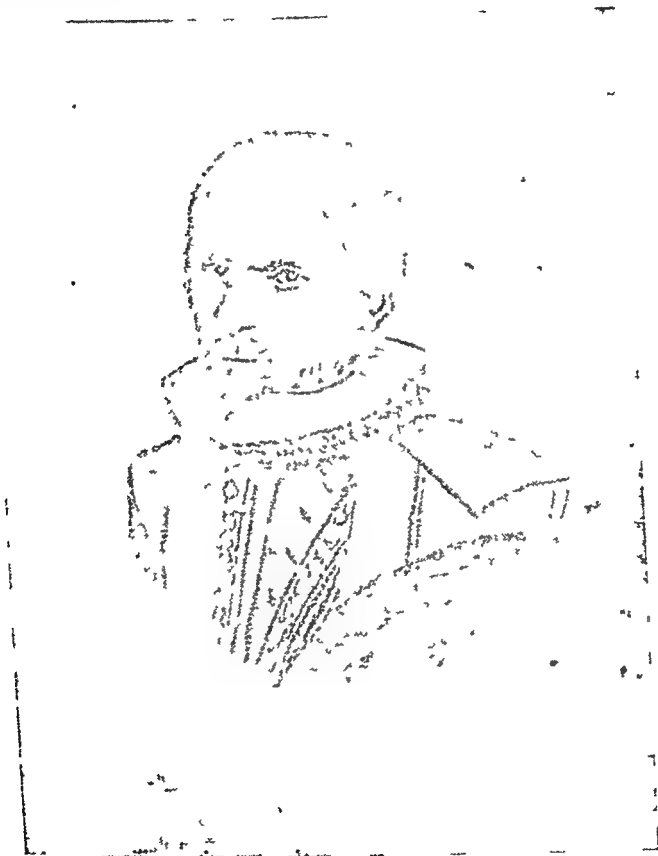
जो लघुगणक नेपियर ने आविष्कृत किये थे, वे वह नहीं हैं, जो आजकल दशमलव लघुगणक कहलाते हैं । मौलिक लघुगणकों का नेपियर और ब्रिग्स ने ही दशमलव लघुगणकों में परिवर्तन किया । इन दोनों ने मिलकर १६२४ में एक पुस्तक एरिथमेटिका लॉगैरिथमिका (Arithmetica Logarithmica) प्रकाशित की, जिसमें १-३०,००० और ८०,००० से १,००,००० तक की संख्याओं के लघुगणक दिये गये थे ।

नेपियर ने १६१७ में एक अन्य पुस्तक रैबडोलॉजिया (Rabdologia) प्रकाशित की । इसमें गणक छड़ों (Numerating Rods) का उल्लेख किया है, जिसमें गुणन और भाजन में बड़ी सुविधा होती है । कुछ लेखकों का अनुमान है कि यही पुस्तक नेपियर की महत्तम कृति थी ।

लघुगणकों के अनिश्चित नेपियर को दशमलव भिन्ना और दशमलव त्रिज्या पर भी बड़ा अधिकार था ।

हेनरी ब्रिग्स (Henry Briggs) (१५५६-१६३०) एक अंग्रेज गणितज्ञ था । १५८१ में यह नेमिब्रज का स्नानक हुआ । १५९२ में रीडर (Reader) हुआ और १५९६ में लन्दन के एक चार्जिज में प्रोफेसर हो गया । इसने नेपियर के यह

प्रस्ताव किया कि लघुगणकों का आवाग संख्या १० को बना दिया जाय। नेपियर इस प्रस्ताव से सहमत हो गया और तब दोनों ने मिलकर १६२४ में लघुगणक सारणी छपी, जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। ब्रिग्स ने सब मिलाकर दस पुस्तके



चित्र ४०—नेपियर (१५५०-१६१७)

[डोवर पब्लिकेशंस, इन्कॉर्पोरेटेड, न्यूयॉर्क—१०, की अनुमति से, टी० स्टुडक वून 'ए कॉन्साइज हिस्ट्री ऑफ मैथेमैटिक्स' (१७५ टॉलर) से प्रत्युत्पादित।]

प्रकाशित की और छ. अन्य पुस्तके लिखी, जो छप नहीं पायी। प्रकाशित पुस्तको के विषय यूक्लिड, लघुगणक, त्रिकोणमिति और नौवहन (Navigation) है।

विलियम आउट्रिड (William Oughtred) (१५७४-१६१७) गणितज्ञ था जिसने अकगणित और बीजगणित पर एक छोटा सा ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ में बराबरी के चिह्न (Sign of proportion) और अन्तरचिह्न (Sign of difference) (\sim) का प्रयोग किया गया।

आउट्रिड ने एक पुस्तक लघुगणकों पर भी लिखी। किन्तु इसकी अपेक्षा स्लाइड रूल (Slide Rule) के कारण हुई।

ऐडमण्ड गण्टर (Edmund Gunter) एक अंग्रेज गणितज्ञ था जिसका जन्म १५८१-१६२६ था। इसने वेस्टमिन्सटर (Westminster) विश्वविद्यालय में १५९९ में यह ऑक्सफोर्ड के एक चर्च में भर्ती हुआ। वहाँ के अन्तर्गत तब यह प्रेसबिटीयन (Presbyterian) में परिवर्तित हो गया। इसने सामान्य आधार पर आधित्व लघुगणकीय ज्यामिति (Trigonometry) और स्पर्शज्या (Tangents) की पहली गारण्टी प्रकाशित की और अन्तर्गत को सुनाया दिया कि लघुगणकों में अकगणितीय पूरक (Arithmetical Complement) का प्रयोग किया जाय। इसके व्यावहारिक आविष्कार

- १ गण्टर श्रृंखला (Gunter Chain)—जो सर्वेक्षण में काम आता था।
- २ गण्टर रेखा (Gunter Line)—जो गणित की अनेक समस्याओं के हल में काम आता था।
- ३ गण्टर चतुर्थांश (Gunter Quadrant)—जो अक्षांशों का मापन (Altitude) निर्धारण में प्रयुक्त होता है।

४ गण्टर मापनी (Gunter Scale)—जिसमें लॉगरिथ्म में घटी गयी थी।

न्यूटन का नाम बीन मरी जानता। ग्रेगोरियो (Leibniz) ने एक बार कहा था कि यदि आदिवासी ने न्यूटन के समक्ष एक बड़े कणिक का पिता लाया तो जो पार्श्व-न्यूटन ने दिया वह आधे से अधिक बड़ेगा। यह प्रशंसा भी मिली है।

न्यूटन दार्शनिक का एक प्राकृतिक दार्शनिक (Natural Philosopher) था जिसका जन्म १६४२-१७२७ था। इसने दिया इसमें जगत् में एक नया दृष्टिकोण और जगत् की नींव पथ का था तब इसकी मर्त्ता में दूसरा दार्शनिक आया। इसने कहा यह अनेकों लोगों के पास गये हैं। किन्तु कुछ समय में इसने भी एक दार्शनिक का दार्शनिक होने पर इसकी मर्त्ता अनेकों लोगों के पास भी गयी थी किन्तु इसी के साथ गये हैं।

दो वर्ष तक इसने एक व्याकरण के स्कूल में शिक्षा पायी और कोई प्रगति नहीं दिखायी। किन्तु एक दिन एक लड़के से इसकी लड़ाई हो गयी, जिससे इसका सद्भाव जाग्रत हो गया और शीघ्र ही यह स्कूल का नेता बन गया। जब न्यूटन १४ वर्ष का था, इसकी माता लौट आयी और उसने इसे स्कूल से हटा लिया। वह



चित्र ४१—आइज़क न्यूटन (Isaac Newton) (१६४२-१७२७)

[डॉक्टर पब्लिकेशंस, इन्फोर्परेटिड, न्यूयॉर्क—१०, की अनुज्ञा से, डी० स्टुडिज कृत 'ए कॉन्साइज हिस्ट्री ऑफ मैथेमैटिक्स' (१.७५ डॉलर) से प्रत्युत्पादित।]

चाहती थी कि उसका पुत्र उसके प्रक्षेत्र (Farm) पर काम करे। किन्तु न्यूटन का मन उस काम में नहीं लगता था। उसकी रुचि तो यान्त्रिकी (Mechanics), बड़ईगिरी, कविता, और उद्वेखण (Drawing) में थी। अतः उसे फिर स्कूल भेज दिया गया। २३ वर्ष की अवस्था में वह केंम्ब्रिज का स्नातक हो गया और २५ वर्ष की अवस्था में ट्रिनिटी कालेज का अधिसदस्य (Fellow) बना दिया गया।

१६६४-६५ में न्यूटन ने द्विपद प्रमेय (Binomial Theorem) और अनन्त श्रेणी (Infinite Series) पर कार्य आरम्भ कर दिया। न्यूटन के कलन सम्बन्धी कार्य का उल्लेख तो हम आगे करेंगे, यहाँ हम उसके कार्य के अन्य पक्षों का विवरण देते हैं। दो क्षेत्रों में उसका कार्य बहुत उच्च कोटि का है—प्रकाश सिद्धान्त और गुरुत्व सिद्धान्त। न्यूटन के गति नियम (Laws of Motion) आज भी कालेज के विद्यार्थियों को पढ़ाये जाते हैं। और न्यूटन ने विश्व के आकार प्रकार के विषय में जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं, उन्हें आइन्स्टाइन (Einstien) के अनि-रिक्त कोई चुनौती नहीं दे पाया है। उक्त सिद्धान्त न्यूटन ने अपने महान् ग्रन्थ प्रिन्सिपिया (Principia) में दिये हैं जो १६८७ में प्रकाशित हुआ था।

उक्त ग्रन्थ में न्यूटन की ख्याति चारों ओर फैल गयी। विश्व की सृष्टि के मय में जो सिद्धान्त उसमें प्रतिपादित किये गये थे, दो सौ वर्ष तक सारे जगत् पर छाये रहें, और न्यूटन की यान्त्रिकी ने सैकड़ों वर्ष तक गणितज्ञों, ज्योतिषियों और वैज्ञानिकों का पथ प्रदर्शन किया और आज भी कर रही है।

१६६९ में न्यूटन केम्ब्रिज में गणित का प्राध्यापक हो गया। लगभग ६० वर्ष तक उसे ख्याति और मान मिलता रहा और वह गणित और मौक्तिकी का अद्वितीय विद्वान् माना जाता रहा। १६७२ में वह रायल सोसायटी (Royal Society) का अधिसदस्य निर्वाचित हो गया। और १६८९ में इंग्लैंड की सभा में भी विश्व-विद्यालय का प्रतिनिधि बनकर पहुँच गया। १७०५ में उसे 'सर' की उपाधि मिली।

न्यूटन के 'विश्व अकगणित' (Arithmetica Universalis) का विषय बीजगणित और समीकरण सिद्धान्त है। यह पुस्तक पहले पहल १६७३-८१ में व्याख्याना के रूप में लिखी गयी थी। किन्तु इसका प्रकाशन १७०७ में हुआ। न्यूटन ने १६६९ में एक ग्रन्थ श्रेणियों पर भी लिखा था, किन्तु उसका प्रकाशन १७११ में पहले न हो सका।

१७२७ में न्यूटन रण हो गया। या भी कुछ दिनों में उसका स्वास्थ्य गिरने लगा था। २० मार्च १७२७ को उसका देहान्त हो गया। न्यूटन के तीन विषय रायल सोसायटी में और कई ट्रिनिटी कॉलेज में हैं।

अन्य प्रतिभाशाली व्यक्तियों की भाँति न्यूटन में भी कुछ शिथिलताएँ थीं। वह बहुत भोजन करना भूल जाता था। एक बार वह भोजन करने बाहर जा रहा था कि उसे ध्यान आया कि वह कदाचित् भोजन करना भूल गया है। बरी में लौट पड़ा। पर लौटकर आया तो देगा कि भोजनगी उमके भोजन के समान मात्रा में किम उठा चुकी है। तब उसे याद आ गया कि वह भोजन कर चका था।

एक बार न्यूटन घोड़े पर जा रहा था। जब एक पहाड़ी आयी तब वह घोड़े से उतर पड़ा और लगाम हाथ में लेकर उसे ले जाने लगा। जब वह पहाड़ी के ऊपर पहुँच गया तो घोड़े पर फिर चढ़ने के लिए मुड़ा। देखा तो उसके हाथ में लगाम थी किन्तु घोड़े का कहीं पता न था।

एक बार न्यूटन ने कुछ मित्रों को भोजन पर बुलाया था। भोजन पर मदिरा की कमी पड़ गयी तब वह मदिरा लेने के लिए तहखाने चला गया। उन दिनों निजी मकानों के पूजागृह तहखानों में ही हुआ करते थे। न्यूटन वहाँ पहुँचकर मदिरा की बात तो बिल्कुल भूल गया और धार्मिक चोगा (Surplice) पहनकर पूजा करने लगा।

जॉन वॉलिस (१६१६-१७०३) एक अंग्रेज़ गणितज्ञ था। उसने केम्ब्रिज में शिक्षा पायी। शिक्षा तो उसे धार्मिक व्यवसाय की मिली थी, किन्तु उसकी रुचि गणित और भौतिकी में थी। १६४९ में वह ऑक्सफ़ोर्ड में ज्यामिति की गद्दी का आचार्य हो गया और अपनी मृत्यु तक उसी आसदी पर विराजमान रहा।

वालिस ने बहुत से विषयों पर अपनी लेखनी उठायी है, जैसे यान्त्रिकी, ध्वनि-विज्ञान, ज्योतिष, ज्वारभाटे, दैहिकी (Physiology), संगीत, भौमिकी (Geology) और वानस्पतिकी (Botany)। इसके अतिरिक्त वह सांकेतिक भाषा का भी मर्मज्ञ था। और राजनीतिक संदेशों का अर्थ निकालने में सरकार की सहायता किया करता था। उसकी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं—

१. ऐरिथमेटिका इन्फ़िनिटोरम (Arithmetica Infinitorum) (१६५५)—जिसका विषय वक्रों का क्षेत्रकलन है।

२. ऐलजब्रा ट्रैक्टेटस (Algebra Tractatus) (१६७३)—जिसका विषय बीजगणित है।

वॉलिस ने ही पहले पहल घातों की परिभाषा को व्यापक बनाकर उसमें भिन्नात्मक और ऋणात्मक संख्याओं का समावेश किया। इसके अतिरिक्त वालिस ने ही सर्व प्रथम काल्पनिक राशियों का लेखाचित्रीय निरूपण आरंभ किया।

एशिया

१६वीं और १७वीं शताब्दियों में भारत ने कोई विशेष प्रगति नहीं दिखायी। केवल दो गणितज्ञों के नाम उल्लेखनीय हैं—सूर्यदास और गणेश। सूर्यदास का जन्म १५०८ में हुआ था। इन्होंने भास्कर के बीजगणित पर एक टीका लिखी है, जिसका नाम 'सूर्यप्रकाश' है। एक टीका इन्होंने लीलावती पर भी लिखी है।

जिसमें लीलावती के कुछ श्लोका के कई कई अर्थ दिये हैं। इनकी लेखनी से ही पता चलता है कि इन्होंने ये आठ ग्रन्थ प्रकाशित किये—लीलावती टीका, बीज टीका, श्रीपतिपद्धति गणित, बीजगणित, ताजिकालकार, वाव्यद्वय, बोधमुधाकर और सूर्यप्रकाश।

十一	十二	十三	十四	十五	十六	十七	十八	十九	二十	二十一	二十二	二十三	二十四	二十五	二十六	二十七	二十八	二十九	三十	三十一	三十二	三十三	三十四	三十五	三十六	三十七	三十八	三十九	四十	四十一	四十二	四十三	四十四	四十五	四十六	四十七	四十八	四十九	五十	五十一	五十二	五十三	五十四	五十五	五十六	五十七	五十八	五十九	六十	六十一	六十二	六十三	六十四	六十五	六十六	六十七	六十八	六十九	七十	七十一	七十二	七十三	七十四	七十五	七十六	七十七	七十八	七十九	八十	八十一	八十二	八十三	八十四	八十五	八十六	八十七	八十八	八十九	九十	九十一	九十二	九十三	九十四	九十五	九十六	九十七	九十八	九十九	一百
----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	-----	----

चित्र ४२—एक जापानी माया वर्ग ।

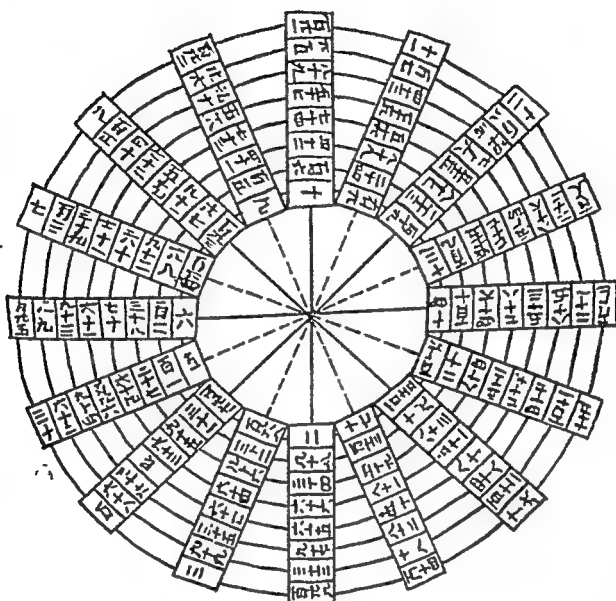
जिन एंजल एम्पनी की अनुज्ञा से, डेविड यूनीन रिमथ क्ल 'हिस्ट्री ऑफ मैथेमैटिक्स' से प्रख्यात।

कोलब्रुक ने इनके एक अन्य ग्रन्थ गणितमान्ती का भी उल्लेख किया है।

सूर्यदाम ने अपने बीजगणितीय ग्रन्थों में श्रीधर की विधियों पर टीका की है और अनिर्णीत समीकरणों का भी विवेचन किया है।

गणेश दैवज्ञ का जन्म भी १६वीं शताब्दी के आरम्भ में ही हुआ था। इनके अधिकांश ग्रन्थ ज्योतिष पर हैं। किन्तु दो टीकाएँ इन्होंने 'लोलावर्तों' और 'सिद्धान्त शिरोमणि' पर भी लिखी हैं। ग्रह गणित पर देश भर में जितने ग्रन्थ इनके प्रचलित हैं उतने किसी अन्य ज्योतिषी के नहीं हैं। शुद्ध गणित में इनका शोध भी बड़ा था, जो सूर्यदास का, अर्थात् कुट्टक, अनिर्णित समीकरण, सुमेष त्रिभुज, वृत्तीय (Cyclic) चतुर्भुज।

निम्नलिखित वृत्त मोजेई के ग्रन्थ 'मन्टोकू जिंको-की' (१६६५) से लिया गया है। केन्द्र को १ मानकर गिनने से किसी भी त्रिज्या की संख्याओं का जोड़ ५२४ अथवा ५२५ आता है।

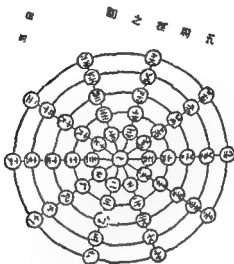


चित्र ४३—१२९ संख्याओं का एक जापानी माया वृत्त ।

[जिन एण्ड कम्पनी की अनुज्ञा से डेविड यूजीन स्मिथ कृत 'हिस्ट्री ऑफ मैथेमैटिक्स से प्रत्युत्पादित।]

सत्रहवीं शताब्दी के एक जापानी गणितज्ञ सेकी काँवा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसका स्थिति काल १६४२-१७०८ था। पूत के पैर पालने में ही दिखाई पड़ने लगे थे और इसने वचन में ही बिना किसी शिक्षक की सहायता के गणित की कई शाखाओं में, विशेषकर यान्त्रिकी में, योग्यता प्राप्त कर ली थी। इसने १६८३ में एक ग्रन्थ लिखा, जिसका नाम 'कई फूकू दई नो हौ' था। उक्त ग्रन्थ में इसने सारणिकों (Determinants) का उपानयन किया है। किन्तु आश्चर्य है कि इसने सारणिकों से केवल विलोपन (Elimination) का काम ही लिया। उनका युगपत् समीकरणों (Simultaneous Equations) के

साधन में कोई प्रयोग नहीं किया। हमने अनिश्चित हमने प्रस्तुत ग्रन्थ में उच्च पात समीकरणों का भी विवेचन किया है।



चित्र ४४—जापानी मायावर्ग का आधा भाग।

[गिन दॅण्ड बम्बनी की अनुशा से, डेविड यूजीन रिमथ दृत 'हिस्ट्री ऑफ मैथेमेटिक्स' से प्रसु-पादित।]

माया वर्ग का उपरिलिखित आधा भाग सनेनोबू के ग्रन्थ 'कॉ-को जैत साँ (१६७३) से लिया गया है।

सेकी का कार्य विशेष रूप से मौलिक न भी रहा हो किन्तु इसमें सदेह नहीं कि इसकी रपाति ने बहुत से विद्यार्थियों को इसके व्यक्तित्व और गणित की ओर आकृष्ट किया। कह सकते हैं कि इसकी शिक्षण शैली ने जापानी गणित में एक नयी जान डाल दी। इसकी मृत्यु के पश्चात् जापानी सम्राट् ने इसको जापान की सबसे ऊँची उपाधि दे दी। सेकी कॉवा ने माया वर्गों और सम्बद्ध विषयों में भी पर्याप्त रचि दिखायी थी।

इस सम्बन्ध में १७वीं शताब्दी के दो अन्य जापानी गणितज्ञों के नाम भी उल्लेखनीय हैं—मुरामत्सू कुदायू भोजेई और होशीनो सनेनोबू।

(८) अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दियाँ

यूरोप

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में यों तो यूरोप में अनेक गणितज्ञ हुए हैं, किन्तु स्थानाभाव के कारण हम उनमें से थोड़े सों का ही नाम दे सकेंगे।

जॉन विल्सन (John Wilson) (१७४१-१३) इंग्लैंड का एक गणितज्ञ था। इसने केवल एक ही महत्त्वपूर्ण प्रमेय का आविष्कार किया और उसी से इसका नाम अमर हो गया। वह प्रमेय इस प्रकार है—

यदि p कोई हड़ (Prime) संख्या हो तो

$$1 + \frac{1}{p} = \frac{2}{p+1}$$

p से भाज्य होगी।

इस प्रमेय का संख्या सिद्धान्त में इतना महत्त्व है कि उक्त विषय की किसी भी मानक पुस्तक में इसका देना अनिवार्य है। इसे विल्सन प्रमेय कहते हैं। इसका आविष्कार लिब्नीज़ भी कर चुका था, किन्तु वह इसे प्रकाशित नहीं करा पाया था।

विल्सन १७८२ में रायल सोसायटी का अधिसदस्य बना लिया गया था।

विलियम जॉर्ज हॉर्नर (William George Horner) (१७८६-१८३७) भी एक अंग्रेज़ गणितज्ञ था। यह कोई बहुत बड़ा विद्वान् नहीं था। इसने संख्यात्मक समीकरणों के साधन की प्राचीन चीनी विधि का अव्ययन किया और उसे एक नया रूप दे दिया। इसका अमिपत्र १८१९ में रायल सोसायटी में पढ़ा गया और १८३८ और १८४३ में पुनः प्रकाशित हुआ। उक्त विधि आज तक हॉर्नर विधि कहलाती है।

पीटर बार्लो (Peter Barlow) (१७७६-१८६२) एक बहुत ही प्रतिभाशाली अंग्रेज़ गणितज्ञ था। १८२३ में यह रायल सोसायटी का अधिसदस्य हो गया और दो वर्ष पश्चात् इसे कोपले (Copley) पदक मिला। यों तो इसने प्रयोजित गणित पर भी कई ग्रन्थ लिखे, किन्तु इसकी दो पुस्तकें बहुत प्रसिद्ध हुईं, एक तो संख्या सिद्धान्त (१८११) पर और दूसरी एक गणितीय कोष (१८१४)।

जोसेफ लूइ लैग्रान्ज (Joseph Louis Lagrange) फ्रांस का एक बहुत बड़ा गणितज्ञ हुआ है जिसका स्थिति काल १७३६-१८१३ था। इसकी शिक्षा ट्यूरिन (Turin) कालिज में हुई। आरंभ में तो इसकी रुचि प्राचीन साहित्य में थी। किन्तु एक दिन इसके हाथ में हेली (Halley) का एक अमिपत्र पड़ गया। उसे

पढ़ते ही इसका मस्तिष्क बदल गया और यह गमारता से गणित का अध्ययन करने लगा। इसने दीर्घ ही इतनी योग्यता प्राप्त कर ली कि यह गणित का सबकुछ



चित्र ४५—लगाब (१७३६-१८१३)

विद्वान माना जान लगा। यह १८ वर्ष की अवस्था में ही ज्यामिति का प्राध्यापक नियुक्त हो गया और २३ वर्ष की अवस्था में इसने दो अभिपत्र लिख जो इतनी उच्च कोटि के थे कि उन्होंने आयरलैंड और डेलेम्बर्ट (d'Alembert) जैसे गणितज्ञों को आकृष्ट कर लिया। उक्त दो अभिपत्रों से विचरण कलन (Calculus of Variations) की नींव पड़ी। उक्त दोनों गणितज्ञों की सस्तुति पर फ्रेडरिक महान (Frederick the Great) ने इस बलिष्ठ बुला लिया। फ्रेडरिक ने इसे जो पत्र

लिखा उसके शब्द ये थे—‘यूरोप का सबसे महान् राजा यूरोप के सबसे महान् गणितज्ञ को अपने दरबार में बुलाता है।’ लॅग्रान्ज बर्लिन में २० वर्ष रहा और उसने बीजगणित, यान्त्रिकी और ज्योतिष पर अनेक अभिपत्र लिखे। फ्रेडरिक की मृत्यु के पश्चात् लुइ १६ (Louis XVI) के निमंत्रण पर यह पेरिस आ गया। १७९३ में यह माप तौल सुधार आयोग का अध्यक्ष नियुक्त हुआ और १७९७ में एक कालिज का प्राध्यापक हो गया।

लॅग्रान्ज की दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं—एक खगोलीय यान्त्रिकी (Celestial Mechanics) पर और दूसरी वैश्लेषिक फलनों (Analytical Functions) पर। बीजगणित संबन्धी इसका एक महत्त्वपूर्ण कार्य यह था कि इसने निम्नलिखित समीकरण का हल निकाला, जो फ़र्मा ने प्रस्तुत किया था—

$$सय^3 + १ = २^3,$$

जिसमें ‘स’ पूर्णांक है, किन्तु पूर्ण वर्ग नहीं है।

इसके अतिरिक्त लॅग्रान्ज का उच्च घात समीकरण सम्बन्धी कार्य भी प्रशंसनीय हुआ है।

एड्रियन मेरी लेजाण्ड्र (Adrien Marie Legendre) (१७५२-१८३३) एक फ्रांसीसी गणितज्ञ था। इसकी शिक्षा दीक्षा पेरिस में हुई थी। इसके अध्यापक आबे मेरी (Abbe Marie) ने १७७४ में यान्त्रिकी पर एक ग्रन्थ लिखा, जिसके कई लेख लेजाण्ड्र के लिखे हुए थे यद्यपि उसमें इसका नाम नहीं दिया गया था। शीघ्र ही यह पेरिस के एक कालिज में प्राध्यापक हो गया। १७८२ में इसे बर्लिन परिपद् से एक लेख के लिए पुरस्कार मिला। लेख का विषय था—‘प्रक्षेप्यों के पथ’ (Paths of Projectiles)। पत्पश्चात् यह कई वैज्ञानिक आयोगों का सदस्य रहा। इसके अन्तिम दिनों में सरकार ने यह प्रयत्न किया कि पेरिस परिपद् उसके संकेतों पर चले। इसने सरकार का विरोध किया। सरकार ने इसकी पेंशन ज़ब्त कर ली और इसका अन्त बड़ी गरीबी में हुआ।

यों तो लेजाण्ड्र ने गणित की कई शाखाओं में कार्य किया, किन्तु इसकी विशेष व्याप्ति इसकी दीर्घवृत्तीय फलनों (Elliptic Functions) संबन्धी गवेषणा से हुई। १८११-१६ तक इसकी पुस्तक ‘समाकलन गणित पर प्रश्नावलियाँ’ (Exercices de Calcul Integral) तीन भागों में छपी। तीसरे भाग में इसने दीर्घवृत्तीय समाकलों (Elliptic Integrals) की सारणियाँ दी हैं। १८२७ में इसका दीर्घवृत्तीय फलनों सम्बन्धी ग्रन्थ दो भागों में निकला। किन्तु उसके तुरन्त बाद दो युवक

गणितज्ञ अबैल (Abel) और जैकोबी (Jacoby) का उसी विषय का गवेषणा कार्य प्रकाशित हुआ । लेजाण्ड्र ने तुरन्त स्वीकार किया कि उन दोनों का कार्य उसके कार्य से उत्तम है और सन्तानि ने आजतक उसकी सम्मति को गलत नहीं माना ।



चित्र ४६—लेजाण्ड्र (१७५२-१८३३)

[जोशर पब्लिकेशन्स इन्फोर्मिडेट यूयर्स—१० वीं अनुसंधान से १०० रुबल तक का साइज हिस्ट्री ऑफ मथेमेटिक्स (१७५ टालर) में प्रयुक्त है ।]

लेजाण्ड्र ने सरया मिहान्त पर भी अन्तुत कार्य किया है । इसकी उक्त विषय की पुस्तक के १८०१-१८३० तक तीन संस्करण निकल गये । इसका एच फ्र

यह प्रसिद्ध हो गया है जिसे नाम वर्गान्तराव्युत्क्रमता नियम (Law of Quadratic Reciprocity) है। इसी नियम के विषय में गाउस (Gauss) ने कहा है कि यह अमरगणित का गन्त है।



चित्र ४७—गैलायस (१८११-३२)

[डोवर पब्लिकेशंस, इन्फोर्मेरेंट, न्यूयॉर्क-१० की अनुज्ञा से, टी० स्टूडरक द्वारा 'ए कॉन्सॉइडरबिलिटी ऑफ मैथेमैटिक्स' (१७५ टॉलर) से प्रत्युत्पादित।]

लेजाण्ड्र की गवेषणा के अन्य विषय थे—आकर्षण, भूमिति (Geodesy) न्यूनतम वर्ग विधि (Method of Least Squares) और ज्यामिति।

गैलॉयस (Galos) (१८११-३२) एक बहुत ही प्रतिभाशाली फ्रेंचमन था, जिसने यौवनान्धता में ही अपनी जान दे दी। अपने राजनीतिक विचारों के कारण यह दो बार कारागार गया और २१ वर्ष की अवस्था में ही अपने से अधिक प्रतिभाशाली व्यक्ति से द्वन्द्व कर बैठा, जिसमें इसकी जान गयी। किन्तु वास्तव में तीन बार वहाँ में ही इसने गवेषणा कार्य में अद्भुत प्रतिभा दिग्ग दी। इसकी मृत्यु कायें उच्च पात बीजगणितीय समीकरणों और प्रतिस्थापन समुदायों (Substitution Groups) पर है।

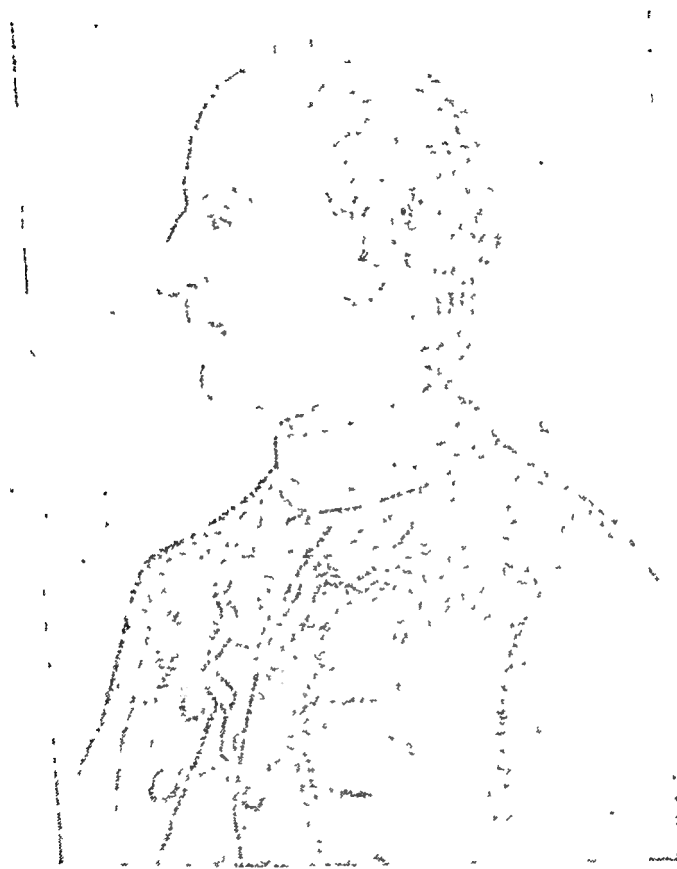
लियोनार्ड ऑयलर (Leonhard Euler) (१७०७-१७८३) स्विट्जरलैण्ड का एक महान् गणितज्ञ हुआ है। इसकी प्रारम्भिक शिक्षा इसके पिता जी ने ही दी थी, जो स्वयं एक गणितज्ञ थे। १७२३ में यह जॉन बर्नौली (Johann Bernoulli) के शिष्यत्व में स्नातक हुआ। तदनन्तर इसने धर्मशास्त्र, प्राच्यभाषाओं और औपमि विज्ञान का भी अध्ययन किया। १७२७ में यह पैंट्रोप्राड में जीविशा का और १७३० में गणित का प्राध्यापक हो गया। १७३५ में अत्यधिक कार्य के कारण इसकी एक आँख जानी रही। १७४१ में यह बर्लिन गया और २५ वर्ष तक वही रहा। १७६६ में यह फिर कम लीट आया, किन्तु उमरे कुछ ही दिनां पश्चात् इसकी बायी आँख में मोनियाबिन्दु हा गया और यह प्रायः नेत्रहीन हा गया। फिर भी इसने गवेषणा कार्य नहीं छोड़ा। इसने अभिपत्र इसके पुत्र लिखते रहे। अन्तिम सात वर्षों में इसने ७० अभिपत्र तैयार किये और यह मृत्यु के समय अघूरे रूप में २०० अभिपत्र और छोड़ गया।

ऑयलर ने गणित की बहुत सी शाखाओं पर कार्य किया है, जैसे ज्योतिष, द्रवयांत्रिकी (Hydro-mechanics), चाक्षुषी (Optics), किन्तु इसका सबसे अधिक कार्य शुद्ध गणित में हुआ है। आधुनिक वैश्लेषिक गणित के निर्माताओं में ऑयलर का स्थान बहुत ऊँचा है। १७४८ में 'अनन्त विस्तरेषण' पर इसका ग्रन्थ निकला जिसने पहले भाग में बीजगणित, समीकरण भीमासा, त्रिकोणमिति (Trigonometry) आदि विषय थे। उक्त पुस्तक में इसने 'फलनों के श्रेणी रूप में प्रसार, 'श्रेणियों का सकलन आदि विषयों का विवचन किया है। उस समय तक श्रेणियों के अभिसरण (Convergence) का भाव भी गणितज्ञों के मन में नहीं उठा था। एक स्थान पर ऑयलर ने स्वयं लिखा है कि—

$$1 + x + x^2 + \dots = \frac{1}{1-x}$$

अतः य — — १ रखने से हमें प्राप्त है —

$$१-१+१-१-...-\frac{१}{२}.$$



चित्र ४८—ऑयलर (१७०७-८३)

[लोवर पब्लिकेशंस, इन्फोपरेटेंट, न्यूयॉर्क—१०, की अनुज्ञा से, टी० स्टुडक कृत 'ए कॉन्सा-
इज हिस्ट्री ऑफ मैथिमेंटिक्स' (१७५ टॉलर) से प्रत्युत्पादित ।]

इस 'समीकरण' को आजकल हास्यास्पद माना जायगा। कुछ समय पश्चात्
ऑयलर ने स्वयं कहा है कि हम अनन्त श्रेणियों का प्रयोग तभी कर सकते हैं जब

वह अभिसारी (Convergent) हो। कह सकते हैं कि ऑयलर अभिसरण के मात्र का जन्मदाता था।

कुछ बीजगणितीय व्यंजक ऑयलर के नाम से ही विख्यात हैं जैसे—

$$\text{सी}_{n \rightarrow \infty} \left(1 + \frac{1}{2} + \frac{1}{3} + \dots + \frac{1}{n} - \text{लघु स} \right)$$

का मान। ऑयलर ने इस व्यंजक का मान ५७७२१५६६४९०५३२८ दिया है। इस राशि को ऑयलर अचर (Euler Constant) कहते हैं। आधुनिक समय में तो एडम्स (Adams) ने इसका मान २६६ दशमलव स्थानों तक निकाला है।

ऑयलर की रचि गणित और भौतिकी के अतिरिक्त और भी कई विषयों में थी, जैसे संगीत, रसायन, वानस्पतिकी, औषधि विज्ञान। ऑयलर के अन्तिम दिन बड़े कष्ट में बीते। यह प्रायः अन्धा हो चुका था, इसका मकान जला दिया गया था और बहुत से कामज पत्र नष्ट हो चुके थे। फिर भी यह अपने कार्य में दक्षिण था और बहुत सा परिवर्तन भस्तिष्क में ही किया करता था।

ऑयलर के जीवन का एक उपाख्यान बड़ा रोचक है। डिडेरट (Diderot) एक नास्तिक था। ज़ारीना (Czarina) उससे अप्रसन्न हो गयी थी और चाहती थी कि उसके विचार बदलने में ऑयलर उसकी सहायता करे। ऑयलर की सहमति मिलने पर इसी दरबार में दोनों की भेंट का कार्यक्रम बनाया गया। डिडेरट से कहलाया गया कि एक महान् गणितज्ञ ने बीजगणितीय विधि से ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध कर दिया है। ऑयलर जानता था कि डिडेरट बीजगणित से सर्वथा अनभिज्ञ है। अतः उससे भेंट होने पर ऑयलर ने कहा—

‘महाशय,

$$\frac{x+x}{x} = y$$

अतः ईश्वर का अस्तित्व है।”

डिडेरट कुछ न समझ पाया और हक्का बक्का हो गया और दरबारी मिल खिला कर हँस पड़े। उसने कहा कि उसे फास लोट जाने की अनुज्ञा दी जाय। अनुज्ञा मिल गयी और वह फास लोट गया।

नील्स हेन्रिक आबेल (Niels Henrik Abel) स्कण्डिनेविया का एक

हर्मिट (Hermite) को इनके विषय में कहना पड़ा कि “उसने इतना काम कर छोड़ा है कि गणितज्ञ उससे ५०० वर्ष तक व्यस्त रहेंगे।” इसका जीवन काल १८०२-१८२९ था। इसका जन्म एक निर्धन, किन्तु सुसंस्कृत परिवार में हुआ था। इसके पिता जी नॉर्वे (Norway) के एक गांव के पादरी थे। ऑर्वेल एक स्कूल में पढ़ता



चित्र ४९—ऑर्वेल (१८०२-२९)

था कि एक दिन एक अध्यापक ने इसके एक सहपाठी को इतना मारा कि वह मर गया। इस घटना से ऑर्वेल की चेतना जाग उठी और यह गणितज्ञों की कृतियां पढ़ने में दत्तचित्त हो गया। १८२० में इसके पिता का देहान्त हो गया और ६ भाई-बहनों के लालन पालन का भार इसी के ऊपर आ पड़ा। किन्तु इसने कभी आश नहीं त्यागी। यह विश्वविद्यालय में प्राध्यापक तो हो ही गया था। इसके अतिरिक्त निजी अध्यापन कार्य करके माँ और ६ भाई बहनों का पेट पालता था। फ़ाल्तू समय में गवेषणा कार्य किया करता था।

सरकार की सहायता से ऑर्वेल १८२५ में फ्रांस और जर्मनी गया। बर्लिन में यह ६ महीने रहा जहाँ इसकी क्रेले (Crelle) से मित्रता हो गयी। क्रेले उन्हीं दिनों अपनी प्रसिद्ध पत्रिका Crelle's Journal निकालने वाला था। बर्लिन

से ऑर्वेल फ्राइवर्ग गया जहाँ इसने दीर्घवृत्तीय फलनो पर गवेषणा कार्य किया जो जगत् प्रसिद्ध हो गया है। आर्थिक अभाव के कारण आर्वेल को नाँवें लौट आना पड़ा। १८२९ में ब्रेले ने इसको लिखा कि वह इसको बर्लिन के विश्वविद्यालय में प्राध्यापक का स्थान दिलाने में सफल हो गया है। किन्तु उक्त पत्र के पहुँचने से पहले ही आर्वेल का स्वर्गवास हो चुका था।

आर्वेल का प्रथम महत्वपूर्ण कार्य सार्विक पंच घात समीकरण के सम्बन्ध में था। उसके पूर्वगामियों ने ऐसे समीकरण पर बहुत परिश्रम किया था किन्तु कोई भी उसका हल नहीं निकाल सका था। आर्वेल ने अपने विचार से उसका हल निकाल लिया था। उक्त हल जाच के ट्रिए डेन्मार्क (Denmark) के सबसे बड़े गणितज्ञ के पास भेजा गया। किन्तु इसी बीच में आर्वेल ने अपनी गलती पकड़ ली। उसका 'हल' धातुत्व में हल था ही नहीं। अब उस यह सन्देह हुआ कि उसकी समीकरण का हल निकालना सम्भव भी है या नहीं। तब उसने यह सिद्ध कर दिया कि यह कार्य असम्भव है। हम उक्त कथन को आर्वेल के ही शब्दों में देते हैं।

स्कूल में विद्यार्थी सरल और वर्ग समीकरण

$$अय + ख = ०, \quad कय^१ + खय + ग = ०$$

को हल करना सीखता है। कालिज में उसे निम्नलिखित त्रिघात और चतुर्घात समीकरणों

$$कय^१ + खय^१ + गय + ध = ०,$$

$$अय^२ + राय^१ + गय^१ + धय + च = ०$$

के साधन की विधियाँ सिखायी जाती हैं।

वर्गात्मक समीकरण के हल इस प्रकार हैं—

$$य = \frac{-ख \pm \sqrt{ख^२ - ४ अग}}{२अ}$$

वर्ग समीकरण के मूल निकालने के लिए जोड़ने, घटाने, गुणा करने, भाग देने, वर्ग मूल निकालने आदि की क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। इसी प्रकार अन्य उपरिलिखित समीकरणों के साधन के लिए गुणाका पर इसी ढंग की क्रियाएँ करनी होती हैं। और इन समस्त क्रियाओं की सत्या सान्त (Finite) रहती है। ऐसे हल का 'बीजगणितीय हल' (Algebraic Solution) कहते हैं। यदि उपरिलिखित क्रियाओं में से किसी भी क्रिया को अनन्त बार करना पड़े तो असम्बन्धी हल को बीजगणितीय हल नहीं कहेंगे।

अब सार्विक पंचघात समीकरण

$$\text{कय}^4 + \text{खय}^3 + \text{गय}^2 + \text{घय} + \text{चय} + \text{छ} = 0$$

पर विचार कीजिए। बहुत से गणितज्ञों ने इस समीकरण के बीजगणितीय हल निकालने का प्रयत्न किया और विफल रहे। ऑर्वैल यह सिद्ध करने में सफल हो गया कि इस समीकरण का कोई बीजगणितीय हल सम्भव ही नहीं है।

अमेरिका

कह सकते हैं कि अमेरिका में वास्तविक गणितीय कार्य १९वीं शताब्दी में ही आरम्भ हुआ। उक्त शताब्दी में अमेरिका में कई गणितज्ञ उत्पन्न हुए। इनमें प्रमुख नाम बेंजैमिन पियर्स (Benjamin Peirce) का आता है। इसका स्थिति काल १८०९-१८८० था। इसके पिता हार्वर्ड विश्वविद्यालय के पुस्तका-व्यक्ष और इतिहासज्ञ थे। यह १८२५ में हार्वर्ड का स्नातक हुआ और १८३१ में वहीं पर अध्यापक नियुक्त हो गया। लगभग ५० वर्ष तक यह उसी विश्वविद्यालय से सम्बद्ध रहा। पियर्स एक बहुत ही सफल अध्यापक था और शीघ्र ही इसकी ख्याति दूर दूर फैल गयी। यूरोप में इसको इतने मान प्राप्त हुए—

- (१) रॉयल ऐस्ट्रोनॉमिकल सोसायटी का सहचरत्व,
- (२) रॉयल सोसायटी की विदेशी सदस्यता,
- (३) ब्रिटिश ऐसोसियेशन फॉर दि ऐड्वांसमेंट ऑफ साइंस के संवाददाता का पद,

(४) ऐंडिनवरा की रॉयल सोसायटी की सम्मानित अधिसदस्यता।

पियर्स का अविकांश कार्य प्रयोजित गणित पर है। शुद्ध गणित में इसकी प्रमुख गवेषणा एकघात सहचरण बीजगणित (Linear Associative Algebra) पर है। सब मिलाकर इसने ११ ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं।

मैक्सिम बोशर (Maxime Bocher) (१८६७-१९१८) का जन्म बोस्टन में हुआ था। इसने केम्ब्रिज लैटिन स्कूल और हार्वर्ड कालिज में शिक्षा पायी और १८८८ में यह स्नातक हो गया। तत्पश्चात् यह अध्ययन के लिए गटिंगन गया जहाँ से इसने १८९१ में पीएच० डी० की उपाधि प्राप्त की। १९०४ में यह हार्वर्ड में ही प्राध्यापक नियुक्त हो गया। इसने वर्षों कई अमेरिकी गणितीय पत्रिकाओं का सम्पादन किया। इसका प्रमुख गवेषणा कार्य अवकल सनोकरणों (Differential

Equations), श्रेणियों और उच्च बीजगणित पर है। इसकी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हो गयी हैं—

- (१) उच्च बीजगणित की भूमिका,
- (२) समाकल समीकरणों (Integral Equations) के अध्ययन की भूमिका।

एशिया

१८ वीं और १९वीं शताब्दियों में भारत ने तो गणित में कोई प्रगति दिखायी ही नहीं। जापान १८ वीं शताब्दी के अन्त तक तो देशी चलन में ही डूबल हुआ



मचाना रहा। उसका उल्लेख बना स्थान दिया जायगा। तत्पश्चात् चीन की भाँति वह भी पश्चिमी सभ्यता के चक्कर में फँस गया और दोना देगा का गणित पश्चिमी माँच में ढलने लगा। हम एक दिग्दे अध्याय में लिख आये हैं कि किस प्रकार चीन में ईसाई धर्म प्रचारकों का आविर्भाव हुआ जिन्होंने उक्त देश में पश्चिमी गणित की नींव डाली। कुछ दिन तक ता चीनिया ने पश्चिमी भाषा और सस्कृति का आदर किया, किन्तु १८ वीं शताब्दी के अन्त में प्रतिविया आरम्भ हो गयी और ईसाई प्रचारक सन्देह की दृष्टि में देखे जाने लग। देशी गणित का प्रचलन फिर बढ़ने लगा यद्यपि उसमें कोई विशेष प्रगति न

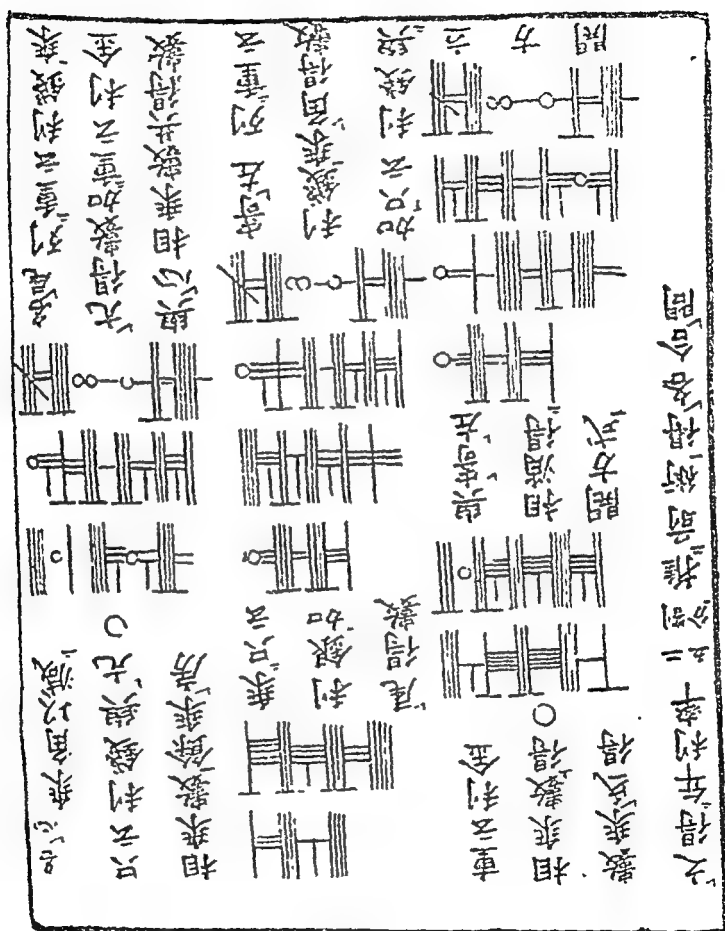
चित्र ५०—जापान का पारकल निभुज।

[निल ऐण्ड कम्पनी की अनुज्ञा से टोक्यो दूरिज शिन्शु त्तु 'हिरुशि क्क' में 'मैथेमेटिक्स' में प्रयुक्त।]

हो पायी।

पियर जार्टो (Pierre Jartoux) एक ईसाई धर्म प्रचारक था जो १७०० में चीन गया। इसका जीवन काल १६७०—१७२० था। इसने चीनियों को बीजगणितीय श्रेणियों का ज्ञान कराया। उसी समय के आग धाम चीन में लघुगणकीय और अन्य प्रकार की सागणियाँ तैयार होने लगीं।

एक उल्लेखनीय चीनी गणितज्ञ हुआ है मुरई चूज़ेन (Murai Chuze) जिसने १७६५ में उच्च घात संख्यात्मक समीकरणों पर एक ग्रन्थ लिखा। उक्त



चित्र ५१—संख्याओं का एक पृष्ठ।

[जिन एण्ड कम्पनी की अनुज्ञा से, डेविट यूजीन स्मिथ कृत 'हिन्दी ऑफ मैथेमेटिक्स' प्रस्तुत।]

का नाम था 'कंशो तैम्पेई सम्पा'। १७८१ में इसने एक और ग्रन्थ 'सम्पा' द

मन' लिया जिसमें किसी डिग्री के प्रसार के गुणांकों के विव्यक्त के लिए पास्कल त्रिभुज (Pascal Triangle) का प्रयोग किया गया था।

हम पिछले एक अध्याय में मेरी बातों का उल्लेख कर चुके हैं। उसने बीजगणित की एक नयी प्रणाली निरानी थी जिसे 'नेन्डन बीजगणित' कहते हैं। ऐरिस्तारडों (१७१४-१७८३) ने उस प्रणाली का विस्तार किया। उसकी कृति प्रतीति के रूप में है जो इन विषयों से सम्बद्ध है—

समीकरणों के मूल, द्विचर श्रेणी, अनिर्णित समीकरण, श्रृंखला और अल्पतम बिन्दु (Maxima and Minima Point.), बीजगणित का ज्यामिति पर प्रयोग आदि।

उक्त समय के जापानी बीजगणित में एक ही नाम और उल्लेखनीय है—हत्सा टईकें (१७३४-१८०९)। इसका अधिक प्रसिद्ध नाम फू जिता मसामुने था। इसने गणित पर कई पुस्तकें लिखी जिनमें से इसका बीजगणित, जिसका नाम 'सदस्य' था, प्रसिद्ध हो गया है। इसमें कई विशेष मौलिकता तो नहीं थी किन्तु यह अध्यापन कार्य में बहुत मृदाल था।

इसमें चीनी मन्त्राका के गुप्ताक्षर (Monogram) रूप दिये गये हैं।

अध्याय ५

ज्यामिति

(१) नाम और प्रकृति

ज्यामिति गणित की तीन मुख्य शाखाओं में से एक है। इसके द्वारा आकाश (Space) के गुणों का अध्ययन किया जाता है। इसकी प्रारम्भिक शाखाएँ प्रत्येक स्कूल में पढ़ायी जाती हैं। समतल ज्यामिति (Plane Geometry) में हम समतल आकृतियों का अध्ययन करते हैं और ठोस ज्यामिति (Solid Geometry) में ठोसों का। या यों कहिए कि समतल ज्यामिति का विषय द्विविम (Two-dimensional) है और ठोस ज्यामिति का त्रिविम (Three-dimensional)। किन्तु जैसा इस इतिहास से स्पष्ट हो जायगा, ये दोनों शाखाएँ ज्यामिति का एक बहुत ही छोटा अंग हैं। अब ज्यामिति में ऐसे कई विषयों का समावेश हो गया है जिनका पहले आविष्कार ही नहीं हुआ था।

जैसा हम पिछले अध्याय में लिख आये हैं, भारत में ज्यामिति का आरम्भ शुल्व सूत्रों से हुआ। इन सूत्रों में यज्ञ वेदियाँ बनाने की विधियाँ दी जाती थीं। इस देश में प्राचीन समय में यज्ञ दो प्रकार के हुआ करते थे—नित्य अथवा विवशक, और काम्य अथवा ऐच्छिक। नित्य यज्ञ प्रत्येक हिन्दू को करने ही पड़ते थे। उनका न करना पाप समझा जाता था। काम्य यज्ञ किसी विशेष हेतु से किये जाते थे। पुत्र की प्राप्ति के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ किया जाता था। इसी प्रकार रोगों से बचने के लिए अथवा व्यापारिक सफलता के लिए विशेष प्रकार के यज्ञ करने होते थे। इनका करना न करना व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर था।

प्रत्येक प्रकार के यज्ञ के लिए एक विशेष प्रकार की वेदी बनायी जाती थी। वेदियों के निर्माण की विधियाँ बड़े विस्तारपूर्वक दी जाती थीं। उनकी रचना में तनिक सी भी त्रुटि होने से यह आशंका होती थी कि यज्ञ का फल प्राप्त नहीं होगा। इसीलिए भारत में शुल्व विज्ञान का इतना विकास हुआ। सूत्रों में यह दिया जाता था कि किस प्रकार के यज्ञ के लिए कौन मा न्यून उपयुक्त होगा, किस आकृति की

स्ट्रेटें लगाने, बेदी की आकृति किस प्रकार की होगी, उसकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई क्या होगी इत्यादि। ईंटों की आकृति इनमें से कोई भी हो सकती थी—

वर्ग, समचतुर्भुज (Rhombus), समबाहु समलम्ब (Isosceles Trapezium), आयत, समकोण त्रिभुज, समद्वि समकोण त्रिभुज।

माधारणतः ईंटों की पाँच परतें लगायी जाती थी और प्रत्येक परत में २०० ईंटें रखी जाती थी। इस प्रकार बेदी मनुष्य के घुटने तक ऊँची होती थी।

इन मनुष्य मूर्तों का समय ३००० वर्ष ई० पू० से भी पहले का माना जाता है। इतना प्राचीन समय में ज्यामिति शास्त्र का इन मूर्तों से पृथक् कोई अस्तित्व नहीं था। मध्यकाशीन युग में उक्त विषय का नाम 'रेखागणित' पड़ा। कारण यह है कि उस समय की ज्यामिति मुख्यतः रेखाओं की रचना पर ही आश्रित थी।

'ज्यामिति' का अंग्रेजी नाम 'ज्यामेट्री' है। इसी नाम का तोड़ मरोड़कर 'ज्यामिति' बना लिया गया है। उक्त अंग्रेजी नाम 'ज्या' और 'मीटर' से बना है जिनका अर्थ है 'पृथ्वी' और 'माप'। इस त्रिरूपण से स्पष्ट है कि यूरोप में इस विषय का आरम्भ पृथ्वी को नापने के प्रयत्न से हुआ। किन्तु नाम विषय से अलग पुराना है। कम से कम ७०० ई० पू० तक इस नाम का प्रयोग मिलता है। किन्तु उस काल में यह शब्द उस विद्या का संक्षेप था जिसे आज 'सर्वेक्षण' (Surveying) कहते हैं। यूरोप की ज्यामिति विषयक सर्व प्रथम व्यवस्थित पुस्तक यूक्लिड की 'एलिमेंट्स' (Elements) है जिसका जीवन काल ३०० ई० पू० के लगभग माना जाता है। उस समय तक उक्त विषय ने ज्यामेट्री नाम नहीं अपनाया था। १२वीं शताब्दी ई० में यूक्लिड के ग्रन्थ का लटिन में अनुवाद हुआ। उक्त अनुवाद के विभिन्न संस्करणों में, कभी मुखपृष्ठ पर और कभी अन्तिम पृष्ठ पर, 'ज्यामेट्री' लिखा होता था। 'ज्यामेट्री' शब्द का उक्त विषय के अर्थ में पहला ऐतिहासिक प्रयोग यही प्रतीत होता है। तब से अब तक यह शब्द बराबर इसी अर्थ में प्रयुक्त होता आ रहा है।

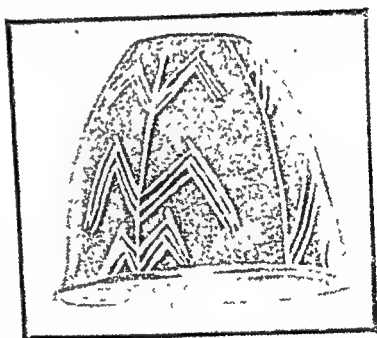
(२) ज्यामितीय अलंकार

मनुष्य स्वभाव में ही सौन्दर्य प्रेमी है। वह यथासाध्य प्रत्येक वस्तु को सजाकर रखना चाहता है। अंग्रेजी की एक कहावत है जिसका अर्थ है "मनुष्य उपयोग से भी पहले अलंकार पर ध्यान देता है।" यदि ऐसा न होता तो कुम्हार अपने बरतनों पर चित्र न बनाना, पुस्तकों की जिल्दें गुन्दर न दिलाई पड़नी और मकान बनाने में पहले दम दम बार उसके नक्शे न बनाए जाने। तनिक और दूर तर विचार कीजिए कि वास्तुशास्त्र (Architecture) का जन्म ही

न हुआ होता और अजन्ता तथा अन्धोरा के चित्रों का कोई अस्तित्व ही न होता । स्त्रियों के प्रसाधनों का आविष्कार ही न हुआ होता, छद्म और कढ़ाई के व्यवसाय अस्तित्व में न आते और वरतनों की नक्काशी जैसी कोई विद्या ही न होती । जितना भी आगे आप सोचते जायेंगे आप को यही दिताई पड़ेगा कि संसार का ढांचा ही कुछ दूसरा होता ।

जबसे मनुष्य ने संसार में पदार्पण किया है तभी से उसके मन में कला प्रेम का आविर्भाव हुआ है । या यों कहिए कि विश्व में मानव जीवन और कला प्रेम साथ साथ उपजे हैं । एक समय था जब आधुनिक सभ्यता का अंकुर भी नहीं उगा था और मनुष्य प्रस्तर युग में रहता था । वह मकान तो पत्थर के बनाता ही था, उसके उपकरण और वस्त्र भी पत्थर के ही होते थे । कुछ समय पश्चात् उसने मिट्टी के पात्र बनाने सीखे । न जाने कितने राजा राज कर गये, सभ्यताएँ लुप्त हो गयीं, देशों के नक्शे बदल गये, किन्तु कुम्हार की कला अभी तक विद्यमान है । अन्तर केवल इतना ही है कि अब पहले से भिन्न आकार प्रकार के वस्त्र बनते हैं । किन्तु कला का मूल तत्त्व अब भी वही है ।

प्रायः संसार के समस्त देशों में प्राचीन काल से आज तक किसी न किसी रूप में ज्यामितीय चित्र बनाये जाते रहे हैं । और ये चित्र जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों में, समाविष्ट रहते हैं । उत्सवों में, कब्रों पर, घर के वस्त्रों पर, दरियों, कालीनों पर, ऐतिहासिक स्मारकों पर, दीवारों पर, निर्धन की कुटिया पर, राज भवन पर—जीवन के सभी अंगों पर और प्रयोग की प्रायः समस्त सामग्री पर ज्यामितीय कला का प्रदर्शन मिलता है । इतिहासज्ञ और पुरातत्त्वविद प्राचीन सभ्यता के विषय में बहुत सी बातें उस समय के मिट्टी के वस्त्रों के अध्ययन से ही खोज निकालते हैं । कुछ संग्रहालयों की तो यही विशेषता होती है कि उनमें प्राचीन मिट्टी के वस्त्र संगृहीत किये जाते हैं ।



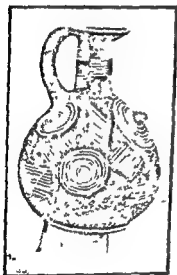
चित्र ५२—मिट्टी का एक प्राचीन वस्त्रन ।

मिश्र का प्राचीन काल का मिट्टी का वस्त्रन । इसका रचना काल ४०००—३४०० ई० पू० है । (न्यूयार्क के मेट्रोपॉलीटन संग्रहालय से) ।

[जिन एण्ट कम्पनी की अनुज्ञा से, डेविड यूजीन स्मिथ कृत 'हिस्ट्री ऑफ़ मॅथेमॅटिक्स' से प्रत्युत्पादित ।]

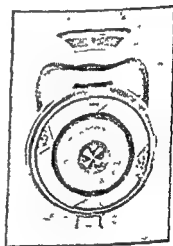
होती है कि उनमें प्राचीन मिट्टी के वस्त्र संगृहीत किये जाते हैं ।

यदि कोई प्राचीन बस्तुनाम का ही व्योम्गिक अध्ययन करता जाय तो उसे पता चलना जायगा कि उस समय के निवासियों में ज्यामितीय बुद्धि का किन प्रकार विकास होता गया। अति प्राचीन काग में तो बस्तुनाम पर केवल टेढ़ी मेढ़ी लकीरें बनायीं जाती थीं। नन्वदचान् ये लकीरें समान्तर होने लगीं। और थोड़े समय पश्चात् आयनाकार और त्रिभुजाकार आकृतियाँ भी बनने लगीं। कहीं कहीं वृत्त, समवतुर्भुज और स्वस्मिता भी दृष्टिगोचर होने लगे। व्यावहारिक दृष्टि से देना जान तो कहना पड़ेगा कि ज्यामिति की नींव बाल्य द्वारा ही पड़ी।



चित्र ५३—कति की एक प्राचीन मुराही।

'कांसा युग' की सादप्रम की एक मुराही। समय ३०००—२००० ई० पू०
मेट्रोपोलीटन संग्रहालय, न्यूयॉर्क।



चित्र ५४—लीह युग का कसर।

'लीह युग' का सादप्रम का एक कसर। समय १०००—७५० ई० पू०
मेट्रोपोलीटन संग्रहालय, न्यूयॉर्क।

[जिन एड बरफनी की अनुशा से, डेविड यूजोन स्मिथ वृत्त 'हिस्ट्री ऑफ मैथेमैटिक्स' में प्रस्तुत है]



चित्र ५५—आठवीं शताब्दी का झंझर ।

८ वीं शताब्दी ई० पू० का एक झंझर ।

[जिन एंड कन्पनी की अनुज्ञा से, डेविड यूजीन स्मिथ कृत 'हिस्ट्री ऑफ मॅथेमॅटिक्स' से प्रत्युत्पादित ।]

(३) पूर्व ऐतिहासिक काल से ३०० ई० पू० तक

चीन

चीन की गणितीय कृति कहलाने योग्य सबसे प्राचीन पुस्तक चउ-पेइ है। इसके लेखक और रचना काल का कुछ पता नहीं है। किन्तु उक्त पुस्तक में कई संवाद दिये गये हैं जो राजकुमार चउ-कंग और उनके मन्त्री शंग-काव में हुए थे। और चउ-कंग की मृत्यु ११०५ ई० पू० में हुई थी। इससे अनुमान लगता है कि चउ-पेइ का

(i) फ़ंग तिथि (खेत का वर्गण) । इस अध्याय का विषय सर्वेक्षण है । इसका मान ३ लिया गया है और विभिन्न आकृतियों के क्षेत्रफल के सूत्र दिये गए हैं जैसे त्रिभुज, समलम्ब, वृत्त ।

(ii) नू मी (नाजों का परिकलन) । इस अध्याय का विषय प्रतिगनता और समानुपात है ।

(iii) श्वाङ्ग-प्रैत (भागों का परिकलन)—साझा और त्रैशिक ।

(iv) दाव-कुअंग (लम्बाई निकालना)—आकृतियों की भुजाओं की लम्बाइय वर्ग और घन मूल ।

(v) शंग-कुंग (आयतन निकालना) ।

(vi) चून-शू (मिश्रण)—गति और मिश्रण सम्बन्धी प्रश्न ।

(vii) यिंग-यू-त्सू (आविक्य और न्यूनता)—मिथ्या स्थान नियम ।

(viii) फ़ंग चैंग (समीकरण)—युगपत् एकघात समीकरण और सारणिक

(ix) कउ-कू (समकोण त्रिभुज)

इस ग्रन्थ के लेखक और रचना काल भी ज्ञात नहीं है । किन्तु इतना पता है । चीन के सम्राट् ची ह्वांग ती ने २१३ ई० पू० में यह राजाज्ञा निकाली कि समस्त पुस्तकें जला दी जायें और सब विद्वानों को जीवित दफ़ना दिया जाय । तिस पर भी वृत्त पुस्तकें जलाने से अवश्य ही बच गयी होंगी, और कुछ जो लोगों को कण्ठस्थ शब्दों द्वारा लिख ली गयी होंगी । उक्त घटना के कुछ ही समय पश्चात् एक चीनी गणितज्ञ चंग संग हुआ है जिसने पिछले लेखकों की कृतियों का एक संग्रह प्रकाशित किया अनुमान है कि स्वान शू भी उसी ने लिखी । किंवदन्ती है कि उक्त ग्रन्थ चउ-कंग अपनी ही देख रेख में तैयार कराया था । इस प्रकार स्वान शू का रचना काल १०० ई० पू० से पहले का ही बैठता है ।

यथाकथित 'पियॅगोरस का प्रमेय'

यह बात अब अधिकांश इतिहासज्ञ मानने लगे हैं कि 'पियॅगोरस का प्रमेय' शू सूत्रों के लेखकों को पियॅगोरस के जन्म से सैकड़ों वर्ष पहले ज्ञात हो चुका था । अब हम इसे 'शुल्व प्रमेय' कहेंगे । स्मिथ ने अपने इतिहास के भाग १ के पृ० ९७ लिखा है कि "शुल्व सूत्रों में पियॅगोरस के प्रमेय का न्यास (Statement) स्पष्ट शब्दों में दिया गया है, किन्तु द्विन्दुओं को उक्त प्रमेय की ज्यामितीय उत्पत्ति का आशय

इसके अनिश्चित नीचानुगुणों में से हम मनसोब प्रमाण का प्रयोग होता है—

५१ ई, १२१ ई, १३१ ई.

अतः यह असम्भव है कि भाग्यीय गणितज्ञों को ज्ञान प्रमेय का सार्विक रूप ज्ञात न हो। कात्यायन में ज्ञान प्रमेय के अन्त में यह वाक्य आता है—

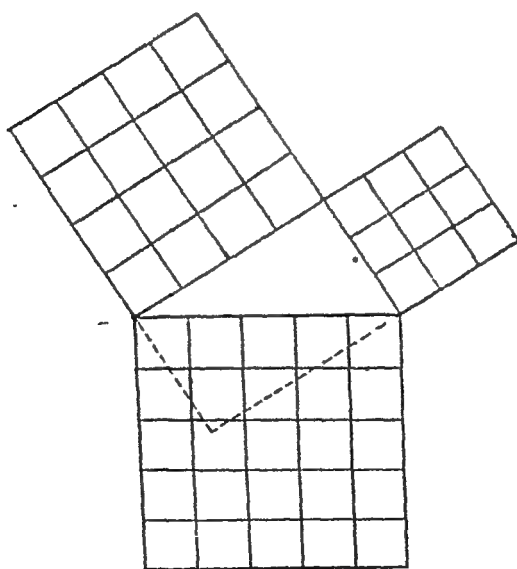
एतन्नि क्षेप ज्ञानम्

अर्थ—यह ज्ञान क्षेपों (गमत्तल आकृतियों) के सम्बन्ध में है।

इस वाक्य में स्पष्टतः यह निष्कर्ष निकलता है कि शल्वकारों को प्रमेय का ज्यामितीय रूप भी ज्ञात था। हम कथन की पुष्टि के और भी कई प्रमाण शल्व सूत्रों में ही मिल जाते हैं। कात्यायन के निम्नलिखित श्लोकों पर विचार कीजिए।

द्विप्रमाणा चतुः करणी निप्रमाणा नवकरणी चतुः प्रमाणा पौडन करणी।

अर्धप्रमाणेन पादप्रमाणं विधीयते।



चित्र ५७—शल्व प्रमेय का ज्यामितीय प्रदर्शन।

आधुनिक ज्यामितीय भाषा में हम इन श्लोकों का भावार्थ इस प्रकार देंगे—

‘दुगुनी रेखा से चार वर्ग बनेंगे, तिगुनी रेखा से ९ वर्ग बनेंगे, चोगुनी रेखा से १६ वर्ग बनेंगे, आधी रेखा से चौथाई वर्ग बनेगा।’

अब इस सम्बन्ध में आपस्तम्ब (III) ७ और वात्स्यायन (III) ९ पर विचार करना आवश्यक है जिनका भावार्थ इस प्रकार होगा—

‘जितने मानव किसी रेखा में होंगे, वर्गों की उतनी ही पवितर्या उसके वर्ग में होगी।’

अब इस नियम का किसी समकोण त्रिभुज पर प्रयोग करने देखिए तो इस प्रकार की आकृति प्राप्त होगी। (देखिए चित्र ५७)

आकृति से स्पष्ट है कि इसमें द्गुल्व प्रमेय का ज्यामितीय प्रदर्शन समिहित है।

द्गुल्व प्रमेय का प्रयोग द्गुल्व में दो चार नहीं, दसियों स्थानों पर हुआ है किसी आयत के बराबर एक वर्ग बनाना, वर्ग के बराबर एक आयत बनाना जिनके एक भुजा दी हो, $\sqrt{2}$, $\sqrt{3}$, की ज्यामितीय रचना निकालना इत्यादि— ऐसे समस्त निर्मेया में उक्त प्रमेय का सहारा लिया गया है। भूशा से यह भी पता चलता है कि द्गुल्वकारों को निम्नलिखित दिलोम प्रमेय का भी पता था—

‘यदि कोई त्रिभुज ऐसा है कि उसकी एक भुजा का वर्ग शेष दोनों भुजाओं के वर्गों के योग के बराबर हो तो पिछली दोनों भुजाओं का मध्यस्थ कोण एक समकोण होगा।’

हम यहाँ तत्सम्बन्धी दो एक रचनाएँ देते हैं—

बीधायन—

माना चतुरस्रे समस्त्यनकनीयसः करण्णाः कर्पायसो बृध्रमुल्लिखेत् बृध्रास्याऽणारण्यं समस्तया पादर्वमानी भवति।

उदाहरण—मान लीजिए कि दो वर्ग दिये हुए हैं और एक ऐसा वर्ग बनाना है जो क्षेत्रफल में इन दोनों क्षेत्रफलों के जोड़ के बराबर हो।

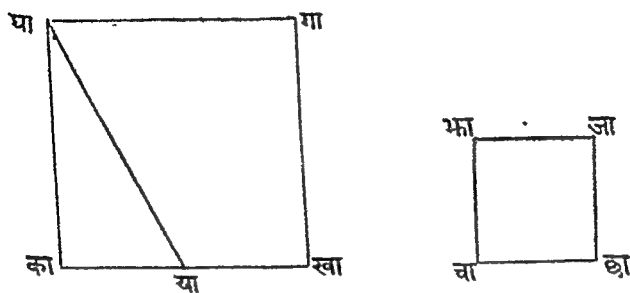
मदि दिये हुए वर्ग का खा गा घा और चा छा जा शा हो तो बा खा में से बा घा-चा छा काट लो।

घा या को जोड़ो।

अथ, बा या^२ + बा घा^२ = घा या^२,

बा या^२ - बा घा^२ = घा या^२ - बा घा^२।

अतः यदि घा या पर एक वर्ग खींचा जाय तो उसका क्षेत्रफल दोनों दिये हुए वर्गों के क्षेत्रफल के जोड़ के बराबर होगा।



चित्र ५८—दो शुल्ब सूत्रीय क्षेत्रफल।

अब शुल्ब प्रमेय की एक विशिष्ट दशा पर भी विचार कीजिए।

बौधायन (i) ४५—

समचतुरस्त्रस्याक्षयारज्जुद्विस्तावतीभूमि करोति ।

बापस्तम्ब (i) ५—

चतुरस्रस्याक्षयारज्जुद्विस्तावती भूमि करोति ।

कात्यायन (ii) १२—

समचतुरस्त्रस्याक्षयारज्जुद्विकरणी ।

इन समस्त श्लोकों का अर्थ एक ही है—

किसी वर्ग के विकर्ण का वर्ग (मीलिक) वर्ग का दुगुना होता है।

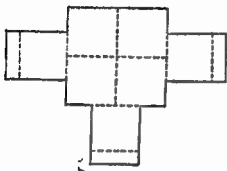
इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि शुल्बकार $\sqrt{2}$, $\sqrt{3}$, ... की ज्यामितीय रचना की विधि भी जानते थे। इन रचनाओं और ऐसी ही अन्य रचनाओं के लिए शुल्ब प्रमेय के सार्विक ज्यामितीय रूप का ज्ञान अनिवार्य था।

कुछ शुल्बकारों ने वर्ग वाली विशिष्ट दशा आयत वाले सार्विक प्रमेय से पहले दी है। यज्ञ वेदियों में से एक प्रकार की वेदी का नाम 'दक्षिण वेदी' था। उसकी रचना में एक वर्ग बनाया जाता था जिसका क्षेत्रफल दूसरे वर्ग के क्षेत्रफल का दुगुना हो। इस प्रकार हम देखते हैं कि कम से कम वर्ग वाली विशिष्ट दशा तो अति प्राचीन है क्योंकि दक्षिण वेदी की रचना सम्बन्धी सूत्र ऋग्वेद से भी पुराने हैं। और ऋग्वेद

३००० ई० पू० से पहले का है। अतः यह मानना पड़ेगा कि शुल्ब प्रमेय की वग घाली दशा का ज्ञान ३००० ई० पू० से भी पहले का है।

हमने पिछले अध्याय में कुछ ज्यामितीय रचनाएँ दी हैं। ऐसी बहुत सी अन्य रचनाओं का उल्लेख शुल्ब सूत्रों में मिलता है जो बिना शुल्ब प्रमेय की सहायता के

सम्भव ही नहीं है। काम्य यज्ञ की वेदिया में से एक का नाम है चतुरस्र श्येन चित्र जिसमें एक ऐसा वर्ग बनाना होता है जिसका क्षेत्रफल $7\frac{1}{2}$ वर्ग मातृक हो। इसकी रचना में चार वर्ग बनाने होते हैं जिनकी भुजा १ मातृक हो, दो आयत बनाने होते हैं जिनकी भुजाएँ $1 \times 1\frac{1}{2}$ हो और एक आयत जिसकी भुजाएँ $1 \times 1\frac{1}{2}$ हो।



चित्र ५९—श्येनचित्र वेदी में शुल्ब प्रमेय।

इस वेदी की रचना से स्पष्ट है कि इसमें शुल्ब प्रमेय का प्रयोग किया गया है। इसके अनिश्चित शुल्ब सूत्रों में ऐसी अनेक रचनाएँ हैं जिनमें किसी वर्ग के $1\frac{1}{2}$ $2\frac{1}{2}$ $3\frac{1}{2}$ गुने क्षेत्रफल का वर्ग बनाना होता है।

इस प्रकार शुल्ब प्रमेय की प्राचीनता में तो तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता। इस सम्बन्ध में हम पाठकों का ध्यान निम्नलिखित कृतियों की ओर आकृष्ट करते हैं—

(1) J C Allman Greek Geometry from Thales to Euclid Dublin (1889) pp 29, 37.

(2) C A Bretschneider Die Geometrie und die Geometer vor Eukleid s, Leipzig (1870) 82

(3) A Burk Zeitschrift der deutschen morgenlandischen Gesellschaft LV pp 556 f.

(4) M Cantor Vorlesungen über Geschichte der Mathematik, 3rd ed Bd I 185

(5) J Gow: A short History of Greek Mathematics, Cambridge (1884) 155 f

(6) H. Hankel : Zur Geschichte der Mathematike in Alterthum und Mittelealter, Leipzig (1874) 97 f.

(7) T. L. Heath : The Thirteen Books of Euclid's Elements in 3 vols., Cambridge (1908) I, 352 f.

(8) G. Junge : "Wann Haben die Griechen das Irrationale entdeckt"—*Novae Symbolae Joachimicae*, Halle (1907) 221-64 quoted by Heath I, 351.

(9) C. Müller : "Die Mathematike der Śulvasūtra", *Abhandl. d. Math. seminar. d. Hamburgischen univ.* Bd. vii (1929) 175-205.

(10) G. Thibaut : Śulbasūtras.

शुल्व प्रमेय के विषय में एक बड़ी विलक्षण बात यह है कि इस का कोई प्रमाण नहीं है कि पिथॅगोरस ने इसकी कोई उपपत्ति निकाली थी। पिथॅगोरस का जीवन काल छठी ई० पू० था। उसके लगभग ५०० वर्ष पश्चात् लोगों ने कहना आरम्भ किया कि उसने शुल्व प्रमेय का आविष्कार किया था। और यह अनुमान एक अस्पष्ट, भ्रमोत्पादक कथन पर आवृत था। इस प्रकार पिथॅगोरस को मुक्त में ही श्रेय मिल गया। हेंकेल और यूंग तो निश्चित रूप से यह कहते हैं कि उक्त प्रमेय की कोई उपपत्ति पिथॅगोरस ने दी ही नहीं। अल्मैन और कॅण्टर ने यह अनुमान लगाया है कि कदाचित् पिथॅगोरस ने कोई उपपत्ति दी हो। किन्तु उनके तर्क सन्तोषजनक नहीं हैं।

ब्रेट्स्नाइडर का विचार है कि उक्त प्रमेय की जो उपपत्ति पिथॅगोरस के नाम से सम्बद्ध है, वास्तव में वही है जो ११५० ई० में भास्कर ने दी थी। हेंकेल एक पग और आगे बढ़कर कहते हैं कि "वास्तव में उक्त उपपत्ति की उत्पत्ति में यूनानी शैली का तो आभास भी नहीं है, उसमें तो भारतीयता झलकती है।" हेंकेल की उक्त टिप्पणी का समर्थन अल्मैन, हीद और गाउ ने भी किया है। इसी विना पर हीद ने यह सुझाव दिया है कि इस प्रमेय का नाम 'कर्ण के वर्ग का प्रमेय' होना चाहिए। हिन्दू गणित में यह प्रमेय कर्ण के वर्ग के रूप में नहीं दिया गया है, बरन् आयत के विकर्ण के वर्ग के रूप में दिया गया है। अतः डा० दत्त के विचार में इसका नाम 'विकर्ण के वर्ग का प्रमेय' अधिक उपयुक्त होगा। पश्चिमी गणितज्ञों ने विना किसी प्रमाण के, केवल अटकल के सहारे उक्त प्रमेय का सारा श्रेय पिथॅगोरस को दे दिया। किन्तु पर्याप्त

प्रमाण होने हुए भी हिन्दुओं को इस श्रेय से वंचित रखा। सब बातों पर विचार करने में हम उक्त प्रमेय के विषय में इन निष्कर्षों पर पहुँचते हैं—

(क) यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि सुल्व-प्रमेय ४०००-३००० ई० पू० में ही हिन्दुओं को ज्ञान था। वह उक्त प्रमेय के केवल अवगणितीय उदाहरणों से ही परिचित नहीं थे, वरन् उसने सार्विक ज्यामितीय रूप के भी ज्ञाता थे।

(ख) हिन्दुओं ने कहीं पर भी सुल्व प्रमेय की कोई उपपत्ति नहीं दी है। इस बात की अत्यधिक सम्भावना है कि उन्हें उक्त प्रमेय की कोई उपपत्ति भी प्राप्त हो गयी थी, किन्तु हमारे पास इस बात का कोई अकाट्य प्रमाण नहीं है।

(ग) ११०० ई० पू० के लगभग चीन में भी उक्त प्रमेय का आभास मिल चुका था जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं। यह सम्भव है कि चउ-येइ के लेखक को भी उसकी कोई उपपत्ति न मिली हो।

(घ) पियेंगोरस ने उक्त प्रमेय की कोई उपपत्ति दी ही नहीं। अतः सुल्व प्रमेय के आविष्कार का सर्व प्रथम श्रेय सुन्वकारों को मिलना चाहिए, दूसरा श्रेय चउ-येइ के लेखक को। पियेंगोरस उक्त श्रेय के तनिक से भी अशक्त का भागी नहीं है।

बकिलन (बाबुल)

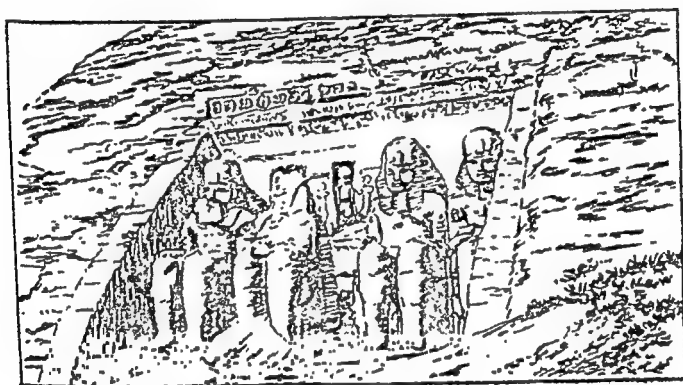
बकिलन के आरम्भिक काल के अवगणितीय ज्ञान का उल्लेख हम एक निष्ठे अध्याय में कर चुके हैं। उक्त सूत्रज्ञ ने ज्यामिति में भी कुछ प्रगति दिखाई थी। १५०० ई०पू० के लगभग ही इन लोगों को ज्यामिति के कुछ सूत्रों का ज्ञान हो गया था। ये लोग वर्ग, आयत, भ्रमकीण त्रिभुज और समलम्ब का क्षेत्रफल निकाल लेते थे। सम्भवतः कुछ टोसा के आयतन के सूत्र भी इन्हें ज्ञान थे जैसे गमान्तरपत्र (Parallelepiped) और बेलन (Cylinder)।

मिस्र

मिस्र की अति प्राचीन ज्यामितीय कृतियाँ उनके सूचीस्तम्भ (Pyramids) हैं। यदि इनको प्राचीन दृष्टीनिबन्धी चमत्कार भी कहें तो कोई अशुद्धि न होगी। ये सूचीस्तम्भ ३००० ई० पू० में भी पट्टे के बनाये जाते हैं। इनके आधार वर्गाकार हैं और पार्श्व पट्ट (Side faces) समद्विबाहु त्रिभुज (Isosceles Triangles)। इनकी ज्यामिति इस प्रकार हुई कि प्राचीनकाल में मिस्र में पहले एक वर्गाकार मस्जिद बनाया जाता था। उस में भूईं गाढ़ दिये जाते थे। मस्जिद पर बाँस लदा करके उसे

खपच्चियों और झाड़ झंकाड़ से पाट कर ऊपर से वालू से ढक दिया जाता था। जैसे जैसे समय बीतता गया, इन क़ब्रों की निर्माण विधि में अन्तर पड़ता गया और आवश्यकता ने कला का रूप धारण कर लिया।

ये सूचीस्तम्भ सदैव राजघरानों के सदस्यों के लिए ही बना करते थे। प्रत्येक राजा का एक मन्दिर होता था जिसमें पूर्व की ओर एक द्वार रहता था। राजा उक्त द्वार में से अन्दर जाकर पश्चिम की ओर मुंह करके पूजा किया करता था। सूची-स्तम्भ सदैव मन्दिर के पश्चिम की ओर बनाया जाता था, और उसकी पश्चिम की



चित्र ६०—चट्टान काट कर बनाया हुआ एक मिस्री मन्दिर।

[इन्स्टाइट्यूट ऑफ़ इजिप्टियन एंथ्रॉपॉलॉजी से]

दीवार में एक द्वार बनाया जाता था। किंवदन्ती है कि उक्त द्वार से ही दिवंगतात्मा दूसरे संसार को जाया करती थी।

अधिकतर सूचीस्तम्भों का प्रवणता कोण (Angle of Slope) लगभग अचर (41° के आस पास) है। किन्तु कुछ सूचीस्तम्भों के कोण 45° से 68° तक के हैं। एक अनुमान यह है कि इन सूचीस्तम्भों के आधार का आधे उच्चत्व से अनुपात अचर है और π के बराबर है। सम्भव है यह अनुमान सत्य हो क्योंकि इससे π का मान ३.१४ आता है।

मिस्र के राजाओं में से अमेनेमहट ३ अथवा 'मोरिस' का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इसका राज्य काल १८५० के आस पास था। इसके समय में मिस्र में सिंचाई की एक बृहत् योजना चालू की गयी। इससे पता चलता है कि इतने प्राचीन काल में भी मिस्रियों ने सर्वेक्षण और मापिकी का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया था। लोगों का यह

भी अनुमान है कि अहमिस पॅपिरस इसी के राज्यकाल में लिखा गया था जिसका उल्लेख हम एक पिछले अध्याय में कर चुके हैं।

जिस समय का हम उल्लेख कर रहे हैं, उसे मिस्र का सामन्त युग कह सकते हैं। उक्त युग का अन्त १८०० ई० पू० के लगभग हुआ। उन दिनों मिस्र में डाक प्रणाली हो गयी थी, तिथिपत्र बनने लगे थे और नदियों के उतार चढ़ाव के अभिलेख भी तैयार हो गये थे। अब हम कह सकते हैं कि उस समय तक मिस्र के गणितीय ज्ञान का कुछ कुछ विकास हो चुका था।

अहमिस पॅपिरस का विषय मुख्यतः व्यवहार गणित है, किन्तु उसमें कुछ प्रश्न मापिकी, श्रेणियाँ और समीकरणों पर भी हैं। उक्त ग्रन्थ का पहला प्रश्न इस प्रकार है—

“(वह राशि बताओ जिसका) पूरा और ३ भाग मिलाकर १९ होते हैं।”

इस प्रश्न का निरूपण इस समीकरण में होना है—

$$y + \frac{3}{4}y = 19$$

हल करने की विधि ‘परस मूल विधि’ ही थी।

मिस्र की चित्रलिपि में यह समीकरण

$$y \left(\frac{3}{4} + \frac{1}{4} + \frac{3}{4} + 1 \right) = 19$$

इस प्रकार लिखा जाता था—



चित्र ६१—मिस्र की चित्रलिपि।

(इन्माहसलापाटिया ब्रिटिश संग्रहालय से)

मिस्र की धर्मलिपि (Hieratics) में यही समीकरण इस प्रकार लिखा जाया—



चित्र ६२—मिस्र की धर्मलिपि

अहमिस में वर्गों, आयतों, समद्विबाहु त्रिभुजों और समलम्बों के क्षेत्रफल निकाले गये हैं। वृत्त के क्षेत्रफल के लिए निम्नलिखित सूत्र दिया गया है—

$$(\text{व्यास} - \frac{1}{8} \text{ व्यास})^2$$

इस सूत्र से π का मान ३.१६ आता है। उस समय के हिसाब से इतना सूक्ष्म मान दे देना श्रेयस्कर था।

अहमिस में सूचीस्तम्भों के जो नाप दिये गये हैं, भ्रमोत्पादक हैं, किन्तु उसी समय के एक अन्य पॅपिरस में एक आयताकार सूची स्तम्भ के छिन्नक (Frustum) का ठीक ठीक आयतन दिया गया है।

सिसॉस्ट्रिस मिस्र का एक पौराणिक राजा हुआ है। इसका जीवन काल १३४७ ई० पू० के लगभग आरम्भ हुआ था। हॅरोडोटस (लगभग ४८४-४२५ ई० पू०) लिखता है कि सिसॉस्ट्रिस ने सारे संसार को जीता, अपने देश के लिए कानून बनाया और देश के निवासियों में भूमि का विभाजन किया। जैसी जिसकी फसल होती थी, वैसा ही उससे लगान लिया जाता था। मिस्र की सामान्य जनता का ज्यामिति से प्रथम परिचय इसी प्रकार हुआ।

यूनान

हम एक पिछले अध्याय में यूनान के अंकगणितीय कार्य का विवरण दे चुके हैं। किन्तु यूनान की प्रतिभा सबसे अधिक ज्यामिति के क्षेत्र में चमकी। यों तो ज्यामिति के कुछ सिद्धान्तों से मिस्र वाले परिचित हो चुके थे, किन्तु उक्त विषय को व्यवस्थित रूप सर्व प्रथम यूनान ने ही दिया। यूनानी गणितज्ञ ज्यामिति में इतने बड़ गये थे कि उन्होंने अधिकांश अंकगणितीय और बीजगणितीय प्रश्नों को भी ज्यामितीय विधि से ही हल किया। यूनान के इतिहास का ९वीं से ७वीं शताब्दी ई० पू० तक का काल “ज्यामितीय युग” कहलाता है। इस युग में ज्यामितीय आकृतियों का प्राधान्य था। मिट्टी के वर्तनों पर, मन्दिरों पर, क़ब्रों पर—सर्वत्र कलापूर्ण ज्यामितीय आकृतियाँ दिखाई पड़ती थीं। त्रिभुजों, वृत्तों और समभुजों (Lozenges) में इनकी विशेष रुचि थी।

थेल्स (Thales) (६४०-५४६ ई० पू०) मिलेटस (Miletus) नगर का निवासी था। यह एक गणितज्ञ, दार्शनिक और ज्योतिषी था। यह यूनान के ‘सात चुने हुए बुद्धिमानों’ में से एक था। इसने सूर्य ग्रहण के विषय में एक भविष्यवाणी की थी जो सच निकली। इसी से इसकी ख्याति देश भर में फैल गयी। इसने मिस्र जाकर ज्यामिति सीखी। थेल्स के समय तक लोग इतनी ही ज्यामिति जानते थे कि

टोसों के तल और आयतन निकाल लें। थेल्स ने पहले पहल यह प्रश्न उठाया कि किसी आवृत्ति की भिन्न भिन्न रेखाओं में क्या पारस्परिक सम्बन्ध होता है, और इस प्रकार 'रेखा ज्यामिति' की नींव डाली।

थेल्स ने निम्नलिखित ज्यामितीय साध्यों का आविष्कार किया—

- (१) प्रत्येक वृत्त अपने किसी भी व्यास पर समद्विभाजित होता है।
- (२) किसी समद्विबाहु त्रिभुज के आधार कोण बराबर होते हैं।
- (३) जब दो ऋजु रेखाएँ एक दूसरे को काटती हैं तब सम्मुख शीर्ष कोण बराबर होते हैं।
- (४) अर्धवृत्त का कोई भी कोण एक समकोण होता है।
- (५) समरूप त्रिभुजों की भुजाएँ समानुपाती होती हैं।
- (६) दो त्रिभुज सर्वांगसम होते हैं यदि उनके दो कोण और एक भुजा बराबर हो।

थेल्स ने उक्त प्रमेयों का दो व्यावहारिक प्रश्नों पर प्रयोग भी किया—

- (क) समुद्र में किसी जहाज की दूरी निकालना।
- (ख) किसी सूचीस्तम्भ की छाया नाप कर उसकी ऊँचाई निकालना।

आज हमें उपरिलिखित प्रमेय बहुत सरल और महत्त्वहीन दिखाई पड़ते हैं, किन्तु समार के उक्त समय के ज्यामितीय ज्ञान के विचार से ये साध्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। थेल्स के प्रथम दो साध्यों में रेखा ज्यामिति, समीकरण और समिति के भावों की नींव है।

पिथैगोरस

पिथैगोरस ने ज्यामिति की बहुत सी परिभाषाओं का निर्माण किया। इसके अनिरिक्त उसने बहुत से ज्यामितीय प्रमेयों को सिद्ध किया और रचनाओं की विधि निवाली—

- (1) किसी त्रिभुज के तीनों कोणों का योग दो समकोण होता है।
- (ii) एक बहुभुज बनाना जो क्षेत्रफल में एक दिये हुए बहुभुज के बराबर हो और एक दूसरे दिये हुए बहुभुज के समरूप हो।
- (iii) पाँच सम बहुफलकों (Polyhedra) की रचना।

पिथैगोरस की चतुष्फलक (Tetrahedron) और द्वादशफलक (Dodecahedron) की रचना तो अवश्य ज्ञात थी। यह सम्भव है कि अष्टफलक (Octahed-

ron) और विंशतिफलक (Icosahedron) की रचना का आविष्कार एक अन्य गणितज्ञ थीटेटस (Theaetetus) ने किया हो।

(iv) किसी ऋजुरेखाकृति के समरूप और एक दूसरी ऋजुरेखाकृति के बराबर एक अन्य ऋजुरेखाकृति बनाना।

सम्भवतः पिथॅगोरस ने लोगों को यह भी बताया कि पृथ्वी अन्तरिक्ष में एक गोला है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पिथॅगोरस ने ज्यामिति के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण आविष्कार किये हैं। किन्तु हम एक पिछले प्रकरण में कह चुके हैं कि उसने उस प्रमेय को सिद्ध किया ही नहीं जो उसके नाम से प्रसिद्ध है।

ईलिया के जीनो (Zeno of Elea) का जन्म लगभग ४९६ ई० पू० में और मृत्यु ४२९ में हुई। यह एक दार्शनिक और गणितज्ञ था। इसका सिद्धान्त यह था कि संसार में 'एक' की सत्ता है, न कि 'अनेक' की। इसके कुछ विरोधाभास जगत् प्रसिद्ध हो गये हैं—

(१) यदि संसार में अनेक की सत्ता है तो वह अत्यल्प भी है, अति महान् भी। अत्यल्प तो इसलिए कि उसके विभिन्न भाग अविभाज्य हैं, अतः परिमाणहीन हैं। अति महान् इसलिए है कि प्रत्येक दो भागों को पृथक् करने के लिए उनके बीच में एक तीसरे भाग की सत्ता होनी चाहिए। फिर इस तीसरे भाग और पहले भाग के बीच में एक चौथा भाग होना चाहिए, और इसी प्रकार अनन्त तक।

(२) प्रत्येक वस्तु आकाश में स्थित है, अतः आकाश भी आकाश में स्थित है।

(३) यदि नाज का एक मुट्ठा भूमि पर फेंका जाय तो उसमें से कुछ ध्वनि निकलती है। अतः उसके प्रत्येक दाने से ध्वनि निकलनी चाहिए, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता।

(४) संसार में किसी प्रकार की भी गति असम्भव है। मान लीजिए कि हम एक तीर छोड़ते हैं। वह किसी भी क्षण या तो उस स्थान में चलता है जिसमें स्थित है, या ऐसे स्थान में जिसमें स्थित नहीं है। जितने स्थान में स्थित है, उतने में तो चल ही नहीं सकता। और जिस स्थान में है ही नहीं, उसमें चलेगा कैसे?

(५) मान लीजिए कि कछुए और खरगोश में इस शर्त पर दौड़ हो रही है कि आरम्भ में कछुए को १० गज आगे से चलाया जाय। तो खरगोश कभी कछुए को पकड़ ही नहीं सकेगा। यदि खरगोश की चाल कछुए की चाल से दुगुनी है तो जितनी देर में खरगोश १० गज चलेगा, उतनी देर में कछुआ ५ गज आगे निकल जायगा। जब तक खरगोश इन ५ गजों की दूरी पार करेगा, कछुआ २।५ गज आगे चढ़

जायगा। जब तक खरबोश २॥ गज और चलेगा, बटुआ $१\frac{३}{४}$ गज और बड़ जायगा। और इसी प्रकार यावदनन्त (Ad infinitum)।



चित्र ६३—हिपॉक्रेटीज के त्रिभुज की दो भुजाओं पर अर्धवृत्त।

हिपॉक्रेटीज (Hippocrates) भी ५वीं शताब्दी ई० पू० का एक दार्शनिक और गणितज्ञ था। गणित के क्षेत्र में इसकी विशेष रुचि ज्यामिति में थी। इसने वृत्त के वर्गण पर बहुत परिश्रम किया। इसने एक समद्विबाहु समकोण त्रिभुज लिया और उसकी तीनों भुजाओं पर अर्धवृत्त बनाये। तत्पश्चात् इसने यह सिद्ध किया कि दोनों रेखित चन्द्रमो (Lunes) का क्षेत्रफल त्रिभुज के क्षेत्रफल के बराबर है। इसके पश्चात् तो केवल एक वर्ग बनाना रह जाता है जो क्षेत्रफल में उक्त त्रिभुज के बराबर हो। हिपॉक्रेटीज की उपपत्ति इस साध्य पर आधारित है—वृत्तो के क्षेत्रफल उनके व्यासों के वर्गों के अनुपात में होते हैं।

आर्काइटस (Archytas) (लगभग ४२८-३४७ ई० पू०) पिथैगोरी सम्प्रदाय का ही एक वैज्ञानिक और दार्शनिक था। यह सात बार मेना का नायक चुना गया। किंवदन्ती है कि एक जल यात्रा में यह समुद्र में डूब कर मर गया। इसकी प्रतिमा बहुमुखी थी। प्रारम्भिक ज्यामिति के क्षेत्र में इसने समानुपात सम्बन्धी कई प्रमेय सिद्ध किये, जैसे “यदि किसी समकोण त्रिभुज में शीर्ष से वर्ण पर लम्ब डाला जाय तो यह वर्ण की अवघाओ का मध्यकानुपाती होगा” और इसका विलोम। इसने विभिन्न प्रकार की श्रेणियों के मंदो को स्पष्ट किया, यान्त्रिकी का ज्यामितीय विधि से विवेचन किया, घन के वर्गण का एक मौलिक हल निकाला, ध्वनि-विज्ञान और मगीत पर गवेषणा की और एक उड़ने वाला यन्त्र तैयार किया। इसके नैतिक और दार्शनिक सिद्धान्त इनने महत्त्वपूर्ण समझे भये कि जरस्तू ने इसके दर्शन पर एक ग्रन्थ लिख डाला।

थीटेटस का जन्म लगभग ३७५ ई० पू० में हुआ था। यह सैक्रेन्स का निवासी था और बहुत प्रतिभाशाली था। इसने प्रारम्भिक ज्यामिति पर बहुत कार्य किया है।

यूनानी किंवदन्तियों के अनुसार पंच तत्त्व पाँचों सम ठोसों के बने हैं—अग्नि चतुष्फलक से, पृथ्वी घन से, वायु अष्टफलक से, विश्व की सीमा द्वादशफलक से और जल विशाफलक से। इस यूनानी परम्परा और प्राचीन हिन्दू सिद्धान्त में केवल इतना अन्तर कि हिन्दू परम्परा में पाँचवाँ तत्त्व आकाश माना गया है। सम्भव है कि 'आका' से तात्पर्य 'विश्व की सीमा' का ही हो। यूनानी विद्वानों में सर्व प्रथम थीटेटस ही उक्त सिद्धान्त का व्यवस्थित प्रतिपादन किया है।

प्लेटो का उल्लेख हम अंकगणित के अध्याय में कर चुके हैं। उसने ज्यामिति अध्ययन मुख्यतः दार्शनिक दृष्टिकोण से किया। उसने ज्यामितीय भावों की सम्परिभाषा, और शुद्ध तर्कयुक्त उपपत्तियों की नींव डाली। वह कहा करता था जिस किसी मनुष्य को नेता बनना हो, उसके लिए गणित का, विशेषकर ज्यामिति का, अध्ययन आवश्यक है। उसके विचार में गणित का अध्ययन मस्तिष्क के विकास के लिए ही आवश्यक था, चाहे उक्त अध्ययन का कोई उपयोग जीवन में हो या न हो। प्लेटो का विचार था कि शिक्षा के साथ साथ मनोरंजन का समावेश भी होना चाहिए जिससे रुक्ष विषय भी रोचक बनाये जा सकें।

एक प्राचीन ज्यामितीय-बीजगणितीय समस्या है 'घन का गुणन' (Multiplication of the cube). इस समस्या का सम्बन्ध इस समीकरण से है—

$$y^3 = \frac{x}{k} \cdot k^3 = m k^3.$$

प्राचीन समय में कभी कभी कुछ घात्मिक वेदियों के आकार को दुगुना करने की आवश्यकता पड़ती थी। उपरिलिखित समीकरण का उद्भव उसी समस्या से है। उक्त समीकरण का हल प्लेटो, आर्काइटस (Architus) और मॅनीवस (Menaechmus) ने निकाला है। मॅनीवस ने इसका साधन परवलय और अतिपरवलय की सहायता से किया है। इरॉटॉस्थेनीज ने इसके हल के लिए यान्त्रिक उपकरण ही बना डाला।

प्लेटो की परिपद् का उल्लेख हम एक पिछले अध्याय में कर चुके हैं। चतुर्दश शताब्दी ई० पू० का प्रायः समस्त गणितीय कार्य प्लेटो के शिष्यों और मित्रों ने किया है। थीटेटस उक्त परिपद् का सदस्य था। यूडोक्सस (Eudoxus) ने अनुसिद्धान्त की नींव डाली जिसका समावेश बाद की यूक्लिड के 'एलिमेंट्स' में किया है। उसने 'निःशेषण विधि' (Method of Exhaustion) से आकृतियों के क्षेत्रफल और आयतन निकाले। वह प्लेटो का शिष्य था। आर्काइटस, जिसे उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं, प्लेटो का मित्र था।

यूडोक्सस (लगभग ४०८-३५५ ई० पू०) कानून, ज्यामिति, औपवि और ज्यामिति का विद्वान् था। अनुमान है कि इसने अनुपात सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो बाद में यूक्लिड के ५वें भाग के रूप में प्रकाशित हुआ। इसने रेखाओं के वनक काट (Golden Section) पर भी कई प्रमेय आविष्कृत किये। इसकी निशेध विधि तो प्रसिद्ध हो गयी है। सम्भवतः इसने यह भी सिद्ध किया था कि गोला के आयतन उनकी विज्याओं के घना के अनुपात में होते हैं। वदाचित् यूडोक्सस ही सबसे पहला यूनानी गणितज्ञ था जिसने यह बताया कि सौर वर्ष ३६५ दिन से लगभग ६ घण्टे बड़ा है।

मैनीकमस, जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं, का जीवन काल ३५० ई० पू० के लगभग था। यह यूडोक्सस का शिष्य और प्लेटो का मित्र था। शाकबो (Conics) का व्यवस्थित अध्ययन सर्व प्रथम इसी ने किया था। इसने परवलय के सरलतम समीकरण

$$r^2 = p y \quad (y^2 = ax)$$

का प्रयोग किया था, और अतिपरवलय के इस गुण का भी उपयोग किया था कि यदि उसके अन्तर्दृष्टियों (Asymptotes) को अक्ष मान लिया जाय तो उसका समीकरण

$$y r = g^2 \quad (xy = c^2)$$

होता है।

कहते हैं कि सिकन्दर भी मैनीकमस का शिष्य था। उसने गुरु से कहा था कि ज्यामिति विद्या उसके लिए सरल बना दी जाय। मैनीकमस ने उत्तर दिया कि 'देता म तो राजकीय और निजी—दो प्रकार के मार्ग हुआ करते हैं, किन्तु ज्यामिति में सबके लिए एक ही मार्ग है।'

अरस्तू (Aristotle) का जीवन काल ३८४-३२२ ई० पू० था। दर्शन शास्त्र में इसका स्थान बहुत ऊँचा है। गणित में इसकी विशेष रुचि ज्यामिति और मीतिकी में थी। इसने अपनी कृतियाँ में गणितीय राशियों के लिए वर्णमात्रा के अक्षरों का प्रयोग किया है। एक स्थान पर यह लिखता है कि यदि A गामक बल (Motive force) हो, B गतिमान् वस्तु हो, I दूरी हो Δ समय हो,

अरस्तू ने एक नये दार्शनिक सम्प्रदाय को जन्म दिया जिसका ध्येय था प्रत्येक भाव का मूल निश्चालना। बोल चाल की मापा म इसे कहते हैं 'बाल की साल निश्चालना।' अरस्तू ने गणित पर दो पुस्तकें लिखी हैं—एक अविभाज्य रेखाओं पर, दूसरी यांत्रिक प्रस्था पर। उसकी कृति का यूक्लिड पर भी प्रभाव पड़ा है।

‘सातत्य’ (Continuity) की सब से पहली परिभाषा भी अरस्तू की ही दी हुई है—

“यदि कोई वस्तु ऐसी हो कि उसके कोई से दो क्रमागत भाग ले लें तो जिस सीमा पर वे मिलते हैं, वह दोनों के लिए एक ही हो और दोनों भाग एक दूसरे से जुटे हुए हों तो उस वस्तु को सतत (Continuous) कहते हैं।”

अरस्तू का मत था कि “वास्तविक अनन्त (Infinite) का अस्तित्व ही नहीं है।”

एक स्थान पर अरस्तू ने कहा है कि “किसी वर्ग के विकर्ण की लम्बाई, जिसकी भुजा की लम्बाई १ हो, सुमेय हो ही नहीं सकती, क्योंकि यदि वह सुमेय हो तो एक सम संख्या एक विषय संख्या के समान हो जायगी।”

आजकल $\sqrt{2}$ की असुमेयता की जो उपपत्ति दी जाती है, उक्त कथन की पुष्टि करती है।

जिस काल का हम वर्णन कर रहे हैं, उस काल के एक गणितज्ञ का नाम और उल्लेखनीय है—ऐरिस्टियस (Aristaeus)। इसके जीवन के विषय में केवल इतना पता है कि इसका कार्य काल ३२० ई० पू० के आस पास था। पॅप्स (Pappus) इसके ज्यामितीय कार्य से इतना प्रभावित था कि उसने कहा है कि यूनान में वैश्लेषिक ज्यामिति के क्षेत्र में तीन ही गणितज्ञ महान् हुए हैं—ऐरिस्टियस, यूक्लिड और एपोलोनियस। ऐरिस्टियस ने शांकों पर पाँच ग्रन्थ लिखे। इसके अतिरिक्त इसने पाँच सम ठोसों पर जो कुछ लिखा, उसका समावेश यूक्लिड के १३ वें भाग में हो गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इसकी कृतियों ने यूक्लिड को भी प्रभावित किया है।

(४) ३०० ई० पू० से १००० ई० तक

यूक्लिड (Euclid)

यूक्लिड के जन्म और मृत्यु का ठीक ठीक पता नहीं है। इतना ज्ञात है कि इसका कार्यकाल ३०० ई० पू० के आस पास था। इसने प्रारम्भिक शिक्षा कदाचित् ऐथेंस में प्लेटो के शिष्यों से पायी। टोलेमी १ (Ptolemy I) के राज्यकाल (३०६-२८३ ई० पू०) में इसने ऐलैग्जेंड्रिया में एक स्कूल स्थापित किया। यूक्लिड के जीवन का एक उपान्यास प्रसिद्ध हो गया है। इसके एक शिष्य ने ज्यामिति का प्रय

(२) बीजगणितीय सर्वसमिकाएँ और क्षेत्रफल;

(३) वृत्त;

(४) अन्तर्लिखित और परिलिखित बहुभुज;

(५) समानुपात;

(६) बहुभुजों की समरूपता;

(७)-(९) अंकगणित;

(१०) अमुमेय राशियाँ;

(११)-(१३) ठोस ज्यामिति ।

यूक्लिड के अन्य ग्रन्थ ये हैं—

(क) डेटा (Data)—इसमें ९४ साध्य दिये गये हैं । उनका विषय यह है कि यदि किसी आकृति के कुछ अंग दिये हों तो शेष अंग ज्ञात किये जा सकते हैं ।

(ख) आकृतियों के विभाजन पर एक पुस्तक—इस पुस्तक का विषय यह है कि यदि कोई आकृति (त्रिभुज, चतुर्भुज, वृत्त) दी हो तो उसे ऐसे दो भागों में किस प्रकार बाँटा जाय कि दोनों भागों के क्षेत्रफल एक निर्दिष्ट अनुपात में हों ।

(ग) स्पूडेरिया (Pseudaria) जिसमें शिक्षार्थियों को यह बताया गया है कि ज्यामिति के अध्ययन में कौन कौन सी त्रुटियाँ सम्भव हैं ।

(घ) शांकव—चार भागों में ।

(ङ) पोरिज़्म्स (Porisms)—उच्च ज्यामिति पर ।

(च) तल-बिन्दुपथ (Surface Loci)—दो भागों में ।

यूक्लिड की शेष कृतियाँ ज्योतिष, संगीत, चाक्षुषी (Optics) आदि पर हैं ।

आर्किमिडीज

आर्किमिडीज का जीवन वृत्तान्त हम अंकगणित के अध्याय में दे चुके हैं । उसकी ज्यामितीय पुस्तकें क्रमशः निम्नांकित विषयों पर हैं—

(i) गोले और बेलन पर जिसमें इन ठोसों और शंकुओं (Cones) के आयतन आदि निकालने के सूत्र दिये गये हैं ।

(ii) वृत्त के माप पर—इसमें कुल तीन साध्य हैं । दूसरे साध्य में यह असमता सिद्ध की गयी है—

$$\frac{22}{7} > \pi > \frac{22}{7}$$

- (iii) शकवाभागों (Conoids) और गोलाभागां (Spheroids) पर
 (iv) सर्पिलों (Spirals) पर।
 (v) परवलय के क्षेत्रफल (Quadrature) पर।

(vi) एर पुस्तक में प्रमेयिकाओं (Lemmas) का मध्य—दसमें समस्त ज्यामिति के १५ साध्य हैं।

आर्किमिडीज की दोष इतनी यांत्रिकी और द्रवस्थैतिकी (Hydrostatics) पर है। उसने और भी कई ग्रन्थ लिखे थे जो अब लुप्त हो गये हैं।

एपॉलोनीयम

एपॉलोनीयम का सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ कॉनिकस (Conics = शकव) है। इसी पुस्तक के कारण उसका नाम 'महान् ज्यामितिज्ञ' पट गया। एपॉलोनीयम ने और भी कई ग्रन्थ लिखे, किन्तु उनमें से प्रायः सभी लुप्त हो चुके हैं। कॉनिकस ८ भागों में विभाजित है। पहले भाग में एपॉलोनीयस ने यह दिखाया है कि शकव का जनन किस प्रकार होता है। उसने निर्देशक ज्यामिति का भी प्रयोग किया है। शकव का कोई व्यास और उसके छोर का स्पर्शी रेखा निर्णय अक्षों (Oblique Axes) द्वारा उसने शकवों के गुणों का आविष्कार किया है। शकवों के अग्रेजी नाम भी पहले पहल एपॉलोनीयस ने ही रखे थे।

कॉनिकस के भागों १—४ में मौलिकता तो कम है, किन्तु एपॉलोनीयस ने इनमें अपने पूर्व गणितियों का सारा कार्य व्यवस्थित रूप में दे दिया है। भागों ५—७ में एपॉलोनीयस ने मौलिकता दिखायी है। ५ वें भाग में उसकी प्रतिमा की चरम सीमा दिखाई पड़ती है। इसमें उसने अभिलम्बा (Normal) के गुणों का विवेचन किया है और यह भी बताया है कि किसी बिन्दु से किसी शकव को कितने अभिलम्ब खींचे जा सकते हैं। इसके अनिश्चित उसने वक्रता केन्द्र (Centre of Curvature) पर भी कई साध्य दिये हैं।

एपॉलोनीयस की जो कृतियाँ लुप्त हो गयी हैं, उनमें से भी अधिकांश ज्यामिति पर ही हैं। उनमें से एक में यूक्लिड की आलोचना की गयी है। एक अन्य पुस्तक में उन द्वादशफलकों और विंशतिफलकों की तुलना की गयी है जो एक ही गोले में खींचे जा सकें। एक अन्य स्थान पर उसने यह बताया है कि π की सीमाओं के $3\frac{1}{7}$ और $3\frac{1}{4}$ से भी सूक्ष्म मान किस प्रकार निकाले जा सकते हैं।

पैपस का उल्लेख हम एक पिछले अध्याय में कर चुके हैं। उसके समय में गणितीय

अध्ययन बहुत उपेक्षित हो चुका था। इस प्रकार वह अपने समकालीन विद्वानों में अपवाद था। उसकी प्रतिभा विलक्षण थी, किन्तु उसके देशवासियों ने उसका समादर नहीं किया। यहाँ तक कि उसके देश के लेखकों ने कहीं उसके कार्य का उल्लेख भी नहीं किया है। उसने एक 'गणितीय संग्रह' प्रकाशित किया जिसके आठ भागों में से पहले दो तो लुप्तप्राय हो चुके हैं। उक्त संग्रह में उसने अपने समस्त पूर्वगामियों के कार्य का व्योरेवार विवरण दिया है। इसके अतिरिक्त उनकी कृतियों पर अपनी टिप्पणियाँ और व्याख्याएँ भी दी हैं।

पैपस की पुस्तक के जो भाग बच रहे हैं उनके भी कुछ पन्ने नष्ट हो चुके हैं। दूसरे भाग का जो थोड़ा सा अंश बच रहा है, उसमें अंकगणितीय विषय दिये हुए हैं। तीसरे भाग में ज्यामितीय प्रश्न हैं। चौथे भाग में वृत्तों और अन्य वक्रों के गुणों का विवेचन है। पाँचवें भाग में समपरिमाप (Isoperimetric) आकृतियों का विवरण है और छठवें में गोले के गुणों का। सातवाँ भाग ऐतिहासिक है और आठवें भाग गुरुत्व केन्द्र और अन्य यान्त्रिक विषय हैं।

प्रोकलस (Proclus) (४१०-४८५ ई०) ने एलैगजेंड्रिया में प्रारम्भिक शिक्षा पाई, और अध्यापन कार्य के लिए वह एंथेंस चला गया। ४५० ई० में वह दर्शन का प्राध्यापक हो गया। उसने प्लेटो के सिद्धान्तों पर कई ग्रन्थ लिखे हैं। इसके अतिरिक्त उसने कई पुस्तकें व्याकरण पर भी लिखी हैं। गणित में उसकी मुख्य कृति यूक्लिड की टीका है। उक्त टीका में उसने पिछले ज्यामितिज्ञों के कार्य का उल्लेख किया है। अतः यह ग्रन्थ ज्यामिति के इतिहासज्ञों के लिए महत्वपूर्ण है।

बोथियस की जीवनी हम एक पिछले अध्याय में दे चुके हैं। उसने जो पाठ्य पुस्तकें लिखी हैं, उनका यूरोप में हजार वर्ष तक समादर रहा। उसने एक पुस्तक ज्यामिति पर भी लिखी है जिसमें मौलिकता तो विलकुल नहीं है, किन्तु उपस्थापन बहुत सुन्दर है। इस कारण बहुत से धार्मिक स्कूलों में उसका प्रयोग पाठ्य पुस्तक के रूप में होने लगा।

चीन

जिस काल का हम उल्लेख कर रहे हैं, उसमें ज्योतिष के क्षेत्र में तो चीन में बहुत विद्वान् हुए जिनका मुख्य कार्य तिथिपत्र से सम्बद्ध था, किन्तु ज्यामिति में छिट-पट्ट प्रयत्नों को छोड़कर चीन ने कोई विशेष प्रगति नहीं दिखायी। एक राजनीतिज्ञ चांग सांग (लगभग २५०-१५२ ई० पू०) हुआ है जिसने '१ विभागों के अंकगणित' का एक नया ग्रन्थ लिख दिया। उसकी बहुत कुछ सामग्री पुगाने ग्रन्थ से ली गयी थी।

चांग सांग ने अपनी पुस्तक में मापिकी के भी कुछ प्रश्न दिये हैं, जैसे किसी पेड़ की ऊँचाई निकालना। वृत्तखण्ड (Segment of a Circle) के क्षेत्रफल के लिए उसने यह सूत्र दिया है—

$$\frac{1}{2} \text{ ऊँचाई} \times (\text{जीवा} + \text{ऊँचाई}) :$$

अन्य लेखका में चांग हांग का नाम उल्लेखनीय है। इसका जीवन काल २७८-३१९ ई० था। यह एक ज्यामितिज्ञ और ज्योतिषी था। इसने— का निकट मान $\sqrt{10}$ दिया है।

एक अन्य चीनी गणितज्ञ सुन-रञ्जी हुआ है। इसके जीवन काल का ठीक ठीक पता नहीं है, किन्तु अनुमान है कि तीसरी सताब्दी ई० पू० का पहला भाग था। कुछ इतिहासज्ञा का मत है कि इसका स्थिति काल पहली सताब्दी ई० था। उस समय का एक चीनी ग्रन्थ मिला है—बू-त्साओ स्वान किंग। सम्भवतः यह सुन-रञ्जी का लिखा हुआ है। पुस्तक में मापिकी के प्रश्न दिये हुए हैं। मापिकी के अनिर्दिष्ट मुन रञ्जी ने योजगणित पर भी परिश्रम किया है। उसकी विशेष रचि अनिर्गोत समीकरण में थी। वह ऐसे समीकरणों के केवल एक हल से ही सन्तुष्ट हो जाता था। उमा एक प्रश्न यह है—

‘एक सत्या ऐसी है कि उसे ३ से भाग देने पर २ बचने हैं, ५ से भाग देने पर १ और ७ से भाग देने पर २ बचने हैं। सत्या उपलब्ध करो।’

तृतीय सताब्दी ई० का एक प्रसिद्ध गणितज्ञ हुआ है ल्यू ह्वी। इसने एक ग्रन्थ ‘मसुद्दी टाबू अरगणित शास्त्र’ पर लिखा। नाम वास्तव में विमिश्रण है। पुस्तक का विषय मापिकी है और उसका सबसे प्रथम प्रश्न इस प्रकार है “एक टाबू है जिसे मापन है।” बदाकिन् इसी प्रश्न पर पुस्तक का नाम रखा दिया गया है।

इसके पश्चात् दसवी सताब्दी तक चीन में और भी कई गणितज्ञ हुए हैं, किन्तु उनमें से अधिकांश की रचि अरगणित अपना ज्योतिष में रही है।

भारत

आर्यभट्ट

आर्यभट्ट के अरगणितोप और योजगणितोप काय का उल्लेख हम विष्णु अष्टांग में कर चुके हैं। आर्यभट्ट ने अपने ग्रन्थ के कई अनुच्छेदों में ज्यामितीय विषयों का भी विवरण दिया है। उस अनुच्छेद में मुख्यतः त्रिभुजा, चतुर्भुजा और वृत्तों के क्षेत्रफल और टांगों का मापान के सूत्र दिये गये हैं। हम यहाँ कुछ उद्धरण देने हैं—

(क) त्रिभुज का क्षेत्रफल

त्रिभुजस्य फलं शरीरं समदलकोटी भुजार्ध संवर्गः ५३

स्मिथ अपने इतिहास के भाग १ के पृष्ठ १५६ पर लिखते हैं कि ("आर्यभट्ट के दिये हुए) नियमों में एक नियम समद्विबाहु त्रिभुज के क्षेत्रफल का भी है जिसमें प्रगट होता है कि आर्यभट्ट अपने कथन कितने अचूरे रूप में दिया करता था—

‘त्रिभुज का क्षेत्रफल आधे आधार और उस लम्ब का गुणनफल होता है जो आधार को अधिग्राह।’

कजोरी महोदय भी अपने गणित के इतिहास में कहते हैं कि ‘आर्यभट्ट ने त्रिभुज के क्षेत्रफल का जो सूत्र दिया है वह समद्विबाहु त्रिभुज पर ही लागू है।

कजोरी और स्मिथ ने यहाँ ‘सम’ का अर्थ ‘बराबर’ लगाया है। किन्तु वास्तव में इस प्रसंग में ‘सम’ का यह अर्थ नहीं है। एक शब्द के अनेक अर्थ हुआ करते हैं। हमने आधुनिक गणित में ‘सम’ को निम्नलिखित दस अर्थों में युक्त होते देखा है—

(i) सम	बराबर
समभुजीय	Equilateral
सम अतिपरवलय	Equilateral Hyperbola
समकौणिक	Equiangular
समता	Equality
असमता	Inequality
(ii) सम	समभुजीय और समकौणिक
सम बहुभुज	Regular polygon
सम चतुष्फलक	Regular Tetrahedron
सम बहुफलक	Regular polyhedron
(iii) सम	Constant
सम त्वरण	Uniform acceleration
सम निपीड (दबाव)	Uniform pressure
(iv) सम	Of uniform material
सम छड़	Uniform rod
सम पटल	Uniform lamina

(v) सम	एकरूप
सम अभिसृति	Uniform convergence
समरूपता	Uniformity
(vi) सम	चौरस
समनल	Plane, plane surface
समतली, समनलस्थ	Coplanar,
समनल भूमि	चौरस भूमि
समतल काट	Plane section
(vii) सम सरया	Even Number
विषम संख्या	Odd Number
(viii) सम	एक से, Alike
सम समान्तर बल	Like parallel forces
(ix) सम	एक
समरंजित	Collinear
समवृत्तीय	Concyclic
(x) सम	Right
समकोण	Right Angle
सम शंकु	Right Cone
सम स्तूप	Right pyramid

हमने यहाँ 'सम' के वही अर्थ दिये हैं जो अब भी गणितीय पुस्तक में मिल जाते हैं। शब्दों के कुछ अर्थ ऐसे भी हो सकते हैं जो अब प्रचलित नहीं हैं और केवल शब्द कोषों की सीमा बढा रहे हैं। गणित की कुछ प्राचीन पुस्तकों में 'सम सरया' को 'सम संख्या' और 'विषम सरया' को 'असम संख्या' कहा गया है। ये दोनों पिछले पर्याय अब पुस्तकों में नहीं पाये जाते। इस प्रकार के बहुत से शब्द हम लेख में मिल जायेंगे—

ब्रज मोहन प्राचीन हिंदू गणित में श्रेढी व्यवहार—नागरी प्रचारिणी पत्रिका १२-१ (सं २००४) २५-३४

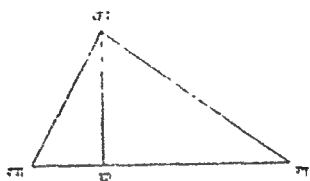
शब्दकोषों में 'सम' का एक अर्थ Common (सामान्य, उभयनिष्ठ, सर्वनिष्ठ) भी दिया हुआ है।

अब यदि 'सम' का यह अर्थ लगाया जाय तो आर्यभट्ट के उपरिलिखित श्लोक का अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

कोटी = उच्चत्व (Altitude)

दल = भाग

इस प्रकार 'दलकोटी' का अर्थ हुआ 'वह कोटी जो त्रिभुज के (दो) भाग कर दे। अतः आर्यभट्ट के श्लोक का अर्थ हुआ—



$$\begin{aligned}\text{त्रिभुज का क्षेत्रफल} &= \frac{1}{2} (\text{आधार}) \times \text{सामान्य कोटी} \\ &= \frac{1}{2} (\text{base}) \times \text{common altitude}.\end{aligned}$$

स्पष्ट है कि उक्त श्लोक में आर्यभट्ट ने क्षेत्रफल का ऐसा सूत्र दिया है जो किसी भी त्रिभुज पर लागू हो, न कि केवल समद्विबाहु त्रिभुज पर ही। यों भी यह बात अनहोनी सी लगती है कि जिसने किसी भी चतुर्भुज के क्षेत्रफल का सूत्र निकाल लिया हो, वह त्रिभुजों में से केवल एक विशेष प्रकार के त्रिभुजों के ही क्षेत्रफल का सूत्र निकाल पाया हो।

(ख) π का मान

आर्यभटीय का १० वाँ श्लोक इस प्रकार है—

चतुरविकं शतमष्टगुणं द्वापश्चिष्टस्तथा सहस्रणाम् ।

अयुतद्वय विष्कम्भस्यासन्नो वृत्तपरिणाहः ॥१०॥

पहली पंक्ति का अर्थ—सौ में चार जोड़कर ८ से गुणा करो। गुणनफल में वासठ हजार जोड़ दो।

आसन्न = निकट (Approximate)

वृत्त = Circle

परिणाह = परिधि (Circumference)

विष्कम्भ = व्यास (Diameter)

अयुत = दस सहस्र, दस हजार

श्लोक का भावार्थ—

जिस वृत्त का व्यास २०००.० हो, उसकी परिधि का आसन्न मान = ६२८३२

$$\begin{aligned}\text{इस प्रकार } \pi \text{ का आमत मान} &= \frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}} = \frac{62832}{20000} \\ &= 3.1416\end{aligned}$$

— का यह मान चौथे दशमलव स्थान तक ठीक है। और आर्यभट्ट ने इसका भी 'आमत मान' कहा है, 'यथार्थ मान' नहीं कहा। इसका अर्थ यह हुआ कि आर्यभट्ट को इस बात का भान था कि — का इसमें भी सूक्ष्म मान (Close value) निकाला जा सकता है।

(ग) वृत्त का क्षेत्रफल

आर्यभटीय के ७ वे श्लोक की पहली पंक्ति—

नमपरिणाहस्यार्धे विष्कम्भाधेहतमेव वृत्तफलम् ।

$$\begin{aligned}\text{वृत्त का क्षेत्रफल} &= \frac{1}{2} (\text{परिणाह}) \times \frac{1}{2} (\text{व्यास}) \\ &= \frac{1}{2} (2 \times \text{त्रिज्या}) \times \text{त्रिज्या} \\ &= r^2 (\text{त्रिज्या})^2\end{aligned}$$

ब्रह्मगुप्त

ब्रह्मगुप्त के अष्टगणितीय और बीजगणितीय कार्य का उल्लेख हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। ब्रह्मगुप्त का ज्यामितीय कार्य बहुत महत्वपूर्ण रहा है। उसने त्रिभुजा, आयता, समलम्बा, वगैरे इत्यादि पर तो सून दिये ही हैं। उसका सबसे गुर्वर्धन कार्य घूर्तीय चतुर्भुजों (Cyclic quadrilaterals) और ठोसों पर हुआ है। हम यहाँ उसके ज्यामितीय कार्य के कुछ नमने देते हैं—

(क) घूर्तीय चतुर्भुज का क्षेत्रफल

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त के २१वें श्लोक की दूसरी पंक्ति इस प्रकार है—

भुजयागार्धचतुष्टयमुज्जानमानान् पद सूक्ष्मम् ॥

मान लीजिए कि चतुर्भुज की भुजाएँ क, ख, ग, घ हैं और अ उसका अर्ध परिमेत्र (Semi perimeter) है। अर्थात्

$$2a = क + ख + ग + घ।$$

ता आधुनिक गणितीय भाषा में उपरिनिम्न सूत्र इस प्रकार लिखा जायगा—

$$\text{क्षेत्रफल} = \frac{1}{4} \{ (अ - क) (अ - ख) (अ - ग) (अ - घ) \}$$

(ग) ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त में २८ वां श्लोक—

गोर्धनमृज्जधानैवामृज्जगाम्ब्यान्वनाग्निन गृहयेत् ।

गोर्धनं मृज्जप्रतिमृज्जवद्वतोः कर्णो पदे विषमं ॥२८॥

यदि किसी वृत्तीय चतुर्भुज के विषम भुजा, २८ वां वां ज्यामितिमय गृह के अनुसार

$$y = \sqrt{\frac{\text{कध} \times \text{गम}}{\text{कग} \times \text{गध}}} (\text{कग} + \text{गध})$$

$$r = \sqrt{\frac{\text{कग} \times \text{गध}}{\text{कध} \times \text{गम}}} (\text{कग} + \text{गध})$$

यदि हम उन दोनों सूत्रों को गृह्य करे तो यह फल प्राप्त होगा—

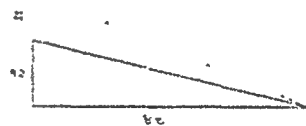
$$यर = कग + गध$$

इस साध्य को आजकल टोलेमी (Ptolemy) प्रमेय कहते हैं।

(ग) ब्रह्मगुप्त का एक रोचक ज्यामितीय प्रश्न इस प्रकार है जिसमें शूल्व प्रमेय का प्रयोग किया जाता है—

एक पहाड़ी की चोटी पर दो साधु रहते हैं। उनमें से एक को ऐसी मिट्टि प्राप्त हो चुकी है कि वह वायु में उड़ सकता है। वह पहाड़ी की चोटी से थोड़ा ऊपर उड़कर, फिर टेढ़ी दिशा में चलकर

पान के एक नगर में उतर जाता है। दूसरा पहाड़ी के नीचे उतर कर पैदल उसी नगर तक जाता है। दोनों की यात्राओं की लम्बाइयाँ बराबर होती हैं। यह बताओ कि पहला साधु ऊपर कितना ऊँचा उड़ता है और नगर पहाड़ी से कितनी दूर है।



(६) ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त के ४५ वें और ४६ वें श्लोक—

मुखतलयुतिदलगुणितं वेधगुणं व्यावहारिकं गणितम् ।

मुखतलगणितैक्यार्धं वेधगुणं स्याद्गणितमीत्रम् ॥४५॥

आत्रगणिताद्विशोध्य व्यवहारफलं भजेत् त्रिभिः शेषम् ।

लब्धं व्यवहारफले प्रक्षिप्य भवति फलं सूक्ष्मम् ॥४६॥

इन श्लोकों में ब्रह्मगुप्त ने सूचीस्तम्भ (Pyramid) के छिन्नक (Frustum) के आयतन के सूत्र दिये हैं।

मूल्युनि	=	ऊपरी छोर का क्षेत्रफल
तल्युनि	=	आधार का क्षेत्रफल
व्यावहारिक फल	=	Practical value
औश्रफल	=	Better value
सूक्ष्म फल	=	Close value, Correct value

इन दलोंको मे छिन्नक के आयतन के लिए तीन सूत्र दिये गये हैं—

$$१ \text{ व्यावहारिक मान वा} = \left(\frac{\sqrt{\text{क्ष}} + \sqrt{\text{क्षे}}}{२} \right)^2 \text{ ऊ,}$$

जिसमें क्ष, क्षे आधारों के क्षेत्रफल हैं और ऊ छिन्नक की ऊँचाई।

$$२ \text{ औन्न मान आ} = \frac{\text{क्ष} + \text{क्षे}}{२} \text{ ऊ।}$$

$$\begin{aligned} ३ \text{ सूक्ष्म मान} &= \frac{३}{४} (\text{आ} - \text{वा}) + \text{वा} = \frac{३}{४} (\text{आ} + २ \text{ वा}) \\ &= \frac{\text{ऊ}}{६} (\text{क्ष} + \text{क्षे}) + \frac{\text{ऊ}}{६} (\sqrt{\text{क्ष}} + \sqrt{\text{क्षे}})^2 \\ &= \frac{२}{३} \text{ ऊ} (\text{क्ष} + \text{क्षे} + \sqrt{\text{क्ष} \text{क्षे}}) \end{aligned}$$

आधुनिक गणित में भी सूचीस्तम्भ के छिन्नक के आयतन का यही सूत्र दिया जाता है।

महावीर

महावीर ने वृत्तीय चतुर्भुजों के वे सब सूत्र दिये हैं जो ब्रह्मगुप्त ने दिये थे। किन्तु उसकी शैली अधिक स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त उसने और भी बहुत सी आकृतियों का विवेचन किया है, जैसे वृत्त (Circle), अर्धवृत्त (Semi-circle), दीर्घवृत्त, (Ellipse), निम्नवृत्त (Concave-circular area), उन्नतवृत्त, (Convex-circular-area), कुक्क वृत्त, (Conchiform area), अन्तरचक्र-बालवृत्त, (Inner annulus), बहिर्चक्रबालवृत्त, (Outer-annulus) हस्तिदंत क्षेत्र इत्यादि।

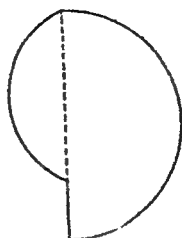
इसमें सन्देह नहीं कि महावीर का ज्यामितीय कार्य भी बहुत महत्वपूर्ण हुआ है। उसने कई ऐसी आकृतियों के क्षेत्रफलों के सूत्र निकाले हैं, जिनका विवेचन उससे पहले किसी अन्य हिन्दू गणितज्ञ ने नहीं किया था। हम उनमें से कुछ की आकृतियाँ यहाँ देते हैं—



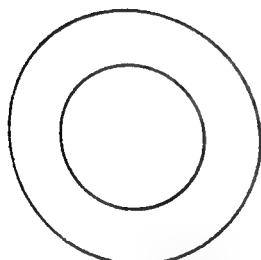
निम्नवृत्त



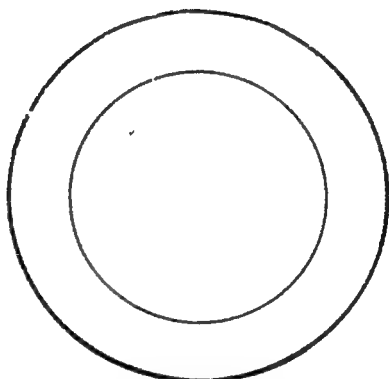
उन्नतवृत्त



कुंयक वृत्त



अन्तश्चक्रवालवृत्त



बहिश्चक्रवालवृत्त



हस्तिदन्त क्षेत्र

(यह नाम हमारा दिया हुआ है)

चित्र ६५—महावीर के कुछ ज्यामितीय क्षेत्रों की आकृतियाँ ।



यवाकार क्षेत्र



मुरजाकार क्षेत्र



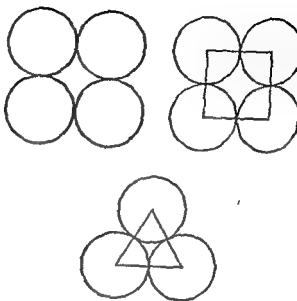
पणवाकार क्षेत्र



वज्राकार क्षेत्र

चित्र ६६—महावीर के कुछ ज्यामितीय क्षेत्रों की आकृतियाँ ।

इनके अतिरिक्त महावीर ने वृत्तों से घिरे हुए कई प्रकार के क्षेत्रों के क्षेत्रफल भी निकाले हैं, जैसे—



चित्र ६३—महावीर के कुछ ज्यामितीय क्षेत्रों की आकृतियाँ।

महावीर ने गोले के आयतन के लिए ये सूत्र दिये हैं—

$$\text{निर्बुट मान} = \frac{2}{3} \left(\frac{4}{3} \pi r^3 \right)$$

$$\text{गूटम मान} = \frac{2}{3} - \frac{2}{3} \left(\frac{4}{3} \pi r^3 \right)$$

मिठले सूत्र में - का मान $\frac{2}{3} \times \frac{4}{3}$ अर्थात् ३.०३३५ आता है।

अन्य देश

बगदाद के हाफे उल्-ल्यौद (७६३-८०९) का नाम कौन नहीं जानता ? ७२ वर्ष की अल्पावस्था में ही राजमर्द पर बैठ गया। इसका नाम समार के मश्रूफ ग़ज़ाज़ा में बहून आदम में दिया जाता है। ज़नज़ा में इसका नाम 'अन्फ' के से नायन के रूप में प्रसिद्ध है। हमने अतिरिक्त अरबी साहित्य में इसका नाम अर्न्त उल्-ल्यौद में मालूम है।

हाफे स्वयं एक विद्वान् था और विद्या का पारंगत भी था। हमने अपने दरबार में

घरानों में उसका आदान प्रदान चलता था। उसने गणित और ज्यामिति को बहुत प्रोत्साहन दिया। इसी की सलाहाना में यूक्लिड के ऐल्गोर्मेन्ड्स का अरबी में अनुवाद हुआ और इसी अनुवाद से यूरोप में यूक्लिड की विशेष प्रशस्ति हुई। और हान्स के राज्यकाल में बगदाद में फिर एक बार हिन्दू पाण्डित्य का गिनाना चमका।

हाकें उत्तरजीव के पुत्र अल्मामून का राज्यकाल (८०१-३३) भी विद्या-दृष्टि ने बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है। इसने भी ज्यामिति और गणित का प्रथम दिव्य उसके राज्यकाल में यूक्लिड का अनुवाद पूर्ण हो गया। उसने टॉलेमी के अल्माजस्त भी अनुवाद कराया। इसके अतिरिक्त उसने बगदाद में एक संस्था 'ज्ञान केन्द्र' स्थापित की जिसमें एक पुस्तकालय और एक वेधशाला की भी व्यवस्था थी।

९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बगदाद में अल्माहानी नामक एक प्रसिद्ध ज्यामितिज्ञ हुआ है। इसने घन समीकरणों पर कुछ कार्य किया है। उसमें मौलिकता तो कि नहीं थी, किन्तु इसने अपनी कृतियों से जनता का ध्यान इस समीकरण

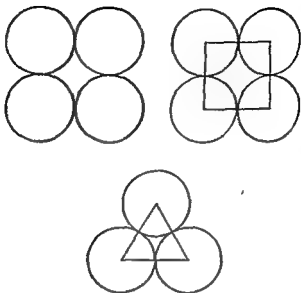
$$य' + क' ख = ग य'$$

पर इतना आकृष्ट किया कि लोग इसे 'अल्माहानी समीकरण' ही कहने लगे। इ अतिरिक्त इसने यूक्लिड के कुछ अंशों पर टीका लिखी है जो प्रसिद्ध हो गयी है। इस एक टीका आर्किमिडीज की गोले और बेलन सम्बन्धी कृतियों पर भी है।

बगदाद में एक हकीम तावित इब्न कोरा (८२६-९०१) हुआ है जिसने ग और दर्शन के अध्ययन को बहुत प्रोत्साहन दिया। इसने ज्यामिति, ज्यामिति, फार्म ज्यामिति आदि पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। यूक्लिड और टॉलेमी की पुस्तकों के अनुवाद इससे पहले हो चुके थे, इसने उनका परिष्करण किया। इसका नाम इस विशेष रूप से प्रसिद्ध हुआ कि इसने ज्यामितीय प्रश्नों पर बीजगणित का प्रयोग किया।

जिस काल का हम उल्लेख कर रहे हैं उसके अन्तिम चरण में बगदाद में गणितज्ञ हुए हैं, जिन्होंने बीजगणित, ज्यामिति और ज्यामिति का अध्ययन किया इन लोगों ने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। इसके अतिरिक्त उसी काल में बहुत सी यूक्लिड की पुस्तकों का अरबी में अनुवाद भी हुआ है। एक लेखक अलहज्जाज (लगभग ८३५) ने यूक्लिड और टॉलेमी का अनुवाद किया है। इसके अतिरिक्त एक लेखक इसहाक हुआ है, जिसने यूक्लिड, आर्किमिडीज और मैनीलॉज के ग्रन्थों का अनुवाद किया है।

यॉर्क का अल्कुइन (Alcuin of York) (७३५-८०४) एक बड़ा फ्रांसीसी पादरी हुआ है। यॉर्क में शिक्षा पाकर यह प्राचीन हस्तलिपियों की खोज में रोम



चित्र ६७—महावीर के कुछ ज्यामितीय क्षेत्रों की आकृतियाँ।

महावीर ने गोलों के आयतन के लिए ये सूत्र दिये हैं—

$$\text{निबट मान} = \frac{2}{3} \left(\frac{4}{3} \text{ व्यास} \right)^3$$

$$\text{मूढम मान} = \frac{2}{3} \times \frac{2}{3} \left(\frac{4}{3} \text{ व्यास} \right)^3$$

पिछले सूत्र से r का मान $\frac{2}{3} \times \frac{2}{3}$ अर्थात् $\frac{4}{9}$ आता है।

अन्य देश

बगदाद के हारून उत्तरसीद (७६३-८०९) का नाम कौन नहीं जानता? यह २२ वर्ष की अल्पावस्था में ही राजगद्दी पर बैठ गया। इसका नाम संसार के ग्वा-प्रिय राजाओं में बहुत आदर में लिया जाता है। जनता में इसका नाम 'अल्फ़ लैक' के नायक के रूप में प्रसिद्ध है। इसके अन्रिक्त अरबी साहित्य में इसका नाम अतगिनन उपाख्यानो में सम्बद्ध है।

हारून स्वयं एक विद्वान् था और विद्या का पारखो भी था। इसने अपने दरबार में कवियों, वैद्यावरणों, गगीनशों आदि को प्रथम दिया। पश्चिम के विद्वानों और राज

इसने अपने मित्रों और राजा इत्यादि को सैकड़ों पत्र लिखे हैं जिनमें से ३११ प्राप्य है। इन पत्रों से उस समय के शैक्षिक और सामाजिक वातावरण के विषय में बड़ी जानकारी प्राप्त होती है।

अल्कुइन ने अंकगणित, ज्यामिति और ज्योतिष पर अपनी लेखनी उठायी है, किन्तु इसका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पहेलियों का संग्रह' है। कुछ इतिहासज्ञों का सन्देह है कि यह संग्रह वास्तव में अल्कुइन ने नहीं लिखा था, वरन् एक भिक्षु अयमर (Aymar) ने लिखा था जिसका जीवन काल ९८८-१०३० था। यह भी सम्भव है कि उक्त संग्रह को बहुत सी सामग्री ईसप की कहानियों (Aesop's Fables) से ली गयी हो जो कदाचित् ७ वीं शताब्दी ई० पू० में लिखी गयी थीं। इस बात पर ठीक ठीक निर्णय देना कठिन है, किन्तु इन पहेलियों का उद्गम चाहे जो भी हो, इसमें संशय नहीं कि इन्होंने गणितीय इतिहासज्ञों की लेखनी को सैकड़ों वर्ष तक प्रभावित किया है। हम इन पहेलियों के दो एक नमूने यहाँ देते हैं—

(१) एक कुत्ता एक खरगोश का पीछा करता है। खरगोश १५० फुट आगे से चलता है और प्रत्येक छलाँग में जब कुत्ता ९ फुट कूदता है, खरगोश ७ फुट ही कूद पाता है। कुत्ता कितनी छलाँगों में खरगोश को पकड़ लेगा ?

(२) एक भेड़िये, एक बकरी और तरकारी की एक टोकरी को नाव द्वारा नदी के दूसरी पार पहुँचाना है। नाव में खेवट के अतिरिक्त तीनों में से एक को ही ले जाने का स्थान है। कितने फेरों में उक्त तीनों को इस प्रकार पार पहुँचाया जा सकता है कि भेड़िया बकरी को न खा पाये और बकरी तरकारी को ?

यह पिछला प्रश्न तो जगत प्रसिद्ध हो गया है और भिन्न भिन्न रूपों में, इसी देश की अनगिनत पुस्तकों में समाविष्ट हो चुका है।

(५) १००० ई० से १५०० ई० तक

यूरोप

यूरोप के अनेक गणितज्ञों का उल्लेख हम पिछले अध्यायों में कर चुके हैं। यहाँ हम केवल उन गणितज्ञों की जीवनी देंगे जिन्होंने ज्यामिति में प्रचुर कार्य किया है। ११वीं शताब्दी में एक यूनानी गणितज्ञ पैसलस (Psellus) हुआ है जिसका जीवन काल १०२०-१११० था। यह कुस्तुन्तुनिया में दर्शन का प्राध्यापक था और इसकी ख्याति इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि उस समय के शासकों ने इसका नाम 'दार्शनिक सम्राट' रख दिया था। इसके ग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध इसलिए हुए कि इसकी भाषा बहुत सरल होती

किया है और दूसरी पुस्तक में भविष्यवाणी की है कि १७३४ ई० में संसार का अन्त हो जायगा। इसकी अन्य पुस्तकें दर्शन शास्त्र और तिथिपत्र पर हैं।

पाठक, तनिक धैर्य रखें, पीरो द फ्रॅन्सेस्की (Piero de Franceschi) (लगभग १४१८-९२) का नाम छूटा जा रहा है। यह इटली का एक चित्रकार था। वचन से ही इसे गणित का शौक था। इसके चित्रों में सौन्दर्य और ज्यामिति का बड़ा विलक्षण सम्मिश्रण पाया जाता है। जीवन के अन्तिम दिन इसने अपने जन्मस्थान अम्ब्रिया (Umbria) में बिताये और उन्हीं दिनों दो गणितीय ग्रन्थ लिखे—एक दृष्टिसाम्य (Perspective) पर, दूसरा सम ठोसों पर। पॅसियोली, जिसका उल्लेख हम अंकगणित के अध्याय में कर चुके हैं, इसका शिष्य था। एक लोकोक्ति है कि यह ६० वर्ष की अवस्था में नेत्रहीन हो गया था।

रीजियोमॉण्टेनस (Regiomontanus) एक जर्मन ज्यौतिषी हुआ है जिसका मौलिक नाम जॉन मूलर (Johann Müller) था। इस ने अपने गुरु जॉर्ज पुरबर्ग (George Purbach) के साथ ज्यौतिष के सुधार का बीड़ा उठाया और ज्यौतिष्क सारणियों की त्रुटियाँ इकट्ठी कीं। इसने अपने जीवन (१४३६-१४७६) में अनेक पुस्तकें लिखी हैं जिनके विषय त्रिकोणमिति, ज्यौतिष और फलित-ज्यौतिष थे। त्रिकोणमिति पर इसकी पुस्तक इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि वह पहली पुस्तक है जिसमें केवल उक्त विषय का ही प्रतिपादन किया गया है। इसके अतिरिक्त इसने यूक्लिड पर भी एक भाष्य लिखा है। यह कुछ दिनों नूरैमबर्ग (Nuremberg) में रहा था जहाँ इसने एक वेधशाला स्थापित की। इसने विचित्र प्रकार के कुछ उपकरण भी तैयार किये थे। इसने लोहे की एक मक्खी बनायी थी जो सारे कमरे में चक्कर काट कर इसके हाथ में लौट आती थी। सम्राट मैक्सिमिलियन (Maximillian) के समय में इसने एक ऐसा गुरुड़ बनाया कि जब सम्राट नूरैमबर्ग नगर में घुसते थे, वह उनके आगे आगे उड़ता चलाता था।

भारत

भास्कर

भास्कर के अंकगणितीय और बीजगणितीय कार्य का दिग्दर्शन हम पिछले अध्यायों में करा चुके हैं। आचार्य महोदय ने ज्यामिति में भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इनकी 'लीलावती' के 'क्षेत्र व्यवहार' नामक अध्याय में निम्नलिखित प्रकरणों का समावेश है—

(क) समकोण त्रिभुजों पर प्रश्न ।

(ख) त्रिभुजों और चतुर्भुजों के क्षेत्रफल ।

थी। १६वीं शताब्दी में ही इसकी गणितीय कृतियों के तेरह संस्करण निकल गये। वही है कि इसने यूक्लिड पर भी एक भाष्य लिखा था, किन्तु यह कथन असन्दिग्ध नहीं है।

कैम्पेनस (Campanus) मिलन (Milan) के पास के एक नगर नोवारा (Novara) का निवासी था। इसका जीवन काल १२६० ई० के आस पास था। इसे ज्यामिति में वास्तविक रुचि थी। इसने कई प्राचीन समस्याओं का विवेचन किया, जैसे 'कोण का समविभाजन, वनक काट (Golden Section) की अनुमेयता, आदि। इसकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक इसका यूक्लिड का अनुवाद था। इसकी जीवनी बहुत कुछ अज्ञात है। केवल इतना पता है कि यह गिरजा का कोई निम्न अधिकारी था।

१३ वीं शताब्दी का एक जर्मन गणितज्ञ उल्लेखनीय है—जॉर्डानस नेमोरेसिस (Jordanus Nemorarius)। इसने एक पुस्तक अकगणित पर, एक बीजगणित पर, एक ज्यामिति पर और एक ज्योतिष पर लिखी। इसके अकगणित में यह विशेषज्ञ थी कि इसने उसमें सख्याओं का निरूपण वर्णों द्वारा किया है। बीजगणितीय पुस्तक में इसने एकघात और द्विघात समीकरणों पर अनेक प्रश्न दिये हैं। इसकी ज्यामिति चार भागों में विभक्त है और उसका मुख्य विषय त्रिभुज है जिस पर इसने ७२ माप दिये हैं। उक्त पुस्तक में इसने त्रिभुज के गुणत्व केन्द्र का भी विवेचन किया है।

१४ वीं शताब्दी में एक अनामक (Anonymous) हस्तलिपि लिखी गयी जिसका विषय 'ऊँचाइयाँ और दूरियाँ' था। ग्रन्थ बहुत ही रोचक ढंग में लिखा गया है और उसमें दर्शाया गया है कि डण्डे और परकार की सहायता से किम प्रकार छाया मापन और सर्वेक्षण कार्य किया जा सकता है। हस्तलिपि वृत्तानी सप्रहालय में सुरक्षित है और उसका पूरा पाठ इस अमिदेश में मिलेगा—

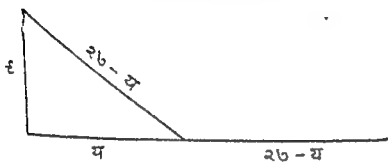
Halliwel Rara Mathematica 56

एक जर्मन गणितज्ञ जुगिंगेन का कॉन्ट (Conrad of Jungingen) हुआ है जिसका जीवन काल १४०० के आस पास था। सम्भवतः इसने ज्यामिति पर एक ग्रन्थ लिखा है जिसके पाँच भाग हैं। पहले दो भागों में त्रिभुज का मापन और छठे भाग में चतुर्भुज और बहुभुज का विवेचन किया गया है।

निकोलस कुसानस (Nicholas Cusanus) कुसा (Cusa) के एक महोदय का पुत्र था। इसने पादुआ (Padua) में जानून की और कोलोन (Cologne) में धर्मशास्त्र की शिक्षा पायी। इसका स्थिति काल १४०१-१४६४ था। इसने गणित पर कई पुस्तकें लिखी हैं। एक पुस्तक में इसने वृत्त के क्षेत्रफल का विवेचन

(ii) श्लोक ६८ का उदाहरण—

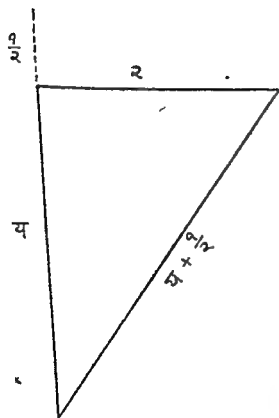
अस्तिस्तम्भतले विलं तदुपरि क्रीडागिखण्डोस्थितः
स्तम्भे हस्तनवोच्छ्रिते त्रिगुणितस्तम्भप्रमाणान्तरे ।
दृष्ट्वाहि विलमात्रजन्तमपतत्तिर्यक्स तस्योपरि
क्षिप्रं ब्रूहि तयोर्विलात्कतिमितैः साम्येन गत्योर्युतिः ॥



भावार्थ—१ हाथ ऊँचे एक स्तम्भ पर एक मोर बैठा है। स्तम्भ के नीचे एक साँप का विल है। साँप २७ हाथ की दूरी से विल की ओर आ रहा है। उसे देखकर मोर कर्ण की दिशा में झपट पड़ा। मोर और साँप को बराबर

बराबर चलना पड़ा। बताओ कि दोनों की भेंट विल से कितनी दूरी पर हुई।

(iii) ६९ वें श्लोक का उदाहरण—



चक्रक्रीञ्चाकुलितसलिले क्वापि दृष्टं तडागे
तोयादूर्ध्व कमलकलिकाग्रं वितस्तिप्रमाणम् ।
मन्दमन्दं चलितमनिलेनाहतं हस्तयुग्मे
तस्मिन्मग्नं गणक कथय क्षिप्रमम्भः प्रमाणम् ॥




भावार्थ—किसी ताल में कमल की कलिका का ऊपरी सिरा जल से $\frac{1}{2}$ हाथ ऊँचा था। वह पवन से झुकते झुकते जहाँ दिखाई पड़ता था, वहाँ से २ हाथ आगे जाकर डूब गया। बताओ कि ताल का जल कितना गहरा है।

(iv) ७१ वें श्लोक का उदाहरण—

वृक्षाद्वस्तशतोच्छ्रयाच्छतयुगे वापीं कपिः कोऽप्यगा-
दुत्तीर्याथ परो द्रुतं श्रुतिपयात्प्रोड्ढीय किञ्चिद्द्रुमात् ।
जातैवं समता तयोर्यदि गताबुड्डीनमानं किय-
द्विद्वंश्चेत्नुपरिश्रमोऽस्ति गणिते क्षिप्रं तदाचक्ष्व मे ॥

(ग) वृत्तों के क्षेत्रफल और π का मान ।

(घ) गोले के तल और आयतन ।

भुजाय धेनुर्वर ॥ जन्म्या कृद्धो सस्य पिता धनेस्मिन् पूर्व कृतं पदं हतन पि ॥ ५५ ॥ जय
द्वय ॥   इति क्षेत्रफलं हतं भुजकोटयस्मात् महती च स भुजो
प्रकृत्य संज्ञा दर्शनी ॥  अत्र क्षेत्रफलं हतं भुजकोटयस्मात् महती च स भुजो
नानीति ॥ ५३ ॥ ५५ ॥ तत्रैव ज्ञात्वा द्वयं स्य तरेण
३५२० अत्र दो वैकर्मिकं कर्णं ५५ वादो को
अनयो वैकर्मिकं ५३ एव तरेण
अनुमत्तं पश्य संप्र कृत्वा व्यत्यस्ये तदा ज्ञा
५५ द्वितीयं अत्रणं ग्याते ॥ उदाहरणं ॥ क्षेत्रे पञ्च भुजं पश्चिमि भूमि तस्मै दुर्गत्तं भु
जं बाहुरेता कुनिभि शरणि धृति नि सुत्यो नवत्रयं ॥ एकमवा एयमे समानि धृति
नन्यायेत द्वयको तु व्यो गो धृति नि स्वपातिन पर्म योगि च बोधं बधो ॥ ५५ ॥ तत्रैव

चित्र ६९—लीलावती का एक पृष्ठ ।

[गिन पट बखनी की अनुज्ञा से, डेविड यूजीन स्मिथ कृत 'हिंदी ऑफ मैथिलिजिन से प्रत्युत्पादिन ।]

भास्कर ने समकोण त्रिभुजों पर बहुत से रोचक प्रश्न दिये हैं । यहाँ हम कुछ नमूने देते हैं—

(१) लीलावती दशक ६७ का उदाहरण—

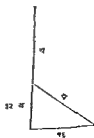
यदि ममभुवि वेणुद्वित्रिपाणिप्रमाणो

गणक पवनवेगादेतदेसो म मम ।

भुवि नृपमित हन्तेष्वङ्गलग्न तदग्र

कथय कनिषु मूलादेय मम करेषु ॥

भावार्थ—अलसम भूमि में ३२ हाथ लम्बा एक मीषा बाँस खड़ा है । वह वायु के वेग से टूट पड़ा और उसका ऊपरी भाग अपने मूल से १६ हाथ की दूरी पर जा लगा । तो बताओ कि बाँस धनने मूल से कितनी ऊँचाई पर टूटा था, और उसका टूटे हुए खण्ड की लम्बाई क्या है ।



भास्कराचार्य Diagonal को 'कर्ण' कहते हैं किन्तु आधुनिक अट्टावली के अनुसार हमने उसे 'विकर्ण' कहा है।

(vi) π के मान के विषय में भास्कर का वह श्लोक पठनीय है—

व्यासे भनन्दान्ति (३९२७) हते विभक्तते

गवाणमूर्यैः (१२५०) परिधिन्तु सूक्ष्मः।

द्वाविंशति (२२) घ्ने विहतेऽयं शैलैः (७)

स्यलोज्यवा स्याद्वयवहारयोग्यः ॥९८॥

इस श्लोक के अनुसार

$$\pi \text{ का स्थूल मान (Rough value)} = \frac{32}{7}$$

$$\text{और सूक्ष्म मान (Close value)} = \frac{3927}{1250}$$

(vii) भास्कर ने एक ही श्लोक में वृत्त के क्षेत्रफल, गोले का तल और गोले का आयतन दिया है—

वृत्तक्षेत्रे परिधिगुणितव्यासपादः फलं—

तत्क्षुण्णं वैदैरुपरि परितः कन्दुकस्येव जालम् ।

गोलस्यैवं तदपि च फलं पृष्ठजं व्यासनिघ्नं

पङ्क्तिर्भवति नियतं गोलगर्भे घनास्यम् ॥९९॥

भावार्य—वृत्त का क्षेत्रफल = परिधि $\times \frac{1}{2}$ (व्यास) = π (त्रिज्या)^२,

गोले का तल = (वृहत् वृत्त का क्षेत्रफल) $\times 4$

$$= 4\pi \text{ (त्रिज्या)}^2,$$

गोले का आयतन = $\frac{1}{6}$ (गोले का तल) \times (व्यास)

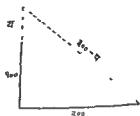
$$= \frac{1}{6} \times 4\pi \text{ (त्रिज्या)}^2 \times 2 \text{ त्रिज्या} = \frac{4}{3} \pi \text{ (त्रिज्या)}^3$$

(६) सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियाँ

सोलहवीं शताब्दी का यूरोप

इटली और सिसिली—सोलहवीं शताब्दी के गणितज्ञों में लियो नाडो डा विन्सी (Leonardo da Vinci) (१४५२-१५१९) का नाम प्रमुख रूप से आता

भावार्थ—१०० हाथ ऊँचा एक वृक्ष है जिस पर दो बन्दर बैठे हुए हैं। वृक्ष की जड़ से २०० हाथ पर एक वापी है। एक बन्दर वृक्ष से उतर कर वापी को गया। दूसरा बन्दर वृक्ष से कुछ ऊपर उछल कर वृक्ष की दिशा में वापी पर कूद कर गिरा। यदि दोनों बन्दरों को समान जाना पड़ा तो बताओ कि दूसरा बन्दर वृक्ष में कितना ऊँचा उछला था।



ठीक ऐसा ही प्रश्न ब्रह्मगुप्त ने भी दिया था। देखिए पृ० ३९

(v) एक स्थान पर भास्कराचार्य कहते हैं कि किसी चतुर्भुज के निर्धारण के लिए चारों भुजाओं के अतिरिक्त एक विकर्ण अथवा एक लम्ब का जानना आवश्यक है। इसे उन्हीं के शब्दों में सुनिए—

चतुर्भुजस्यानियतो द्वि कर्णो
 कथं ततोऽस्मिन्नियतं फलं स्यात् ।
 प्रसाधितो तच्छ्रवणो यदायं
 स्वकल्पितो तावितरत्र न स्त ॥७८॥
 तेष्वेव बाहुष्वपरौ च कर्णा-
 वनेकघात क्षेत्रफलं ततश्च ।
 लम्बयो कर्णयोर्वैकमनिदिश्यापरान्कथम् ।
 पुच्छत्यनियतत्वेऽपि नियतं चापि तत्फलम् ॥
 स प्रच्छक पिशाचो वा बकना वा नितरा तत ।
 यो न वेत्ति चतुर्बाही क्षेत्रे ह्यनियता स्थितिम् ॥

भावार्थ—विना विकर्ण के जाने चतुर्भुज अनियत रहता है। एक ही क्षेत्र में अनेक विकर्ण हो सकते हैं। यदि हम चार भुजाओं की लम्बाइयाँ स्थिर रखें और आमने सामने के दो कोणा का लीचें। तो एक विकर्ण बढ़ेगा, दूसरा घटेगा, किन्तु भुजाओं के परिमाण में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। अब ऐसी स्थिति में विकर्ण कई प्रकार के हो सकते हैं। इसलिए यदि चतुर्भुज के क्षेत्रफल का प्रश्न हो तो एक विकर्ण अथवा एक लम्ब का देना आवश्यक है।

विकर्ण अथवा लम्ब दिये बिना जो कोई चतुर्भुज का क्षेत्रफल पूछता है, वह पागल है। और जो ऐसे प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करता है, वह महापिशाच है।

इसका पिता कोयला जलाकर निर्वाह किया करता था। रैमुस ने एक कॉलिज में निम्न कोटि की नीकरी कर ली। दिन भर काम किया करता था, रात में अध्ययन। उस समय तक अरस्तू सम्प्रदाय के प्रति विद्रोह आरम्भ हो चुका था और उक्त आन्दोलन में रैमुस नेता बन गया। इन्होंने १५३६ में 'मास्टर' की उपाधि प्राप्त की और तभी से इस मत का प्रतिपादन आरम्भ कर दिया कि "जो कुछ अरस्तू ने कहा है, सब मिथ्या है।" एक बार इस पर यह अभियोग लगाया गया कि यह धार्मिक सिद्धान्तों के विरुद्ध प्रचार कर रहा है। सात वर्ष पश्चात् उक्त अभियोग से इसे छुटकारा मिला और यह एक कॉलिज में प्राध्यापक नियुक्त हो गया। १५६८ में इसे अपने धार्मिक विचारों के कारण फ्रांस छोड़कर भागना पड़ा। १५७२ में यह फ्रांस लौट कर आया और उसी वर्ष सेण्ट बार्थोलोम्यू (St. Bartholomew) के हत्याकाण्ड में मारा गया।

रैमुस एक बहुत ही सफल वक्ता था और गणित में इसकी विशेष रुचि थी। इसने अंकगणित, चाक्षुषी और ज्यामिति पर पुस्तकें लिखी हैं और यूक्लिड का सम्पादन किया है।

जर्मनी—अल्ब्रेख्ट ड्यूरर (Albrecht Dürer) (१४७१-१५२८) एक जर्मन चित्रकार था। इसके पिताजी के १८ बच्चे हुए जिनमें से इसकी संख्या दूसरी थी। अल्ब्रेख्ट अपने पिता का सबसे प्रिय पुत्र था। पिता ने इसे १५ वर्ष की अवस्था में ही नगर के एक प्रसिद्ध चित्रकार के पास बिठा दिया था। यह केवल एक बढ़िया चित्रकार ही नहीं था। इसने उत्कीर्ण (Engraving) और ज्यामिति में भी विशेष रुचि दिखायी है। इसने ज्यामिति, गढ़वन्दी, मानवी अनुपात आदि पर कई पुस्तकें लिखी हैं।

लूडोल्फ़ वॉन स्यूल्लेन (Ludolph Van Ceulen) (१५४०-१६१०) जर्मनी का एक गणितज्ञ था जिसका अविकांश समय हॉलैण्ड में बीता था। यह १६०० में लैंडैन में सैनिक इंजीनियरी का प्राध्यापक हो गया। यून तो इसने अंकगणित और ज्यामिति पर भी एक ग्रन्थ लिखा, किन्तु इसकी विशेष प्रशस्ति इस बात से हुई कि इसने π का मान ३५ दशमलव स्थानों तक निकाला। उक्त संख्या का महत्त्व इसी से प्रत्यक्ष है कि यही संख्या स्यूल्लेन की कब्र पर खोदी गयी है। बाद को स्यूल्लेन के कार्य से प्रोत्साहित होकर स्नेलियस (Snellius), हाइगेंस (Huygens) आदि ने π का मान और भी आगे तक निकाला। इस प्रकार π का मान ५०० दशमलव स्थानों तक निकाल लिया गया है।

है। यह केवल गणितज्ञ ही नहीं था। इसकी प्रतिमा बहुमुखी थी। यह एक बहुत ही सफल चित्रकार, मूर्तिकार और स्थापत्य-कलाकार था। इसने चित्रकारी की शिक्षा वैरोचियो (Verocchio) से प्राप्त की थी जो इन कलाओं का मर्मज्ञ और एक बहुत सफल शिक्षक था। लियोनार्डो के चित्रों की इटली भर में धूम मच गयी थी। इन व्यावहारिक कलाओं के अतिरिक्त इसने यान्त्रिकी, चाक्षुषी और दृष्टिमात्र जैम गणितीय विषयों में भी असाधारण प्रतिभा दिखायी थी।

सन् १४८४-८५ में मिलन में रोग फैले और सैकड़ों घर नष्ट हो गये। मिलन का नये सिरे से स्वास्थ्यकर ढंग से बसाने के लिए लियोनार्डो ने एक प्रतिमान (Model) तैयार किया। इसे तैयार करने में इसे कई वर्ष लगे। इसी बीच में यह कल्पियों में ज्यामितीय गवेषणाओं के फल लिखना जाता था। ज्यामिति में इसकी विशेष रुचि बना और उस बहुत-सा के निर्माण में थी। भौतिकी के क्षेत्र में तो यह चाक्षुषी के निर्माताओं में गिना जाता है। इस पर यह कहावत लागू है कि "इसने जिस वस्तु पर हाथ रख दिया, उसे सोना बना दिया।" ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्ति मरार में गिने घने ही हुआ करते हैं।

फ्रैन्सेस्को माँरोलिका (Francesco Maurolico) (१४९४-१५७५) सिसिली का निवासी था। यह कुछ समय मैसेसीना (Messina) में गणित का प्राध्यापक भी रहा। इसने गणित पर बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं। इसमें ऐंपोलोनिनस के ग्रन्थ के भाग १-४ का अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त आर्किमिडीज पर एक पुस्तक लिखी और यूक्लिड के फैनोमैना (Phenomena) का अनुवाद किया। १५२१ में इसने एक पुस्तक चाक्षुषी पर लिखी जिसमें इस बात का विवेचन किया कि छाटे छिद्रों में जाने से प्रकाश किरणों पर क्या प्रक्रिया होती है।

कटालडी (Cataldi) बोल्डोना का निवासी था। इसका जीवन काल १५४८-१६२६ था। यह फ्लोरेंस (Florence) में प्राध्यापक था और इसने गणितीय विषयों पर कतिपय ग्रन्थ लिखे हैं। इसने वितत भिन्न (Continued Fractions) पर बहुत परिश्रम किया है। १६१३ में इसने वितत भिन्न की विधि से सख्याओं के वर्ग मूल निकाला। इसके अतिरिक्त उक्त भिन्न के लिखने की आधुनिक प्रणाली का जन्मदाता भी यही था। इस ने घृत के क्षेत्रफल पर लेखनी उठायी और यूक्लिड के ६ भागों का सम्पादन भी किया।

फ्रांस—पेट्रस रामुस (Petrus Ramus) (१५१५-१५७२) फ्रांस का एक विचारक था। यह एक प्रतिष्ठित घराने में उत्पन्न हुआ था जो नियंत्रण हो गया था।

नेप पुस्तकें ज्योतिष और नौतरण (Navigation) पर हैं। इनका लॉटिन नाम नोनियस (Nonius) था। इनने एक उपकरण तैयार किया था जिससे छोटे कोण नापे जा सकते थे। उक्त उपकरण का नाम भी नोनियस पड़ गया है। इसके अतिरिक्त इसने प्राचीन पुर्तगाली ग्रन्थों का एक विवरण दिया जो प्रसिद्ध हो गया है।

हम ऊपर देख चुके हैं कि सोलहवीं शताब्दी में गणित के क्षेत्र में इटली अग्रणी रहा है। सत्रहवीं शताब्दी में इटली की माननिक शक्ति कुछ घटी अवश्य थी, किन्तु फिर भी उसकी गणितीय प्रतिभा का संबंधा हान नहीं हुआ था। पिस्ता, जिसने लियोनार्डो जैसी प्रतिभा को जन्म दिया था, अब एक समुद्र-पत्तन (Sea-Port) नहीं रह गया था और वेनिज की सोमा भी दिन पर दिन घटती जा रही थी। तिस पर भी सत्रहवीं शताब्दी में इटली में कई उच्च कोटि के गणितज्ञ हुए हैं।

इटली—बोनावेंचुरा कैवेलियरी (Bonaventura Cavalieri) (१५९८-१६४७) का जन्म मिलन में हुआ था। अल्पावस्था में ही यह एक धर्म प्रचारक हो गया और यूक्लिड का अध्ययन करने लगा। १६२९ में वह बोलोना में प्राध्यापक हो गया और मृत्यु तक उसी पद पर रहा। १६३५ में इसने ज्यामिति पर एक ग्रन्थ लिखा जिसमें 'अविभाज्यों के सिद्धान्त' (Principle of Indivisibles) का प्रतिपादन किया। उक्त सिद्धान्त का सार यह है कि प्रत्येक रेखा में अनन्त बिन्दु होते हैं, प्रत्येक समतल में अनन्त रेखाएँ होती हैं और प्रत्येक ठोस अनन्त समतलों से बना होता है। उक्त सिद्धान्त बहुत सन्तोषजनक रूप में नहीं दिया गया था। गुल्डिन (Guldin) ने उसकी आलोचना की। उक्त आलोचना के उत्तर में कैवेलियरी ने एक अन्य पुस्तक लिखी जिसमें उसी सिद्धान्त को सन्तोषजनक रूप दे दिया गया था। उक्त पुस्तक में ही परिक्रमण ठोसों सम्बन्धी उस प्रमेय की परुप उपपत्ति दी गयी थी जो आज 'गुल्डिन प्रमेय' के नाम से प्रसिद्ध है। उक्त प्रमेय का उल्लेख पॅपस की कृतियों में भी आ चुका था।

कैवेलियरी ने अपने 'अविभाज्यों के सिद्धान्त' की विधि से कॅप्लर (Kepler) द्वारा प्रस्तावित ऐसे कई प्रश्नों को हल किया जो आजकल चलराशि कलन (Integral Calculus) की विधि से किये जाते हैं।

उपरिलिखित पुस्तकों के अतिरिक्त कैवेलियरी ने अन्य कई पुस्तकें त्रिकोणमिति, चाक्षुषी, ज्योतिष आदि पर लिखी हैं।

इवॅंजलिस्टा टॉरिसैलो (Evangelista Torricelli) (१६०८-१६४७) का जन्म फ्रेन्जा (Frenza) में हुआ था। अध्ययन के लिए यह रोम गया। वहाँ इसने

क्रिस्टोफर क्लेवियस (Christopher Clavius) (१५३७-१६१२) जर्मनी के उन विद्वानों में से था जिन्होंने गणित के अध्ययन को बहुत प्रोत्साहित किया। इसकी पाठ्य पुस्तकें अपने विषय-विन्यास और उपस्थापन के लिए प्रसिद्ध थीं। इसका अकगणित १५८३ में प्रकाशित हुआ और बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुआ। इसका बीजगणित १६०८ में प्रकाशित हुआ जिसने बीजगणित के क्षेत्र को व्यापक बनाने में सहायता दी। १५७४ में क्लेवियस ने यूक्लिड पर एक ग्रन्थ लिखा। उस समय तक यूक्लिड की 'समान्तरता स्वयसिद्धि' (Axiom of parallelism) के प्रति प्रतिक्रिया आरम्भ हो चुकी थी। क्लेवियस ने उसी स्वयसिद्धि की भी प्रमाणित करने का प्रयत्न किया। किन्तु इसका सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ ८०० पृष्ठ की एक पुस्तक थी जो इसने तिथिपत्र पर लिखी थी। उस समय तक यूप्यथी आदि के विषय में जिनकी भी जानकारी लोगों को थी, सबका समावेश उसी ग्रन्थ में था।

हॉल्लैंड—मेटियस (Metius) (लगभग १५४२-१६२०) हॉल्लैंड का निवासी था। इसका वास्तविक नाम ऐड्रियेन (Adriaen) था। सम्भव है इनका सम्बन्ध मेट्ज़ (Metz) से रहा हो जिसके कारण इसका नाम मेटियस पड़ गया हो। इसका एक पुत्र था जिसका नाम भी ऐड्रियेन ही था। उसका जीवन काल १५७१-१६३५ था। उसका विशेष कार्य ज्यामिति में है। पिता और पुत्र दोनों ने π का मान $\frac{355}{113}$ दिया है। उन्होंने इस असमता

$$3\frac{14}{106} < \pi < 3\frac{17}{120}$$

से आरम्भ किया। फिर दोनों अंशों १५ और १७ का मध्यक १६ और दोनों हलों का मध्यक ११३ प्राप्त किया, और इस प्रकार इन्हे उपर्युक्त संख्या $\frac{355}{113}$ मिल गयी जिसका निकट मान 3.1415929 है। उस समय के लिए इसे पर्याप्त सूक्ष्म मान माना जायगा, किन्तु कदाचित् उन दोनों को पता नहीं था कि चीन में इससे कई सताब्दी पहले π का यह निकट मान ज्ञात हो चुका था।

पुतगाल—पुतगाल का एक गणितज्ञ पेद्रो नूनैज (Pedro Nuñez) था जिसका म्रियति काल १४९२-१५७७ था। इस भूगोल का भी अच्छा ज्ञान था। इसने १५३७ में टोलेमी के कुछ भागों का अनुवाद किया। गणित पर तो इसने एक ही पुस्तक लिखी जिसमें अकगणित, बीजगणित और ज्यामिति तीनों का समावेश था। इसी

शेप पुस्तकें ज्योतिष और नौतरण (Navigation) पर हैं। इसका लैटिन नाम नोनियस (Nonius) था। इसने एक उपकरण तैयार किया था जिससे छोटे को नापे जा सकते थे। उक्त उपकरण का नाम भी नोनियस पड़ गया है। इसके अतिरिक्त इसने प्राचीन पुर्तगाली यन्त्रों का एक विवरण दिया जो प्रसिद्ध हो गया है।

हम ऊपर देख चुके हैं कि सोलहवीं शताब्दी में गणित के क्षेत्र में इटली अग्र रहा है। सत्रहवीं शताब्दी में इटली की मानसिक शक्ति कुछ घटी अवश्य थी, कि फिर भी उसकी गणितीय प्रतिभा का सर्वथा ह्रास नहीं हुआ था। पिप्पा, जिस लियोनार्डो जैसी प्रतिभा को जन्म दिया था, अब एक समुद्र-पत्तन (Sea-Port) नहीं रह गया था और वेनिस की शोभा भी दिन पर दिन घटती जा रही थी। तिसरी भी सत्रहवीं शताब्दी में इटली में कई उच्च कोटि के गणितज्ञ हुए हैं।

इटली—बोनावेंचुरा कैवलियरी (Bonaventura Cavalieri) (१५९८-१६४७) का जन्म मिलन में हुआ था। अल्पावस्था में ही यह एक धर्म प्रचारक हो गया और यूक्लिड का अध्ययन करने लगा। १६२९ में यह वोलोना में प्राध्यापक हो गया और मृत्यु तक उसी पद पर रहा। १६३५ में इसने ज्यामिति का एक ग्रन्थ लिखा जिसमें 'अविभाज्यों के सिद्धान्त' (Principle of Indivisible) का प्रतिपादन किया। उक्त सिद्धान्त का सार यह है कि प्रत्येक रेखा में अनन्त विंशतियाँ होती हैं, प्रत्येक समतल में अनन्त रेखाएँ होती हैं और प्रत्येक ठोस अनन्त समतलों से बना होता है। उक्त सिद्धान्त बहुत सन्तोषजनक रूप में नहीं दिया गया था गुल्डिन (Guldin) ने उसकी आलोचना की। उक्त आलोचना के उत्तर में कैवलियरी ने एक अन्य पुस्तक लिखी जिसमें उसी सिद्धान्त को सन्तोषजनक रूप दे दिया गया था। उक्त पुस्तक में ही परिक्रमण ठोसों सम्बन्धी उस प्रमेय की परवृत्ति दी गई थी जो आज 'गुल्डिन प्रमेय' के नाम से प्रसिद्ध है। उक्त प्रमेय का उल्लेख पॉपस की कृतियों में भी आ चुका था।

कैवलियरी ने अपने 'अविभाज्यों के सिद्धान्त' की विधि से केप्लर (Kepler) द्वारा प्रस्तावित ऐसे कई प्रश्नों को हल किया जो आजकल चलराशि कलन (Integral Calculus) की विधि से किये जाते हैं।

उपरिलिखित पुस्तकों के अतिरिक्त कैवलियरी ने अन्य कई पुस्तकें त्रिकोणमिति, चाक्षुषी, ज्योतिष आदि पर लिखी हैं।

इवँजेलिस्टा टॉरिसैलो (Evangelista Torricelli) (१६०८-१६४७) का जन्म फ्रेंज़ा (Frenza) में हुआ था। अध्ययन के लिए यह रोम गया। वहाँ इस

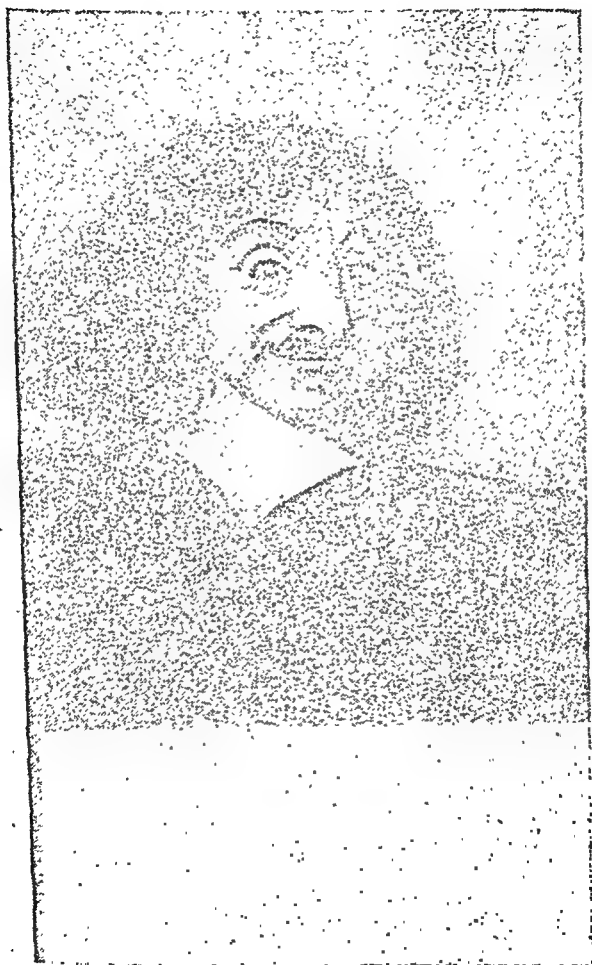
गैलीलियो की कृतियों का मनन किया और उनसे स्फुरण प्राप्त किया। १६४१ में यह प्लॉरेन्स जाकर गैलीलियो से मिला। तीन महीने यह गैलीलियो के शिष्यत्व में रहा। गैलीलियो के देहान्त के पश्चात् यह प्लॉरेन्स की परिपद् में प्राध्यापक नियुक्त हो गया।

टॉरिसेली का मुख्य कार्य भौतिकी में हुआ है। इसने ससार को बॅरोमिटर (Barometer) दिया। पारे के बॅरोमिटर में जो ऊपरी स्थान में निर्वात होता है, उसे आज भी टॉरिसेली निर्वात (Torricelli Vacuum) कहते हैं। इसने अतिरिक्त टॉरिसेली का ज्यामितीय कार्य भी महत्त्व का हुआ है। १६३८ में मर्सीन (Mersenne) ने गैलीलियो को लिखा कि "हव्वेल ने चक्रज (Cycloid) का क्षेत्रफलन कर लिया है।" गैलीलियो ने उक्त पत्र टॉरिसेली के पास भेजा। इसके उत्तर में टॉरिसेली ने चक्रज का क्षेत्रफलन करके दिखा दिया। इससे अतिरिक्त इसने कैवलियरी के अविभाग्यो के सिद्धान्त का भी विकास किया है।

विसेञ्जो विवियानी (Vincenzo Viviani) (१६२२-१७०३) भी गैलीलियो के शिष्यों में से था। इसकी रुचि भौतिकी और ज्यामिति में थी। इसी की प्रेरणा से प्लॉरेन्स में वैज्ञानिक प्रयोगों के लिए एक परिपद् की स्थापना हुई। टॉरिसेली इसका सदस्य था। उक्त परिपद् में वायु के दबाव पर प्रयोग किये जाने थे, किन्तु वह कुल दस वर्ष ही चल पायी। विवियानी ने एक ज्यामितीय प्रश्न उपस्थित किया—“एक वृत्ताकार मन्दिर है जिसपर एक अर्धगोलाकार गुम्बद बिठाया हुआ है। गुम्बद में चार समान लिडकियाँ ऐसे आकार की हैं कि शेष तल का ठीक ठीक माप निकाला जा सकता है। लिडकियाँ का आकार बताओ।” इस प्रश्न के कई हल अन्य गणितज्ञों ने निकाले किन्तु सबसे सरल हल स्वयं विवियानी का ही था। इसने ज्यामिति पर कई ग्रन्थ लिखे हैं जिनसे पहले से ही इसकी प्रतिष्ठा जम गयी थी।

फ्रांस—रैनी देकार्त (Rene Descartes) का जीवन काल १५९६-१६५० था। इसका शरीर तो कभी तगड़ा नहीं रहा, किन्तु इसकी मानसिक शक्ति अद्भुत थी। इसी कारण इनके पिताजी बचपन में ही इसे ‘लघु दासनिव’ कहा करते थे। स्कूल के पहले पाँच वर्षों में इसने गणित, तर्कशास्त्र, भौतिकी आदि का अध्ययन किया। १६ वर्ष की अवस्था में इसने स्कूल छोड़ा। सन् १६१६ में यह कानून का स्नातक हो गया। १६१८ में यह हॉलण्ड गया। वहाँ उन दिना यह परिपटी थी कि जब किसी के हाथ कोई कठिन प्रश्न लग जाता था तो वह उसे चुनौती के रूप में नगर की दीवारों पर चित्रित किया करता था। एक बार देकार्त ने ऐसी एक चुनौती देनी जो डब मापा में लिखी हुई थी। एक व्यक्ति उसने पाम मठा था जो मरयोग में प्रसिद्ध

गणितज्ञ बीकमैन (Beeckman) था। दकार्तने उससे चूर्णाती का अर्थ पूछा। बीकमैन ने उसका अनुवाद कर दिया और मखौल में दकार्तने से कहा कि वह उक्त



चित्र ७०—दकार्तने (१५९६-१६५०)

[डोवर पब्लिकेशंस, इन्फार्मरिडेट, न्यूयॉर्क—१०, की अनुज्ञा से, डॉ० स्टुड्स ब्रुत 'ए कॉन्सिडरेशन हिस्ट्री ऑफ मैथेमैटिक्स' (१.७५ डॉलर) से प्रत्युत्पादित।]

प्रश्न का साधन करे। दो दिन में दकार्तें उस प्रश्न को हल कर लाया। इस प्रकार दोनों गणितज्ञों में मैत्री हो गयी। दकार्तें ने गणित पर एक पुस्तक लिखी जो बीजगणित को समर्पित कर दी।

दकार्तें ने सेना में नाम लिखा लिया था, किन्तु १६२१ में उसे छोड़ दिया। उसके अगले चार वर्ष पर्यटन में बीते। विदेश में ही उसने दर्शनशास्त्र पर एक ग्रन्थ लिखा जो उसके जीवन काल में छप नहीं पाया। तत्पश्चात् कई वर्षों के परिश्रम में उसने विज्ञान पर एक बृहत् ग्रन्थ लिखा जिसमें तीन परिशिष्ट थे। इन्हीं परिशिष्टों में से एक ज्यामिति पर था।

इस प्रकार दकार्तें की ज्यामिति १०० पृष्ठों के एक परिशिष्ट से आरम्भ हुई। उक्त पुस्तिका में उसने निर्देशांक ज्यामिति (Coordinate Geometry) की नींव डाली। यो समझना चाहिए कि दकार्तें ने ज्यामिति पर बीजगणित का प्रयोग किया। उक्त विषय की मुख्य समस्या यह है कि किसी समतल पर किसी बिन्दु की स्थिति किस प्रकार जानी जाय। दकार्तें ने यह पद्धति निवाली कि दो रेखाओं से उक्त बिन्दु की दूरी नाप ली जाय। इस प्रकार बिन्दु की स्थिति सुनिश्चित हो जाती है। उक्त पद्धति को आज भी कार्तीय पद्धति कहते हैं।

दकार्तें ने वक्रों का वर्गीकरण किया और समीकरण सिद्धान्त में भी प्रगति की। इसके अतिरिक्त उसने मकेतलिपि के क्षेत्र में भी नवीनता दिखायी है। सबसे पहले उसीने घातांक को ऊपर चढ़ाकर—इस प्रकार y^2 , y^3 —लिखने की प्रणाली चलायी। साथ ही वह पहला व्यक्ति था जिसने रोमन वर्णमाला के पहले वर्णों a, b, c से ज्ञान राशियाँ की, और अन्तिम वर्णों x, y, z से अज्ञान राशियों को निरूपित किया। यह प्रणाली आज तक चालू है।

दकार्तें के कार्य के कई महत्वपूर्ण परिणाम निकले हैं। उस के द्वारा लोग ऋण राशियों का ज्यामितीय अर्थ समझने लगे। इसके अतिरिक्त उमो के फलस्वरूप मानक, सीमा और फलन (Function) जैसे भावों का विकास हुआ। इसी कारण दकार्तें को प्रथम आधुनिक गणितज्ञ कहा जाता है।

ब्लेस पास्कल (Blaise Pascal) (१६२३-१६६२) फ्रांस का एक धार्मिक दार्शनिक था। जब यह चार वर्ष का था तभी दूधकी माता दूधकी दो बहिनें छोड़कर मर गयीं। तीनों बच्चों का लालन पालन पिता ने किया। एक बार यह सरकार का कोषमाजन बन गया और घर के मारे दूधे कुछ दिनों अज्ञान योग बरता पड़ा। यह प्रायः गणन रहा करता था, बिन्दु फिर भी अपनी गणितीय गवेषणाओं पर

अथक परिश्रम करता रहता था। १६४८ में इसने अपना बॅरॉमिटर सम्बन्धी प्रयोग प्रकाशित किया। बॅरॉमिटर के सिद्धान्त का प्रतिपादन तो दकातें और टॉरिसेली ने कर दिया था, किन्तु पूर्ण प्रदर्शन पास्कल के प्रयोगों द्वारा ही हुआ।



चित्र ७१—पास्कल (१६२३-६२)

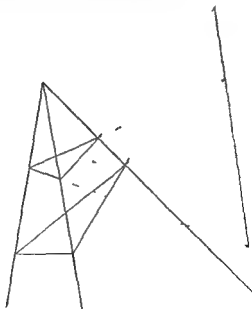
[टोवर पब्लिकेशंस, इन्फोर्परेटड, न्यूयॉर्क—१०, की अनुज्ञा से, डी० स्टुड्स कृत 'ए कॉन्साइज हिस्ट्री ऑफ मैथेमेटिक्स' (१.७५ डॉलर) से प्रत्युत्पादित।]

पास्कल में असाधारण प्रतिभा थी। इसने यूक्लिड के प्रथम भाग के अधिकांश माध्यों को स्वतन्त्र रूप से स्वयं सिद्ध किया था। सोलह वर्ष की अवस्था में इसने एक पाण्डुलिपि लिखी थी। जब वह हस्तलिपि दकातें को दिखायी गयी, उसे विश्वास नहीं हुआ कि वह सोलह वर्ष के किसी लड़के की कृति हो सकती है। उन्हीं साध्यों में से एक यह था—यदि किसी शंकव में कोई पड़भुज खींचा जाय तो सम्मुख भुजाओं

की तीना जोड़ियो के बटान बिन्दु सरैखि (Collinear) हागे । यही साध्य पास्कल प्रमेय के नाम से प्रसिद्ध है । पास्कल ने इसी प्रमेय से ४०० उपप्रमेय निकाले ।

पास्कल के समय में बहुत से गणितज्ञ ने चित्र पर बवेयणा कार्य किया था । पास्कल ने उक्त वक्र का गुरुत्व केन्द्र, उसके परिक्रमण द्वारा निर्मित ठोमों के गुरुत्व केन्द्र और तत्सम्बन्धी और बहुत से फल प्राप्त किये । उसकी उपस्थिति में तो उसके ज्यामितीय कार्य में से केवल 'अवगणितोय त्रिभुज' वाला अंग प्रकाशित हो पाया जिस आजकल 'पास्कल त्रिभुज' कहते हैं । जैसा सर्वविदित है उक्त त्रिभुज के द्वारा सम्प सख्याओं (Figurate Numbers) के गुण व्यक्त किये जाते हैं । पास्कल की ज्यामितीय इतिहा का शेपारा १६६५ में छपा ।

जैर्ज देसाग (Gerard Desargues) (१५९३-१६६२) फ्रांस का एक गणितज्ञ था । व्यवसाय से यह एक इंजीनियर था । इसके कार्य में द्वातों और पास्कल



चित्र ७२-देसाग का एक विख्यात प्रमेय ।

भी प्रभावित हुए थे । इसका अधिकांश कार्य ज्यामिति पर है । समुत्क्रमण सिद्धान्त

(Theory of Involution) के लिए गणितीय जगत् इसी का आभारी है इसकी सब से प्रसिद्ध पुस्तक शांकवों पर है।

देसार्ग का एक विख्यात प्रमेय यह है—यदि दो त्रिभुजों के शीर्ष तीन संगामी रेखाओं पर स्थित हों तो उनकी मुजाएँ तीन संरैखिक बिन्दुओं पर मिलेंगी। १६३९ जब देसार्ग ने शांकवों पर अपनी पुस्तक का प्रारूप तैयार किया तो कि को यह विश्वास नहीं हुआ कि वास्तव में वह उसी का लिखा हुआ था। वह रद्दी की टोकरी में डाल दिया गया। सीभाग्य से द ला हायर (De la Hire) ने उसकी नकल कर ली थी। इस प्रकार उक्त पुस्तक नष्ट होने से बच गई उसमें देसार्ग ने अनन्त की कल्पना की भूमिका वाँधी है। उसने लिखा है कि शंकु (Cone) का शीर्ष अनन्त को चला जाता है तब शंकु का बेलन जाता है। और इसी पुस्तक से एकैकी-संगति (Homology) की भी नींव पड़ी

द ला हायर (१६४०-१७१८) पेरिस का निवासी था। इसने अपने जीव अनेक विषयों को अपनाया। आरम्भ में यह चित्रकार और स्थापत्य-शास्त्री। तत्पश्चात् गणित का प्राध्यापक हुआ और अन्तिम वर्षों में फ्रांस के भूमितीय (Geometrical) सर्वेक्षण कार्य में नियुक्त हुआ। इसने गणितीय विषयों पर अनेक लेख लिखे। अतिरिक्त शांकवों और बीजगणित पर पुस्तकें भी लिखीं। किन्तु इसका सबसे अधिक कार्य माया वर्गों पर हुआ है। इसने माया वर्ग बनाने की एक नयी विधि दी कि किसी भी वर्ण (Order) का माया वर्ग बनाया जा सकता है। इस विधि संशोधित रूप इस प्रकार है—

पहले दो सहायक वर्ग बनाइये। यदि पाँचवें वर्ण का वर्ग बनाना है तो ए इन अंकों—१, २, ३, ४, ५ से बनाइये, दूसरा ०, ५, १०, १५, २० से।

३	१	४	२	५
५	३	१	४	२
२	५	३	१	४
४	२	५	३	१
१	४	२	५	३

१५	०	२०	५	१०
०	२०	५	१०	१५
२०	५	१०	१५	०
५	१०	१५	०	२०
१०	१५	०	२०	५

दोनों वर्गों में से प्रत्येक की प्रत्येक पंक्ति, प्रत्येक स्तम्भ और एक विकर्ण हुए अंकों में से केवल एक ही आयेगा। पहले वर्ग के शेष विकर्ण में केवल ३,

अब दोनों वर्गों की संगत कुटियों (Cells) के अको को जोड़ने से इच्छि माया वर्ग प्राप्त हो जायगा ।

१८	१२४	७१५	
५२३	६१४	१७	
२२	१०१३	१६	४
९१२२०	३२१		
१११९	२२५	८	

(७) अष्टारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियाँ

यूरोप

रॉबर्ट सिम्सन (Robert Simson) एक अग्रज गणितज्ञ था जिसका जीवन काल १६८७-१७६८ था। शिक्षा तो इसने डकटरी की प्राप्त की, किंतु यह ग्लासगो (Glasgow) में गणित का अध्यापक हो गया। स्कूल के विद्यार्थी इस प्रमेय में भली भाँति परिचित होते हैं—

“यदि किसी त्रिभुज के परिवृत्त के किसी बिन्दु से सीना भुजाओं पर लम्ब डाले जायें तो उनके मूल सरैलिक होंगे।”

ज्यामिति पर सिम्सन का यह प्रमेय प्रसिद्ध है और तत्सम्बन्धी रेखा को ‘सिम्सन रेखा’ कहने हैं। सिम्सन ने यूक्लिड का भी एक सस्वरण प्रकाशित किया था जो बहुत लोकप्रिय हो गया है। सावित्र चतुर्धात समीकरण पर भी सिम्सन का कार्य प्रगल्भनीय हुआ है।

जॉर्ज सामन (George Salmon) (१८१९-१९०४) आयरलैण्ड का निवासी था। इसका कार्य कई क्षेत्रों में फैला हुआ था जिनमें से प्रमुख ये थे—उच्च बीजगणित, निश्चल-सिद्धान्त (Theory of Invariants), शाकव और त्रैविम (Three-dimensional) ज्यामिति। इसका “आधुनिक उच्च बीजगणित” निश्चल-सिद्धान्त का प्रथम ग्रन्थ कहलाता है।

विलियम किंगडन क्लिफोर्ड (William Kingdon Clifford) (१८४५-१८८९) ऐंज्जैटर (Exeter) का निवासी था। इसने लन्दन और केम्ब्रिज में शिक्षा पायी। १८७१ में यह यूनीवर्सिटी कॉलेज, लन्दन, में प्राध्यापक नियुक्त हुआ और १८७४ में रॉयल सोसाइटी का अधिसदस्य बन गया। यो क्लिफोर्ड एक खिलाडी था, किन्तु १८७६ में ही इसका स्वास्थ्य जवाब देने लगा और १८८९ में ४४ वर्ष की अल्पा-

वस्या में ही इसका देहावसान हो गया। इसकी पत्नी भी प्रतिभाशालिनी थी और अंग्रेजी उपन्यासकारों तथा नाटककारों में उसने अच्छा स्थान प्राप्त कर लिया था। इसकी लड़की ऐथिल (Ethel) कवयित्री के रूप में प्रसिद्ध हो गयी थी।

क्लिफोर्ड में असाधारण मौलिकता थी। इसके अतिरिक्त इसमें वक्तृता शक्ति का भी बाहुल्य था और इसकी लेखन शैली स्पष्ट थी। यह एक उच्च कोटि का गणितज्ञ था। उस समय तक केम्ब्रिज के गणितज्ञों में वैश्लेषिक परिपाटी का प्रचलन था। क्लिफोर्ड ने उक्त परिपाटी के विरुद्ध आवाज उठायी और एक शुद्ध ज्यामितिज बनने का प्रयत्न किया। इसकी विशेष रुचि इन विषयों में थी—वैश्व बीजगणित (Universal Algebra), अ-यूक्लिडी ज्यामिति, दीर्घवृत्तीय फलन, द्विचतुष्टय (Biquaternions)। इसने आलेखिक (Graphical) विधियों का भी प्रचलन किया। इसकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक है—Common Sense of the Exact Sciences.

पेरिस के एक गणितज्ञ फ्रैंसॉय निकोल (Francois Nicole) (१६८३-१७५८) का नाम भी उल्लेखनीय है। यह वचन में ही एक बहुत होनहार लड़का दिखाई पड़ता था। १९ वर्ष की अल्पावस्था में इसने चक्रज (Cycloid) का चापकलन (Rectification) कर लिया था। इसने इन विषयों पर अपनी लेखनी उठायी—शांकव, त्रिघात वक्र, समत्रिभाजन समस्या, सम्मान्यता (Probability), नान्त अन्तर कलन (Calculus of Finite Differences)।

फ्रांस का एक अन्य गणितज्ञ गॅस्पर्ड मॉंजे (Gaspard Monge) (१७४६-१८१८) विशेष उल्लेखनीय है। यह वर्णनात्मक ज्यामिति का जन्मदाता कहलाता है। इसकी शिक्षा वियाँन (Beaune) और लियाँस में हुई थी। विज्ञान में इसकी विशेष रुचि थी। इसने १४ वर्ष की अवस्था में एक अग्नि इंजन का निर्माण किया था। यह २२ वर्ष के वयस् में गणित का, और २५ वर्ष के वयस् में भौतिकी का प्राध्यापक नियुक्त हो गया। ९ वर्ष पश्चात् यह पेरिस में आम्बसी (Hydraulics) का प्राध्यापक हो गया।

१७७० से १७९० तक मॉंजे ने गणितीय और भौतिक विषयों पर दर्जनों लेख लिखे। १७९२ में यह फ्रांस का नौसेना मन्त्री हो गया, किन्तु उक्त पद पर यह १७९३ तक ही रह पाया। इसने दो शिक्षा संस्थाओं के स्थापन में बड़ी सहायता की और वारी वारी ने दोनों में वर्णनात्मक ज्यामिति का प्राध्यापक रहा। नॅपोलियन के पतन के पश्चात् इसके समस्त पद और सम्मान छीन लिये गये और इसकी प्रतिष्ठा समाप्त

अब दोनों वर्गों की सगत कुटियों (Cells) के अंको को जोड़ने से इच्छित माया वर्ग प्राप्त हो जायगा।

१८	१२४	७१५	
५२३	६१४	१७	
२२१	१०१३	१६	४
९१२	२०	३२१	
१११९	२२५	८	

(७) अष्टारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियाँ

यूरोप

रॉबर्ट सिमसन (Robert Simson) एक अग्रज गणितज्ञ था जिसका जीवन काल १६८७-१७६८ था। शिक्षा तो इसने डाक्टर की प्राप्त की, किन्तु यह ग्लासगो (Glasgow) में गणित का अध्यापक हो गया। स्कूल के विद्यार्थी इस प्रमेय से भली भाँति परिचित होते हैं—

‘यदि किसी त्रिभुज के परिवृत्त के किसी बिन्दु में तीनों भुजाओं पर लम्ब डाले जायें तो उनके मूल सरैखिक होंगे।’

ज्यामिति पर सिमसन का यह प्रमेय प्रसिद्ध है और तत्सम्बन्धी रेखा को ‘सिमसन रेखा’ कहते हैं। सिमसन ने यूक्लिड का भी एक संस्करण प्रकाशित किया था जो बहुत लोकप्रिय हो गया है। सार्विक चतुर्धातु समीकरण पर भी सिमसन का कार्य प्रशस्तनीय हुआ है।

जॉर्ज सामन (George Salmon) (१८१९-१९०४) आयरलैंड का निवासी था। इसका कार्य कई क्षत्रों में फैला हुआ था जिनमें से प्रमुख ये थे—उच्च बीजगणित निश्चल-सिद्धांत (Theory of Invariants), सातव और त्रैविम (Three-dimensional) ज्यामिति। इसका “आधुनिक उच्च बीजगणित निश्चल सिद्धांत का प्रथम ग्रन्थ कहना है।

विलियम किंगडन क्लिफोर्ड (William Kingdon Clifford) (१८४५-१८८९) ऐक्सटर (Exeter) का निवासी था। इसने लन्दन और केम्ब्रिज में शिक्षा पायी। १८७१ में यह यूनीवर्सिटी कॉलिज, लन्दन, में प्राध्यापक नियुक्त हुआ और १८७४ में रॉयल सोसाइटी का अधिसदस्य बन गया। या डिप्लोमेट एंड गिनाही था, किन्तु १८७६ में ही इसका स्वास्थ्य जवाब देने लगा और १८८९ में ४४ वर्ष की अल्पा-

सेना के लिए हुई थी, अतः इसका गणितीय कार्य बहुत देर से आरम्भ हुआ। सेना में तो यह बहुत ऊँचे ऊँचे पदों पर पहुँच गया, किन्तु जीवन के अन्तिम दिनों में नॅपोलियन ने इसे देश निकाला दे दिया।

कानों की विशेष रुचि सांश्लेषिक ज्यामिति में थी। इस पर माँजे की कृतियों का विशेष प्रभाव पड़ा था। माँजे ने त्रैविम आकाश (Three-dimensional space) का अध्ययन किया था। कानों ने इस विषय का विवेचन किया कि कोई तिर्यक् रेखा किसी आकृति को किस अनुपात में बाँटती है। कानों के सबसे प्रसिद्ध आविष्कार पूर्ण चतुर्भुज, पूर्ण चतुष्कोण (Quadrangle) और ऋण परिमाणों सम्बन्धी हैं। आज भी विद्यार्थी शांकवों और त्रिभुजों के कटान बिन्दुओं पर कानों के प्रमेय का अध्ययन करते हैं।

चार्ल्स-जूलियन ब्रियांकन (Charles Julien Brianchon) का जीवन काल १७८३-१८६४ था। फ्रांस के प्रतिभाशाली गणितज्ञों में इसका भी उच्च स्थान है। यों यह भी एक सेनाधिकारी था, किन्तु इसका झुकाव ज्यामिति की ओर था। पास्कल ने शांकव के अन्तर्लिखित षड्भुज पर एक प्रमेय दिया था। ब्रियांकन ने २३ वर्ष की अल्पावस्था में परिगत षड्भुज सम्बन्धी तत्स्थानी प्रमेय दे दिया जो आज तक उसके नाम से विख्यात है। ध्रुव और ध्रुवी (Pole and Polar) का भाव सबसे पहले ब्रियांकन ने ही दिया था, किन्तु उसका विकास बाद में पॉन्स्ले (Poncelet) ने १८२९ में किया।

जीन-विक्टर पॉन्स्ले (Jean-Victor Poncelet) (१७८८-१८६७) एक फ्रांसीसी इंजीनियर था। इसने पेरिस और मेट्ज़ (Metz) में शिक्षा पायी और एक सेनाधिकारी हो गया। रूसी युद्ध में यह बन्दी हो गया। १८१४ में यह फ्रांस लौटा। १८१५ से १८२५ तक यह सैनिक इंजीनियर रहा और १८२५ से १८३५ तक मेट्ज़ में यान्त्रिकी का प्राध्यापक। तत्पश्चात् जीवन के अन्तिम दिनों तक यह पेरिस में भिन्न भिन्न विद्योचित पदों पर नियुक्त रहा।

जिस विशेष ज्यामिति (Projective Geometry) को माँजे ने जन्म दिया, पॉन्स्ले ने उसका पोषण किया। पॉन्स्ले ने ही पहले पहल उक्त विषय को अपने एक ग्रन्थ (१८२२) में एक स्वतन्त्र स्थान दिया। पॉन्स्ले के दो आविष्कार जगत्-प्रसिद्ध हैं—

(१) द्वैधता सिद्धान्त (Principle of Duality)

(२) आनन्तिक वर्तुल बिन्दु (Circular Points at Infinity)

विश्लेषण के तीन महान् विद्वानों में गिना जाता है। इसके अतिरिक्त इसने ज्यौतिष, चन्द्रकत्व, विद्युत् और भूमिति पर भी बहुत महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान किये हैं।



चित्र ७४—गाउस (१७७७-१८५५)

[डोवर पब्लिकेशंस इन्कॉर्पोरेटेड, न्यूयॉर्क—१०, की, अनुज्ञा से, डी० रूडिक द्वारा 'ए कॉन्साइज़्ड हिस्ट्री ऑफ़ मैथेमेटिक्स' (१.७५ डॉलर) से प्रत्युत्पादित।]

ऑगस्ट फ़र्डिनेण्ड मोबियस (August Ferdinand Möbius) (१७९०-१८६८) एक जर्मन ज्यौतिषी और गणितज्ञ था। इसने लाइप्ज़िग (Leipzig),

माइकेल चेड्विल्ल (Michael Charles) (१७९३-१८८०) पेरिस में निता पावर पहले एक व्यापारी बना, किन्तु बाद में व्यापार छोड़कर गणित के अध्ययन में लग गया। यह पहले एक बॉनिट्र में भूमिति (Geodesy) और यान्त्रिकी का अध्यापन नियुक्त हुआ और कुछ समय पश्चात् पेरिस विश्वविद्यालय में उच्च ज्यामिति का प्राध्यापक। इसने दो पुस्तकें सारवां और उच्च ज्यामिति पर छपीं और अनेक अभिलेख प्रकाशित किये। इसने और स्टेनर (Steiner) ने अपने अपने ढंग से शिक्षण ज्यामिति का विभाग किया, किन्तु उन दिनों आदान प्रदान के माध्यम इतने हीन थे कि एक को दूसरे की इच्छाओं का पता नहीं चल पाता था। मॅक गोरिन ने १७१० में यह मिथ्या प्रतीतिवादित किया था कि यदि एक त्रिभुज की भुजाएँ क्रमशः तीन स्थिर दिशुओं में से होकर जाती हों और दो दीर्घ दो स्थिर रेखाओं पर स्थित हों तो तीसरा दीर्घ एक सावक का सञ्चलन करेगा। चेड्विल्ल ने इस साध्य का विचार किया।

कार्ल फ्रैडरिख गाउस (Karl Friedrich Gauss) जर्मनी का एक महान् गणितज्ञ हुआ है जिसका जीवन साल १७७७-१८५५ था। एक यह राज (मजदूर) का पुत्र था और तत्कालीन राजा की कृपा से ही शिक्षा प्राप्त कर सका। जीवन के आरम्भ में वह निरी रूप से शिक्षा देकर निर्वाह करता रहा। १८०७ में अग्र गटिंगन (Göttingen) में एक वेधशाला की स्थापना हुई, यह उसका निदेशक और ज्योतिष का प्राध्यापक नियुक्त हुआ।

जब गाउस विश्वविद्यालय का छात्र था तभी 'न्यूनतम वर्गों के सिद्धांत' (Theory of Least Squares) का भाव इसके मन में अंकुरित हुआ। और उही दिना इसने यह प्रमेय सिद्ध किया कि 'किसी वृत्त को यूक्लिड की विधि से १७ बराबर भागों में बाँटा जा सकता है।' १८०१ में सख्या सिद्धान्त पर इसका प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् इसने शुद्ध गणित पर अनेक अभिलेख लिखे। इसके अतिरिक्त इसी ने सर्वप्रथम अ-यूक्लिडी ज्यामिति की जन्म दिया।

गाउस की प्रतिभा बहुमुखी थी। इसने सारणिकों और वास्तविक राशियों का विस्तृत उपयोग किया, द्विपद समीकरणों (Binomial Equations) के हल निकाले, अनन्त श्रेणियों के अभिसरण (Convergence) के लिए परीक्षणों का आविष्कार किया और दीर्घवृत्तीय फलनों की द्विकालिता (Double Periodicity) सिद्ध की। इन विषयों पर इसका शोधका कार्य इतना मौलिक और महत्वपूर्ण रहा है कि लैप्लास (Laplace) और लैग्रान्ज के साथ इसे आधुनिक गणितीय

जदि किर्वा विनूद हे जीवो वा, सा, ना हे मातंग हेमो तंज येमाहे मीची ज्ञाने
जे संगामो हो और समुदाय मारणे हो वा, सा, या पर गये को

73 74 75 76 77 78 79 80

यह प्रयोग 'मोटा प्रयोग' कहलाता है।

उत्तरिनिर्मित नरिपुत्र का एक भाई दोनंगो नीय (Tinmang Cewa) (१९४८-१९७७) था। उसने भी उत्तरिनि और नीयों पर कानून में अग्रिम किये हैं। उत्तरिनिपुत्रों में एक बात पर सहमत है कि उत्तरिनिर्मित प्रेमय शिवोदासी या था अथवा दोनंगो था।

को हाथों उटली के ही मुर्खी माडो ग्रैंड (Luigi Guido Grandi) का भी इन्फेज करने वाले जिनका जीवन काल १६७१-१७४२ था। यह पहले एक मिश्र हुआ, फिर जिन में दर्शन का प्राध्यापक और अन्त में पिता में ही गणित का प्राध्यापक नियुक्त हुआ। इन ने ज्यामिति पर कई ग्रन्थ लिखे हैं। अपनी पुस्तकों में इसने वृत्त और आयताकार जनिपरवलय (Rectangular Hyperbola) की तुलना की है, पुनः की आकृति के दोनों का अध्ययन किया है, जैसे—

न=ज्या सत (r=sin nθ)

बीरगोत्रों के तलों का क्षेत्रगणन किया है। इसमें एक स्थान पर यह सूत्र दिया है—

$$\frac{1}{2} - \frac{1}{4} = \frac{1}{4} \quad \frac{1}{4} - \frac{1}{8} = \frac{1}{8} \quad \frac{1}{8} - \frac{1}{16} = \frac{1}{16} \quad \frac{1}{16} - \frac{1}{32} = \frac{1}{32} \quad \frac{1}{32} - \frac{1}{64} = \frac{1}{64} \quad \frac{1}{64} - \frac{1}{128} = \frac{1}{128} \quad \frac{1}{128} - \frac{1}{256} = \frac{1}{256} \quad \frac{1}{256} - \frac{1}{512} = \frac{1}{512} \quad \frac{1}{512} - \frac{1}{1024} = \frac{1}{1024} \quad \frac{1}{1024} - \frac{1}{2048} = \frac{1}{2048} \quad \frac{1}{2048} - \frac{1}{4096} = \frac{1}{4096} \quad \frac{1}{4096} - \frac{1}{8192} = \frac{1}{8192} \quad \frac{1}{8192} - \frac{1}{16384} = \frac{1}{16384} \quad \frac{1}{16384} - \frac{1}{32768} = \frac{1}{32768} \quad \frac{1}{32768} - \frac{1}{65536} = \frac{1}{65536} \quad \frac{1}{65536} - \frac{1}{131072} = \frac{1}{131072} \quad \frac{1}{131072} - \frac{1}{262144} = \frac{1}{262144} \quad \frac{1}{262144} - \frac{1}{524288} = \frac{1}{524288} \quad \frac{1}{524288} - \frac{1}{1048576} = \frac{1}{1048576} \quad \frac{1}{1048576} - \frac{1}{2097152} = \frac{1}{2097152} \quad \frac{1}{2097152} - \frac{1}{4194304} = \frac{1}{4194304} \quad \frac{1}{4194304} - \frac{1}{8388608} = \frac{1}{8388608} \quad \frac{1}{8388608} - \frac{1}{16777216} = \frac{1}{16777216} \quad \frac{1}{16777216} - \frac{1}{33554432} = \frac{1}{33554432} \quad \frac{1}{33554432} - \frac{1}{67108864} = \frac{1}{67108864} \quad \frac{1}{67108864} - \frac{1}{134217728} = \frac{1}{134217728} \quad \frac{1}{134217728} - \frac{1}{268435456} = \frac{1}{268435456} \quad \frac{1}{268435456} - \frac{1}{536870912} = \frac{1}{536870912} \quad \frac{1}{536870912} - \frac{1}{1073741824} = \frac{1}{1073741824} \quad \frac{1}{1073741824} - \frac{1}{2147483648} = \frac{1}{2147483648} \quad \frac{1}{2147483648} - \frac{1}{4294967296} = \frac{1}{4294967296} \quad \frac{1}{4294967296} - \frac{1}{8589934592} = \frac{1}{8589934592} \quad \frac{1}{8589934592} - \frac{1}{17179869184} = \frac{1}{17179869184} \quad \frac{1}{17179869184} - \frac{1}{34359738368} = \frac{1}{34359738368} \quad \frac{1}{34359738368} - \frac{1}{68719476736} = \frac{1}{68719476736} \quad \frac{1}{68719476736} - \frac{1}{137438953472} = \frac{1}{137438953472} \quad \frac{1}{137438953472} - \frac{1}{274877906944} = \frac{1}{274877906944} \quad \frac{1}{274877906944} - \frac{1}{549755813888} = \frac{1}{549755813888} \quad \frac{1}{549755813888} - \frac{1}{1099511627776} = \frac{1}{1099511627776} \quad \frac{1}{1099511627776} - \frac{1}{2199023255552} = \frac{1}{2199023255552} \quad \frac{1}{2199023255552} - \frac{1}{4398046511104} = \frac{1}{4398046511104} \quad \frac{1}{4398046511104} - \frac{1}{8796093022208} = \frac{1}{8796093022208} \quad \frac{1}{8796093022208} - \frac{1}{17592186044416} = \frac{1}{17592186044416} \quad \frac{1}{17592186044416} - \frac{1}{35184372088832} = \frac{1}{35184372088832} \quad \frac{1}{35184372088832} - \frac{1}{70368744177664} = \frac{1}{70368744177664} \quad \frac{1}{70368744177664} - \frac{1}{140737488355328} = \frac{1}{140737488355328} \quad \frac{1}{140737488355328} - \frac{1}{281474976710656} = \frac{1}{281474976710656} \quad \frac{1}{281474976710656} - \frac{1}{562949953421312} = \frac{1}{562949953421312} \quad \frac{1}{562949953421312} - \frac{1}{1125899906842624} = \frac{1}{1125899906842624} \quad \frac{1}{1125899906842624} - \frac{1}{2251799813685248} = \frac{1}{2251799813685248} \quad \frac{1}{2251799813685248} - \frac{1}{4503599627370496} = \frac{1}{4503599627370496} \quad \frac{1}{4503599627370496} - \frac{1}{9007199254740992} = \frac{1}{9007199254740992} \quad \frac{1}{9007199254740992} - \frac{1}{18014398509481984} = \frac{1}{18014398509481984} \quad \frac{1}{18014398509481984} - \frac{1}{36028797018963968} = \frac{1}{36028797018963968} \quad \frac{1}{36028797018963968} - \frac{1}{72057594037927936} = \frac{1}{72057594037927936} \quad \frac{1}{72057594037927936} - \frac{1}{144115188075855872} = \frac{1}{144115188075855872} \quad \frac{1}{144115188075855872} - \frac{1}{288230376151711744} = \frac{1}{288230376151711744} \quad \frac{1}{288230376151711744} - \frac{1}{576460752303423488} = \frac{1}{576460752303423488} \quad \frac{1}{576460752303423488} - \frac{1}{1152921504606846976} = \frac{1}{1152921504606846976} \quad \frac{1}{1152921504606846976} - \frac{1}{2305843009213693952} = \frac{1}{2305843009213693952} \quad \frac{1}{2305843009213693952} - \frac{1}{4611686018427387904} = \frac{1}{4611686018427387904} \quad \frac{1}{4611686018427387904} - \frac{1}{9223372036854775808} = \frac{1}{9223372036854775808} \quad \frac{1}{9223372036854775808} - \frac{1}{18446744073709551616} = \frac{1}{18446744073709551616} \quad \frac{1}{18446744073709551616} - \frac{1}{36893488147419103232} = \frac{1}{36893488147419103232} \quad \frac{1}{36893488147419103232} - \frac{1}{73786976294838206464} = \frac{1}{73786976294838206464} \quad \frac{1}{73786976294838206464} - \frac{1}{147573952589676412928} = \frac{1}{147573952589676412928} \quad \frac{1}{147573952589676412928} - \frac{1}{295147905179352825856} = \frac{1}{295147905179352825856} \quad \frac{1}{295147905179352825856} - \frac{1}{590295810358705651712} = \frac{1}{590295810358705651712} \quad \frac{1}{590295810358705651712} - \frac{1}{1180591620717411303424} = \frac{1}{1180591620717411303424} \quad \frac{1}{1180591620717411303424} - \frac{1}{2361183241434822606848} = \frac{1}{2361183241434822606848} \quad \frac{1}{2361183241434822606848} - \frac{1}{4722366482869645213696} = \frac{1}{4722366482869645213696} \quad \frac{1}{4722366482869645213696} - \frac{1}{9444732965739290427392} = \frac{1}{944473$$

$$= (2-1) + (2-1) + (2-1) + \dots$$

$\frac{1}{2} \times \frac{1}{2} = \frac{1}{4}$

इस सूत्र को हमने इस नय्य का प्रतीक माना है कि सृष्टि की उपज शून्य से हुई है। हमने एक पिता की कल्पना की है जो एक मोती अपने दो पुत्रों को इस शर्त पर देता है कि दोनों उसे बारी बारी से अपने पान रखें। इस प्रकार, वह कहता है कि मोती आधा आधा दोनों पुत्रों का हुआ।

विना मैरिया गैताना अग्नेसी (Maria Gaetana Agnesi) का नाम लिये इटली के गणितज्ञों की कहानी अव्यर्थ दिवाई जाती है। इनका जीवन काल १७१८-१७९२ था। यह आरम्भ में ही एक होनहार लड़की थी। इसके पिता जी गणित के प्राध्यापक थे। इसके परिवार की इच्छा थी कि यह धार्मिक क्षेत्र में पदार्पण करे किन्तु २० वर्ष की अवस्था में ही इनने अपना जीवन गणित की सेवा में समर्पित कर दिया। १७५२ में जब इसके पिता रोगग्रस्त हो गये, उन की गद्दी पर इसे आसीन कर दिया गया किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् इस ने गणित का क्षेत्र छोड़कर चिकित्साश्रम

गटिंगन और हाल (Halle) में शिक्षा पायी। १८१५ में लाइप्जिग में एक वेधशाला का निर्माण हुआ और यह उसका निदेशक नियुक्त हुआ। इसका मुख्य कार्य तो ज्योतिष पर था, किन्तु इसने आधुनिक ज्यामिति पर भी अनेक अमूल्य लिखे हैं। इसने द्रव्यमान केन्द्र (Centre of Mass) के भाव का सार्विकरण करके एक नये विषय भारकेन्द्री कलन (Barycentric Calculus) की नींव डाली। मोबियस बन्ध (Mobius Band) जिसमें एक ही छल होता है इसी के मस्तिष्क की उपज था। उक्त बन्ध का आधुनिक स्थानिकी (Topology) में बहुत प्रयोग होता है।

कार्ल जॉर्ज स्टिडियन फॉन स्टॉट (Karl Georg Christian von Staudt) (१७९८-१८६७) का नाम भी उल्लेखनीय है। इस ने २४ वर्ष की अवस्था में ही अध्यापन कार्य आरम्भ कर दिया था। १८३५ में यह अल्टम (Erlangen) विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हो गया। इसका प्रमुख कार्य ज्यामिति में ही रहा है। इसके समय तक चार बिन्दुओं अथवा रेखाओं के तिर्यक् अनुपात (Cross Ratio) की कोई समतोपजनक परिभाषा नहीं दी गयी थी। सब से पहले यह कार्य इसीने किया। इसके अतिरिक्त इसने यह भी बताया कि ज्यामिति में काल्पनिक तत्त्वों का दीर्घवृत्तीय समुत्क्रमणों (Elliptic Involutions) द्वारा किस प्रकार प्रवेश हो सकता है।

जूलियस प्लकर (Julius Plucker) (१८०१-१८६८) जर्मन गणितज्ञ और भौतिकीज्ञ था। जर्मनी में शिक्षा समाप्त करके यह १८२३ में बेरलिन चला गया। १८२८ में यह बॉन (Bonn) में विशेष प्राध्यापक नियुक्त हो गया। यह क्रमशः बर्लिन, हाल (Halle) और बॉन में प्राध्यापक रहा। १८२८ में इसका ज्यामिति पर एक ग्रन्थ निकला जिसमें इसने सक्षिप्त सकेतलिपि का प्रयोग किया जो बरलेटिक ज्यामिति में आज तक प्रयुक्त हो रही है। तत्पश्चात् इसने ज्यामिति पर अन्य कई ग्रन्थ लिखे जिनमें इसने द्विघाता सिद्धान्त प्रतिपादित किया और वक्रगणित (Curves) सम्बन्धी ६ समीकरणों का आविष्कार किया। उक्त समीकरण 'प्लकर समीकरण' कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त इसने निर्देशांकों के भाव का विस्तार किया, रेखीकरण (Collimation) और व्युत्क्रमता (Reciprocity) के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया और त्रिक्रम वक्रों (Curves of the third order) का वर्गीकरण किया। इसने इन वक्रों के २१९ प्रकार गिनाये हैं। इसके अन्य आविष्कार भौतिकीय विषयों पर हैं।

इटली का जियोवानी सेवा (Giovanni Ceva) (१६४७-१७३६) भी उल्लेखनीय हैं। इसने १६७८ में निम्नलिखित प्रमेय सिद्ध किया था—

१८६२ तक इसने इटली के रेलवे विभाग में नौकरी की। तत्पश्चात् इसने अध्यापन कार्य आरम्भ किया और यह थोड़े थोड़े वर्ष क्रमशः बॉलोनिया, पिशा, रोम और पविया में प्राध्यापक रहा। इसके अन्तिम दिन रोम में ही बीते। इसका विशेष कार्य अ-यूक्लिडी ज्यामिति पर हुआ है जिसमें इसने रीमान (Riemann) और लोबाच्यूस्की (Lobatchewsky) की प्रणाली को अपनाया है। यों तो इसने बहुत से अनिपत्र भौतिक विषयों पर भी लिखे हैं किन्तु इसकी प्रसिद्धि इसकी अति-परवलयीय आकाश (Hyperbolic Space) सम्बन्धी कृति पर हुई है जो इसने १८६८ में प्रकाशित की।

जेकब स्टेनर (Jakob Steiner) (१७९६-१८६३) स्विट्ज़र्लैण्ड का एक गणितज्ञ था। १८ वर्ष की अवस्था में यह हेनरिच पेस्टेलोजी (Henrich Pestalozzi) का शिष्य हो गया। कुछ दिनों इसने हाइडेलबर्ग (Heidelberg) में शिक्षा पायी और तत्पश्चात् यह बर्लिन (Berlin) चला गया। १८३४ में बर्लिन विश्व-विद्यालय में इसी के लिए ज्यामिति की एक नयी गद्दी स्थापित की गयी। मृत्यु तक यह उसी पर नियुक्त रहा।

जब से स्टेनर ज्यामिति की उवत गद्दी पर बैठा, उसने ज्यामिति पर गवेषणा पत्र लिखने आरम्भ कर दिये। इसके अनिपत्र अधिकतर क्रेले जर्नल (Crelle Journal) में प्रकाशित होते थे। इसने ज्यामिति पर उच्च कोटि के कई ग्रन्थ लिखे हैं। बिन्दु माला (Range of Points) और रेखावली (Pencil of Lines) के भाव इसी ने दिये और उनमें एकैकी-संगति (One-one correspondence) स्थापित की। इसने विक्षेप ज्यामिति के सिद्धान्तों के प्रतिपादन में विश्लेषण से अन्तः-स्फूर्ति (Intuition) को अधिक महत्त्व दिया। इसके अतिरिक्त इसने वक्रों और द्विघात पृष्ठों के सिद्धान्त का विकास किया।

जहाँ कहीं अ-यूक्लिडी ज्यामिति का उल्लेख आयेगा, जॉन बोलिये (John Bolyai) का नाम लेना ही होगा। इसके पिता फ़ार्कस बोलिये (Farkas Bolyai) (१७७५-१८५६) हंगरी के एक नगर में गणित के शिक्षक थे। इन्होंने गटिगन में उस समय शिक्षा पायी थी जब गाउस भी वहीं पर विद्यार्थी था। दोनों में कभी कभी पत्राचार भी हुआ करता था। फ़ार्कस ने यूक्लिड का 'समान्तरता अवाध्यो-पक्रम' (Parallel Postulate) सिद्ध करने का बहुत दिनों प्रयत्न किया और फिर भी कृतकार्य न हुये। इन्होंने गाउस को दो पत्र लिखे जिनमें ज्यामिति की एक

की सेवा में अपना जीवन लगा दिया। इसका प्रमुख कार्य वैश्लेषिक ज्यामिति पर हुआ है। एक बक का इसने विशेष रूप से अध्ययन किया था जो आज भी इसके नाम पर 'अग्नेमिवा' (Witch of Agnesi) कहलाती है।

इस स्थान पर जियोवानी फ्रैन्को ज्यूसेपे मल्फाती (Giovanni Francesco Giuseppe Malfatti) का नाम देना भी अनुपयुक्त न होगा जिसका स्थिति बाल १७३१-१८०७ था। इसने रिकॉटी (Ricatti) के सरक्षण में शिक्षा पायी। १७७१ में यह फरारा (Ferrara) में गणित का प्राध्यापक हो गया। १८०३ में इसने निम्नलिखित प्रश्न उपस्थित किया—एक लाम्बिक त्रिभुजीय सङ्केत (Right triangular Prism) में से तीन बेलन ऐसे काटो जिनके उच्चतम सङ्केत के उच्चतम के समान हो, और जिनके आयतन अधिकतम हो। मल्फाती ने दर्शाया कि यह समस्या इस प्रश्न पर आश्रित है—किसी त्रिभुज के अंतर्गत तीन वृत्त इस प्रकार खोदना कि प्रत्येक वृत्त दोनो वृत्तों और त्रिभुज की दो भुजाओं को छुए। इसी प्रश्न को आजकल 'मल्फाती प्रश्न' कहा जाता है। स्टेनर और प्लंकर ने भी उक्त प्रश्न पर परिश्रम किया है।

लॉरेंजो मर्क्वेरानी (Lorenzo Mascheroni) (१७५०-१८००) पविया (Pavia) के विश्वविद्यालय में गणित का प्राध्यापक था। यो इसकी रूचि भौतिकी और कलन में भी थी किन्तु इसका प्रमुख कार्य ज्यामिति में हुआ है। १७९७ में इसने अपनी ज्यामितीय रचनाओं का सग्रह प्रकाशित किया। उक्त ग्रन्थ में इसने केवल परकार की सहायता से अनेक रचनाएँ करने की विधियाँ बतायी थीं। इनमें की बहुत सी विधियाँ में उच्च कोटि की मूलिकता दृष्टिगोचर होती हैं।

लुईजी क्रैमोना (Luigi Cremona) (१८३०-१९०३) का जन्म पविया में हुआ था। वहीं के विश्वविद्यालय में शिक्षा पाकर यह पहले क्रैमोना और फिर मिलन में प्रारम्भिक गणित का अध्यापक हो गया। तत्पश्चात् यह क्रमशः बोलोना और मिलन में उच्च ज्यामिति का प्राध्यापक नियुक्त हुआ। १८७३ में यह रोम में उच्च गणित का प्राध्यापक हो गया और वहाँ इसने एक इंजीनियरी कॉलेज सघटित किया। इसने अपना सारा जीवन उच्च गणित की शिक्षा के सुधार में लगा दिया। इसने यूरोप की गणितीय पत्रिकाओं में अनेक अमिषत्र प्रकाशित किये। इसका सब से पसिद्ध कार्य बक़ों और घन पृष्ठों (Cubic Surfaces) पर हुआ है।

यूजीनियो बेल्ट्रामी (Eugenio Beltrami) (१८३५-१९००) का जन्म क्रैमोना में हुआ था। इसने पविया में ब्रियोस्की (Brioschi) से शिक्षा पायी।

“तुम इस व्यमन से दूर ही रही तो अच्छा है। यह तुम्हें चैन से बैठने नहीं देगा और खाना, पीना हाराम कर देगा। तुम्हारा जीवन दूगर हो जायगा।”

जॉन ने उक्त अवाध्यापक को एक स्वतन्त्र स्वयंसिद्धि मान लिया और यह उक्ति दी कि यदि हम उक्त स्वयंसिद्धि के स्थान पर एक नयी स्वयंसिद्धि मानें कि “किमी समतल के किमी बिन्दु के मध्यमे ऐसी अनन्त रेखाएँ खींची जा सकती हैं जो एक दी हुई रेखा को न काटें” तो एक नयी ज्यामिति तैयार हो सकती है। जॉन ने अपने पिता की अप्रत्यामिति पुस्तक का मुद्रण कराया और उसके परिशिष्ट में अपने विचारों का प्रतिपादन किया। उक्त परिशिष्ट में बोलिये ने इसका भी निर्देश किया है कि अतिपरबलीय आकाश में वृत्त के वर्गण (Quadrature of the circle) की रचना किस प्रकार की होगी।

जहाँ तक अ-यूक्लिडी ज्यामिति का सम्यन्ध है, जॉन बोलिये को अधिक श्रेय दिया जाय या लोवाच्यूस्की को, यह कहना कठिन है।

निकोलाइ आइवानोविच लोवाच्यूस्की (Nikolai Ivanovich Lobatchewski) (१७९३-१८५६) एक रूसी गणितज्ञ था। इसने काज़ा (Kazan) विद्वद्विद्यालय में शिक्षा प्राप्त की और १८१२ में वहीं पर अध्यापक हो गया। १८२३ में यह प्राध्यापक हो गया और १८४६ में उसी स्थान पर रहा। लोवाच्यूस्की उन गणितज्ञों में अग्रणी रहा है जिन्होंने यूक्लिडी आकाश के विरुद्ध खुला विद्रोह है। इसने अपने उक्त विचार सर्वप्रथम काज़ा में एक व्याख्यान (१८२६) में व्यक्त किये थे। इसने समान्तरता अवाध्यापक के स्थान पर यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था—

“मान लीजिए कि किसी समतल में एक ऋजु रेखा और एक बिन्दु दिये हुए हैं। तो समतल में उक्त बिन्दु के मध्यमे जितनी रेखाएँ खींची जा सकती हैं, उन्हे हम दी हुई ऋजु रेखा के विचार से दो वर्गों में बाँट सकते हैं—छेदक (Intersecting) और अछेदक (Non-intersecting)। दोनों वर्गों की सीमा रेखाएँ उक्त ऋजु रेखा के समान्तर होंगी। इस प्रकार किसी बिन्दु से, किसी रेखा के समान्तर, एक नहीं दो ऋजु रेखाएँ खींची जा सकती हैं जो उससे अनन्त पर मिलती हैं। अतः प्रत्येक ऋजु रेखा के दो बिन्दु अनन्त पर होते हैं।”

बोलिये और लोवाच्यूस्की दोनों का विचार था कि यूक्लिडी ज्यामिति उनकी नाविक ज्यामिति की ही एक सीमा स्थिति है। दोनों यह भी कहते हैं कि किसी भी छोटे से स्थान की ज्यामिति सदैव यूक्लिडी होती है और हमारी आँखें वास्तविकता तक नहीं पहुँच सकतीं, केवल उसकी एक झलक दे देती हैं। दोनों ने अपने गवेषणा-फल एक दूसरे से स्वतन्त्र रूप से निकाले। लोवाच्यूस्की ने अपने सिद्धान्तों को पहले

पुस्तक की रूपरेखा बनायी थी। उक्त पुस्तक में इन्होंने "सुल्य रूपों के स्थायित्व" (Permanence of Equivalent Forms) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था।



चित्र ७५—स्टेनर (१७९६-१८६३)

[होवर पब्लिशिंग प्रिन्सिपल, न्यूयॉर्क-१०, की अनुज्ञा से, डी० स्टूडर इन '९ बॉन्टारत हिस्ट्री अफ मैथेमैटिक्स (१७५ टालर) से प्रत्युत्पादित।]

जॉन वालिये का जीवन काल १८०२-१८६० था। लड़कपन में ही इगे भी यूनिट के उपरिगतिन अवाध्योरनम पर माया पच्ची करने का राज सवार हुआ। १८२० में इनके पिता ने इगे एक पत्र लिखा जिसका आशय यह था—

"तुम इस व्यसन से दूर हो रही तो अच्छा है। यह तुम्हें चैन से बैठने नहीं देगा और खाना, पीना हारम कर देगा। तुम्हारा जीवन दुनर हो जायगा।"

जॉन ने उक्त अवाध्यापकन को एक स्वतन्त्र स्वयंनिधि मान लिया और यह उक्ति दी कि यदि हम उक्त स्वयंनिधि के स्थान पर एक नयी स्वयंनिधि मानें कि "किर्मी समतल के किसी बिन्दु के मध्यमे ऐसी अनन्त रेखाएँ खींची जा सकती हैं जो एक दी हुई रेखा को न काटे" तो एक नयी ज्यामिति तैयार हो सकती है। जॉन ने अपने पिता की अप्रकाशित पुस्तक का मुद्रण कराया और उसके परिशिष्ट में अपने विचारों का प्रतिपादन किया। उक्त परिशिष्ट में बोलिवे ने इनका भी निर्देश किया है कि अतिरिक्त्रीय आकाश में वृत्त के वर्गण (Quadrature of the circle) की रचना किस प्रकार की होगी।

जहाँ तक अ-यूक्लिडी ज्यामिति का सम्बन्ध है, जॉन बोलिवे को अधिक श्रेय दिया जाय या लोवाच्यूस्की को, यह कहना कठिन है।

निकोलाइ आइवानोविच लोवाच्यूस्की (Nikolai Ivanovich Lobatchewski) (१७९३-१८५६) एक रूसी गणितज्ञ था। इसने काज़ा (Kazan) विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की और १८१२ में वहीं पर अध्यापक हो गया। १८२३ में यह प्राध्यापक हो गया और १८४६ में उसी स्थान पर रहा। लोवाच्यूस्की उन गणितज्ञों में अग्रणी रहा है जिन्होंने यूक्लिडी आकाश के विरुद्ध खुला विद्रोह है। इसने अपने उक्त विचार सर्वप्रथम काज़ा में एक व्याख्यान (१८२६) में व्यक्त किये थे। इसने समान्तरता अवाध्यापकन के स्थान पर यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था—

"मान लीजिए कि किसी समतल में एक ऋजु रेखा और एक बिन्दु दिये हुए हैं। तो समतल में उक्त बिन्दु के मध्यमे जितनी रेखाएँ खींची जा सकती हैं, उन्हें हम दो हुई ऋजु रेखा के विचार से दो वर्गों में बाँट सकते हैं—छेदक (Intersecting) और अछेदक (Non-intersecting)। दोनों वर्गों की सीमा रेखाएँ उक्त ऋजु रेखा के समान्तर होंगी। इस प्रकार किसी बिन्दु से, किसी रेखा के समान्तर, एक नहीं दो ऋजु रेखाएँ खींची जा सकती हैं जो उससे अनन्त पर मिलती हैं। अतः प्रत्येक ऋजु रेखा के दो बिन्दु अनन्त पर होते हैं।"

बोलिवे और लोवाच्यूस्की दोनों का विचार था कि यूक्लिडी ज्यामिति उनकी सार्विक ज्यामिति की ही एक सीमा स्थिति है। दोनों यह भी कहते हैं कि किसी भी छोटे से स्थान की ज्यामिति सदैव यूक्लिडी होती है और हमारी आँखें वास्तविकता तक नहीं पहुँच सकतीं, केवल उसकी एक झलक दे देती हैं। दोनों ने अपने गवेषणा-फल एक दूसरे से स्वतन्त्र रूप से निकाले। लोवाच्यूस्की ने अपने सिद्धान्तों को पहले

(१८२९ में) प्रकाशित किया किन्तु इससे बोलिये के कार्य की महत्ता घटती नहीं। उसका कार्य भी स्वतन्त्र और मौलिक था यद्यपि उसे प्रकाशित करने में वह लंबा



चित्र ७६—लेबाच्यूस्की (१७९३-१८५६)

[दोबर् पब्लिकेशन्स इन्फॉर्मेटिड यूयाक—१० की अनुवा स टी० स्टुरक वृत 'ए कान्स्टाइन हिस्ट्री आफ् मॅथेमेटिक्स (१७९१ टाइलर) स प्रत्यु पादित ।]

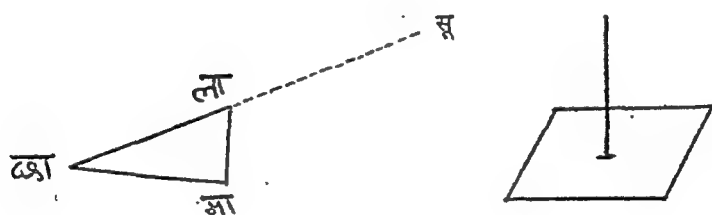
च्यूस्की से तीन वर्ष पीछे रहा। इसमें संदेह नहीं कि अ यकिन्डी ज्यामिति में दोनों का स्थान बहुत ही उच्च है।

अध्याय ६

त्रिकोणमिति

(१) धूप घड़ी

आधुनिक गणित में त्रिकोणमिति का मुख्य कर्म है त्रिभुजों की भुजाएँ और कोण नापना और उनके पारस्परिक सम्बन्ध उपलब्ध करना । किन्तु पूर्व ऐतिहासिक




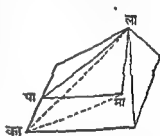
काल में त्रिकोणमिति केवल ज्योतिष की एक सहचरी के रूप में उत्पन्न हुई थी । भारत में भी इसका आरम्भ इसी प्रकार हुआ था । प्राचीन समय में घड़ियों का तो आविष्कार हुआ नहीं था । किन्तु समय जानने की सबको आवश्यकता पड़ती थी । इसके लिए एक धूप घड़ी (Sun-dial) बनायी जाती थी । सर्व प्रथम तो उक्त उपकरण में केवल एक लम्बमान शलाका होती थी जो एक समतल पर खड़ी होती थी । उक्त शलाका को उन्नतांश, दण्ड अथवा कीली (Gnomon) कहते थे । समय जानने के लिए देखते थे कि उक्त कीली की छाया किस दिशा में पड़ रही है । और इस प्रकार वे लोग समय का अनुमान लगा लिया करते थे ।

आकृति में ला मा कीली है और छा मा उसकी छाया । ला मा की लम्बाई तो स्थिर है, छा मा की लम्बाई सूर्य की स्थिति के साथ घटती-बढ़ती रहती है । अतः

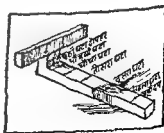
साष्ट है कि छा मा की लम्बाई \angle छा के मान पर निर्भर है। या यो कहिए कि अनुपात छा मा : मा ला पर निर्भर है। आपुनिक शब्दावली में इस अनुपात को हम कोटज्या छा अवय कोटज (cotangent) छा कहते हैं। इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि इस अनुपात का नाम अवय भाव हमारे पुरातों के मतिज्ञ में विद्यमान था।

घूप घड़ी का प्रयोग केवल भारत में ही नहीं हुआ था। प्रायः सम्स्त प्राचीन देश इसका प्रयोग करने थे। मिस्र के अहमिस पेंसिरस का उत्केय हम एक चित्र के अन्तर्गत में कर चुके हैं। उक्त ग्रन्थ में सूचीस्तम्भों पर घूप प्रश्न दिये हुए हैं। इन प्रश्नों में से चार में 'सैवन' शब्द का प्रयोग किया गया है। आकृति में हमने एक सम सूची-स्तम्भ बनाया है। विद्वानों का अनुमान है कि सैवन से लेमन का तात्पर्य अनुपात पामा . माला से है जिसे आपुनिक शब्दावली में हम लोग कोटज मांगला कहेंगे। हम अवगणित के अध्याय में बता चुके हैं कि उक्त सूचीस्तम्भ इस प्रकार बनाये जाते थे कि \angle पा लगभग अचर रहता था। यह भी सम्भव है कि 'सैवन' का सम्बन्ध \angle मा का ला से रहा हो। इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि अहमिस पेंसिरस के समय (लगभग १५५० ई० पू०) में ही मिस्र में घूप घड़ी का प्रयोग आरम्भ हो चुका था।

मिस्र की सबसे प्राचीन घूप घड़ी इस आकार  की है जो बलिन के संग्रहालय में सुरक्षित है। यह १५५० ई० पू० के भासपास की है। इसकी खोज भुजा ६ भागों में बाँटी गयी है जिस पर घटे अंकित हैं। सबेरे से दोपहर तक इसकी पीठ पूर्व की ओर रहती थी, तीसरे पहर पश्चिम की ओर कर दी



चित्र ७७—घूप घड़ी के लिए समसूची-स्तम्भ



चित्र ७८—मिस्र की प्राचीन घूप घड़ी (इन्स्टाबुल पोदिया निदर्शिका में)

हम एक पिछले परिच्छेद में चीन के चउ-पेइ का उल्लेख कर चुके हैं जिसका समय लगभग ११०० ई० पू० है। उक्त ग्रन्थ में कई स्थानों पर समकोण त्रिभुज का प्रयोग किया गया है। उक्त त्रिभुज की सहायता से ऊँचाइयाँ और दूरियाँ निकाली जाती थीं। अतः यह सम्भव है कि त्रिभुजों की भुजाओं के अनुपात का भी उन लोगों को कुछ ज्ञान रहा हो। उक्त पुस्तक में एक स्थान पर लिखा भी है कि "ज्ञान छाया से आता है और छाया कीली द्वारा उत्पन्न होती है।" इससे पता चलता है कि सम्भवतः चीनियों के पास भी उस ज़माने में कोई घूप घड़ी थी।

भारत में घूप घड़ी का आविष्कार कब हुआ यह कहना कठिन है। शुल्ब सूत्रों में कई स्थानों पर कीली का उल्लेख मिलता है। अतः यह मानना पड़ेगा कि ईसा से कई हजार वर्ष पहले ही हिन्दुओं ने किसी-न-किसी प्रकार की घूप घड़ी बना ली थी। भारत का प्राचीनतम ज्योतिषीय ग्रन्थ सूर्य सिद्धान्त माना जाता है। पश्चिमी विद्वान् तो इसका रचना काल ईसा के पश्चात् का मानते हैं। उक्त ग्रन्थ में अर्ध-जीवाओं (Half-chords) की सारणी दी गयी है जिससे पता चलता है कि उस समय तक भारतीयों को त्रिकोणमितीय सम्बन्धों का थोड़ा बहुत ज्ञान हो चुका था। घूप घड़ी का समय उससे कुछ पहले का ही रहा होगा। इस प्रकार भी यह सिद्ध होता है कि भारत में घूप घड़ी का प्रयोग ईसा से पहले ही आरम्भ हो चुका था।

बाबुल (बबिलन) का एक भाग चैल्डिया (Chaldea=खल्दी) कहलाता था। उक्त प्रदेश का एक ज्योतिषी बिरोसस (Berosus) था जिसका जीवन काल लगभग ३०० ई० पू० था। इसने एक घूप घड़ी बनायी थी जिसमें एक अर्धगोले के केन्द्र पर एक कीला खड़ा किया गया था। सूर्य की किरणें पड़ने से कीले की छाया अर्धगोले के अन्दर पड़ती थी। अर्धगोले का ऊपरी किनारा क्षैतिज रखा जाता था। कीले की छाया दिन भर में एक वृत्तीय चाप बना लेती थी। उक्त चाप को बारह भागों में बाँटा गया था। इस प्रकार चैल्डिया निवासियों को समय का ज्ञान होता था।

हेरोडोटस (Herodotus) ने लिखा है कि यूनानियों ने घूप घड़ी का ज्ञान बाबुल के निवासियों से प्राप्त किया था। यह सम्भव है किन्तु कुछ समय पश्चात् यूनानियों ने स्वयं बहुत मौलिक और जटिल घूप घड़ियाँ बनानी आरम्भ कर दीं। टोलेमी ने अपने अल्माजस्त में कई प्रकार की घूप घड़ियों की रचना-विधि दी है। उसमें केवल क्षैतिज और ऊर्ध्व (Vertical) घड़ियों का ही उल्लेख है। किन्तु ऐथेन्स (Athens) में एक स्मारक 'वायु मीनार' (Tower of the winds) है जिसमें अष्टभुज (Octagon) की आकृति की एक घूप घड़ी बनी हुई है। अष्टभुज के आठ फलकों पर आठ घट्यनीक (Dial) बने हुए हैं, चार प्रमुख दिशाओं की ओर

और सोच चार मध्यवर्ती दिशाओं की ओर। इससे पता चलता है कि ये लोग तिरछी घड़ियाँ बनाना भी जानते थे।

रोम में सबसे पहली घूप घड़ी २९० ई० पू० में प्रस्थापित हुई थी किन्तु यह कदाचित् विदेश से आयी थी। वास्तव में रोम में पहली घूप घड़ी १६४ ई० पू० में बनी थी। विट्रुवियस (Vitruvius) ने १३ प्रकार की घड़ियाँ का वर्णन किया है। इनमें सबसे रोचक 'हैम' (Hem) घड़ी थी जो सुबाह्य (Portable) होती थी। सलग्न आकृति की घड़ी में नीचे की ओर महीने दिये हुए हैं। बायी ओर की डँगली को घुमाकर बालू महीने वाली ऊर्ध्व रेखा पर ले आते हैं। घण्टे वाली टेढ़ी लकीरो पर छाया पड़ती है उसी से समय का पता चलता है।

(१) त्रिकोणमितीय फलन

हम ऊपर लिख चुके हैं कि घूप घड़ी का आविष्कार सहस्रो वर्ष पहले कई देशों में हो चुका था। अतः उनमें से किसी एक देश को श्रेय देना कठिन है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि त्रिकोणमितीय फलनों में से तीन की स्पष्ट रूप से परिभाषा सबसे पहले हिन्दुओं ने ही दी थी।

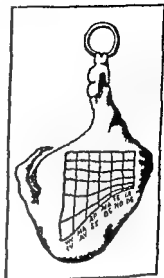
मान लीजिए कि का पा एक वृत्त का चाप है जिसका केन्द्र मू और त्रिज्या r है।

पा से त्रिज्या मू का पर पाला लम्ब डालिए।

तो ज्या का पा = पा ला,

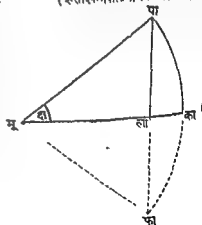
कोटिज्या का पा = मूला

और उत्तम ज्या का पा = ला का।



चित्र ७९—

हैम घड़ी लगभग ५९ ई० की।
(इस्तांबुलीपीडिया ब्रिटानिका से)



चित्र ८०—

घूप घड़ी के लिए त्रिकोणमितीय फलन।

यह त्रिकोणमितीय अनुपात ठीक वही नहीं हैं जो आजकल उक्त नामों से व्यक्त किये जाते हैं। एक मौलिक अन्तर यह है कि आधुनिक त्रिकोणमिति में अनुपातों का आधार कोण मू होता है जबकि उपरिलिखित परिभाषाओं का आधार चाप का पा है। आधुनिक संकेतलिपि में उपरिलिखित परिभाषाएँ इस प्रकार लिखी जायँगी—

ज्या तक्ष=पाला=त ज्या क्ष,

कोटिज्या तक्ष=मूला=त कोटिज्या क्ष,

उत्क्रम-ज्या तक्ष=ला का=त उत्क्रम-ज्या क्ष ।

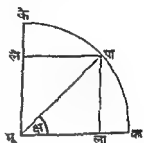
किन्तु यदि हम वृत्त की त्रिज्या को इकाई मान लें तो इन परिभाषाओं और आधुनिक परिभाषाओं में कोई अन्तर नहीं रह जाता ।

ज्या—‘ज्या’ का शाब्दिक अर्थ है ‘घनुष की डोरी।’ ऊपर दिये हुए चित्र में पा ला को ला फा तक इस प्रकार बढ़ाईएँ कि ला फा=पा ला। इसी प्रकार चाप पा का को भी फा तक बढ़ा दीजिये तो पा फा चाप पा का फा की जीवा हो गयी। यदि मू फा को भी जोड़ दें तो यह घनुष बाण की आकृति बन गयी। इसी लिए arc का नाम ‘चाप’ अथवा ‘घनु’ पड़ा क्योंकि चाप का अर्थ भी घनुष है। पा ला इस चाप की अर्ध-जीवा (Half-chord) हुई। यदि वृत्त की त्रिज्या १ हो तो यही अर्ध-जीवा ज्या क्ष (Sine \angle क्ष) का मान हो गयी। अतः उक्त अनुपात का सबसे प्राचीन नाम ‘अर्ध-जीवा’ ही है। समय के फेर से ‘अर्ध’ उड़ गया और ‘जीवा’ का ‘ज्या’ बन गया। कुछ प्राचीन पुस्तकों में इसका नाम ‘अर्ध-ज्या’ अथवा ‘क्रम-ज्या’ (Direct sine) भी आता है।

सबसे पहले ‘ज्या’ का प्रयोग आर्यभट्ट ने (लगभग ५१० ई०) किया था। भारत में यह शब्द अरब गया जहाँ ‘जीवा’ के रूप में प्रचलित हो गया। कुछ समय पश्चात् ‘जीवा’ का विकार ‘जैव’ में हो गया। अरबी में ‘जैव’ का अर्थ ‘वक्ष’ है। जब क्रै मोना के घेराडों ने (लगभग ११५०) अरबी की पुस्तकों का लैटिन में अनुवाद किया तो ‘जैव’ के स्थान पर ‘साइनस (Sinus)’ का प्रयोग किया जिसका लैटिन में एक अर्थ ‘वक्ष’ भी है।

ब्रह्मगुप्त ने ज्या के अर्थ में ही ‘क्रमज्या’ का प्रयोग किया है। इसका यह नाम इसलिए रखा कि ‘उत्क्रम-ज्या’ (Versed sine) से इसका अन्तर स्पष्ट दिखाई पड़े। अरबी में यही शब्द ‘करज’ के रूप में प्रचलित हो गया। अल ह्वारिजमी ने भी ‘करज’ का ही प्रयोग किया है। इस शब्द के कई विकृत रूप भी प्रचलित हो गये—करदग, करदज, करकय, गरगग। याकूब इब्न तारीक (लगभग ७७०) ने ‘करदज’ का प्रयोग किया है।

कोटिज्या—‘कोटि’ का एक अर्थ तो ‘समकोण त्रिभुज की भुजा’ है किन्तु दूसरा अर्थ ‘घनूप का चक्र सिरा’ भी है। इस प्रकार ‘कोटिज्या’ का अर्थ ‘ 90° के चाप का समपूरक’ पड़ गया। अतः त्रिकोणमिति में ‘कोटिज्या’ का अर्थ हुआ ‘समपूरक चाप को ज्या’। अब सलपन आकृति पर विचार कीजिए। दाका का समपूरक चाप पा के है। जब चाप पा का को ज्या पा ला है तो चाप पा के को ज्या से पा अर्थात् भू ला हुई। इस प्रकार आधुनिक सवेतलिपि में \angle का कोटिज्या भू ला हुई। इसका संक्षिप्त रूप कोज्या बन गया। पश्चिम में जब ज्या को साइन कहने लगे तो ‘कोज्या’ का नाम



चित्र ८१—त्रिकोणमितीय कोटिज्या

आप से आप कोसाइन (Cosine) हो गया। अतः आरम्भ में ज्या को साइनस कहते थे, अतः आरम्भ में कोज्या का नाम कोसाइनस (Cosinus) पड़ा। जब साइनस का संक्षेपण ‘साइन’ में हो गया तब कोसाइनस का कोसाइन बन गया।

उत्क्रम-ज्या—‘उत्क्रम’ का अर्थ है ‘उल्टा’। जब ‘ज्या’ का पश्चिमी नाम ‘साइन’ पड़ा तो ‘उत्क्रम-ज्या’ का नाम ‘Versed sine’ पड़ना ही था। एक बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य यह है कि अंग्रेजी में ‘Versed sine A’ का अर्थ है ‘ $1 - \text{Cosine } A$ ’, न कि ‘ $1 - \text{Sine } A$ ’। जब इण्टरमीडियेट का विद्यार्थी त्रिकोणमिति का अध्ययन आरम्भ करता है तो तोप अनुपात के नाम से प्राकृतिक दिशाई पड़ते हैं किन्तु Versed sine का अर्थ ‘ $1 - \text{Cosine}$ ’ पड़कर चकरा जाता है। परन्तु इस नाम का कारण इसकी उत्पत्ति में ही निहित है। यह नाम उत्क्रम-ज्या का शाब्दिक अनुवाद है। यदि उक्त फलन का नाम भारतीय नाम से न लेकर स्थलान्न रूप से बनाया गया होता तो इसका नाम Versed sine के बदले Versed cosine होता।

उक्त फलन को उत्क्रम ज्या कहने का कारण यह है कि ऊपर दी हुई आकृति में यदि हम ला पा को दाहिनी ओर 90° के कोण पर घुमायें तो वह ला का को सीध में जा पड़ेगी। अतः ला का को हम ‘उल्टी पा ला’ अथवा ‘धूमी हुई पा ला’ कह सकते हैं। अरब लेखकों ने इसीलिए इसको ‘धमी हुई जीवा’ कहा है। समय के प्रभाव से उत्क्रम-ज्या का संक्षिप्त रूप ‘उज्या’ भी प्रचलित हो गया।

स्पज्या और कोस्पज्या—हिन्दुओं ने उपरिनिम्नलिखित तीन फलनों का तो स्पष्ट रूप से प्रयोग किया है। आर्यभट्ट ने ता ज्या और उज्या की सारणियाँ भी दी हैं। किन्तु

त्रिकोणमितीय अनुपातों का उन्होंने स्पष्ट रूप से कोई उल्लेख नहीं किया है। सिद्धान्त में ज्या 'कोज्या' के भजनफल का प्रयोग तो आया है किन्तु इसको कोई नाम नहीं दिया गया है। जब पश्चिमी गणितज्ञों ने वस्तुओं की छाया नाप कर इयाँ, गहराइयाँ और दूरियाँ निकालनी आरम्भ कीं तब कोली और छाया की लाइनों के सम्बन्ध में स्पज्या (Tangent) और कोस्पज्या (Cotangent) आवश्यकता पड़ी। यों सूर्य सिद्धान्त और अन्य हिन्दू ग्रन्थों में भी 'छाया व्यवहार' प्रकरण विद्यमान हैं किन्तु उन्होंने इन दोनों अनुपातों का फलनों के रूप में प्रयोग नहीं किया। यूरोप में सर्व प्रथम थेल्स ने उक्त अनुपातों को फलनों का रूप दिया। जहाँ तक हमें पता है, छायाओं की सबसे पहली सारणी अरब के अलवत्तानी (लगभग ९२०) ने बनायी जिसमें ९०° तक की, एक एक अंश के अन्तर से, कोस्पज्याएँ हुई हैं। स्पज्याओं की पहली सारणी अबुल-वफ़ा ने (लगभग ९८०) बनायी जिसमें 'को' के अन्तर से, कोणों की स्पज्याएँ दी गयी हैं।

व्युकोज्या और व्युज्या—इन दोनों अनुपातों का विकास शेष फलनों के बहुत छे हुआ है। निश्चित रूप से इनका सब से पहला उल्लेख अबुल वफ़ा की कृतियों मिलता है किन्तु उसने भी इनको कोई विशिष्ट नाम नहीं दिये थे। १५ वीं शताब्दी व्युकोज्या (Secant) और व्युज्या का उल्लेख भी सारणियों में होने लगा। के पूरे नाम व्युत्क्रम-कोटिज्या और व्युत्क्रम-ज्या है। यों तो 'उत्क्रम' और 'व्युत्क्रम' नों का अर्थ 'उल्टे क्रम वाला' है किन्तु प्रयोग में उत्क्रम 'Inverse' or 'Reverse' अर्थ में आता है और व्युत्क्रम 'Reciprocal' के अर्थ में। ५ और $\frac{1}{5}$ एक दूसरे के व्युत्क्रम हैं। इससे स्पष्ट है कि

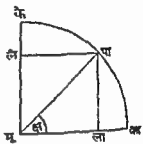
$$\text{व्युज्या} = \frac{1}{\text{ज्या}}, \quad \text{व्युकोज्या} = \frac{1}{\text{कोज्या}}।$$

इन दोनों फलनों की प्रथम सारणी कोपरनीकस (Copernicus) के शिष्य रैटिकस (Rhaeticus) ने बनायी थी जो उसकी मृत्यु के पश्चात् १५९६ में छपी।

अब हम यहाँ समस्त त्रिकोणमितीय फलनों के नाम और संक्षिप्त रूप देते हैं—

Sine ज्या	Sin ज्या
Cosine कोज्या	Cos कोज्
Tangent स्पज्या	Tan स्प
Cotangent कोस्पज्या	Cot कोस्प
Secant व्युकोज्या	Sec व्युकोज्

कोटिज्या—‘कोटि’ का एक अर्थ तो ‘गमकोण त्रिभुज की भुजा’ है किन्तु दूसरा अर्थ ‘घनुर का चतुर्ग’ भी है। इस प्रकार ‘कोटिज्या’ का अर्थ ‘९०° के चाप का गमपूरव’ पड़ गया। अब त्रिकोणमिति में ‘कोटिज्या’ का अर्थ हुआ ‘गमपूरव चाप की ज्या’। अब मलान्त आकृति पर विचार कीजिए। पाका का गमपूरव चाप पा के है। जब चाप पा का की ज्या पा ला है तो चाप पा के की ज्या लें पा अर्थात् मूला हुई। इस प्रकार आपुनिच सकेतलिपि में \angle का की कोटिज्या मूला हुई। इसका सक्षिप्त रूप कोज्या बन गया। पश्चिम में जब ज्या को साइन कहने लगे तो ‘काज्या’ का नाम चित्र ८१—त्रिकोणमितीय कोटिज्या आप से आप कोसाइन (Cosine) हो गया। यत आरम्भ में ज्या को साइन कहने थे, अब आरम्भ में कोज्या का नाम कोसाइन (Cosinus) पड़ा। जब साइनस का संक्षेपण ‘साइन’ में हो गया तब कोसाइनस का कोसाइन बन गया।



उत्क्रम-ज्या—‘उत्क्रम’ का अर्थ है ‘उल्टा’। जब ‘ज्या’ का पश्चिमी नाम ‘साइन’ पड़ा तो ‘उत्क्रम-ज्या’ का नाम ‘Versed sine’ पड़ना ही था। एक बान विरोध रूप से ध्यान देने योग्य यह है कि अंग्रेजी में ‘Versed sine A’ का अर्थ है ‘ $1 - \cos A$ ’, न कि ‘ $1 - \sin A$ ’। जब इष्टरमीडियेट का विद्यार्थी त्रिकोणमिति का अध्ययन आरम्भ करता है तो रोष अनुपाता के नाम से प्राकृतिक दिखाई पड़ने हैं किन्तु Versed sine का अर्थ ‘ $1 - \cos A$ ’ पढ़कर चकरा जाता है। परन्तु इस नाम का कारण इसकी उत्पत्ति में ही निहित है। यह नाम उत्क्रम-ज्या का साम्प्रतिक अनुवाद है। यदि उत्क्रम फलन का नाम भारतीय नाम से न लेकर स्वतन्त्र रूप से बनाया गया होता तो इसका नाम Versed sine के बदले Versed cosine होता।

उक्त फलन को उत्क्रम-ज्या कहने का कारण यह है कि ऊपर दी हुई आकृति में यदि हम ला पा को दाहिनी ओर 90° के कोण पर घुमायें तो वह ला का की सीध में भा जायगी। अब ला का की हम ‘उल्टी पाला’ अथवा ‘धूमि हुई पा ला’ कह सकते हैं। अरब लेखकों ने इसीलिए इसको ‘धूमि हुई जीवा’ कहा है। समय के प्रभाव से ‘उत्क्रम-ज्या’ का सक्षिप्त रूप ‘उज्ज्या’ भी प्रचलित हो गया।

स्पज्या और कोस्पज्या—हिन्दुओं ने उपरिलिखित तीन फलनों का तो स्पष्ट रूप से प्रयोग किया है। आर्यभट्ट ने तो ज्या और उज्ज्या की सारणियाँ भी दी हैं। किन्तु

इसकी विवेक रचि ज्यामिति और यान्त्रिकी में थी। इसने कई पुस्तकें लिखी हैं। त्रिकोणमिति के विचार से इसकी सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक मेट्रिका (Metrica) है। उक्त ग्रन्थ में इसने विभिन्न ज्यामितीय आकृतियों के क्षेत्रकलन के सूत्र दिये हैं जैसे त्रिभुज, चतुर्भुज, सम बहुभुज, वृत्त और दीर्घवृत्त। इसके अतिरिक्त उक्त पुस्तक में ठोसों के तल और आयतन के सूत्रों का भी विवेचन है। त्रिभुज के सम्बन्ध में हीरॉन का सबसे महत्वपूर्ण सूत्र यह है जिसकी उसने ज्यामितीय उत्पत्ति दी है—
यदि किसी त्रिभुज की भुजाएँ क, ख, ग हों, और हम अवर्गपरिमाणु $\frac{1}{4}(क+ख+ग)$ को अ से निरूपित करें तो

$$\Delta = \sqrt{अ(अ-क)(अ-ख)(अ-ग)}।$$

हीरॉन का एक ग्रन्थ भू सर्वेक्षण पर भी है।

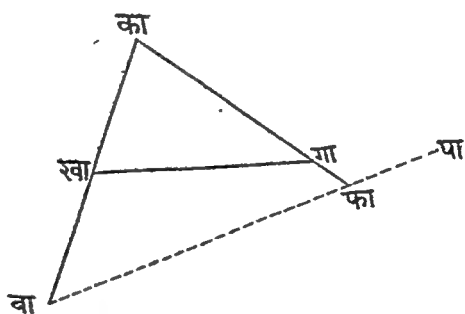
एलैगजेंड्रिया के मॅनीलॉज (Menelaus) का स्थिति काल १०० ई० के आस पास था। इसने ६ भागों में जीवाओं पर एक पुस्तक लिखी जो अब लुप्त हो चुकी है। उक्त ग्रन्थ के अधिकांश में तो गोलीय त्रिकोणमिति के विषय हैं किन्तु फिर भी उसमें ज्यामिति और समतल त्रिकोणमिति पर भी बहुत कुछ है। इसके दो प्रमेय तो प्रसिद्ध हो गये हैं—एक समतल त्रिभुजों पर, दूसरा गोलीय त्रिभुजों पर। समतल त्रिभुजों सम्बन्धी इसका प्रमेय इस प्रकार है—

चित्र ८२—मॅनीलॉज का समतल त्रिभुज प्रमेय।

यदि किसी त्रिभुज का खा गा की तीनों भुजाओं को कोई ऋजु रेखा पा, फा, वा पर काटे तो

$$\frac{का वा}{वा खा} \cdot \frac{खा पा}{पा गा} \cdot \frac{गा फा}{फा का} = -१.$$

यह प्रमेय आजकल 'मॅनीलॉज की प्रमेयिका' (Lemma) कहलाता है। कानों ने, जिसका उल्लेख हम एक पिछले अध्याय में कर चुके हैं, इसी साध्य को अपनी 'नियंत्रणा सिद्धान्त' (Theory of Transversals) का आधार बनाया था।



Cosecant व्युज्या	Cosec व्युज्या
Versed Sine = 1 - Cosine	उत्क्रम ज्या = 1 - कोज्या
Versin उज्या	
Covered Sine = 1 - Sine	उत्क्रो ज्या = 1 - ज्या
Coversin उत्क्रो	

(३) २०० ई० पू० से १००० ई० तक

कुछ पाश्चात्य विद्वानों का यह मत है कि त्रिकोणमिति का आरम्भ ज्योतिषी हिप्पार्कस (Hipparchus) से हुआ है जिसका जीवन बाल गणार्थी ई० पू० में माना जाता है। इसकी अपेक्षा इतनी नष्ट हो चुकी है। की जीवाओं पर ही हमने १२ ग्रन्थ निरत जिनमें से एक भी प्राप्य नहीं है। ज में तो हमका काम बहुत महत्वपूर्ण हुआ है। हमने भूमण्डल पर किसी वस्तु की निश्चित करने के लिए अक्षांश (Latitude) और देशान्तर (Longitude) पद्धति अपनायी। इसके अतिरिक्त हमने १००० से अधिक तारा का सूची संसार किया। गोलीय बिम्ब (Stereographic Projection) का जन्म वास्तव में यही था यद्यपि कुछ लोग गलती से टोलेमी को समझते हैं। उक्त के लिए हमने उत्तरी ध्रुव को क्षीर्ण और विपुल वृत्त के समतल को आधार माना। इसमें सन्देह नहीं कि हिप्पार्कस को यह सूत्र

$$\text{ज्या}^2 \text{ का } + \text{कोज्या}^2 \text{ का} = 1$$

ज्ञात था। किसी त्रिभुज के निर्धारण के लिए हिप्पार्कस इस आधार से चलता था कि त्रिभुज एक वृत्त में अन्तर्लिखित (inscribed) है। इस प्रकार त्रिभुज की भु एक वृत्त की जीवाएँ बन जाती थी। और तब त्रिज्या के पदों में उनका माप निकाला जाता था। कुछ इतिहासज्ञों का मत है कि हिप्पार्कस निम्नलिखित सूत्रों से परिचित था—

$$\text{ज्या (का } \pm \text{ खा)} = \text{ज्या का कोज्या } \pm \text{कोज्या का ज्या खा,}$$

$$\text{कोज्या (का } \pm \text{ खा)} = \text{कोज्या का कोज्या खा } + \text{ज्या का ज्या खा,}$$

$$\text{किसी त्रिभुज की परित्रिज्या या} = \frac{\text{क ख ग}}{\sqrt{\Delta}}$$

किन्तु इस कथन की पुष्टि का कोई निश्चित प्रमाण अभी तक नहीं मिला है।

ऐलैग्डिज्या के हॅरॉन (Heron) के जीवन काल के विषय में विवाद है।

इसकी विषय रुचि ज्यामिति और यान्त्रिकी में थी। इसने कई पुस्तकें लिखी हैं। त्रिकोणमिति के विचार से इसकी सबसे महत्त्वपूर्ण पुस्तक मेट्रिका (Metrica) है। उक्त ग्रन्थ में इसने विभिन्न ज्यामितीय आकृतियों के क्षेत्रफल के सूत्र दिये हैं जैसे त्रिभुज, चतुर्भुज, सम बहुभुज, वृत्त और दीर्घवृत्त। इसके अतिरिक्त उक्त पुस्तक में ठोसों के तल और आयतन के सूत्रों का भी विवेचन है। त्रिभुज के संबन्ध में हीरॉन का सबसे महत्त्वपूर्ण सूत्र यह है जिसकी उसने ज्यामितीय उपपत्ति दी है—

यदि किसी त्रिभुज की मुजाएँ क, ख, ग हों, और हम अर्धपरिमाणु $\frac{1}{2}(क+ख+ग)$ को अ से निरूपित करें तो

$$\Delta = \sqrt{अ(अ-क)(अ-ख)(अ-ग)}।$$

हीरॉन का एक ग्रन्थ भू सर्वेक्षण पर भी है।

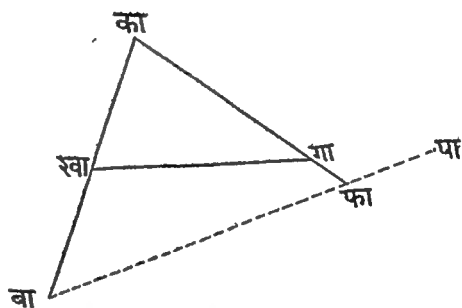
एंग्लेज्ण्डिया के मेंनीलॉज (Menelaus) का स्थिति काल १०० ई० के आस पास था। इसने ६ भागों में जीवाओं पर एक पुस्तक लिखी जो अब लुप्त हो चुकी है। उक्त ग्रन्थ के अधिकांश में तो गोलीय त्रिकोणमिति के विषय हैं किन्तु फिर भी उसमें ज्यामिति और समतल त्रिकोणमिति पर भी बहुत कुछ है। इसके दो प्रमेय तो प्रसिद्ध हो गये हैं—एक समतल त्रिभुजों पर, दूसरा गोलीय त्रिभुजों पर। समतल त्रिभुजों सम्बन्धी इसका प्रमेय इस प्रकार है—

चित्र ८२—मेंनीलॉज का समतल त्रिभुज प्रमेय।

यदि किसी त्रिभुज का खा गा की तीनों मुजाओं को कोई ऋजु रेखा पा, फा, वा पर काटे तो

$$\frac{का वा}{वा खा} \cdot \frac{खा पा}{पा गा} \cdot \frac{गा फा}{फा का} = -१.$$

यह प्रमेय आजकल 'मेंनीलॉज की प्रमेयिका' (Lemma) कहलाता है। कानॉन, जिसका उल्लेख हम एक पिछले अध्याय में कर चुके हैं, इसी साध्य को अपनी 'तिर्यग्रेखा सिद्धान्त' (Theory of Transversals) का आधार बनाया था।



एलैग्जेंड्रिया का टोलेमी (Ptolemy) एक ज्योतिषी, गणितज्ञ और भूगोलज्ञ था। इसका मुख्य कार्य १५० ई० के लगभग हुआ था। इसने चालीस वर्ष बराबर ज्योतिष की सेवा की और वदाचित् ७८ वर्ष की आयु में स्वर्गवासी हुआ। यद्यपि इसकी प्रमुख रचि ज्योतिष में थी, तथापि इसने त्रिकोणमिति की नींव पुष्ट करने में भी बहुत सहयोग दिया है। इसने जीवाञ्जली की एक सारणी बनायी जिसका उन दिना उतना ही महत्व था जितना आजकल ज्या सारणी का है। टोलेमी का त्रिकोणमिति के सिद्धान्त का प्रतिपादन इतना परिपक्व रहा है कि उसने १४०० वर्ष तक गणितज्ञों का मार्ग प्रदर्शन किया है। इसकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक आजकल 'अल्माजस्त' के नाम से प्रसिद्ध है। इस नाम का भी एक इतिहास है। ग्रन्थ का मौलिक नाम 'सिन्टैक्सिस' (Syntaxis) था जिसका अर्थ है 'गणितीय सग्रह'। यूनानियों ने सुरुत उसके गुण का पहिचाना और अन्य सग्रहों से भेद करने के लिए उसका नाम 'महान् सग्रह' रख दिया। जब पुस्तक अरब पहुँची तो अरबों ने उसका इतना आदर किया कि उसका नाम 'अल मजिस्ती' (महत्तम) प्रचलित कर दिया। उन दिना अरबों का यूनानियों पर कितना प्रभाव था, यह इसी बात से जाना जा सकता है कि ग्रन्थ का यह उपनाम 'अल्माजस्त' इतना प्रसिद्ध हुआ कि उसका मौलिक नाम विस्मृति के गर्भ में मरा गया।

अल्माजस्त में १° की जीवा का मान ०.१७२६८ दिया है। उस समय के लिए यह मान श्रेयस्कर है क्योंकि शुद्ध मान ०.१७४५३ है। उसी पुस्तक में π का मान ३.१४१६६ दिया गया है। टोलेमी का एक प्रमेय प्रसिद्ध हो गया है जिसे 'टोलेमी प्रमेय' कहते हैं। हम इस प्रमेय का उल्लेख पिछले अध्याय में 'ब्रह्मगुप्त के अन्तर्गत' कर चुके हैं। इसी प्रमेय की सहायता से ज्या (का ± ला) और कोज् (का ± सा) के सूत्र निकल आते हैं।

सूर्य सिद्धान्त

इतिहासज्ञा में इस बात पर मतभेद है कि आपुनिक सूर्य सिद्धान्त प्राचीन सूर्य सिद्धान्त का ही सच्चाधिन रूप है अथवा ये दोनों ग्रन्थें एक दूसरे से भिन्न हैं। बराह मिहिर का उल्लेख हम अग्रिम करेंगे। इन्होंने अपनी 'पंचसिद्धान्तिका' में पाँच सिद्धान्तों का सार दिया है जिनमें एक सूर्य सिद्धान्त भी है। जो सूर्य सिद्धान्त आश्विन प्राप्य है, उसमें बराहमिहिर के सूर्य सिद्धान्त में कुछ बातों में अन्तर दिखाई पड़ता है। इसी बिना पर कुछ लोगों का विचार है कि उन दोनों प्राप्य अलग अलग समय में अलग अलग लेखकों द्वारा लिखे गये हैं। अन्वेषण का विचार है कि सूर्य

सिद्धान्त के रचयिता लाटदेव थे किन्तु इस बात में विरोध तथ्य दिखाई नहीं देता । बराहमिहिर ने रोमक और पीलिश सिद्धान्तों के विषय में लिखा है कि ये लाटदेव द्वारा विरचित थे । यदि उनको यह पता होता अथवा उनके समय में यह बात प्रचलित हो गयी होती कि सूर्य सिद्धान्त के रचयिता भी लाटदेव ही थे तो अवश्य ही उन्होंने अपनी पंचसिद्धान्तिका में ऐसा लिख दिया होता ।

भारत में प्राचीन समय में यह परिपाटी थी कि प्रायः लेखक अपना नाम गुप्त रखते थे और अपनी पुस्तक को दैव-वाणी बताते थे । कदाचित् इसी कारण सूर्य सिद्धान्त के लेखक ने भी अपना नाम गुप्त रखा हो । जो कुछ ग्रन्थ में लेखक के विषय में दिया हुआ है, उससे वास्तविकता का बिलकुल पता नहीं चलता । हम यहाँ ग्रन्थ के श्लोक २-९ उद्धृत करते हैं । इनका अर्थ हम विज्ञान परिपद्, प्रयाग द्वारा प्रकाशित सूर्य सिद्धान्त के 'विज्ञान भाष्य तथा मूल' से देते हैं —

अल्पावशिष्टे तु कृते मयनामा महासुरः ।

रहस्यं परमं पुण्यं जिज्ञासुर्ज्ञानमुत्तमम् ॥२॥

वेदांगमग्र्यमखिलं ज्योतिषां गतिकारणम् ।

आराधयन् विवस्वन्तं तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥३॥

तोषितस्तपसा तेन प्रीतस्तस्मै वरार्थिने ।

ग्रहाणां चरितं प्रादान् मयाय सविता स्वयम् ॥४॥

विदितस्ते मया भावस्तोषितस्तपसा ह्यहम् ।

दद्यां कालाश्रयं ज्ञानं ग्रहाणां चरितम् महत् ॥५॥

न मे तेजःसहः कश्चिदाख्यातुं नास्ति मे क्षणः ।

मंदशः पुरुषोऽयं ते निःशेषेः कथयिष्यति ॥६॥

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवः समादिश्यांगमात्मनः ।

स पुमान् मयमाहेदं प्रणतः प्राञ्जलिस्थितम् ॥७॥

शृणुष्वैकमनाः पूर्वं यदुक्तं ज्ञानमुत्तमम् ।

युगे युगे महर्षीणां स्वयमेव विवस्वता ॥८॥

शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत्पूर्वं प्राह भास्करः ।

युगानां परिवर्तेन कालभेदोऽत्र केवलम् ॥९॥

अर्थ—सत्ययुग के कुछ शेष रहने पर मय नामक महासुर ने सब वेदांगों में श्रेष्ठ, सारे ज्योतिषिक पिंडों की गतियों का कारण बताने वाले, परम पवित्र और रहस्यमय उत्तम ज्ञान को जानने की इच्छा से कठिन तप करके सूर्य भगवान् की आराधना की ॥२॥

उसकी तपस्या से सतुष्ट और प्रसन्न होकर सूर्य भगवान् ने स्वयं वर चाहने वाले मय को ग्रहों के चरित अर्थात् ज्योतिष शास्त्र का उपदेश दिया।

भगवान् सूर्य ने कहा कि 'तेरा भाव मुझे विदित हो गया है और तेरे तप से मैं बहुत सतुष्ट हूँ, मैं तुझे ग्रहों के महान् चरित का उपदेश करता हूँ, जिससे समय का ठीक ठीक ज्ञान हो सकता है, परन्तु मेरे तेज को कोई सह नहीं सकता और उपदेश देने के लिए मुझे समय भी नहीं है। इसलिए यह पुरुष, जो मेरा अश्व है, तुझे मर्त्या-भांति उपदेश देगा ॥५-६॥

इतना कहकर सूर्य भगवान् अतर्बान हो गये, और सूर्यास्त पुरुष ने, आदेगानुमार, मय से, जो विनीत भाव से झुके हुए और हाथ जोड़े हुए थे, कहा—एकप्रचित्त होकर यह उत्तम ज्ञान सुनो, जिसे भगवान् सूर्य ने स्वयं समय समय पर महर्षियों से कहा था। भगवान् सूर्य ने पहले जिस शास्त्र का उपदेश दिया था वही आदि शास्त्र यह है, युगों के परिवर्तन से केवल काल में कुछ भेद पड़ गया है ॥७-९॥

सूर्य सिद्धान्त के 'स्पष्टाधिकार' नामक अध्याय के १५वें और १६वें श्लोका में 'ज्याएँ निकालने की विधि बतायी गयी है।

राशिलिप्ताष्टमो मास प्रथम ज्याधंमुच्यते ।

तत्तद्विनक्त लब्धोनमिथित तद् द्वितीयकम् ॥१५॥

आधेनैव त्रमात् पिण्डान्मक्ता लब्धोनसयुता ।

खण्डका स्युदघतुविंशज्याधंपिण्डा त्रमादमी ॥१६॥

ज्याओं का मान निकालने के लिए हिन्दू गणितज्ञ एक चरण के २४ भाग करने थे। इस प्रकार एक भाग ३° ४५' का हुआ जिसमें २२५' होते हैं। उक्त कोण की ज्या को भी वे लोग २२५' ही मानते थे। यह पहली ज्या कहलाती थी।

दूसरी ज्या निकालने के लिए पहली ज्या को उसी से भाग देकर लब्धि (=१) को पहली ज्या में से घटाकर, फिर पहली ज्या जोड़ दो, या या कहिए कि पहली ज्या को दुगुना करके फल में से १ घटा दो। तो

$$\text{दूसरी ज्या} = 2 \times 225 - 1 = 449$$

अन्य कोई सी ज्या निकालने के लिए पहले उसे पहली ज्या से भाग दो, फिर इस मजनकत को उक्त ज्या में से घटा दो। शेष को उक्त ज्या और उससे पिछली ज्या के अन्तर में जोड़ दो, तो अगली ज्या प्राप्त हो जायगी। इसी प्रकार चौबीसों ज्याएँ निकाली जाती हैं।

उपर्युक्त मापा में बड़े उत्पद्ये हैं। आधुनिक संकेतलिपि में हम उक्त सूत्र को इस प्रकार लिखेंगे—

$$\text{ज्या (स+१) अ} = \{\text{ज्या स अ—ज्या (स-१) अ}\}$$

$$+\text{ज्या स अ} - \frac{\text{ज्या स अ}}{२२५},$$

जिसमें अ=३°४५' और स=१, २, ३,.....२४,

$$\text{अर्थात् ज्या (स+१) अ} = \text{ज्या (स-१) अ} + \frac{४४९}{२२५} \text{ ज्या स अ।}$$

इस परिकलन में पृथ्वी की त्रिज्या ३४३८ मानी गयी है।

उपरिलिखित सूत्र कहाँ से प्राप्त हुआ ? इसकी कोई उपपत्ति सूर्य सिद्धान्त में नहीं दी गयी है। किन्तु हम उपपत्ति का अनुमान लगा सकते हैं। हमें प्राप्त है

$$\text{ज्या (प±फ)} = \frac{१}{३} (\text{ज्या प कोज् फ} \pm \text{कोज् प ज्या फ}),$$

जिसमें 'त्र' हमने त्रिज्या के लिए रखा है।

$$\therefore \text{ज्या (प+फ)} - \text{ज्या प}$$

$$= \frac{१}{३} \{\text{कोज् प ज्या फ} - \text{ज्या प उज्ज्या फ}\}$$

$$\text{और ज्या प—ज्या (प-फ)}$$

$$= \frac{१}{३} \{\text{ज्या प उज्ज्या फ} + \text{कोज् प ज्या फ}\}$$

$$\therefore \text{ज्या (प+फ)} - \text{ज्या प} = \text{ज्या प—ज्या (प-फ)} - \frac{२ \text{ ज्या प उज्ज्या फ}}{३}$$

$$= \text{ज्या प—ज्या (प-फ)} - \text{ज्या प} \left(\frac{२ \text{ ज्या फ}}{३} \right)^२.$$

यहाँ तक तो यह सूत्र सर्वथा शुद्ध है। अब इसके आगे सूर्य सिद्धान्त के रचयिता निकट मान निकालने के लिए निम्नलिखित प्रसर का आश्रय लेते हैं—

$$\left(\frac{२ \text{ ज्या फ}}{३} \right)^२ = \left(\frac{\text{ज्या फ}}{३} \right)^२ = \left(\frac{२२५}{३४३८} \right)^२$$

$$= \text{लगभग } \frac{१}{२२५}$$

अब उपरिलिखित सूत्र में प=स अ, फ=अ रखने से हमें अभीष्ट सूत्र प्राप्त हो जाता है—

$$\text{ज्या (स+१) अ} = \text{ज्या ग अ} + \frac{\text{ज्या ग अ}}{२२५} \text{ (ज्या ग अ—ज्या (म—१) अ)}$$

इस अंतिम सूत्र में ज्या का वही अर्थ है जो आपुनित्र त्रिकोणमिति में Sinc का होता है। किन्तु ऊपर दिये हुए प्रमेय में ज्या का प्राचीन अर्थ है। हम इस अध्याय के आरम्भ में यना चुके हैं कि ज्या और Sinc में क्या सम्बन्ध है।

आपुनित्र परिचलन से इस सूत्र में केवल इतना अन्तर पड़ता है कि अंतिम भाग २२५ के स्थान पर २३३५०६ लिया जाना है क्योंकि

$$\left(२ \text{ ज्या} \frac{\text{फ}}{२} \right)^२ = (२ \text{ ज्या } १^{\circ} ५२' ३०'')^२ = .००४२८२५५ = \frac{१}{२३३५०६}$$

अतः ज्याओं के मान में बहुत थोड़ा अन्तर पड़ पाता है। व्यावहारिक दृष्टि से सूर्य सिद्धान्त के दिये हुए मान प्रायः ठीक हैं—

अब हम सूर्यसिद्धान्त के 'स्पष्टाधिकार' के श्लोक १७-२७ देने हैं जिनमें ज्या सारणी के आँखे दिये हुए हैं। तत्पश्चात् हम बीस ज्याओं की सारणी भी देंगे जो हमने 'विमान भाष्य' से उद्धृत की है—

तत्त्वादिवनोऽङ्गुलिदृष्टा रूपमूमिपरतंबः ।
 ताङ्गुलौ पञ्चशून्येता वाणरूपगुणेन्दव ॥१७॥
 शून्यत्रोचनपञ्चैकादिच्छद्रूपमुनीन्दव ।
 विषच्चन्द्रानिपुतयो गुणरन्ध्राम्बरादिवन ॥१८॥

मुनिपद्ममनेत्राणि चन्द्राग्निवृत्तदक्षवा ।
 पञ्चाष्टविषयाशीणि कुञ्जरादिवनगादिवन ॥१९॥

रन्ध्रपञ्चाष्टक्यमा वस्त्वङ्कुयमास्तया ।
 वृत्ताष्टशून्यज्वलना नगादिभक्षिवह्नय ॥२०॥

पटपञ्चलोचन गुणाश्चन्द्रनेत्राग्नि वह्नय ।

ममाद्रिवह्निज्वलना रन्ध्रशून्यार्णवाग्नय ॥२१॥

रूपान्निसागरगुणा वस्त्वग्निवृत्तवह्नय ।
 प्रोद्ध्योत्क्रमेणव्यासार्धादुत्क्रमज्यार्धपिण्डका ॥२२॥

मुनयो रन्ध्रयमला रसपटका मुनीश्वरा ।

द्वयपटका रूपपद्दसा सामरार्धवृत्तासना ॥२३॥

सतुवेदा नवाक्षर्या दिङ्मनास्त्र्यर्धकुञ्जरा ।
 नगाम्बरवियच्चन्द्रा रूपमधरसङ्कराः ॥२४॥

शरार्णवहुताशैका

भुजङ्गाक्षि शरेन्दवः ।

नवरूपमहीध्रंका

गजैकाङ्कनिशाकराः ॥२५॥

गुणाश्विरूपनेत्राणि

पावकग्निगुणाश्विनः ।

वस्वर्णवार्थयमलास्तुरङ्गर्तुनगाश्विनः

॥२६॥

नवाष्टनवनेत्राणि

पावकैकयमाग्नयः ।

गजाग्निसागरगुणा

उत्क्रमज्यार्धपिण्डकाः ॥२७॥

सूर्य सिद्धान्त की ज्या सारणी

पिंडों का क्रम	घनु अथवा कोण	भारतीय रीति से ज्या के मान जब त्रिज्या=३४३८	आजकल की रीति से ज्या के मान जब त्रिज्या=३४३८	आजकल की रीति से ज्या के मान जब त्रिज्या=१
१.	३० ४५'	२२५	२२४.८५	.०६५४
२.	७० ३०'	४४९	४४८.९५	.१३०५
३.	११० १५'	६७१	६७०.७२	.१९५१
४.	१५०	८९०	८८९.८२	.२५८८
५.	१८० ४५'	११०५	११०५.०१	.३२१४
६.	२२० ३०'	१३१५	१३१५.०५	.३८२७
७.	२६० १५'	१५२०	१५२०.५८	.४४२३
८.	३००	१७१९	१७१९.००	.५०००
९.	३३० ४५'	१९१०	१९१०.०५	.५५५५
१०.	३७० ३०'	२०९३	२०९३.०५	.६०८८
११.	४१० १५'	२२६७	२२६७.०२	.६५९४
१२.	४५० ०	२४३१	२४३१.०१	.७०७१
१३.	४८० ४५'	२५८५	२५८४.७०८	.७५१९
१४.	५२० ३०'	२७२८	२७२७.५५	.७९३४
१५.	५६० १५'	२८५९	२८५८.५५	.८३१५
१६.	६०० ०	२९७८	२९७७.३१	.८६६०
१७.	६३० ४५'	३०८४	३०८३.४५	.८९६९
१८.	६७० ३०'	३१७७	३१७६.३७	.९२३९
१९.	७१० १५'	३२५९	३२५५.७५	.९४६९
२०.	७५० ०	३३२१	३३२०.८५	.९६५९
२१.	७८० ४५'	३३७२	३३७१.९५	.९८०८
२२.	८२० ३०'	३४०९	३४०८.७५	.९९१४
२३.	८६० १५'	३४३१	३४३०.८५	.९९७८
२४.	९०० ०'	३४३८	३४३८.००	१.००००

आर्यभट्ट

आर्यभट्ट की आर्यभटीय का उल्लेख हम पिछले अध्यायो में कर चुके हैं। उक्त पुस्तक में आर्यभट्ट ने ज्या सारणी बनाने के दो नियम दिये हैं जिनमें से एक तो प्रायः वही है जो सूर्य सिद्धान्त में दिया हुआ है किन्तु आर्यभट्ट ने उसे दूसरा रूप दे दिया है—

“पहली ज्या म से, उसको उसी से भाग देकर घटा दो। इस प्रकार सारणीय ज्याओ का दूसरा अन्तर प्राप्त होगा। कोई सा भी अन्तर निकालने के लिए उससे पिछले समस्त अन्तरा के जोड़ को पहली ज्या से भाग देकर, उससे पिछले अन्तर में से घटा दो। इस प्रकार सारे अन्तर प्राप्त हो जायेंगे।”

इन नियमों का प्रमाण आर्यभटीय के ‘गीतिकापाद’ का १० वाँ श्लोक है—

मलि मलि फलि घलि णलि भलि डलि हस्क स्वकि किप्प क्षकि किप्प ॥

एलकि किप्प हक्य घाहा स्त सृग् श्क ड्व त्क प्त फ छ कलार्पज्या ॥१०॥

मान लीजिए कि सारणीय ज्याओं के अन्तर क्रमशः $a_1, a_2, a_3, \dots, a_n$ हैं। तो उपरिलिखित सूत्र के अनुसार, प्रत्येक $3^\circ 45'$ की वृद्धि के लिए

$$a_{n+1} = a_n - \frac{a_1 + a_2 + \dots + a_n}{\text{ज्या } 3^\circ 45'}$$

किन्तु ज्याओं के जो मान इन सूत्रों से आते हैं, आर्यभट्ट ने ठीक वही मान अपनी सारणी में नहीं दिये हैं बरन् अगले अथवा पिछले पूर्णांक में उन्हें परिणत कर दिया है। यह सम्भव है कि आर्यभट्ट ने उपरिलिखित सूत्र से उनका निकट मान निकाला हो और फिर शत कोणों ($30^\circ, 45^\circ, 60^\circ$) की ज्याओं से उनकी तुलना करके उनका सशोधन कर दिया हो। हम यहाँ आर्यभट्ट की ज्या सारणी के साथ साथ ज्याओं के आधुनिक मान भी देते हैं। यह सारणी हमने इस लेख से प्राप्त की है—

A N Singh Hindu Trigonometry—Proc Banaras Math. Soc, New Series I (1939) 77-92

अन्तर	मूत्र से परिकलित	आर्यभट्ट का दिया हुआ मान	आधुनिक मान
अ _१	२२५	२२५	२२४.८५६
अ _२	२२४	२२४	२२३.८९३
अ _३	२२२.००५	२२२	२२१.९७१
अ _४	२१९.०१८	२१९	२१९.१००
अ _५	२१५.०४५	२१५	२१५.२८९
अ _६	२१०.०८९	२१०	२१०.५५७
अ _७	२०४.१५६	२०५	२०४.९२३
अ _८	१८९.२४५	१९९	१९८.४११
अ _९	१९१.३६०	१९१	१९१.०५
अ _{१०}	१८२.५१२	१८३	१८२.८७२
अ _{११}	१७३.६९४	१७४	१७३.९०९
अ _{१२}	१६३.२४५	१६४	१६४.२०२
अ _{१३}	१५३.१९६	१५४	१५३.७९२
अ _{१४}	१४२.५१२	१४३	१४२.७२४
अ _{१५}	१३०.८७६	१३१	१३१.०४३
अ _{१६}	११८.२९४	११९	११८.९०३
अ _{१७}	१०५.७४५	१०६	१०५.९५३
अ _{१८}	९२.२९८	९३	९३.९०३
अ _{१९}	७८.८८०	७९	७८.१८५
अ _{२०}	६४.५२७	६५	६५.३०७
अ _{२१}	५०.२४०	५१	५१.०८७
अ _{२२}	३६.०१४	३७	३६.६४८
अ _{२३}	२१.८४९	२२	२२.०५१
अ _{२४}	६.७५२	७	७.३६१

वराह मिहिर

वराह मिहिर एक भारतीय ज्योतिषी थे। इनका जीवन काल निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता किन्तु इन्होंने अपनी ग्रन्थ रचना पाँचवीं शताब्दी में की, इसमें सन्देह नहीं है। इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में एक वाक्य प्रचलित है—

नवाविक पंचशत संस्य , शाके
वराह मिहिराचार्यो दिवं गतः ।

यह पता नहीं कि यह उक्ति ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त के टीकाकार पृथ्वी स्वामी की है अथवा आमराज की। इस वाक्य के अनुसार बराह मिहिर की मृत्यु लगभग ५८८ ई० (साके ५०९) में टहरती है। और उक्त ज्योतिषी का सत्रसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पचसिद्धान्तिका' ५०६ ई० में लिखा गया था, ऐसा अनुमान उक्त पुस्तक के पाठ से ही लगता है। अन बराह मिहिर का जन्म ४८६ के पश्चात् का नहीं हो सकता क्योंकि साधारणतया कोई लगभग २० वर्ष की अवस्था से पहले अपनी लेखनी नहीं उठाता।

बराह मिहिर अश्वत्थी (उज्जयिनी) के निवासी थे। इनके पिता का नाम आदित्य-दास था और इन्होंने अपनी अधिकांश शिक्षा उन्हीं से प्राप्त की। इन्होंने गणित के अतिरिक्त यात्रा, विवाह, संहिता आदि विषयों पर भी ग्रन्थ लिखे हैं। रचना काल के अनुसार इनके ग्रन्थ इस प्रकार हैं—

पचसिद्धान्तिका, विवाहपटल, बृहज्जातक, लघुजातक, यात्रा, बृहत्संहिता।

उपरिलिखित ग्रन्थों में से विवाह और यात्रा सम्बन्धी ग्रन्थों को छोड़ कर इनके शेष समस्त ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

बराह मिहिर ने श्री ३° ४५' के अन्तर से विभिन्न कोणों की एक ज्या सारणी दी है किन्तु इन्होंने गोले की त्रिज्या को ६० माना है। ज्याओं का मान निकालने के लिए इन्होंने इस सूत्र का प्रयोग किया है—

$$\text{ज्या} \frac{a}{2} = \sqrt{\frac{1}{2} \text{उज्ज्या } a}।$$

सबल एक भारतीय ज्योतिषी थे जिनका जीवन काल ६०० ई० के आसपास माना जाता है। इन्होंने ५९८ ई० में एक ग्रन्थ 'वीरुद्धिदत्तन्त्र' लिखा जिसमें ज्या और उज्ज्या सारणियाँ दी गयी हैं। इन्होंने गोले की त्रिज्या को सूर्य सिद्धान्त की भाँति ३४३८ माना है। इसमें अतिरिक्त एक अन्य ज्या सारणी भी दी है जिसमें त्रिज्या १५० मानी गयी है।

सारणियों के सम्बन्ध में दो शब्द ब्रह्मगुप्त के विषय में भी कहने हैं।

इनकी कृतियों का उल्लेख पिछले कई अध्यायों में हो चुका है। इन्होंने भी एक ज्या सारणी दी है जिसमें त्रिज्या ३२७० ली है। ज्या का मान निकालने में इन्होंने इस सूत्र का भी प्रयोग किया है—

$$\text{ज्या} \left(\frac{\pi}{2} - \frac{p}{2} \right) = \sqrt{1 - \text{ज्या}^2 \frac{p}{2}}।$$

सन् १५० के लगभग एक भारतीय ज्योतिषी (द्वितीय) आर्यभट्ट हुए हैं। इन्होंने भी एक आर्य सिद्धान्त लिखा है, जिसकी एक प्रति पूना के डकन कालिज में सुरक्षित है। इस पुस्तक का उल्लेख हम अंकगणित के अध्याय में कर चुके हैं। वहीं पर हम यह भी कह चुके हैं कि 'अलवेरूनी ने जिन दो आर्यभट्टों का उल्लेख किया है, वह वस्तुतः एक ही व्यक्ति थे।' अलवेरूनी का अभिप्राय इन दूसरे आर्यभट्ट से हो ही नहीं सकता था क्योंकि जो बातें अलवेरूनी ने लिखी हैं, द्वितीय आर्यभट्ट पर विलकुल भी लागू नहीं हैं। यदि यह मान भी लिया जाय कि द्वितीय आर्यभट्ट भी अलवेरूनी से पहले हुए थे तो भी यह स्पष्ट है कि इनका आर्य सिद्धान्त अलवेरूनी ने देखा ही नहीं था। इनके आर्य सिद्धान्त में अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति और गोला—समी विषयों का समावेश है। इन्होंने इस सूत्र

$$\text{ज्या } \frac{1}{2} \left(\frac{\pi}{2} \pm p \right) = \sqrt{\frac{1}{2} (1 \pm \text{ज्या } p)}$$

की सहायता से ज्या सारणी बनायी है जो सूर्य सिद्धान्त की सारणी से अभिन्न है।

अरब

उपर अरब देश भी त्रिकोणमिति की ओर जागरूक हो चुका था। अल्वाटेंजिनस उक्त देश का एक प्रसिद्ध ज्योतिषी हुआ है। इसका पूरा नाम मुहम्मद बिन जाविर अलवतानी था और जीवन काल लगभग ८५०-९२९। इसने स्वयं बहुतसे ज्योतिषीय अवलोकन किये और टोलेमी के दिये हुए मानों का शोधन किया। इसी ने अपने देश में ज्याओं और स्पज्याओं का प्रयोग आरम्भ किया था। इसने ज्योतिष पर एक ग्रन्थ लिखा जिसकी पाण्डुलिपि आजतक रोम में सुरक्षित है।

अबुल वफ़ा (९४०-९९८) की सारणियों का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। इसने यूनान की गणितीय पुस्तकों के अनुवाद किये और डायफ़्रेंट्स पर एक टीका लिखी किन्तु ये सब कृतियाँ लुप्त हो चुकी हैं। इसके द्वारा अल्माजस्त का बड़ा प्रचार हुआ। इसकी ज्यामितीय रचनाओं (Geometrical Constructions) की एक पुस्तक अब भी प्राप्य है जिसमें १२ अध्याय हैं, किन्तु वह इसने स्वयं नहीं लिखी। वह इसके एक शिष्य ने इसके व्याख्यानों के आधार पर लिखी है। इसने त्रिकोणमिति के प्रमेयों को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया। कह सकते हैं कि त्रिकोणमिति को एक स्वतन्त्र विषय का रूप देना इसी का काम था। इसने ये सूत्र भी सिद्ध किये थे—

$$१-कोज् क्ष=२ ज्या^२ \frac{क्ष}{२},$$

$$ज्या क्ष=२ ज्या \frac{क्ष}{२} कोज् \frac{क्ष}{२}।$$

(४) १००० ई० से १७०० ई० तक

भारत

भास्कर

भास्कराचार्य की ज्योतिष सम्बन्धी पुस्तक 'सिद्धान्त शिरोमणि' है जिसके मुख्य खण्ड चार हैं—लीलावती, बीजगणित, गणिताध्याय और गोलाध्याय। इनमें से प्रथम दोनो खण्डों ने तो अब स्वतन्त्र पुस्तकों का रूप धारण कर लिया है। इन दोनों का उल्लेख हम यथास्थान कर चुके हैं। अब 'सिद्धान्त शिरोमणि' से अधिकतर लेखकों का तात्पर्य तीसरे और चौथे खण्डों से ही होना है।

'सिद्धान्त शिरोमणि' की आज तक अनेक टीकाएँ छप चुकी हैं। आर्यभट्ट के टीकाकार परमादीश्वर ने एक पुस्तक 'सिद्धान्त दीपिका' भास्कर के ग्रन्थों पर ही लिखी है। एक अन्य प्रसिद्ध टीका है ज्ञानराज के पुत्र 'सूर्यदास' की लिखी हुई, जिसका नाम 'सूर्य प्रकाश' है। 'गोलाध्याय' का अंग्रेजी अनुवाद बापू देव शास्त्री ने सन् १८६१ में 'विश्वविश्वविद्यालय इण्डिका' में छपवाया था।

'सिद्धान्त शिरोमणि' का एक अध्याय यन्त्रों पर है। इसमें एक स्वचल (Automaton) का भी उल्लेख है जिसमें आचार्य महोदय के अनुसार चिरस्थायी गति (Perpetual Motion) प्राप्त हो सकती है। उक्त यन्त्र का वर्णन इस प्रकार है। 'लकड़ी का एक पहिया बना कर उसमें समान दूरियों पर आठे लगाओ। आठे सीधे नहीं घेरन् एक ओर झुके हुए हों और अन्दर से पोले हों। उनके एक ओर समान आकार के छेद बने हों। इन छेदों में पारा डालकर छेदों को आधा भर दो और छेदों का मुँह बन्द कर दो। फिर इस पहिये को एक घुरी पर बस दो। अतः में घुरी को पहिये सहित दो स्तम्भों के बीच में स्थिर कर दो। पहिये का एक बार गति देने से पहिया सदैव घूमता रहेगा।'।

बहुत से आधुनिक गणितज्ञों ने भी चिरस्थायी गतिमान् यन्त्र बनाने के प्रयत्न किये हैं जो उपरिलिखित यन्त्र के वर्णन से पूरा पूरा मेल खाते हैं। स्पष्ट है कि उक्त यन्त्र बनी बन ही न पाया होगा।

मास्कर ने भी गोले की त्रिज्या ३४३८ मानकर एक ज्या सारणी बनायी है। इन्होंने भी कोणों का अन्तर $3^{\circ} 45'$ लिया है। सारणी बनाने की इन्होंने सात विधियाँ दी हैं—छ सैद्धान्तिक और एक आलेखिक (Graphical)।

अन्य देश

स्पेन में एक ज्योतिषी हुआ है इब्न-अल-जर्काली जिसका जीवन काल लगभग १०२९-१०८७ था। यह अर्ज़किल (Arzachel) नाम से भी प्रसिद्ध है। इसने भी ज्याओं और उज्ज्याओं की एक सारणी बनायी है जिसमें गोले की त्रिज्या को १५० माना है।

टॉमस फ्रिंक (Thomas Fink) डैन्मार्क (Denmark) का एक गणितज्ञ (१५६१-१६५६) था। इसने १५८३ में ज्यामिति पर एक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें त्रिभुजों के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण सूत्र दिया। यदि हम किसी त्रिभुज के शीर्षों को का, खा, गा से और भुजाओं को क, ख, ग से निरूपित करें तो उक्त सूत्र इस प्रकार लिखा जायगा—

$$\frac{\frac{1}{2}(क+ख)}{\frac{1}{2}(क+ख)-ख} = \frac{\text{स्प } \frac{1}{2}(१८०-गा)}{\text{रप } [\frac{1}{2}(१८०-गा)-खा]}$$

बीटा का उल्लेख हम बीजगणित के परिच्छेद में कर चुके हैं। इसने उपरिलिखित सूत्र को यह आधुनिक रूप दिया—

$$\frac{क+ख}{क-ख} = \frac{\text{स्प } \frac{1}{2}(का+खा)}{\text{स्प } \frac{1}{2}(का-खा)}।$$

कह सकते हैं कि बीटा के समय से ही समतल और गोलीय त्रिभुजों का त्रिकोण-मितीय निर्धारण होता है। बीटा की त्रिकोणमिति को केवल इतनी ही देन नहीं है। उसने १३ दशमलव स्थानों तक ज्या $१'$ का मान निकाला और उसी की सहायता से अपनी ज्या सारणी तैयार की।

बार्थोलोमस पिटिस्कस (Bartholomaeus Pitiscus) एक जर्मन गणितज्ञ था जिसका स्थिति-काल १५६१-१६१३ था। यह व्यवसाय से घर्म प्रचारक था किन्तु इसकी रुचि गणित में थी। त्रिकोणमिति नाम से सबसे पहली पुस्तक इसी ने प्रकाशित की थी। इसने बड़ी लगन के साथ प्राकृतिक त्रिकोणमितीय फलनों के मान निकाले। इसी के समय में गणितज्ञों ने उक्त फलनों को लम्बाइयों के बदले अनुपातों का रूप देना आरम्भ किया। इसने अपनी पुस्तक में बायीं ओर ज्याओं, स्पज्याओं और

व्युत्प्रेक्षाओं के मान दिये हैं और दाहिनी ओर दोष तीनों फलनों के जिन्हें इसने 'पूरक' फलन (complements) कहा है। इसके अतिरिक्त उक्त सारणिया में इसने १०" तक के अनुपाती भाग (Proportional Parts) भी दिये हैं। त्रिग्या को इसने १०^० माना है। इसके अतिरिक्त इसने रूहेटिक्स की सारणियों का भी संशोधन किया है।

इस सम्बन्ध में जॉन न्यूटन (John Newton) (१६२२-१६७८) का नाम भी उल्लेखनीय है। इसने १६५८ में दो भागों में त्रिकोणमिति पर एक ग्रन्थ 'ट्रिगो-मेट्रिया ब्रिटानिका' (Trigonometria Britannica) प्रकाशित किया। कहते हैं कि उस समय तब की त्रिकोणमिति सम्बन्धी समस्त पुस्तकों में यही सबसे सम्पूर्ण थी। इसमें १ से लेकर १००, ००० तक की सरयाओं के लघुगणक भी दिये गये थे।

जैम्स ग्रेगरी (James Gregory) (१६३८-१६७५) स्काटलैण्ड का एक गणितज्ञ और ज्योतिषी था। इसने ऐबर्डीन (Aberdeen) में शिक्षा पायी और गणित और भौतिकी दोनों में ख्याति प्राप्त की। १६६९-७४ तक सेण्ट ऐन्ड्रूज (St Andrews) में प्राध्यापक रहा। १६७४ में यह ऐडिन्बरा (Edinburgh) में प्राध्यापक नियुक्त हुआ किन्तु एक ही वर्ष पश्चात् इसकी मृत्यु हो गयी। १६६३ में इसने एक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें एक नये प्रकार के दूरबीन (Telescope) का आविष्कार दिया गया था। १६६५ में यह पढ़ाया गया जहाँ कुछ वर्षों तक अध्ययन करता रहा। १६६७ में इसने एक अन्य पुस्तक प्रकाशित की जिसमें वृत्त और अति परवलय के क्षेत्रफल अनन्त श्रेणियों के रूप में दिये गये थे। १६६८ में इसने ज्यामिति पर एक पुस्तक लिखी जिसमें वक्रों के चापकलन (Rectification) और परिक्लमण दोसो के आयतनों के सूत्र दिये गये थे।

शुद्ध गणित में इसकी कई गवेषणाएँ महत्वपूर्ण हैं—

(1) अभिसारी और अपसारी श्रेणियों का अन्तर।

(11) π की असुमेयता

(1II) $\log x$, $\log^2 x$ और व्युत्प्रेक्षा⁻¹ x का प्रसार। इन में से $\log^2 x$ का प्रसार

इस प्रकार का है—

$$\log^2 x = x - \frac{1}{2} x^2 + \frac{1}{3} x^3 - \frac{1}{4} x^4 + \dots$$

यह फल 'लेगरी श्रेणी' के नाम से प्रसिद्ध है।

आँस ने अत्यधिक काम लेने के कारण जीवन के अन्तिम दिनों में बेगरी अन्धा हो गया था।

अब दः म्वात्रे (De Moivre) (१६६७-१७५४) का उल्लेख करता आवश्यक हो गया है। इसका जन्म नी फ्रांस में हुआ था किन्तु अष्टारह वर्ष की अवस्था में वह लन्दन में ही रहा। अतः इसका नाम भी अंग्रेज गणितज्ञों में ही गिना जाना चाहिए। विपदावस्था के कारण इसकी संस्वागत अध्ययन तो लगभग में ही छोड़ देना पड़ा। यह अपनी जीविका व्यक्तिगत निधन और गणितीय पहली दर्जाअल द्वारा चलाने लगा। इसका अधिकांश समय लन्दन के एक कॉफी गृह में बीतता था जहाँ यह लोगों द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रश्नों के उत्तर देकर किन्ही प्रकार निर्वाह किया करता था। इसकी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हुई हैं। पहली The Doctrine of Chances में इसने आवर्त श्रेणी (Recurring Series) सिद्धान्त, आंशिक भिन्न (Partial Fractions) और संयुक्त सम्भाव्यता (Compound Probability) सिद्धान्त दिये हैं। दूसरी पुस्तक में इसके त्रिकोणमितीय फल हैं।

दः म्वात्रे का सबसे महत्त्वपूर्ण त्रिकोणमितीय प्रमेय यह है—

$$\cos \theta + j \sin \theta = (\cos \theta + j \sin \theta)^n,$$

जिसमें $j = \sqrt{-1}$ । यह फल 'दः म्वात्रे प्रमेय' कहलाता है। इसी प्रमेय की सहायता ने इसने कोज् म क्ष और ज्या स क्ष के, कोज् क्ष और ज्या क्ष के घातों के पदों में, प्रसार निकाले हैं। यद्यपि उक्त प्रमेय कोट्स (Cotes) को भी ज्ञात था, तथापि उसे आधुनिक रूप दः म्वात्रे ने ही दिया था। यह कहने में अत्युक्ति नहीं होगी कि त्रिकोणमिति का वर्तमान विकास बहुत कुछ उक्त प्रमेय पर ही आधृत है।

दः म्वात्रे ने एक और महत्त्वपूर्ण कार्य यह किया कि व्यंजक

$$y^n - 2 \cos \theta y^n + 1$$

के गुणलक्षण निकाले।

दः म्वात्रे की मृत्यु के सम्बन्ध में एक लोकोक्ति है कि एक दिन उसने निश्चय किया कि अब उसे प्रति दिन अपना सोने का समय १५ मिनट बढ़ाते जाना चाहिए। मान लीजिए कि जब उसने यह बात कही थी, वह प्रतिदिन आठ घण्टे सोता था। तो अगले दिन वह ८ $\frac{1}{4}$ घण्टे सोयेगा, उससे अगले दिन ८ $\frac{1}{2}$ घण्टे और इसी प्रकार $\frac{3}{4}$ घण्टे प्रति दिन बढ़ाता जायगा। स्पष्ट है कि ६५ वें दिन उसकी मृत्यु हो गयी होगी

(५) अट्टारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियाँ

अट्टारहवीं शताब्दी में पदार्पण करते ही टॉमस फॅण्टेल द लॅग्नी (Thomas-Fantil de Lagny) का नाम दृष्टिगोचर होता है। यह फ्रांस का एक गणितज्ञ था। जिसका जीवन काल १६६०-१७०४ था। इसने मूल निकालने और गोले के घनण (Cubature) आदि पर अनेक अमिषत्र लिखे। समीकरण मिथान्त सम्प्रदाय इसके कुछ फला का हेजे (Halls) ने बाद को सङ्ग्रहण किया है। १७१० में लॅग्नी ने ही सर्व प्रथम रूप सहा और व्युत्पत्ति सहा के सांख्यिक सूत्र दिये हैं। इसी ने सबसे पहले त्रिजोणमितीय फलनों की आवर्तता (periodicity) सिद्ध की है। उक्त समय तक दशमलव मिश्रों का प्रचार होने लगा था किन्तु लॅग्नी ने ही सर्व प्रथम १७१९ में एक अमिषत्र में स्पष्ट रूप से लिखा कि ज्या $९०=१$ इससे पहले प्रायः समस्त लेखक ज्या $९०=$ त्रिज्या देते थे। और त्रिज्या ये लोग अधिकतर ६० की लेते थे।

लॅग्नी की मृत्यु के विषय में एक कहानी प्रसिद्ध है। लॅग्नी मृत्यु शय्या पर पड़ा था जब उसने माँपेसियस (Maupertius) को बुलाया। माँपेसियस ने उससे पूछा कि '१२ का वर्ग कितना होता है?' लॅग्नी उठकर बैठ गया, प्रश्न का उत्तर दिया और परलोक सिधार गया।

ऑगस्टस डी मॉर्गन (Augustus De Morgan) (१८०६-१८७१) का जन्म मद्रास प्रान्त के मदुरा नगर में हुआ था। १४ वर्ष की अवस्था में ही इसने तीन भाषाएँ—लॅटिन, यूनानी और हिब्रू सीख ली थी। १६ वर्ष की अवस्था में इसने केम्ब्रिज के ट्रिनिटी कॉलेज में नाम लिखा लिया। उन दिना एम० ए० की उपाधि लेने से पहले कुछ धार्मिक परीक्षाएँ भी देनी पड़ती थी। इन परीक्षाओं पर इसको नैतिक आपत्ति थी। अतः इसने एम० ए० की उपाधि ली ही नहीं। १८२८ में यह लन्दन के यूनिवर्सिटी कॉलेज में प्राध्यापक नियुक्त हो गया। १८३१ में कॉलेज की प्रबन्ध समिति से किसी बात पर मतभेद होने के कारण इसे उक्त स्थान से त्यागपत्र देना पड़ा। जो व्यक्ति उस स्थान पर नियुक्त हुआ, सन् १८३६ में उसको डूबने से मृत्यु हो गयी। तब डी० मॉर्गन ने फिर उसी गद्दी का कार्यभार संभाला।

डी मॉर्गन अध्यापन में अद्वितीय था। यह छोटी छोटी टिप्पणियाँ लिखकर ले जाया करता था और उनकी सहायता से धारावाही रूप से व्याख्यान दिया करता था। लिखने में भी यह सिद्धहस्त था किन्तु फिर भी इसकी सलानी में यह बात नहीं आती थी जो वक्ता में आती थी। इस के दो शिष्य बहुत प्रसिद्ध हुए हैं—टॉडहिल

(Todhunter) और राउथ (Routh)। डी मॉर्गन ने अनेक पुस्तकें लिखी हैं जिनमें से ये प्रसिद्ध हो गयी हैं—

(i) त्रिकोणमिति और द्विक बीजगणित (Trigonometry and Double Algebra) (१८४९)—इसमें सांकेतिक कलन (Symbolic Calculus) की उस समय तक की समस्त संहतियों (Systems) का विवरण दिया हुआ है।

(ii) त्रिकोणमिति के मूलतत्त्व और त्रिकोणमितीय विश्लेषण (Elements of Trigonometry and Trigonometrical Analysis) (१८३७)—इसमें एक प्रकार से डी मॉर्गन ने चलन कलन की भूमिका वाँची है।

(iii) फलन कलन (Calculus of Functions)

(iv) सम्भाव्यता सिद्धान्त (Theory of Probability)

(v) विरोधाभास संग्रह (Budget of Paradoxes)—जो इसकी पत्नी ने, इसकी मृत्यु के पश्चात्, १८४७ में प्रकाशित किया।

तर्कशास्त्र में डी मॉर्गन का कार्य और भी महत्त्वपूर्ण रहा है। इसने कई पुस्तकें लिखी हैं जिनमें तर्कशास्त्रियों और गणितज्ञों में समझौता कराने का प्रयत्न किया है। १८६६ में इसे फिर कॉलज छोड़ देना पड़ा। इसका कारण इसके धार्मिक विचार थे जो प्रबन्ध समिति के सदस्यों के विचारों से मेल नहीं खाते थे। १८६७ में इसका युवा पुत्र, जो बड़ा ही होनहार था, स्वर्गवासी हो गया। तब से यह रुण ही रहने लगा और चार वर्ष पश्चात् इसकी मृत्यु हो गयी।

डी मॉर्गन की बहुत सी कृतियाँ तो पुस्तकों, पत्रिकाओं और संदर्भ ग्रन्थों में प्रकाशित हो चुकी हैं किन्तु अब भी बहुत सी सामग्री ऐसी है जो इसने विद्यार्थियों के लिए तैयार की थी और अभी तक अमुद्रित ही पड़ी है। डी मॉर्गन के विषय में कहा जाता है कि “यह जितना विद्वान् था, उतना ही दयालु भी था। इसके द्वार से कभी कोई याचक खाली नहीं जाता था।”

हमने इस अव्याय में केवल उन गणितज्ञों का उल्लेख किया है जिनका मुख्य कार्य त्रिकोणमिति में हुआ है। अठ्ठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में अनेक गणितज्ञ हुए हैं और उन्होंने बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। किन्तु उनमें से प्रायः सभी का गवेषणा कार्य ‘फलन सिद्धान्त’ (Theory of Functions) पर हुआ है। सच पूछिए तो आज समस्त शुद्ध गणित दो मुख्य विभागों में बँट गया है—ज्यामिति और विश्लेषण। विश्लेषण के अनुसन्धानक प्रायः इस विषय की सभी शाखाओं पर अपनी

लेगनी उठाने हैं, जैसे बीजगणित, त्रिकोणमिति, अवकल समीकरण, समाकल समीकरण और ये सब शाखाएँ दिन पर दिन फलन सिद्धान्त में समाविष्ट होती चली जा रही हैं। अतः इन गणितज्ञों में से ऐसों को छोड़ निवालना बचिन है जिन्होंने केवल त्रिकोणमिति पर कार्य किया है। या यों कहिए कि त्रिकोणमिति की स्वतन्त्र सत्ता समाप्त होती जा रही है और वह फलन सिद्धान्त में समानी जा रही है। अतएव, इन गणनादिओं के शेष गणितज्ञों में से जिन्होंने त्रिकोणमिति पर भी कार्य किया होगा उनकी कृतियों का उत्तरेत अगले परिच्छेद में होगा।

अध्याय ७

कलन और फलन सिद्धान्त

(१) नाम और कर्म

यों तो 'कलन' के अनेक अर्थ हैं किन्तु एक अर्थ 'हिसाब लगाना' (Calculation) भी है। संस्कृत-अंग्रेजी के सर्वमान्य शब्दकोषों में मोनियर विलियम्स (Monier-Williams) और वामन शिवराम आप्टे के कोष प्रमुख हैं। उक्त दोनों कोषों में 'कलन' का यह अर्थ भी दिया है। प्रायः संस्कृत-हिन्दी और हिन्दी-हिन्दी कोष इन्हीं दोनों कोषों से सामग्री ग्रहण करते हैं। हमने इस प्रकार के प्रायः सभी कोष देखे हैं जो बाज़ार में उपलब्ध हैं। कलन का उक्त अर्थ प्रायः सभी में दिया गया है। इसी शब्द में उपसर्ग लगाने से 'संकलन' और 'व्यवकलन' बने हैं। 'संकलन' का अर्थ है—जोड़ना, इकट्ठा करना, अच्छे विषयों को चुनकर एकत्र करना। प्रायः इस प्रकार के ग्रन्थ को भी 'संकलन' ही कहते हैं। 'व्यवकलन' का अर्थ है "घटाना, पृथक करना, विरह।"

'कलन' (Calculus) का शास्त्र के अर्थ में प्रवर्तन सबसे पहले पं० सुधाकर द्विवेदी ने किया था। द्विवेदीजी काशी के समीप खजुरी ग्राम के निवासी थे। इनका जीवन काल १८६०-१९२२ ई० था। यह आरम्भ में राजकीय संस्कृत कॉलिज, काशी के पुस्तकाध्यक्ष थे। सन् १८९० में पं० वापू देव शास्त्री के सेवा-निवृत्त होने पर ये उनके स्थान पर गणित और ज्यौतिष के मुख्य अध्यापक नियुक्त हुए। शास्त्रीजी ने 'चलन कलन' और 'चलराशि कलन'—इन पदों का प्रयोग आरम्भ किया और द्विवेदीजी ने इनका प्रचलन किया। अंग्रेजी सरकार से इन्हें महामहोपाध्याय की पदवी मिली थी। इन्होंने संस्कृत में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें से अधिकांश ज्यौतिषीय विषयों पर हैं। इनके कुछ ग्रन्थ, जिनका संवन्ध गणित से है, ये हैं—

- (१) गोलीय रेखागणित (Spherical Geometry)
- (२) यूक्लिड के छठवें, ११ वें और १२वें भागों का संस्कृत में श्लोकवद्ध अनुवाद।
- (३) गणक-तरंगिणी जिसमें भारतीय ज्यौतिषियों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है (१८९१)।

(४) सीलावती की सोपपत्ति टीका (१८७९)

(५) मास्करीय बीजगणित की सोपपत्ति टीका (१८८९)

(६) बराह मिहिर की पंचसिद्धान्तिका की टीका 'पंचसिद्धान्तिका प्रकाश' ।

यह डा० पीवी की अंग्रेजी टीका और भूमिका सहित १८९० में छपी थी ।



चित्र ८३—सुधाकर द्विवेदी (१८६०-१९२२)

(७) सूर्य सिद्धान्त की सुधावर्णिणी टीका । इसका दूसरा संस्करण बंगाल की एशियाटिक सोसायटी से सन् १९२५ में प्रकाशित हुआ और अब भी प्राप्य है ।

(८) ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त टीका सहित (१९०२)

(९) द्वितीय आर्यभट्ट का महासिद्धान्त टीका सहित (१९१०)

उपरिलिखित समस्त ग्रन्थ संस्कृत में हैं। द्विवेदीजी ने कई गणितीय ग्रन्थ हिन्दी में भी लिखे हैं—

(i) चलन कलन (Differential Calculus)

(ii) चलराशि कलन (Integral Calculus)

(iii) समीकरण मीमांसा (Theory of Equations)

चलन कलन

‘चलन’ का अर्थ है ‘चाल’ या ‘चलना’। अतः ‘चलन कलन’ का अर्थ हुआ ‘चाल या गति का हिसाब’। वास्तव में ‘चलन कलन’ का यही कर्म है। मान लीजिए कि दो राशियों y , x में यह सम्बन्ध है—

$$x = 2y^2 + 1 \quad (1)$$

इस समीकरण में यदि हम $y=2$ रखें तो $x=9$ होता है। यदि $y=2\frac{1}{2}$ तो $x=11\frac{1}{4}$, और यदि $y=3$ तो $x=19$ । जैसे जैसे हम y को भिन्न भिन्न मान देते जायेंगे, x का भी मान बदलता जायगा।

कोई चिह्न जिसका मान बदलता रहता है चर (Variable) कहलाता है।

वह चिह्न जिसका मान नहीं बदलता, अचर (Constant) कहलाता है।

(1) में y एक चर है, x और 1 अचर हैं।

इसके अतिरिक्त, समीकरण (1) में y को हम स्वेच्छा से कोई भी मान दे सकते हैं, इसलिए y को स्वतन्त्र चर (Independent Variable) कहते हैं। x का मान y के मान पर निर्भर है। अतः x को परतन्त्र चर (Dependent Variable) कहते हैं।

समीकरण (1) में y के प्रत्येक मान के अनुसार x का केवल एक निश्चित मान होता है। कोई चिह्न जिसका, y के प्रत्येक मान के लिए केवल एक ही और निश्चित मान होता है, y का फलन (Function) कहलाता है। इस प्रकार, समीकरण (1) में x , y का फलन है।

स्पष्ट है कि किसी फलनीय सम्बन्ध में एक राशि की परिवर्तन दर (Rate of change) दूसरी राशि की परिवर्तन दर पर निर्भर होती है। इस परिवर्तन दर का अध्ययन ही चलन कलन का ध्येय है।

फलनों के उदाहरण

(1) यदि $r = y - 6$, तो y के प्रत्येक मान के लिए r का केवल एक ही और निश्चित मान होता है। इस में r , y का फलन है। y एक चर है और y और 6 अचर हैं।

(11) किसी वृत्त के क्षेत्रफल को और निज्यात्र में यह सम्बन्ध होता है, $\theta = -\pi^2$ । इस सम्बन्ध में π एक चर है, π^2 एक अचर है और θ , π का फलन है।

(111) यदि $T = \frac{1}{4} \pi \theta^2 + 10$ जहाँ $T = 10$, तो T एक चर है, $\frac{1}{4}$, π , 10 अचर हैं और T , θ का फलन है।

अवकल गुणांक (Differential Coefficient)

मान लीजिए कि

$$r = y^2$$

y का एक फलन है। अब इस फलन के आचरण का अध्ययन कीजिए, जब $y = 2$. y के 2 के समीप के मानों तथा r के संगत मानों की तालिका निम्नप्रद होगी—

y	2.5	2.3	2.1	2.01	2.001
r	6.25	5.29	4.41	4.0401	4.004001

चिन्ह $y = 2$ पर $r = 4$ यदि हम y में 5 की अल्प वृद्धि करें, तो r में 6.25 की वृद्धि हो जाती है, यदि y में .3 की वृद्धि की जाय, तो r में 5.29 की वृद्धि हो जाती है आदि आदि। य तथा r में की गयी अल्प वृद्धियों को हम क्रमशः तोय तथा तोर में निरूपित करते हैं, और तोर, तोय तथा $\frac{\text{तोर}}{\text{तोय}}$ की वृद्धियों की संगत तालिका तय्यार करते हैं।

तोय	5	3	.1	.01	.001
तोर	6.25	5.29	.41	.0401	.004001
तोर/तोय	1.25	1.77	.41	.0401	.004001

इस तालिका में हम देखते हैं कि जैसे जैसे तोय, और उसके फलस्वरूप तोर, छोटे होते जाते हैं, निष्पत्ति $\frac{\text{तोर}}{\text{तोय}}$ ४ के समीपतर होती जाती है। इससे यह अनुमान होता है कि जब तोय और उसके फलस्वरूप तोर, अत्यल्प हो जाते हैं, तो निष्पत्ति $\frac{\text{तोर}}{\text{तोय}}$ की सीमा कदाचित् ४ होगी।

अब, हम बिन्दु $y=1$ के लिए भी एक संगत तालिका तैयार करते हैं—

य	१.४	१.२	१.१	१.०१	१.००१
र	१.९६	१.४४	१.२१	१.०२०१	१.००२००१
तोय	.४	.२	.१	.०१	.००१
तोर	.९६	.४४	.२१	.०२०१	.००२००१
तोर/तोय	२.४	२.२	२.१	२.०१	२.००१

यहां भी हम देखते हैं कि जैसे जैसे तोय छोटा होता जाता है, तोर का मान २ के समीपतर होता जाता है। तब क्या y के प्रत्येक मान के लिए निष्पत्ति $\frac{\text{तोर}}{\text{तोय}}$ का एक निश्चित सीमान्त मान होता है ?

अब फिर समीकरण $r=y^3$ में—

मान लीजिए कि हम y में तोय की अल्पवृद्धि करते हैं, और मान लीजिए कि इसके फलस्वरूप r में जो वृद्धि होती है उसे हम तोर, द्वारा निरूपित करते हैं। तो

$$r + \text{तोर} = (y + \text{तोय})^3$$

$$\therefore \text{तोर} = (y + \text{तोय})^3 - y^3$$

$$= \text{तोय} (२y + \text{तोय})$$

$$\therefore \frac{\text{तोर}}{\text{तोय}} = २y + \text{तोय}।$$

$$\therefore \frac{\text{सी. तोर}}{\text{तोय} \rightarrow 0} = २ \text{ य।}$$

$\frac{\text{तोर}}{\text{तोय}}$ की इस सीमा को, जब तोय $\rightarrow 0$, य^२ का, य के प्रति, प्रथम अवकल गुणाक कहते हैं। इस प्रकार य^२ का य के प्रति प्रथम अवकल गुणाक २ य है। और यह फल, उपर्युक्त तालिकाओं के अनुसार, हमारे अनुमान से संगत है, क्योंकि जब य=२, यह सीमा ४ है और जब य=१, यह सीमा २ है।

व्यापक रूप से, मान लीजिए, $र = फ (य)$ ।

$$\text{तब } र + \text{तोर} = फ (य + \text{तोय})$$

$$\therefore \text{तोर} = फ (य + \text{तोय}) - फ (य)$$

$$\text{अतः } \frac{\text{सी. तोर}}{\text{तोय} \rightarrow 0} = \frac{\text{सी. } फ (य + \text{तोय}) - फ (य)}{\text{तोय}}$$

और यह सीमा फ (य) का, य के प्रति, प्रथम अवकल गुणाक कहलाती है। इस सीमा को प्राप्त करने की क्रिया को “फ (य) का अवकलन करना” कहते हैं।

रीत्यनुसार इस सीमा को $\frac{\text{तार}}{\text{ताय}}$ लिखते हैं। अतएव

$$\frac{\text{तार}}{\text{ताय}} = \frac{\text{सी. तोर}}{\text{तोय} \rightarrow 0} = \frac{\text{सी. } फ (य + \text{तोय}) - फ (य)}{\text{तोय}}$$

१२—यह मली भाँति समझ लेना चाहिए कि $\frac{\text{तोर}}{\text{ताय}}$ तोर और तोय की निष्पत्ति

है, परन्तु $\frac{\text{तार}}{\text{ताय}}$ एक निष्पत्ति नहीं है, बरन् सीमा निकालने का फल है। $\frac{\text{तार}}{\text{ताय}}$ को “तार और ताय का भजनफल” कहना उतना ही अशुद्ध है जितना “बोग्या य” को “बोग्या” और “य” का गुणनफल कहना।

इसी मरत्पना के लिए अन्य चिह्न यह हैं—

$$\frac{\text{ताफ (य)}}{\text{ताय}}, \frac{\text{ताफ}}{\text{ताय}}, फ' (य), फ', फ, फ_0, र', र, र_0, ता_0, र।$$

प० मुधाकर द्विवेदी ने ‘चलन बलन’ नाम चलाया जो पिछले पचास वर्षों से चल रहा है। किन्तु इस शास्त्र का अधिक उपयुक्त नाम ‘अवकल बलन’ होगा। अवकल गुणाक के लिए उन्होंने यह चिह्न

$$\frac{\text{तार}}{\text{ताय}}$$

निर्धारित किया था। इसका कारण यह था कि यह राशि फलन r की, y के प्रति, तात्कालिक गति का निरूपण करती है।

समाकलन (Integration)

मान लीजिए कि $r=y^2$

y का एक फलन है। $y=2$ से $y=3$ तक इस फलन के व्यवहार पर विचार कीजिए। इस अन्तराल (Interval) $(2, 3)$ को $.2$ की लम्बाई के पाँच बराबर भागों में बाँटिए। जब $y=2$ तो $r=2^2$; जब $y=2.2$ तो $r=(2.2)^2$; जब $y=2.4$ तो $r=(2.4)^2$ इत्यादि। इनमें से r के प्रत्येक मान को उपान्तराल (Sub-interval) की लम्बाई से गुणा कीजिए और सब गुणनफलों को जोड़ दीजिए। तो योग यह होगा—

$$(.2)(2)^2 + (.2)(2.2)^2 + (.2)(2.4)^2 + (.2)(2.6)^2 + (.2)(2.8)^2$$

$$= (.2)[2^2 + (2.2)^2 + (2.4)^2 + (2.6)^2 + (2.8)^2]$$

हमने सरलता के लिए अन्तिम मान $y=3$ को छोड़ दिया है, किन्तु उसे ले लेने से भी अन्तिम निष्कर्ष पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

यदि हम उपरिलिखित योग को y से निरूपित करें तो $y=4.2$

अब, अन्तराल $(2, 3)$ को $.1$ की लम्बाई के दस बराबर भाग करके संगत योग निकालिए। तो उक्त स्थिति में

$$y=.1[2^2 + (2.1)^2 + (2.2)^2 + (2.3)^2 + (2.4)^2 + (2.5)^2 + (2.6)^2 + (2.7)^2 + (2.8)^2 + (2.9)^2] = 6.$$

अन्त में, यदि हम अन्तराल के बीस समान भाग कर दें तो उनमें से प्रत्येक की लम्बाई $.05$ होगी। और संगत योग

$$y=(.05)[2^2 + (2.05)^2 + (2.1)^2 + (2.15)^2 + \dots + (2.95)^2]$$

$$= \text{लगभग } 6.2$$

इन फलों की सारणी बनाइए—

अन्तरालों की संख्या	4	10	20
प्रत्येक अन्तराल की लम्बाई	.2	.1	.05
योग का मान	4.2	6	6.2

इस तालिका से यह पता चलता है कि जैसे जैसे अन्तरालों की संख्या बढ़ती जाती है, और फलतः प्रत्येक की लम्बाई घटती जाती है, वैसे वैसे यो का मान बढ़ता जाता है। इससे यह अनुमान निकलता है कि यदि अन्तरालों की संख्या और भी बढ़ायें और फलतः प्रत्येक की लम्बाई और भी घटायें तो वदाचित् यो का मान और भी बढ़ जायगा। अब मान लीजिए कि अन्तरालों की संख्या असीमित रूप से बढ़ जाती है और फलतः प्रत्येक की लम्बाई असीमित रूप से घट जाती है। क्या यह सम्भव है कि जब अन्तरालों की संख्या अनन्त की ओर जाय और प्रत्येक की लम्बाई शून्य की ओर जाय तो यो का मान एक निश्चित सीमा की ओर प्रवृत्त हो ?

मान लीजिए कि (२, ३) के मध्यस्थ अन्तरालों की संख्या स और प्रत्येक की लम्बाई ट है। तो

$$३ = २ + स ट$$

(१)

$$\text{और यो} = ट [२^१ + (२+ट)^१ + (२+२ट)^१ + \dots + \{२+(स-१)ट\}^१]$$

$$= ट \sum_{च=०}^{स-१} (२+च ट)^१$$

$$= ट \left[\sum_{च=०}^{स-१} २^१ + ४ट \sum_{च=०}^{स-१} च + ट^१ \sum_{च=०}^{स-१} च^१ \right]$$

$$= ट [स २^१ + ४ट \{१+२+३+\dots+(स-१)\} + ट^१ \{१^१+२^१+३^१+\dots+(स-१)^१\}]$$

$$= ट \left[स २^१ + २ ट स(स-१) + \frac{ट^१}{६} (स-१)स(२स-१) \right]$$

$$= २^१ स ट + २स ट (स ट - ट) + \frac{१}{६} स ट (स ट - ट) (२स ट - ट)$$

परन्तु (१) से स ट = ३. अतः

$$\text{यो} = २^१ + २(१-ट) + \frac{१}{६}(१-ट)(२-ट)$$

और इसकी सीमा, जब $ट \rightarrow ०$,

$$२^१ + २ + \frac{१}{६} \quad \text{अर्थात् } ६\frac{१}{६} \text{ है।}$$

अतएव, हम देखते हैं कि कम से कम इस विशिष्ट अवस्था में तो यो एक निश्चित सीमा की ओर प्रवृत्त होता है जब $s \rightarrow \infty$ और फलतः $t \rightarrow 0$.

अब, (२, ३) के स्थान पर y के अन्तराल (क, ख) पर विचार कीजिए। हम इस अन्तराल को लम्बाई t के s अन्तरालों में बाँटे देते हैं। तो स्पष्ट है कि

$$x = k + s t \quad (ii)$$

मान लीजिए कि

$$y_0 = t [k^3 + (k+t)^3 + (k+2t)^3 + \dots + \{k + (s-1)t\}^3]$$

$$= t \sum_{\chi=0}^{s-1} (k + \chi t)^3$$

$$= t \left[\sum_{\chi=0}^{s-1} k^3 + 3k t \sum_{\chi=0}^{s-1} \chi + t^3 \sum_{\chi=0}^{s-1} \chi^3 \right]$$

$$= t [s k^3 + 3k t \{1+2+3+\dots+(s-1)\} + t^3 \{1^3+2^3+3^3+\dots+(s-1)^3\}]$$

$$= t [s k^3 + k s t (s-1) + \frac{1}{4} s (s-1) (2s-1) t^3]$$

$$= s t k^3 + k s t (s t - t) + \frac{1}{4} s t (s t - t) (2 s t - t)$$

परन्तु (ii) से $s t = x - k$ ।

$$\text{अतः } y_0 = k^3 (x-k) + k (x-k) (x-k-t)$$

$$+ \frac{1}{4} (x-k) (x-k-t) (2x-2k-t)$$

और जब $t \rightarrow 0$, तो इसकी सीमा हुई

$$k^3 (x-k) + k (x-k)^2 + \frac{1}{4} (x-k)^3,$$

$$\text{अर्थात् } \frac{x^3}{3} - \frac{k^3}{3}।$$

सीमा $\frac{x^3}{3} - \frac{k^3}{3}$ " y के प्रति सीमाओं k , x के मध्य y^3 का समाकल" कह-

लाती है। उपर्युक्त विशिष्ट दशा में प्राप्त सीमा से भी इस फल की संगति बैठती है, क्योंकि जब $k=2$ और $x=3$ तो यह $\frac{27}{3} - \frac{8}{3}$ हो जाता है।

व्यापक रूप में मान लीजिए कि

$$r = f(y)$$

य का एक परिमित (Bounded) फलन है और (क, ख) य के विचारगत मानों का अन्तराल है। हम इस अन्तराल को लम्बाई Δ के स बराबर भागों में बाँट देते हैं। इस प्रकार

$$r = f(y) \quad (iii)$$

प्रत्येक मध्यागत मान क, $क+\Delta$, $क+२\Delta$, $क+३\Delta$,

$क+(स-१)\Delta$ के अनुसार हम r का संगत मान रखते हैं—

$$f(क), f(क+\Delta), f(क+२\Delta), f(क+३\Delta), \dots$$

$$\dots f\{क+(स-१)\Delta\}$$

$$\text{तब, सी } \Delta [f(क) + f(क+\Delta) + f(क+२\Delta) + \dots$$

$$\Delta \rightarrow 0$$

$$+ \dots f\{क+(स-१)\Delta\}]$$

को “सीमाओ क, ख के मध्यस्थ य के प्रति फलन $f(y)$ का समाकल (Integral)” कहते हैं, और इसे इस प्रकार लिखते हैं—

$$\int_k^x f(y) \text{ ताय } ।$$

और इस सीमा की निबालने की क्रिया को $f(y)$ का “समाकलन” कहते हैं।

अतः

$$\int_k^x f(y) \text{ ताय} = \lim_{\Delta \rightarrow 0} \text{सी } \Delta [f(क) + f(क+\Delta) + f(क+२\Delta) + \dots$$

$$+ f\{क+(स-१)\Delta\}]$$

यहाँ हमने उक्त क्रिया का वर्णन साविक शब्दों में किया है। उपरिलिखित सीमा के अस्तित्व के लिए $f(y)$ पर सातत्य अथवा परिमितता (Boundedness) आदि के अनुबन्ध लगाने होंगे।

समाकलन की क्रिया का अध्ययन करना ‘चलराशि कलन’ का ध्येय है। यह नाम भी प० बापू देव शास्त्री का ही रखा हुआ है। यह नाम बहुत उपयुक्त नहीं है क्योंकि इसका अर्थ है ‘चिन्नरणशील राशि का हिसाब लगाना।’ इस शास्त्र का अधिक उपयुक्त नाम होना ‘समाकलन गणित’।

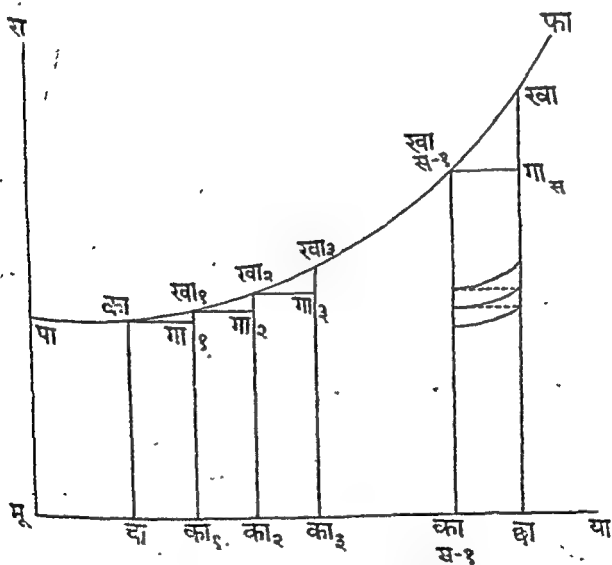
उपरिलिखित व्याख्या से स्पष्ट है कि समाकलन एक प्रकार का संकलन ही है। किन्तु उक्त क्रिया का एक ज्यामितीय अर्थ भी होता है। मान लीजिए कि पा फा एक वक्र है जिसका समीकरण

$$r = f(y)$$

है।

मान लीजिए कि का, खा इस वक्र पर दो बिन्दु हैं जिनके भुज क, ख हैं। यदि का चा, खा छा, याक्ष पर लम्ब डाले जायें तो चा छा = ख - क।

चा छा के स समान टुकड़े चा का_१, का_१ का_२, का_२ का_३ ... का_{८-१} छा कीजिए



चित्र ८४—अनुकलन का एक ज्यामितीय चक्र।

जिनमें से प्रत्येक की लम्बाई Δ है। इन बिन्दुओं का_१, का_२ ... का_{८-१} पर कोटियाँ खड़ी कीजिए। इन कोटियों की लम्बाइयाँ क्रमशः

$$f(k), f(k+\Delta), f(k+2\Delta), \dots, f(k+(n-1)\Delta)$$

होंगी। आयतों का का_१, खा_१का_२, खा_२का_३ ... खा_{८-१} छा को पूर्ण कर लीजिए। तो इन आयतों का क्षेत्रफल आकृति का चा छा खा के क्षेत्रफल से कम होगा, और दोनों का अन्तर आकृतियों का खा_१गा_१, खा_२गा_२गा_३ ... खा_{८-१}खा गा_८

वे योग के बराबर होगा। इन आकृतियों को याद के समान्तर खिसका कर हम दर्शा सकते हैं कि इनका योग अंतिम आयत $सा_{n-1}$ छा से कम है।

अब मान लीजिए कि इन भागों की संख्या स असीमित रूप में बढ़ती है, और फलतः प्रत्येक की लम्बाई Δ निर्वाच्य रूप में घटती है। अन्त में, जब $s \rightarrow \infty$ और $\Delta \rightarrow 0$, आयत $सा_{n-1}$ छा अपनी चौड़ाई Δ के कारण शून्य की ओर प्रवृत्त हो जायगा और इस प्रकार आकृतियाँ का $सा_1, सा_2, सा_3, \dots$ का योग अन्तर्गत हो जायगा। अतः, आयतों का $का_1, का_2, का_3, \dots$ के योग की सीमा क्षेत्रफल का चा छा या हो जायगी। और हम सीमा का मान

$$\text{सी } \Delta [f(k) + f(k+\Delta) + f(k+2\Delta) + \dots + f(k+(s-1)\Delta)],$$

$$\Delta \rightarrow 0$$

$$\text{अर्थात् } \int_k^s f(y) \text{ ता } y$$

होगा।

इस प्रकार समाकलन का वक्रों के क्षेत्रफल (Quadrature) से सम्बन्ध स्थापित हो गया। तत्पश्चात् समाकलो का प्रयोग वक्रों के चापकलन (Rectification) और परिवर्तन ठोसों के आयतनों (Volumes) और तलों (Surfaces) के निकालने में भी होने लगा। इस उपयोग की तुलना में समाकलन का सकलन वाला अर्थ गौण हो गया। किन्तु समाकलन का एक तीसरा अर्थ निकलना और शेष का जिसके लिए निम्नलिखित प्रमेय का आविष्कार हुआ—

चलराशि कसन का मूलभूत प्रमेय

(Fundamental Theorem of Integral Calculus)

यदि $w(y)$ एक ऐसा सतत फलन है कि उसका अवकल गुणांक $f(y)$ है, अर्थात्

$$f(y) = w'(y),$$

$$\text{तो } \int_k^s f(y) \text{ ता } y = w(s) - w(k)।$$

उपपत्ति—हम जानते हैं कि

$$\int_k^s f(y) \text{ ता } y = \text{सी } \Delta [f(k) + f(k+\Delta) + f(k+2\Delta) + \dots]$$

$$\Delta \rightarrow 0$$

$$\dots\dots\dots f(x) = (n-1)\Delta_1,$$

यदि $n=1$ हो तो

अब हम गुणांक को परिभाषा में लाने प्रारम्भ करेंगे

$$f(x) = \lim_{h \rightarrow 0} \frac{f(x+h) - f(x)}{h},$$

$$\text{अतः } f(x) = \lim_{h \rightarrow 0} \frac{f(x+h) - f(x)}{h} = \dots$$

जिसमें t , एक अन्तर्गत राशि (Infinitesimal quantity) है जो, जैसे जैसे $h \rightarrow 0$, वैसे वैसे शून्य की ओर प्रवृत्त होती है। इस प्रकार

$$f(x) = f(x+h) - f(x) : h \rightarrow 0,$$

इसी प्रकार हमें प्राप्त होगा—

$$f(x+h) = f(x+2h) - f(x+h) : h \rightarrow 0,$$

$$f(x+h) = f(x+3h) - f(x+2h) : h \rightarrow 0,$$

.....

.....

$$f(x+(n-2)h) = f(x+(n-1)h) - f(x+(n-2)h) : h \rightarrow 0,$$

$$f(x+(n-1)h) = f(x+nh) - f(x+(n-1)h) : h \rightarrow 0,$$

जिसमें $t_1, t_2, t_3, \dots, t_n$ ऐसी राशियाँ हैं जो h के साथ साथ शून्य की ओर जाती हैं।

उपरिलिखित समस्त समीकरणों को जोड़ने से,

$$f(x) + f(x+h) + f(x+2h) + \dots + f(x+(n-1)h)$$

$$= f(x+nh) - f(x) + h(t_1 + t_2 + t_3 + \dots + t_n).$$

यदि राशियों t_1, t_2, \dots, t_n में सबसे बड़ी t हो तो

$$h(t_1 + t_2 + \dots + t_n) < nh t = (x-x_0)t,$$

और इसलिए सीमा में शून्य की ओर जाती है। इस प्रकार

$$\lim_{h \rightarrow 0} [f(x) + f(x+h) + f(x+2h) + \dots + f(x+(n-1)h)]$$

$$=v(x)-v(y),$$

और यही सिद्ध करना था।

यभी यभी इस फल को इस प्रकार भी लिया जाता है -

$$\int_a^x f(y) \text{ ताय} = \left[v(y) \right]_a^x.$$

$$\text{मुतरा } \int_a^x f(y) \text{ ताय}$$

का मान निकालने की सरलतर रीति यह है कि

- (i) वह फलन $v(y)$ ज्ञात कीजिए जिसका अवकल गुणांक $f(y)$ हो,
- (ii) जब $y=a$ और $y=x$, तब $v(y)$ के मान ज्ञात कीजिए,
- (iii) $v(x)$ का $v(y)$ से आधिक्य ज्ञात कीजिए।

उक्त आधिक्य ही अभीष्ट फल होगा।

इस प्रमेय ने समाकलन क्रिया की प्रकृति ही बदल दी। यह केवल उद्घम अवकलन (Inverse Differentiation) अर्थात् अवकलन की उल्टी क्रिया हो गयी। फलतः इसका यही अर्थ प्रमुख हो गया और शेष दोनों अर्थ गौण हो गये।

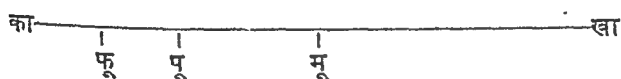
'कलन' पिछले पचास वर्षों में 'Calculus' के लिए रूढ़ हो गया है। इसे इस अर्थ से हटाने का कोई कारण दिखाई नहीं देता। इस प्रसंग को छोड़ने से पहले 'कलन' और 'गणन'—इन दोनों शब्दों के प्रयोग पर पुनर्विचार कर लेना चाहिए। केन्द्रीय सरकार की गणितीय शब्दावली में Calculation का पर्याय 'गणन' दिया हुआ है। 'गणन' का प्राचीन अर्थ 'गिनना' है किन्तु Calculation में केवल गिनने की क्रिया ही नहीं करनी पड़ती। उसमें जाड़ना, घटाना, गुणन आदि सभी क्रियाओं का समावेश रहना है। इससे अतिरिक्त 'जन गणना' और 'मठ गणना' में अब भी यह शब्द 'गिनने' के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। अतः स्पष्ट है कि 'गणन' को उसके गिनने के अर्थ से नहीं हटाया जा सकता। इससे अतिरिक्त यह शब्द 'गिनना' और Calculation दोनों अर्थों में नहीं चलाया जा सकता। यदि कोई कहे कि 'तनिक गणना करके देख लो', तो इसका क्या अर्थ निकलेगा? 'गिन कर देख लो' या 'Calculate करके देख लो?' और Calculus के लिए 'कलन' चल ही पड़ा है। अतएव Calculation के लिए उपयुक्त पर्याय 'परिकलन' होगा। हम यहाँ इस प्रकार के शब्दों की एक माला देते हैं —

Counting	गणन, गिनना
Calculation	परिकलन
Computation	अभिकलन
Enumeration	परिगणन
Estimation	आकलन
Numbering	संख्यान
Numeration	संख्योल्लेखन
Reckoning	अनुगणन
Telling	मतगणन

(२) यूरोप में आदि काल (सन् ईसवी से पहले)

कलन का आधुनिक रूप तो अभिनव है किन्तु प्राचीन समय में भी कमी कमी इसके कुछ मूलतत्त्वों की झलक दिखाई पड़ जाती थी। कलन का आधार अत्यल्प राशियाँ (Infinitesimal Quantities) हैं। उक्त राशियों का सबसे प्राचीन लिखित उल्लेख ईलिया के जीनो की कृतियों में मिलता है। इसके कुछ विरोधाभासों का वर्णन हम ज्यामिति के परिच्छेद में कर चुके हैं। हमने वहाँ 'कछुए और खरगोश' वाला उदाहरण दिया था। उसी का एक दूसरा रूप इस प्रकार है :—

“संसार में किसी



प्रकार की भी गति असम्भव है। मान लीजिए कि हमें का से खा तक जाना है। तो खा तक पहुँचने से पहले हमें का खा के मध्य बिन्दु मू तक पहुँचना होगा। फिर, का से मू तक पहुँचने से पहले हमें का मू के मध्य बिन्दु पू तक पहुँचना होगा। पू तक पहुँचने से पहले का पू के मध्य बिन्दु फू तक पहुँचना होगा और इसी प्रकार अनन्त तक। और का खा के बिन्दुओं की संख्या अनन्त है। अतः का से खा तक पहुँचने में हमें अनन्त समय लगेगा।”

लेखक यह बात भूल गया है कि रेखा का खा अनन्ततः विभाज्य है, अर्थात् उसके अनन्त बार दो टुकड़े किये जा सकते हैं। किन्तु दूरी का खा अनन्त नहीं है। दूरी सान्त (finite) है, केवल उसकी विभाज्यता अनन्त है।

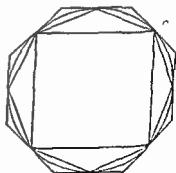
इस सम्बन्ध में अगला उल्लेखनीय नाम ल्यूसीपस (Leucippus) का आता है। इसके जीवन के विषय में केवल इतना पता है कि यह एक यूनानी दार्शनिक था और जीनो का समकालीन था। यह पारमाणविक सिद्धान्त (Atomic Theory) का जन्मदाता कहलाता है। इस सिद्धान्त का सार यह है कि समस्त पदार्थ सान्त सख्या के अविभाज्य तत्वों के बने होते हैं। इसी सिद्धान्त से प्रेरित होकर अरस्तू ने 'अविभाज्य रेखाओं' पर एक पुस्तक लिख गारी।

ल्यूसीपस के जीवन काल का ठीक ठीक पता नहीं है। अनुमान है कि वह ४४० ई० पू० के आसपास था।

एण्टीफॉन (Antuphon)—एक यूनानी सूफी था जिसका जीवन काल ४३० ई० पू० के लगभग था। इसे निशेषण विधि (Method of Exhaustion) का जन्मदाता कहा जाता है। इस विधि का एक उदाहरण यह है।

पहले किसी वृत्त में एक वर्ग बनाइए। फिर वर्ग की प्रत्येक भुजा पर एक सम द्विबाहु (Isosceles) त्रिभुज बनाइए जिसका शीर्ष परिधि पर स्थित हो। इस प्रकार हमें वर्ग से एक सम अष्टभुज प्राप्त हो जायगा। फिर इस अष्टभुज की प्रत्येक भुजा पर इसी प्रकार एक समद्विबाहु त्रिभुज बनाइए। प्रत्येक पग पर सम बहुभुज की भुजाओं की सख्या दुगुनी होती जायगी। यह क्रिया तब तक करते बलिए जब तक वृत्त और बहुभुज एकात्मक न हो जायें। अन्त में वृत्त और बहुभुज अभिन्न हो जायेंगे और वृत्त का क्षेत्रफल बहुभुज के क्षेत्रफल के बराबर हो जायगा।

एण्टीफॉन यह भी जानता था कि (क्षेत्रफल में) किसी बहुभुज के बराबर एक वर्ग किम प्रकार बनाया जा सकता है। अतः उसने अपने हिमाव में एक ऐसी विधि निकाल ली जिससे कोई भी बहुभुज एक वृत्त में परिणत किया जा सके। इस प्रकार वह सकते हैं कि उमने अपने विचार से 'वृत्त के वर्गण' (Squaring the circle) की समस्या हल कर ली।



चित्र ८५—निशेषण विधि का एक अष्टभुज।

हिरैकलिया का ब्राइमन (Bryson of Heraclea) एण्टीफॉन का समकालीन

था। इसने वृत्त के अन्तर्गत बहुभुजों के अतिरिक्त परिगत बहुभुज भी बनाये। इसका यहाँ तक तो ठीक था कि वृत्त का क्षेत्रफल दोनों बहुभुजों के क्षेत्रफलों के मध्यस्थ है। किन्तु अन्त में इसने यह गलती की कि यह मान लिया कि वृत्त का क्षेत्रफल बहुभुजों के क्षेत्रफलों का अंकगणितीय मध्यक (Arithmetic Mean) है।

अब यूनानी भौतिक दार्शनिक डिमॉक्रीटस (Democritus) के जीवन पर भी ध्यान कर लेना चाहिए। इसका जीवन काल सम्भवतः ४६५ ई० पू० के आस पास। कुछ लोग इसका जीवन ४०० ई० पू० के लगभग का बताते हैं। इसने ल्यूसीपस परमाणु सिद्धान्त का परिष्कार किया। इसका मत था कि अनन्त आकाश अनन्त परमाणुओं से बना है जिनमें से प्रत्येक इतना छोटा है कि उसके और टुकड़े नहीं किये जा सकते। इसीलिए इन्हें 'अविभाज्य' कहा गया है। समस्त आकाश इनसे भरा है। इनमें न कोई छिद्र होता है न रिक्ति (Vacancy)। इनके विभिन्न संयोगों से विन्यासों से ही ब्रह्माण्ड के समस्त पदार्थ बने हैं।

विश्व की उत्पत्ति के विषय में डिमॉक्रीटस का यह मत है कि आदि काल में अनन्त परमाणु आकाश में नीचे की ओर गिरने लगे। भारी परमाणु नीचे आ गये और उनके घर्षण से हल्के परमाणु ऊपर उठने लगे। परमाणुओं के पारस्परिक संघर्ष से कई प्रकार की गतियाँ उत्पन्न हुई। समान परमाणुओं के एक साथ सट जाने से बड़े संसार बने गये। असमान परमाणुओं के सम्मिश्रण से छोटे छोटे काय (Bodies) बने गये।

हिपॉक्रेटीज और यूडोक्सस की कृतियों का उल्लेख हम ज्यामिति के अध्याय में कर चुके हैं। सम्भवतः इन दोनों ने भी अपने प्रमेय सिद्ध करने में निःशेषण विधि का उपयोग किया था। अरस्तू ने भी अत्यल्प कलन (Infinitesimal Calculus) की नींव डालने में कहाँ तक योग दिया, इसका अनुमान उसके ज्यामितीय कार्य से लगाया जा सकता है जिसका वर्णन हम पिछले परिच्छेद में कर चुके हैं।

आर्किमैडीज के कार्य के विषय में हम अंकगणित के अध्याय में बहुत कुछ कह चुके हैं। आर्किमैडीज ने ऐण्टीफॉन और ब्राइसन की निःशेषण विधि को और आगे बढ़ाया। ब्राइसन की ही भाँति इसने भी वृत्त का क्षेत्रफल अन्तर्गत और परिगत बहुभुज बनाकर ही निकाला। किन्तु इससे उसके साथ यह भी कह दिया कि बहुभुजों की भुजाओं की संख्या पर्याप्त मात्रा में बढ़ाने से हम उनके क्षेत्रफलों का अन्तर किसी भी निर्दिष्ट

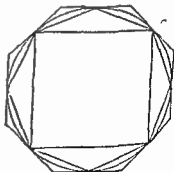
इस सम्बन्ध में अगला उल्लेखनीय नाम ल्यूसीपस (Leucippus) का आता है। इसके जीवन के विषय में केवल इतना पता है कि यह एक यूनानी दार्शनिक था और जीनो का समकालीन था। यह पारमाणविक सिद्धान्त (Atomic Theory) का जन्मदाता कहलाता है। इस सिद्धान्त का सार यह है कि समस्त पदार्थ सान्त सत्य के अविभाज्य तत्वों के बने होते हैं। इसी सिद्धान्त से प्रेरित होकर अरस्तू ने 'अविभाज्य रेखाओं' पर एक पुस्तक लिखी मारी।

ल्यूसीपस के जीवन काल का ठीक ठीक पता नहीं है। अनुमान है कि वह ४४० ई० पू० के आसपास था।

एँटीफॉन (Antiphon)—एक यूनानी सूफी था जिसका जीवन काल ४३० ई० पू० के लगभग था। इसे निशेषण विधि (Method of Exhaustion) का जन्मदाता कहा जाता है। इस विधि का एक उदाहरण यह है।

पहले किसी वृत्त में एक वर्ग बनाइए। फिर वर्ग की प्रत्येक भुजा पर एक सम द्विबाहु (Isosceles) त्रिभुज बनाइए जिसका शीर्ष परस्पर पर स्थित हो। इस प्रकार हमें वर्ग से एक सम अष्टभुज प्राप्त हो जायगा। फिर इस अष्टभुज की प्रत्येक भुजा पर इसी प्रकार एक सम द्विबाहु त्रिभुज बनाइए। प्रत्येक पक्ष पर सम बहुभुज की भुजाओं की संख्या दुगुनी होती जायगी। यह किया तब तक करते रहिए जब तक वृत्त और बहुभुज एकात्मक न हो जायें। अन्त में वृत्त और बहुभुज अनन्त हो जायेंगे और वृत्त का क्षेत्रफल बहुभुज के क्षेत्रफल के बराबर हो जायगा।

एँटीफॉन यह भी जानता था कि (क्षेत्रफल में) किसी बहुभुज के बराबर एक वर्ग किस प्रकार बनाया जा सकता है। अब उसने अपने हिमाव से एक ऐसी विधि निकाल ली जिससे कोई भी बहुभुज एक वृत्त में परिष्कृत किया जा सके। इस प्रकार वह सबते हैं कि उसने अपने विचार से वृत्त के वर्गण (Squaring the circle) की समस्या हल कर ली।



हिरकल्या का ब्राइमन (Bryson of Heraclea) एँटीफॉन का समकालीन

चित्र ८५—निशेषण विधि का एक अष्टभुज।

गोलीय अवघा का तल

$$= \pi k^2 \int_0^x 2 \text{ ज्या क्ष ताक्ष} = 2 \pi k^2 (1 - \cos x)$$

किसी गोले का तल

$$= 4 \pi k^2 \cdot \frac{1}{2} \int_0^\pi \text{ ज्या क्ष ताक्ष} = 4 \pi k^2$$

(३) यूरोप में मध्य काल—सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियाँ

कलन के मध्य युग में जॉन कॅपलर (Johann Kepler) का नाम प्रमुख रूप से आता है। यह एक जर्मन ज्योतिषी था जिसका जीवन काल १५७१-१६३० था। इसके माता पिता की जोड़ी बेमेल थी। चार वर्ष की अल्पावस्था में ही कॅपलर के चेचक निकली जिसने इसको हाथों से लुंजा कर दिया और इसकी दृष्टि सदैव के लिए खराब कर दी। इसकी प्राथमिक शिक्षा घासिक क्षेत्र के लिए हुई और १५९४ में इमने बड़ी अनिच्छा से उक्त व्यवसाय को छोड़कर अव्यापन कार्य स्वीकार किया।

१६०१ में टाइको ब्राहे (Tycho Brahe) के देहान्त पर यह प्राग की वेधशाला का निदेशक नियुक्त हो गया। जीवन भर इसने गणित और फलित ज्योतिष दोनों में रुचि दिखायी। इसने अपने सम्राट् को मिलाकर बहुत से बड़े बड़े आदमियों की जन्म पत्रियाँ भी बनायी थी। इसके जीवन का प्रमुख कार्य ग्रहों की गति के सम्बन्ध में हुआ था। इसके ग्रहों के "गति नियम" विश्वविख्यात हो गये हैं किन्तु हम यहाँ इसके कलन सम्बन्धी कार्य का ही उल्लेख करेंगे।

कॅपलर ने अपनी कृति में लिखा है कि "प्रत्येक ग्रह एक दीर्घवृत्त में घूमता है जिसकी एक नाभि पर सूरज स्थित है; और इस प्रकार चलता है कि वह समान समय में समान क्षेत्रफल वाले नाभिग द्वित्रिज्य (Focal Sectors) उत्तरित करता है।" इस उक्ति से स्पष्ट है कि कॅपलर ने दीर्घवृत्त के द्वित्रिज्यों के क्षेत्रफल निकालने की कोई विधि उपलब्ध कर ली थी। कॅपलर ने इसके अतिरिक्त ठोसों के आयतन भी निकाले थे। इस हेतु उसने यह कल्पना की थी कि ठोस बहुत छोटे छोटे अनन्त विम्बों से बना होता है। इस विधि में समाकलन के प्रसर की स्पष्ट छाया झलकती है।

कॅवैलियरी का उल्लेख हम ज्यामिति के अध्याय में कर चुके हैं। इसकी कृतियों में हमें समाकलन का आभास मिलता है किन्तु आधुनिक मानकों से इसकी विधि सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती। इसने अपनी विधि से यह सिद्ध किया कि यदि एक त्रिभुज और एक समान्तर-चतुर्भुज (parallelogram) एक ही आधार पर खड़े हों और

गति में बन्ध कर सकते हैं। इस प्रकार हमने सीमा की उ वाली परिमाणा की नीव डाल दी। तन्निव सीमा की आधुनिक व्याख्या पर ध्यान दीजिए।

मान लीजिए कि

$$a_1, a_2, a_3, \dots, a_n,$$

कई अनुक्रम है, और उ कोई छोटी से छोटी संख्या पहले में दी हुई है। यदि हम कोई पूर्णांक p ऐसा उपलब्ध कर सकें कि p से बड़े समस्त मानों के लिए

$$|a_n - m| < \frac{1}{p}$$

तो हम कहेंगे कि संख्या 'म' अनुक्रम a_n की सीमा है। और उक्त फल को हम इस प्रकार लिखेंगे —

$$\lim_{n \rightarrow \infty} a_n = m.$$

$$n \rightarrow \infty$$

इस परिभाषा और आकिमैंडीज की उपरिलिखित व्याख्या में पूरा पूरा सामंजस्य दिखाई पड़ता है।

आकिमैंडीज ने सीमा की परिभाषा ही नहीं दी बल्कि समाकलन की नीव भी डाल दी। उन्होंने सिद्ध किया कि किसी परवलयीय अवधा (Segment) का क्षेत्रफल उन त्रिभुज के क्षेत्रफल का $\frac{4}{3}$ होता है जिसके आधार और शीर्ष वही हो जो परवलय के हो। उसकी विधि यह थी कि वह अवधा के अन्दर निरन्तर त्रिभुज बनाना था जिनका क्षेत्रफल अवधा के क्षेत्रफल के निवृत्तर होता चला जाय।

इसके अतिरिक्त आकिमैंडीज ने कुछ ठोसों के तलों और आयतनों के सूत्र भी निकाले हैं जो आधुनिक सन्ततलिपि में इस प्रकार लिखे जायेंगे

किसी उपगोल (Spheroid) की अवधा का आयतन

$$= \int_0^x y^2 \, dx = \frac{2}{3} x^3.$$

किसी परिक्रमण अतिपरवलयज (Hyperboloid of Revolution) की अवधा का आयतन

$$= \int_0^x (ay^2 + y^2) \, dx = \frac{2}{3} x^3 (3a + 1).$$

दिना है। और अतः मेरे मन में सारा सारा है। यह फल दर्शाता है कि
वर्षों आयुनिर्माण के विज्ञान में भी नया ज्ञान प्राप्त हुआ।



चित्र ८६—हाइगेंस (१६२९-१५)

[डोवर पब्लिकेशंस, इन्फॉर्मेटिव, न्यूयॉर्क-१० की अनुशा से, टी० स्टुडर कृत 'ए कॉन्स्टान्त हिस्ट्री ऑफ मैथेमैटिक्स' (१७५५ डॉक्टर) से प्रत्युत्पादित।]

क्रिश्चियान हाइगेंस (Christiaan Huygens) (१६२९-१६९५) हॉलैंड का एक गणितज्ञ, ज्योतिषी और भौतिकीज्ञ था। प्रारम्भिक शिक्षा इसने अपने पिताजी से पायी। १६५१ से इसने अभिपत्र लिखना आरम्भ किया। इसका प्रारम्भिक कार्य दोलक और दूरबीन (Telescope) पर है। १६६३ में यह रायल सोसायटी का अविसदस्य निर्वाचित हुआ। अब यह अधिकतर फ्रांस में रहने लगा। १६८१ में यह हॉलैंड लौट आया। इसका अधिकांश शोधना कार्य लैस

दोनों के उच्चत्व समान हो तो क्षेत्रफल में त्रिभुज समान्तर-चतुर्भुज का आधा होता। इसकी उपपत्ति इस प्रकार है

मान लिया कि त्रिभुज स अल्पाशा (Elements) का बना है जिसमें से मरते छोटा १ है दूसरा २, तो त्रिभुज का क्षेत्रफल

$$= 1 + 2 + 3 + \dots + s = \frac{1}{2} s (s+1)$$

और समान्तर चतुर्भुज के प्रत्येक अल्पाशा का परिमाण १ है। अतः समान्तर चतुर्भुज का क्षेत्रफल $= s^2$ ।

इस प्रकार दोनों के क्षेत्रफलों का अनुपात

$$\frac{1}{2} s (s+1) : s^2$$

हुआ जिसकी सीमा $\frac{1}{2}$ है।

बैवलियरी ने इस विधि से बहुत सी सम्बाध्या और क्षेत्रफला आदि के परिमाण निकाले। स्पष्ट है कि इस विधि में पर्यप्ता की कमी है किन्तु सम्मस्त इसी विधि ने लिब्नीज (Leibniz) को अपने कार्य में प्रेरणा मिली हो।

जिल्लेस पर्सोने डे रूबेर्वल (Gilles Personne de Roberval) (१६०२-१६७५) एक फ्रांसीसी गणितज्ञ था। यह नामा पेरिस के दो कोवित्रा में प्रख्यात रहा। हमने पृष्ठा के क्षेत्रफल और ठोसों के आयतन निकालने की एक विधि का आधिकार दिया जिस 'अविभाज्य' की विधि (Method of Indivisibles) कहते हैं। हमने पृष्ठा पर स्पर्शों सीखने की एक गणितीय विधि दिखाई। इस प्रकार इस चतन चतन के आधिकार के प्रेरणा में गिन सकते हैं। हमने बहुत से बना के क्षेत्रफल निकाले जिसमें से चक्र (Cycloid) और चक्र (Tractoid) विशेष उल्लेखनीय हैं। कोवित्रो के दोष में हमका भवते प्रसिद्ध आधिकार 'रूबेर्वल तुला' (Roberval Balance) है।

रूबेर्वल का एक अन्य आधिकार बहुत महत्वपूर्ण है। हमने यह कहा

$$\int_0^1 x^n dx = \frac{1}{n+1}$$

का निश्चित मान दिखाया, जिसमें n कोई धन पूर्णांक है। इससे उच्चतम चतन का महत्त्व

$$0^n = 1^n + 2^n + \dots + (n-1)^n$$

बीजगणित पर डमने अनिपत्रों के अनिरिक्त दो पुस्तकें भी लिखी हैं। यह प्रमेय इसके नाम से प्रसिद्ध हो गया है—

नमीकरण फ' (य) = ० के दो क्रमानुगत मूलों के बीच में समीकरण फ' (य) = ० का कम से कम एक मूल अवश्य होता है।

हमने यह प्रमेय बहुत सरल भाषा में दिया है। इसके साथ कुछ शर्तें रहती हैं जो हमने यहाँ नहीं दी हैं। आज हम आधुनिक विधियों में इस प्रमेय को सरलता से सिद्ध कर लेते हैं किन्तु रोल ने इसे सिद्ध करने के लिए एक बड़ी श्रमसाध्य विधि लगायी थी। इसकी विधि 'प्रपात विधि' (Method of Cascades) कहलाती थी।

वालिस के कार्य का उल्लेख एक पिछले अध्याय में आ चुका है। इसने अनन्त प्रसरणों पर भी बहुत परिश्रम किया था यद्यपि इसकी विधियों में परुषता का अभाव था। यह बड़े साहस के साथ अनन्त श्रेणियों, अनन्त गुणनफलों और काल्पनिक राशियों का प्रयोग करता था। यह $\frac{1}{2}$ के स्थान पर ∞ लिखा करता था, और एक बार तो इसने यह असमता तक दे डाली थी—

$$-1 > \infty$$

इसका एक फल बहुत प्रसिद्ध हो गया है—

$$\frac{n}{2} = \begin{array}{l} 2. 2. 4. 4. 6. 6. 8. 8. \dots\dots\dots \\ 1. 3. 3. 5. 5. 7. 7. 9. 9. \dots\dots\dots \end{array}$$

कलन की भूमिका वाँचने में भी वालिस ने बहुत योग दिया है। इसका विचार था कि एक त्रिभुज अनन्त संख्या की समान्तर रेखाओं से बना होता है। इसी प्रकार सर्पिल का निर्माण अनन्त संख्या के चापों से होता है। इसने किसी वक्र के अल्पांश की लम्बाई के लिए यह सूत्र भी सिद्ध कर दिया था—

$$\text{ता च} = \sqrt{1 + \left(\frac{\text{तार}}{\text{ताय}}\right)^2} \text{ ताय,}$$

जिसमें 'च' चाप का निरूपण करता है।

गिलॉम फ्रँसॉय ऐन्टॉयन लः हॉस्पिटल (Guillamme Francois Antoin l' Hospital) एक फ्रांसीसी गणितज्ञ था जिसका जीवन काल १६६१-१७०४ था। यह जॉन बर्नोली (Johann Bernoulli) का शिष्य था जिसका उल्लेख आगे आयेगा। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में एक दिन इसने कुछ गणितज्ञों की बातचीत सुनी जिसमें वे लोग पास्कल के एक कठिन प्रश्न का उल्लेख कर रहे थे। हॉस्पिटल

(Lens), प्रकाश के तरंग सिद्धांत (Wave Theory) और अन्य सम्बद्ध विषयों पर है और इमोजिफ मोनिरि के क्षेत्र में इसका स्थान बहुत ऊँचा है। गिनु ब्रुना में भी इसका कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण हुआ है। केन्द्रजो (Evolutes) का भाव सबसे पहले इसी ने दिया है। इसने यह भी निश्चित किया है कि चक्र स्वयं अपना केन्द्रज है। इसने और भी कई चक्रों पर परित्यक्त किया है, जैसे रज्जुचक्र (Catenary), परशु (Cissoid) और लघुगमनीय चक्र। इसके अतिरिक्त इसने भूविष्ट और अल्पिष्ट सिद्धांत (Maxima and Minima) के नियमों को आपुनिक रूप दिया और गणितीय रेखाओं के अन्वयांग्रे (Envelope) विचारों को विविध उपलब्ध की।

कर्मा का उल्लेख हम बीजगणित के अध्याय में कर चुके हैं। इसे 'अम्बाबसायि' का सम्पादक कहा जाता है। और उक्ति ही है। जीवन भर यह सरकारी सेवा में रहा। १६४८ में यह राजा का परामर्शदाता नियुक्त हुआ और मृत्यु तक उसी स्थान पर रहा। तिस पर भी इसने इतना गणितीय कार्य कर दिया था जो मात्रा में तो अविश्वसनीय था ही इसकी उच्च कोटि का भी था कि इसे सरकारी दस्तावेजों का सबसे बड़ा गणितज्ञ कहा जाता है।

इसमें सन्देह नहीं कि कर्मा ने अवकलन गणित के मूलनस्त्व का आविष्कार न्यूटन और लिब्नीज के जन्म से पहले ही कर लिया था। इसने इस बात का पता चलाया कि किसी वक्र में भूविष्ट और अल्पिष्ट सिद्धांत वही होने हैं जहाँ स्पर्शी यास (tangent) के समान्तर हो। और ऐसे बिन्दुओं की स्थिति इस समीकरण

$$y'(y) = 0$$

के मूलों पर निर्भर है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अवकलन गणित के आविष्कार की प्रेरणा शक्तिशाली में कर्मा का नाम उपलब्धीय नहीं है।

हमने ऊपर कहा है कि स्त्रवेल ने समाकलन

$$\int_0^1 y^x \text{ ताय}$$

का मान १ के घन पूर्णांक माना के लिए निकाल लिया था। कर्मा ने इस फल का विस्तार, १ के भिन्नात्मक और ऋणात्मक माना के लिए भी कर दिया।

इस सम्बन्ध में मिशेल रोल (Michel Rolle) का नाम भी उल्लेखनीय है। इसका स्थिति काल १६५२-१७१९ था। यह फ्रांस के युद्ध विभाग में नियुक्त था किन्तु इस गणित का शौक था। इसने ज्यामिति पर अनेक अभिपत्र लिखे हैं।

वैरो अवकलन और समाकलन के पारस्परिक सम्बन्ध को भी जानता था किन्तु उसने प्रश्नों के हल करने में उसका कभी प्रयोग नहीं किया।

(४) कलन को पूर्व की देन

यह कहना तो गलत होगा कि पूर्व में भी कलन का विद्या के रूप में विकास हो चुका था। किन्तु पूर्व के कुछ गणितज्ञों ने इस दिशा में जो दो चार उलटे सीवे पग उठाये थे, उनका उल्लेख करना भी आवश्यक है। तावित इव्न कोरा का नाम हम पिछले अध्यायों में ले चुके हैं। इसने ८७० ई० के लगभग परबलयज (Paraboloid) का आयतन निकाला था। फिर सैकड़ों वर्ष तक इस दिशा में कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं हुआ।

सत्रहवीं शताब्दी में जापान में सेकी काँवा का प्रादुर्भाव हुआ। इसकी कृतियों का उल्लेख हम पिछले परिच्छेदों में कर चुके हैं। केवल एक बात कहने योग्य रह गयी है। जापानी गणित में 'वृत्त सिद्धान्त' (Circle Principle) की चर्चा मिलती है जिसे 'येंत्री विधि' भी कहते हैं। इसी विधि से जापानियों ने एक प्रकार के कलन का विकास कर लिया था। वास्तव में उक्त विधि का जन्मदाता कौन था, यह कहना कठिन है। कुछ लोगों का अनुमान है कि इसका आविष्कार सेकी काँवा ने ही किया था किन्तु इसकी प्राप्य कृतियों में कहीं भी उक्त सिद्धान्त का उल्लेख नहीं मिलता। 'येंत्री' नाम कहाँ से आया इसके विषय में लोगों ने यह अटकल लगायी है कि सम्भव है कि यह नाम चीनी लेखक लाइ येह की उस कृति से लिया गया हो जिसका नाम 'से युन हाइ चिंग' था। इस नाम का अर्थ है "समुद्र दर्पण, वृत्त, का नाप।"

इस सम्बन्ध में और भी कई जापानी गणितज्ञों के नाम उल्लेखनीय हैं। इसोमूरा का उल्लेख हम अन्यत्र कर चुके हैं। इसकी कृतियों में आदिम समाकलन का कुछ-कुछ आभास मिलता है। इसकी प्रमुख पुस्तक कैत्सुगी शाँ १६६० में छपी थी जिस में बहुत से प्रश्नों के हल दिये गये थे। एक अन्य जापानी गणितज्ञ था नोजावा टाइको। इसने १६६४ में एक ग्रन्थ 'डॉकाइ शाँ' प्रकाशित किया जिसका विषय मापिकी (Mensuration) था। इसमें इसोमूरा की समाकलन विधि को और आगे बढ़ाया गया था। जापान का ही एक गणितज्ञ था सावा नूची काजूकी। १६७० में इसकी एक पुस्तक 'कोकोन सम्पाँकी' प्रकाशित हुई। इस नाम का अर्थ है 'गणित की पुरानी और नयी विधियाँ।' उक्त पुस्तक के एक पृष्ठ का चित्र हम यहाँ देते हैं।

ने कहा कि "मैं इसका साधन कर सकता हूँ," और कुछ ही दिनों में उसने प्रश्न हल करके दिखा दिया।

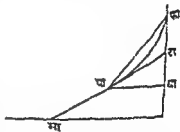
हॉस्पिटल का विचार सेना में मर्ती होने का था किन्तु दृष्टि की दुर्बलता के कारण उसकी यह सहाय पूरी न हो पायी। जीवन के तीसरे पक्ष में उसने अपना समय गणित के अध्ययन में ही बिताया। १६९६ में जॉन बर्नोली ने यह समस्या प्रस्तुत की—

"एक वक्ता एक बिन्दु का से दूसरे बिन्दु सा तब गिरता है। वह किस वक्र के अनुदिश गिरे कि समय कम से कम लगे?"

इस प्रश्न का उत्तर बर्नोली गणितज्ञों ने दिया था जिनमें से एक हॉस्पिटल भी था। गणित के विद्यार्थी जानते हैं कि उक्त प्रश्न का उत्तर है—चक्र। ऐसे वक्र को 'ब्रचिस्टोक्रोन' (Brachistochrone) कहते हैं।

आइज़ाक बॅरो (Isaac Barrow) एक अग्रज गणितज्ञ और पादरी का जन्मका जीवन काल १६३०—१६७७ था। इसने केम्ब्रिज में साहित्य, विज्ञान और दर्शन की शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात् हमने फ्रांस, इटली, टर्की आदि का भ्रमण किया। १६५९ में इंग्लैंड लौटने पर यह गिरजा में नियुक्त हो गया। १६६० में यह केम्ब्रिज में प्राध्यापक नियुक्त हो गया। १६६३ में यह रायल सोसायटी का अधिमहस्य निर्वाचित हुआ। १६६४ में यह केम्ब्रिज में गणित की एक गद्दी पर नियुक्त हुआ। १६६९ में हमने न्यूटन के मत में त्याग-पत्र दे दिया। १६७५ में यह केम्ब्रिज विश्व-विद्यालय का कुलपति हो गया।

अग्रजों की दृष्टि में न्यूटन को छोड़कर इंग्लैंड का सबसे बड़ा गणितज्ञ बॅरो ही था। इंगरी विशेष रूचि ज्यामिति और पाथुरी में थी। यदि हमने इंगरी विषया पर अपना चित्त लगा दिया होता तो सम्भवत हमने भी अग्रज न्याति प्राप्त की होती।



चित्र ८७—बॅरो अवकलन सिद्धांत।

हममें सन्देह नहीं कि बॅरो को अवकलन विद्या का कुछ कुछ आभास मिल चुका था। बॅरो की उक्ति थी कि यदि किसी वक्र पर कोई बिन्दु था, एक गिरा बिन्दु का और चालना जान तो अन्त में साथ साथ एक अवकल रसि हो जायगी। बॅरो रसि तब सिद्ध पर पर था का लोग 'बॅरो अवकल सिद्धांत' कहते रहे।

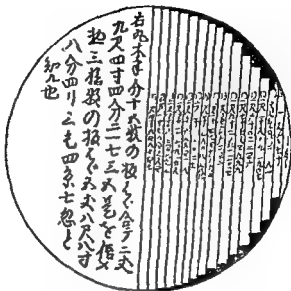
कलन और समाकलन के पारस्परिक सम्बन्ध को भी जानता था किन्तु हल करने में उनका कभी प्रयोग नहीं किया।

(४) कलन को पूर्व की देन

ना तो गलत होगा कि पूर्व में भी कलन का विद्या के रूप में विकास हो किन्तु पूर्व के कुछ गणितज्ञों ने इस दिशा में जो दो चार उलटे नीचे पग उठाये उल्लेख करना भी आवश्यक है। ताबित इब्न कोरा का नाम हम पिछले ले चुके हैं। इसने ८७० ई० के लगभग परबलयज (Paraboloid) का काला था। फिर सैकड़ों वर्ष तक इस दिशा में कोई उल्लेखनीय कार्य

नीं शताब्दी में जापान में सेकी काँवा का प्रादुर्भाव हुआ। इसकी कृतियों हम पिछले परिच्छेदों में कर चुके हैं। केवल एक बात कहने योग्य रह गयी थी गणित में 'वृत्त सिद्धान्त' (Circle Principle) की चर्चा मिलती थी विधि' भी कहते हैं। इसी विधि से जापानियों ने एक प्रकार के कलन का र लिया था। वास्तव में उक्त विधि का जन्मदाता कौन था, यह कहना कुछ लोगों का अनुमान है कि इसका आविष्कार सेकी काँवा ने ही किया। इसकी प्राप्य कृतियों में कहीं भी उक्त सिद्धान्त का उल्लेख नहीं मिलता। कहीं से आया इसके विषय में लोगों ने यह अटकल लगायी है कि सम्भव है नाम चीनी लेखक लाइ येह की उस कृति से लिया गया हो जिसका नाम 'त्से इ चिंग' था। इस नाम का अर्थ है "समुद्र दर्पण, वृत्त, का नाप।"

सम्बन्ध में और भी कई जापानी गणितज्ञों के नाम उल्लेखनीय हैं। इसोमूरा लेख हम अन्यत्र कर चुके हैं। इसकी कृतियों में आदिम समाकलन का कुछ भास मिलता है। इसकी प्रमुख पुस्तक कैत्सुगी शाँ १६६० में छपी थी जिस से प्रश्नों के हल दिये गये थे। एक अन्य जापानी गणितज्ञ था नोजावा टाइको। १६६४ में एक ग्रन्थ 'डॉकाइ शाँ' प्रकाशित किया जिसका विषय मापिकी (Insurance) था। इसमें इसोमूरा की समाकलन विधि को और आगे र गया था। जापान का ही एक गणितज्ञ था सावा गूची काजूयूकी। १६७० की एक पुस्तक 'कोकोन सम्पाँकी' प्रकाशित हुई। इस नाम का अर्थ है 'गणित रानी और नयी विधियाँ।' उक्त पुस्तक के एक पृष्ठ का चित्र हम यहाँ देते हैं।



चित्र ८८—जापान में कलन का उद्भव ।

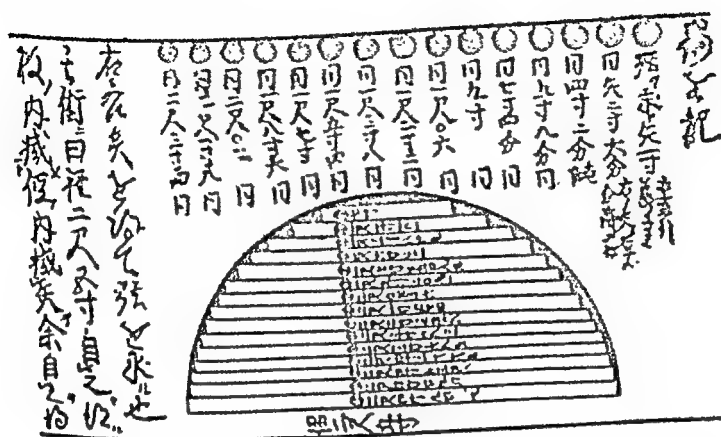
[जिन एण्ड कम्पनी की अनुज्ञा से डेविड यूवीन रिमथ की दिस्ट्री ऑफ मैथेमेटिक्स से प्रयुक्त ।]

यह उद्धरण जापानी पुस्तक कोकोन सम्रांकी (१६७०) से लिया गया है।

उपरिलिखित पुस्तक में भी समाकलन की रूपरेखा स्पष्ट दिखाई देती है। इस विधि से इसोमूरा ने वृत्तों का क्षेत्रफल निकाला था। १६८४ में इसने एक ग्रन्थ प्रकाशित किया जिसमें यही विधि गोले के आयतन कलन पर लगायी थी। इसी विधि का प्रयोग जापान के सत्रहवीं शताब्दी के अन्य कई गणितज्ञों ने किया है। इस सम्बन्ध में दो नाम उल्लेखनीय हैं—मोचीनागा और आहासी। इनकी एक पुस्तक १६८७ में प्रकाशित हुई जिसका शीर्षक था 'बाइसन की कॉमोकू'। हम यहाँ उक्त पुस्तक के भी एक अंश का चित्र देते हैं। इनकी विधि वही थी जो सावागुशी की थी।

हम यहाँ एक जापानी गणितज्ञ का और उल्लेख करेंगे—मत्सूनागा द्यो हिन्यु। यह सेकी के एक शिष्य का शिष्य था। इसने येंजी विधि से ही पचास दशमलव स्थानों

तक का मान निकाला था। इसके जीवन के विषय में केवल इतना पता है कि इसका जन्मवास १७४४ में हुआ था।



चित्र ८९—जापान में कलन का उद्भव (१६८७ के एक जापानी ग्रन्थ से)

[जिन एण्ट कम्पनी की अनुज्ञा से, टेविट् यूजीन स्मिथ कृत 'हिस्ट्री आफ् मैथेमेटिक्स' से प्रत्युत्पादित।]

(५) न्यूटन और लिब्नीज

न्यूटन का जीवन वृत्तान्त हम एक पिछले परिच्छेद में दे चुके हैं। न्यूटन की एक उक्ति आज कहावत बन गयी है—

“मैं नहीं जानता कि मैं संसार को किस रूप में दिखाई पड़ता हूँ। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि मैं एक बच्चा हूँ जो ज्ञान के महासागर के किनारे पर खड़ा खेल रहा है। मैं प्रयत्न करता हूँ कि खेल ही खेल में मुझे (ज्ञान का) कोई चिकना कंकड़ अथवा सुन्दर कौड़ी मिल जाय किन्तु सत्य का अथाह सागर तो मेरे लिए अज्ञात ही रहेगा।”

हम देख चुके हैं कि न्यूटन के पूर्वगामियों ने कलन के आविष्कार के लिए भूमि तैयार कर दी थी। न्यूटन को उसमें बीज डाल कर पौधा उत्पन्न कर देना था। न्यूटन ने एक स्थान पर कहा है कि “मैं दिग्गजों के कन्धों पर खड़ा हूँ।” निस्सन्देह कलन के क्षेत्र में उसका तात्पर्य दः कार्टे, फ़र्मा, वालिस और वॅरो से था और भीतिकी के क्षेत्र में कॅपलर और गॅलीलियो से।

काल के सम्बन्ध में न्यूटन के मन्तिष्व में तीन प्रकार की विचार धाराएँ थी—

(1) अनन्त लघु राशियाँ (Infinitely small quantities)

(II) प्रवाह विधि (Method of Fluxions)

(III) सीमा विधि (Method of Limits)

इनमें से पहली विधि का तो उसने कुछ समय पदचान् त्याग कर दिया

प्रवाह विधि

मान लीजिए कि एक बिन्दु निरन्तर गति से चलकर एक वक्र का सञ्चन करता है। ता वह अत्यल्प समय में अत्यल्प दूरी पार करता है। इस दूरी को न्यूटन बिन्दु का घूर्ण (moment) कहता है। और समय से इस घूर्ण का जो अनुपात होता है, उस न्यूटन ने 'प्रवाह' नाम दिया है।

$$\text{अन प्रवाह} = \frac{\text{उत्तरित दूरी}}{\text{अन्यत्र समय}} ।$$

इस सम्बन्ध में दो प्रश्न उपस्थित होते हैं—

(१) यदि उत्तरित दूरी का सूत्र दिया हो तो किसी विशिष्ट क्षण पर बिन्दु का क्या वेग होगा ?

(२) यदि वेग दिया हो तो किसी विशिष्ट समय में बिन्दु कितनी दूरी पार करेगा ?

हम उक्त विषय की कल्पना इस प्रकार भी कर सकते हैं—

मान लीजिए कि एक ताल में कुछ पानी भरा है जो प्रतिक्षण बढ़ता जाता है। जल की वृद्धि की दर निकालने के लिए हम देखेंगे कि कितने समय में उसकी ऊँचाई कितनी बढ़ी। फिर ऊँचाई की वृद्धि को समय से भाग दे देंगे। वही वृद्धि की दर होगी।

ज्यामितीय क्षेत्र में इसी प्रवाह से किसी रेखा का ढाल नापा जाता है।



चित्र ९०—किसी ज्यामितीय रेखा की ढाल नापना।

$$३ य^१ य + ३ य य^१ \circ + य^१ \circ^१ - २ व य य - व य^१ \circ$$

$$व य र + व य र + व य र \circ - ३ र^१ र - ३ र र^१ \circ - र^१ \circ^१ = ०$$

हमने \circ को एक अत्यल्प राशि माना है। अतः जिन पदों में यह राशि अथवा इसका कोई घात आता है, वे नगण्य हैं। ऐसे पदों की उपेक्षा करने से,

$$३ य^१ य - २ व य य + व य र + व य र - ३ र^१ र = ० \quad (III)$$

पाठक देखेंगे कि यदि हम समय को m से निरूपित करें और

$$\begin{array}{l} \text{ता य} \\ \text{ता म} \end{array} = \text{य}, \quad \begin{array}{l} \text{ता र} \\ \text{ता म} \end{array} = \text{र}$$

लिया तो आधुनिक ढंग से (I) का अवकलन करने पर हमें समीकरण (III) ही प्राप्त होगा। हम यहाँ स्वच्छावकलन (Partial Differentiation) और पूर्णावकलन (Total Differentiation) के संबंधों के अन्तर का विचार नहीं कर रहे हैं।

सीमा विधि

जितने समय में प्रवाही राशि y बढ़ कर $y + \circ$ हो जाती है, उतने समय में राशि y^m बढ़ कर $(y + \circ)^m$ हो जाती है।

द्विपद प्रमेय से हम व्यंजक का प्रसार करने से हमें

$$y^m + m \circ y^{m-1} + \frac{m(m-1)}{2} \circ^2 y^{m-2} +$$

प्राप्त होता है।

अतः जितने समय में राशि y में \circ की वृद्धि होती है उतने समय में राशि y^m

$$m \circ y^{m-1} + \frac{m(m-1)}{2} \circ^2 y^{m-2} +$$

की वृद्धि होती है। इन दोनों वृद्धियों का अनुपात

$$m \circ y^{m-1} + \frac{m(m-1)}{2} \circ^2 y^{m-2} +$$

अर्थात्

$$\frac{m y^{m-1} + \frac{m(m-1)}{2} \circ y^{m-2} +}{1}$$

अब यदि वृद्धि ० शून्य हो जाती है तो यह अनुपात

१ : स यⁿ⁻¹

हो जाता है। अतः

$$\frac{\text{राशि } y \text{ का प्रवाह}}{\text{राशि } y^n \text{ का प्रवाह}} = \frac{1}{s y^{n-1}} \quad 1$$

आधुनिक भाषा में हम कहते हैं कि

“राशि y^n ” का, y के प्रति, अवकल गुणांक y^{n-1} होता है।

हमने उपरिलिखित प्रसार में वृद्धि के लिए चिह्न ० का प्रयोग केवल सुविधा के लिए किया है। इस चिह्न का अर्थ ‘शून्य’ नहीं लगाना चाहिए।

लिब्नीज

गॉटफ्रायड विलियम लिब्नीज (Gottfried wilhelm Leibniz) का जीवन काल १६४६-१७१६ था। इसके पिताजी एक उच्च घराने के थे और नैतिक दर्शन के प्राध्यापक थे। इसके पुरखे तीन पीढ़ियों से जर्मन सरकार की नौकरी करते आये थे। प्रारम्भ में लिब्नीज का प्रवेश लाइप्ज़िग (Leipzig) के एक स्कूल में कराया गया, किन्तु यह ६ वर्ष का ही था जब इसके पिता का देहावसान हो गया। तब से इसकी शिक्षा स्वाध्याय द्वारा ही हुई। इसके पिता ने इसे वचन से ही इतिहास का शौक दिलाया था। आठ वर्ष की अवस्था में ही इसने लैटिन भी सीख ली। १२ वर्ष की अवस्था में यह ग्रीक भाषा सीखने लगा और लैटिन में पद्य रचना करने लगा। तत्पश्चात् यह तर्क-शास्त्र के अध्ययन में लग गया और १५ वर्ष की अवस्था में कानून की शिक्षा के लिए इसने लाइप्ज़िग विश्वविद्यालय में नाम लिखा लिया।

पहले दो वर्ष तक तो लिब्नीज ने दर्शन का अध्ययन किया। सम्भवतः इन्हीं दिनों इसका संसर्ग पूर्वगामी दिग्गजों की कृतियों से हुआ, जैसे कैंपलर, गैलीलियो, कार्डेन, दः कार्टे। तब इसने गणित के अध्ययन का निश्चय किया। किन्तु इसकी गणितीय शिक्षा सुचारु रूप से तभी आरम्भ हुई जब कई वर्ष पश्चात् इस की पेरिस में हाइगेंस से भेंट हुई। अगले तीन वर्ष लिब्नीज ने कानून का अध्ययन किया और १६६६ में डाक्टर की उपाधि लेने का प्रयत्न किया। इसकी अल्पावस्था के कारण इसे उक्त उपाधि नहीं मिल पायी। इसने झूँझल में आकर सदैव के लिए लाइप्ज़िग छोड़ दिया। उसी वर्ष नूरैम्बर्ग (Nuremberg) में इसे डाक्टर की उपाधि मिली। साथ ही इसे कानून के प्राध्यापक की गद्दी भी मिल रही थी किन्तु इसने उसे अस्वीकार कर दिया।

लिब्नीज अभी २१ वर्ष का भी नहीं था। किन्तु इसी अत्यावस्था में यह कई धर्मिपत्र लिख चुका था। ये लेख दार्शनिक विषयों पर थे। इन लेखों से इसकी ख्याति फैल गयी और इसे सरकारी नौकरी भी मिल गयी।

लिब्नीज की प्रतिभा बहुमुखी थी। इतिहास, कानून, साहित्य, धर्म, तर्कशास्त्र, दर्शन—सभी में इसने लम्बे लम्बे हाथ फेंके हैं। इनमें से प्रत्येक विषय में इसका नाम



चित्र ९१—लिब्नीज (११४६-१७१६)

[डोवर पब्लिकेशंस, इन्फोर्ट्रेटल न्यूयॉर्क—१०, वी. ब्रुक्ला से, डी० स्ट. डब. इत 'प. नॉ. सा. व. हिस्ट्री ऑफ मैथेमेटिक्स' (१७५ डॉलर) से प्रायुपादित।]

इतना महत्वपूर्ण हुआ है कि उसी से इसका नाम अमर हो जाता। इसीलिए कुछ लोग कहते हैं कि लिब्नीज ने एक ही जीवन में अनेक जन्म भोग लिये।

१६७२ में लिब्नीज की हाइगेंस से भेंट हुई। कई वर्ष तक हाइगेंस ने लिब्नीज को गणित की शिक्षा दी। इन्हीं दिनों लिब्नीज ने एक परिकलन यन्त्र (Calculating Machine) बनाया। पास्कल के यन्त्र से तो केवल जोड़ना और घटाना ही सम्भव था। लिब्नीज के यन्त्र में गुणा, भाग और वर्गमूलन का भी समावेश था। १६७३ में यह लन्दन गया जहाँ इसने अपने यन्त्र का प्रदर्शन किया। यह राँयल सोसायटी का अधिसदस्य बना लिया गया। कुछ महीने पश्चात् यह पेरिस लौटा और तभी से इसका उच्च गणित का अध्ययन आरम्भ हुआ जिसकी पराकाष्ठा अवकलन गणित और समाकलन गणित में हुई।

१६७६ में लिब्नीज हॅनोवर (Hanover) चला गया और फिर चालीस वर्ष तक वहीं ब्रन्स्विक् (Brunswick) परिवार की सेवा में रहा। यह उक्त परिवार के पुस्तकालय का अव्यक्ष भी था। जीवन के अन्तिम दिन लिब्नीज के रोग शय्या पर कटे। इसकी मृत्यु पर किसी ने दो आँसू भी न बहाये। अन्तिम प्रयाण के समय इसके सचिव के अतिरिक्त और कोई भी उपस्थित नहीं था। एक व्यक्ति ने आँखों देखा हाल लिखा है कि “लिब्नीज के अन्तिम संस्कार उसकी प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं हुए वरन् ऐसे हुए जैसे किसी डकैत के हुआ करते हैं।”

लिब्नीज का एक महत्वपूर्ण आविष्कार यह है

$$\frac{\pi}{4} = 1 - \frac{1}{3} + \frac{1}{5} - \frac{1}{7} + \dots$$

इस श्रेणी का आविष्कार ग्रेगरी पहले ही कर चुका था। १६७३ में लिब्नीज ने एक और फल सिद्ध किया--

$$x^{-1} y = y - \frac{1}{3} y^3 + \frac{1}{5} y^5 - \frac{1}{7} y^7 + \dots$$

इस श्रेणी को भी ग्रेगरी निकाल चुका था। और अब्राहम शार्प (Abraham Sharp) (१६५१-१७४२) ने इसी के प्रयोग से ७२ स्थानों तक π का मान निकाला था। जॉन मेसिन (John Machin) (१६८०-१७५१) ने इसी श्रेणी से यह निष्कर्ष निकाला :

$$\frac{\pi}{4} = 4 x^{-1} \frac{1}{5} - x^{-1} \frac{1}{239}$$

और इसकी सहायता से १७०६ में १०० स्थानों तक π का मान निवाला। १८७४ में विलियम शैक्स (William Shanks) (१८१२-८७) ने मजिन सूत्र के प्रयोग से π का मान ७०७ स्थानों तक निवाला।

II.

NOVA METHODUS PRO MAXIMIS ET MINIMIS ITEMQUE TAN- GENTIBUS, QUAEL VBI FRACTAS VEL IRRATIONALES QUANTITATES MORATUR ET SINGULARE PRO HIS CALCULI GENUA)

Sit (th, III) axis AX et curvae plures, ut YY, YYI, II ZZ , quarum ordinatae ad axem normales, YY, YYI, YYI, XX , quae vocantur respectue y vel x et huius AX abscissae ab axe vocetur x tangentes autem YD, WI, YD, YF , axi occurrentes respectue in punctis D, C, D, F . Iam recta aliqua pro arbitrio assumpta vocetur dx et recta, quae sit ad dx ut y (vel u vel v , vel z) est ad XB (vel YI vel YD vel YE) vocetur dy (vel du , vel dv vel dz) sive differentiae quarum y (vel quarum u , vel v , vel z) illis positus, calculi singulare erunt tales

Sit a quantitas data constans, erit dx aequalis 0 et dx erit aequalis dx . Sit v aequi v (sive ordinata quavis curvae YY aequalis cuius ordinatae respondentis curvae YYI) erit dy aequi dv . Jam Additio et Subtractio si sit $z = y + u + x$ aequi v , erit $dx = -1 + u + x$ sive $dx = du + dx + dx + dx$. Multiplicatio dx aequi $x dv + v dx$ sive posito v aequi $z v$ sit dy aequi $z dv + v dz$. In arbitrio enim est vel formulam ut $z v$, vel compendio pro litteram ut z adhibere. Notandum et v et dx eodem modo in hoc calculo tractari ut v et dv , vel aliam litteram indeterminatam cum suis differentialibus. Notandum etiam non dari semper regressum a differentialibus Aequatione sua cum quadam cautione, de quo alibi. Porro Divisio $\frac{dy}{v}$ vel (posito z aequi $\frac{v}{v}$) dx aequi $\frac{z dy + v dz}{v}$.

Quoad Signa hoc prole notandum cum in calculo pro littera substituitur simpliciter ejus differentialis, servari quidem eodem signa ut pro $+x$ scribitur $+dx$, pro $-x$ scribitur $-dx$ in ax addi-

*) Act. Erud. Lyp. an. 1684

चित्र ९२—लिब्नीज का कलन पर पहला अभिपत्र।

[दोवर पब्लिकेशंस इन्वॉरिटेड न्यूयार्क—१०, वी अनुषा स डी स्ट्रिक क्ल द कान्साइड डिस्ट्री आक में रैमैटिक्स (१७२ डालर) से प्रयुक्त।]

१६७३ में लिब्नीज ने वक्रों के क्षेत्रफलन पर एक अभिपत्र लिखा। उसमें यह

प्रमेय प्रतिपादित किया गया था—अबोलम्ब्र और मुज के अल्पाक्ष का आयत कोटि और उनके अल्पाक्ष के आयत के बराबर होना है। नाकेनिक मापा मे हम कहेंगे कि

$$अ\ तोंय = र\ तोंर [sub-normal \times \delta x - y \delta y]$$

इस समीकरण से लिब्नीज यह निष्कर्ष निकालता है

$$\Sigma अ\ तोंय = \Sigma र\ तोंर$$

हमने यह समीकरण आधुनिक संकेतलिपि में लिखा है। लिब्नीज ने Σ के स्थान पर 'omn' का प्रयोग किया था जिसका अर्थ है 'समस्त'। दो वर्ष पश्चात् उसने 'omn' के स्थान पर 'Summa' का पहला वर्ण 'S' प्रयुक्त किया और उसे विकृत करके यह रूप— \int दे दिया।

लिब्नीज ने इस प्रमेय का प्रयोग किया कि उपरिलिखित समीकरण के दक्षिण पक्ष में शून्य से लेकर समस्त आयतों को जोड़ने से कोटि के वर्ग का आधा प्राप्त होता है। और इस प्रकार यह सूत्र निकाल लिया—

$$\int र\ तोंर = \frac{1}{2} र^2$$

लिब्नीज ने देखा कि संकलन का संकेत \int फलन के घात की बढ़ा देता है। अतः उसने सोचा कि इसका उल्टा प्रसर—अवकलन—फलन के घात को घटा देगा। इस लिए उल्टे प्रसर का संकेत उसने 'Difference' का 'd' रखा और इसे हर में रखा—

$$\frac{1}{d} \left(\frac{1}{2} y^2 \right) = y.$$

इसका कारण यह रहा होगा कि साधारणतया भाग द्वारा फलन का घात घट जाता है। जिस पाण्डुलिपि में ये संकेत पहले पहल प्रयुक्त हुए थे, २९ अक्टूबर १६७५ की लिखी हुई थी। अतः उक्त तारीख कलत्र के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगी।

लिब्नीज धीरे धीरे अपनी संकेतलिपि में परिवर्तन करता गया और कुछ समय पश्चात् उसने

$$\frac{x}{d} \text{ के स्थान पर } dx$$

लिखना आरम्भ कर दिया। बहुत दिनों तक वह यह नहीं समझता था कि $dx \, dy$ और $d(xy)$ में क्या अन्तर है।

१६७७ में लिब्नीज़ ने एन और अमिपन लिया जिसमें अवकलन के कुछ नियम दिये जाय फलनों के योग, वियोग, गुणा और भाग के । उक्त अमिपन में कुछ उदाहरण भी दिये थे—

$$\text{ता } \sqrt{y} = \frac{1}{\sqrt{y}}$$

$$\text{ता } \frac{1}{y} = -\frac{1}{y^2}$$

स्पष्ट है कि ये दोनों फल गलत हैं । एक अन्य स्थान पर पिछले फल का शुद्ध मान $-\frac{2}{y^2}$ भी दिया था ।

लिब्नीज़ के ये आविष्कार लिखित रूप में १६७५-७७ में आ गये थे किन्तु इनका प्रकाशन १६८४ और १६८६ में हुआ । न्यूटन ने अपने आविष्कार तीन पुस्तिकाओं के रूप में १६६६, ७१ और ७६ में लिखे किन्तु उनका प्रकाशन क्रमशः १७११, १७३६ और १७०४ में हुआ ।

१६९२ में न्यूटन रोग-ग्रस्त हो गया । उसकी भूख मिट गयी और निद्रा ने भी उसका साथ छोड़ दिया । अगले वर्ष जब वह रोगमुक्त हुआ तो उसने पहले पहले सुना कि यूरोप के महाद्वीप में लिब्नीज़ के बलन का प्रसार हो चुका है और सब लोग उसी को उसके आविष्कार का श्रेय दे रहे हैं । इस प्रकार यूरोप और इंग्लण्ड में 'प्राथमिकता का विवाद' उठ खड़ा हुआ । न्यूटन के समर्थन खुले आम बहने लगे कि लिब्नीज़ ने न्यूटन के गवेषणा कार्य की चोरी की है । यह सब को पता था कि लिब्नीज़ १६७३ में लन्दन गया था । और न्यूटन 'प्रवाह विधि' पर अपनी पहली पुस्तिका की पाण्डुलिपि १६६६ में ही तैयार कर चुका था । अतः लोगो ने यह अनुमान लगाया कि लिब्नीज़ ने अवस्थान् अथवा घीके में उक्त पाण्डुलिपि प्राप्त कर ली और उसमें से कुछ सामग्री उठा ली ।

गणित के इतिहास में इस ढंग के विवाद का कोई दूसरा उदाहरण बटिनाई से ही मिला । पत्रों और पत्रिकाओं में अनेक लेख प्रकाशित हुए और रायल सोसायटी ने उक्त विवाद पर अपनी प्रतिवेदना देने के लिए एक विशेष समिति नियुक्त की । प्रतिवेदना १७१२ में प्रकाशित हुई और उसके आधार पर इंग्लण्ड वाला ने यह निर्णय कर दिया कि लिब्नीज़ ने बेईमानी की है । १८४६ में डी मॉर्गन ने उक्त विवाद पर पुनर्विचार किया और लिब्नीज़ को निर्दोष ठहराया ।

न्यूटन और लिब्नीज़ का पारस्परिक सम्बन्ध आरम्भ में बहुत अच्छा था बल्कि दोनों एक दूसरे का आदर करते थे और घनिष्ठ मित्र थे। किन्तु उपरिलिखित विवाद ने उनमें कटुता आ गयी और वह एक दूसरे से कुनह करने लगे। इस प्रकार एक निराधार बात के कारण दो मित्र एक दूसरे से पृथक् हो गये। विवाद के समस्त पक्षों पर विचार करके हम इन निष्कर्षों पर पहुँचते हैं—

- (१) न्यूटन ने कलन का आविष्कार लिब्नीज़ से कई वर्ष पहले किया।
- (२) यह सम्भव है कि लिब्नीज़ ने उड़ते उड़ते न्यूटन के कार्य का कुछ आभास पा लिया हो।
- (३) जब लिब्नीज़ लन्दन गया, उसके न्यूटन की हस्तलिपि प्राप्त कर लेने की तनिक भी सम्भावना नहीं है।
- (४) लिब्नीज़ की कार्य प्रणाली न्यूटन की प्रवाह विधि से सर्वथा भिन्न है। दो विभिन्न मार्गों से दोनों एक ही स्थान पर पहुँच गये।
- (५) प्रकाशन में लिब्नीज़ न्यूटन से कई वर्ष पहले रहा।

अतः लिब्नीज़ पर चोरी का आरोप लगाना मिथ्याचार है। कलन के आविष्कार का श्रेय न्यूटन और लिब्नीज़ दोनों को मिलना चाहिए।

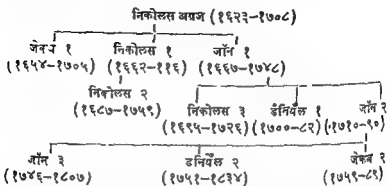
(६) पश्चिम में आधुनिक काल

(सत्रहवीं, अठ्ठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियाँ)

बर्नौली (Bernoulli) परिवार

बर्नौली परिवार का इतिहास बड़ा ही विलक्षण रहा है। तीन पीढ़ियों में इस परिवार में नौ गणितज्ञ अथवा भौतिकीज्ञ हुए हैं जिनमें से कई का कार्य तो अद्भुत हुआ है। किसी भी विषय के इतिहास में ऐसा ज्वलन्त उदाहरण कठिनाई से ही मिलेगा। इन नौ में से चार की कृतियाँ इतनी महत्वपूर्ण हुईं कि उन्हें पेरिस की विज्ञान परिषद् ने विदेशी सदस्य निर्वाचित कर लिया। आज तक उक्त परिवार की सन्तति में १२० वंशजों का पता चल पाया है जिनमें से अधिकांश बड़े मेधावी हुए हैं। इन्होंने भिन्न भिन्न क्षेत्रों में प्रमुखता प्राप्त की है—विज्ञान, साहित्य, प्रशासन, कला, कानून आदि। शेष व्यक्तियों में से भी एक भी ऐसा नहीं है जो अपने व्यवसाय में असफल रहा हो। और एक विशेषता यह भी है कि इस परिवार के जो सदस्य गणितज्ञ हुए हैं उनमें से अधिकांश ने पहले कोई अन्य व्यवसाय अपनाया, और तत्पश्चात् परिस्थितियों ने

उन्हे गणित के क्षेत्र में घबेल दिया। यूँ कहना चाहिए कि गणित उनके गले पड़ गया। हम यहाँ उक्त परिवार की वंशावली देते हैं—



बर्नोली परिवार १५८३ में एन्टवर्प (Antwerp) से भाग कर स्विट्जरलैंड आया था। जहाँ तब पता चला है इस परिवार के सबसे पहले पूर्वज ने एक व्यापारी की लड़की से विवाह किया था। तब से इस परिवार का व्यवसाय व्यापार ही हो गया जिसमें पीढ़ी दर पीढ़ी ये लोग पैसा कमाते गये। गणितीय परम्परा निकोलम के पुत्रों में आरम्भ होती है जो स्वयं एक व्यापारी था।

जेकब (Jacob) १ अथवा जैक (Jacques) १ (१६५४-१७०५) ने पहले धर्मशास्त्र का अध्ययन किया किन्तु इसकी अभिरुचि गणित, भौतिकी और ज्योतिष में थी। फ्रान्स, हॉलैण्ड, बेल्जियम और इंग्लैंड का चक्कर लगाकर १६८२ में यह स्विट्जरलैंड लौटा और तब इसने कलन का अध्ययन आरम्भ किया। १६८७ से जीवन पर्यन्त यह बेसिल (Basle) में गणित का प्राध्यापक रहा। यदि इसके पिता की चली होती तो यह धर्म प्रचारक हुआ होता। इसीलिए हमने अपने जीवन में इस कहावत को अपनाया—“अपने पिताजी की इच्छा के विरुद्ध मैं सितारों का अध्ययन करूँगा।”

तीन शाखाओं में जेकब का कार्य महत्वपूर्ण रहा है—

(i) सम्भाव्यता सिद्धान्त

(ii) वैश्लेषिक ज्यामिति

(iii) विचरण कलन (Calculus of Variations)

विचरण कलन का उद्गम लोकोक्तियों पर आधारित है। कहते हैं कि जब कार्थेज (Carthage) शहर की दीवार टूटती गयी थी तो प्रत्येक व्यक्ति को इतनी भूमि दी

गयी थी जिसकी चौहद्दी वह दिन भर में जोत सके। प्रत्येक व्यक्ति अधिक से अधिक भूमि लेना चाहता था। अब प्रश्न यह था कि कौन सी आकृति की नाली बनायी जाय कि उसके अन्दर अधिक से अधिक भूमि समा जाय? गणितीय भाषा में हम यों कहेंगे कि यदि परिमाप (Perimeter) दिया है तो कौन सी आकृति बनायी जाय जिसका क्षेत्रफल अधिक से अधिक हो? इसे समपरिमापीय (Isoperimetric) समस्या कहते हैं। जेकब ने इसे हल किया और इससे एक अधिक सार्विक फल भी निकाला। गणित के विद्यार्थी जानते हैं इस प्रश्न का उत्तर है 'वृत्त' यद्यपि इस प्रश्न को परुष उपपत्ति देना सरल नहीं है।

हम पिछले पन्नों में इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि चक्रज एक द्रुततमपात वक्र है। इस तथ्य का पता कई गणितज्ञों ने एक साथ लगाया था जिनमें जेकब १ और जॉन १ भी थे। द्रुततमपात समस्या से ही मिलती जुलती एक समस्या यह भी है—

“वह कौन सा वक्र है जिसके किसी भी बिन्दु से सब से नीचे के बिन्दु तक गिरने में समान समय लगे?”

. आश्चर्य की बात है कि यह गुण भी चक्रज में ही है। अतः चक्रज समकालवक्र (Tautochrone) भी है।

जेकब ने रज्जुका और लघुगुणकीय सर्पिल (Logarithmic Spiral) के भी बहुत से गुण आविष्कृत किये। उक्त सर्पिल का एक रोचक गुण यह है कि 'इसका केन्द्रज (Evolute) भी एक ऐसा ही सर्पिल होता है।' जेकब इस वक्र के इस गुण से इतना प्रभावित हुआ कि उसने यह निर्देश कर दिया कि “मेरी कब्र पर यही सर्पिल खींच दिया जाय और उसके नीचे लिख दिया जाय कि ‘मैं चोले बदल बदल कर बार बार आऊँगा।’ ‘वर्नोली संख्याएं’ जेकब के नाम से ही प्रसिद्ध हैं।

जॉन (Johann) १ (१६६७-१७४८) को उसके पिता एक व्यापारी बनाना चाहते थे। उसका स्वयं यह विचार था कि औपवि विज्ञान अथवा साहित्य का अध्ययन करे। अट्ठारह वर्ष की अवस्था में उसने एम० ए० की उपाधि प्राप्त की किन्तु उसे शीघ्र ही पता चल गया कि उसका स्वधर्म गणितशास्त्र था। १६९५ में वह ग्रोनिगन (Groningen) में गणित का प्राध्यापक हुआ। १७०५ में जेकब १ की मृत्यु के पश्चात् वह वेसिल में उसके स्थान पर नियुक्त हो गया।

जॉन भी अपने भाई जेकब से कम नहीं था। इसकी कृतियाँ मात्रा में तो जेकब के कार्य से अधिक ही रही हैं। चक्रज और समकाल वक्रों के अतिरिक्त इसने कई अन्य प्रकार्यों पर लेखनी उठायी—वक्रों का चापकलन और क्षेत्रकलन, कोणों और चापों

का बहुसिमाका, अवकाश समीकरण। इतना ही नहीं, हमने गणित के प्रतिष्ठा की और विषयों में भी प्रतिष्ठा दी। जैसे ज्योतिष, रसायन, भौतिकी, धार्मिक, धार्मिक और गणित के गणित पर हमका कार्य बहुतबहुत रहा है।

जॉन और जेम्स में गणित नहीं था। जॉन स्वभाव से ही गणितज्ञ था। इतना ही नहीं, वह अपने माई की कृपा से भी गणित करने के अपने नाम से छात्र दिया करता था। और जेम्स जेम्स पर गणित का आरोप लगाया जाता था। जॉन ईशान्ति भी था। तब यह प्रांग की गणितीय परिपक्व ने एक गुरुत्वाकर्षण की धारणा की। जॉन और उगाता गणित निराश्रित (Nicolaus) ३ प्रतिष्ठा में उतर पड़े। पुत्र का गुरुत्वाकर्षण मिल गया और गणित मुक्त तात्का रह गया। ईशान्ति में आकर जॉन ने पुत्र का घर में निवास दिया।

१६९६ में जेम्स जेम्स ने अपनी सम्पत्तिमापीय सम्पत्ति प्रतिष्ठा की थी और उम्र पर एक गुरुत्वाकर्षण देने की भी धारणा की थी तो जॉन ने उगाता हट निवास कर जेम्स के पास भेजा था किन्तु जेम्स ने उस स्थिति पर नहीं किया।

इसमें तब नहीं कि जॉन में अद्भुत मानविक और धार्मिक शक्ति थी और वह क्षमता के अन्तर्गत एक बराबर कार्य में लगता रहा। आपुनिक अर्थ में 'Integral' गणित का प्रयोग गणित पहल उगी ने किया था। उसने काल्पनिक राशि $(- \sqrt{-1})$ की सहायता से कई वास्तविक गणित निकाले, जैसे स्वक्ष के पक्ष में स्वक्ष का प्रसार।

निकोलस १ (१६६२-१७१६) भी जेम्स का भाई ही था। इनने १६ वर्ष की अवस्था में बेगल से दर्शन में डाक्टर की उपाधि ली और तीन वर्ष की अवस्था में कानून की उच्चतम उपाधि प्राप्त की। पहले यह कानून का प्राध्यापक हुआ और तत्पश्चात् गणित का।

निकोलस १ का पुत्र निकोलस २ था जिसका जीवन काल १६८७-१७५९ था। इनने भी कानून में शिक्षा प्राप्त की और इनकी पहली पुस्तक का विषय था 'कानूनी प्रकरणों में सम्भाव्यता'। यह पहले पहल में गणित का प्राध्यापक हुआ और तत्पश्चात् बेगल में। इसकी कृतियाँ ज्यामिति और अवकल समीकरणों पर हैं। इनने १७१३ में अपने ताऊ की एक पुस्तक का भी सम्पादन किया जिसका विषय सम्भाव्यता था।

निकोलस ३ जॉन १ का सबसे बड़ा पुत्र था। इसका स्थितिकाल १६९५-१७२६ था। यह तीन वर्ष बर्न (Berne) में कानून का प्राध्यापक रहा। यह और हमका भाई डेनियल (Daniel) प्रेटोग्राद (Petrograd) की परिपक्व में

गणित के प्राध्यापक नियुक्त हुए किन्तु नियुक्ति के आठ महीने पश्चात् ही निकोलस की मृत्यु हो गयी। इसके कुछ अभिप्राय इसके पिता की कृतियों के अन्तर्गत ही प्रकाशित हुए हैं।

डॅनियैल १ (१७००-८२) निकोलस ३ का छोटा भाई था। इसके पिता ने उसे व्यापार में डालना चाहा किन्तु इस ने औपधि-विज्ञान का अध्ययन किया। ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही इसने बड़े भाई से गणित की शिक्षा प्राप्त करनी आरम्भ कर दी। यह वैद्य होते न होते गणितज्ञ बन गया। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, यह पहले पेंडोग्राड में प्राध्यापक हुआ। १७२३ में यह वेसिल में शारीर (Anatomy) और वनस्पतिशास्त्र का प्राध्यापक नियुक्त हो गया और तत्पश्चात् दर्शन का। इसकी गणितीय कृतियों के विषय कलन, अवकल समीकरण और सम्भाव्यता हैं। इसके अतिरिक्त प्रयोजित गणित और भौतिकी में भी इसका कार्य महत्वपूर्ण रहा है। कुछ लोग तो इसे गणितीय भौतिकी का जन्मदाता कहते हैं।

डॅनियैल को पेरिस की परिपद से दस बार पारितोषिक मिला। दूसरी बार का पारितोषिक इसे और इसके पिता को मिलाकर दिया गया था। तीसरी बार के पारितोषिक का विषय ज्वार भाटा था और वह इस को ऑयलर, मॅक्लॉरिन और एक अन्य प्रतियोगी के साथ दिया गया था। एक बार इसने 'बल समान्तर-चतुर्भुज' (Parallelogram of Forces) का प्रदर्शन भी किया था।

डॅनियैल के विषय में डा० हटन (Hutton) ने दो रोचक घटनाओं का उल्लेख किया है जो Philosophical and Mathematical Dictionary के पृ० २०५ पर प्रकाशित हुई हैं—

(i) एक बार डॅनियैल किसी अपरिचित विद्वान् के साथ यात्रा कर रहा था। सहयात्री इसकी बातचीत से बहुत प्रभावित हुआ। उसने इसका नाम पूछा। इसने कहा "मैं हूँ डॅनियैल वनोला।" अपरिचित समझा कि यह खिल्ली उड़ा रहा है, और बोला कि "और मैं हूँ आइज़क न्यूटन।"

इस घटना से पता चलता है कि डॅनियैल की ख्याति कितनी फैल चुकी थी।

(ii) एक बार डॅनियैल प्रसिद्ध गणितज्ञ कोनिग (Koenig) (मृत्यु १७५७) के साथ भोजन कर रहा था। कोनिग ने बड़े गर्व से इसे अपना एक प्रश्न और उसका हल बताया जो उसने बड़े परिश्रम से निकाला था। भोजन के उपरान्त जब दोनों कहवा पीने लगे तब डॅनियैल ने उसको उक्त प्रश्न का एक और हल दे दिया जो उसके हल से बढ़कर था।

जॉन १ का सबसे छोटा पुत्र जॉन २ था जिसका जीवन काल १७१०-१० था। इसने भी आरम्भ में कानून का ही अध्ययन किया था किन्तु कुछ समय पश्चात् वेमिंग में गामिता (Eloquence) का प्राध्यापक नियुक्त हुआ और अन्त में पिता की गद्दी पर बैठ गया। इसका प्रमुख कार्य भौतिकी में हुआ और इसे भी तीन बार पेरिस का पारितोषिक मिला।

जॉन २ का बड़ा पुत्र जॉन ३ (१७४६-१८०७) था। इसने भी कानून और दर्शन से आरम्भ किया और अन्त में गणित पर आ टिका। १९ वर्ष की अवस्था में यह बर्लिन में राजकीय ज्योतिषी नियुक्त हुआ। इसकी कृतियाँ अनिर्णीत समीकरणों, सम्भाव्यता, आवर्त दशमलव और ज्योतिष पर हैं।

जॉन २ का दूसरा पुत्र जेम्स २ था जिसका जीवन काल १७५९-८९ था। अपने कई पूर्व गामियों की ही भाँति इसने भी पहले कानून का अध्ययन किया किन्तु कुछ ही समय पश्चात् इसने गणित और प्रायोगिक भौतिकी को अपना लिया।

इसका विवाह ऑयलर की एक नतनी से हुआ था। यह भी पेंट्रोप्राड परिवार का सदस्य हो गया था किन्तु ३० वर्ष की अल्पावस्था में ही डूबने से इसकी मृत्यु हो गयी।

यू तो बर्नोली परिवार में और भी कई गणितज्ञ हुए हैं किन्तु उन्होंने कोई प्रमुखता प्राप्त नहीं की। हम उन में से कुछ के नाम यहाँ देने हैं—

(१) डॅनियैल २ (१७५१-१८३४)—जॉन २ का दूसरा पुत्र।

(२) क्रिस्टफ (Christoph) (१७८२-१८६३)—डॅनियैल २ का पुत्र।

(३) गस्टेव (Gustave) (१८११-१८६३)—क्रिस्टफ का पुत्र।

रिक्कैटी (Riccatti) परिवार

जैकोपो फ्रैंसेस्को रिक्कैटी (Jacopo Francesco Riccati) इटली का एक गणितज्ञ था जिसका जीवन काल १६७६-१७५४ था। इसने पदुआ विश्वविद्यालय में शिक्षा पायी जहाँ से यह १६९६ में स्नातक हुआ। इसकी बड़ी ख्याति थी और समस्त वैज्ञानिक विषयों में लोग इसकी राय लिया करते थे। इसका नाम पेंट्रोप्राड की परिवार की अध्यक्षता के लिए प्रस्तावित किया गया किन्तु इसने इटली छोड़ना पसन्द नहीं किया, अतः अस्वीकार कर दिया। इसने कई विषयों पर अपनी लेखनी उठायी, जैसे अवकल समीकरण, भौतिकी, गणितीय, दर्शन। इसने न्यूटन के सिद्धान्तों का भी प्रचार किया। इसकी कृतियों का सम्पादन इसके लड़के ने इस की मृत्यु के पश्चात् किया और उन्हें १७५८ में चार भागों में प्रकाशित किया।

रिकॅटी का नाम इस अवकल समीकरण से सम्बद्ध है—

$$\frac{\text{तार}}{\text{ताय}} = क + ख र + ग र^२ ।$$

इस समीकरण पर जेकब वनॉली ने परिश्रम किया था। रिकॅटी ने इसकी कुछ विशिष्ट दशाओं के हल निकाले। डेनियैल वनॉली ने इसका पूर्ण रूप से साधन कर दिया। इस समीकरण के हल का पूरा विवरण इस लेख में मिलेगा—

J. W. L. Glaisher : Philosophical Transactions (1881)
जैकोपो का द्वितीय पुत्र विन्सेन्जो रिकॅटी (Vincenzo Riccati) (१७०७-७५) भी एक गणितज्ञ था। यह बोलोना के एक कॉलज में प्राध्यापक था। त्रिकोण-मिति में अतिपरवलयीय फलनों (Hyperbolic Functions) का प्रवेश सर्व-प्रथम इसी ने किया था। इसके अतिरिक्त इसके प्रिय विषय थे—श्रेणियाँ, क्षेत्रकलन, अवकल समीकरण आदि।

इसी परिवार के दो और गणितज्ञ उल्लेखनीय हैं—

(i) जैकोपो का तृतीय पुत्र जियाॅर्डानो रिकॅटी (Giordano Riccati) (१७०९-९०) ; प्रिय विषय—ज्यामिति, घन समीकरण, न्यूटनी दर्शन।

(ii) जैकोपो का पाँचवाँ पुत्र फ्रॅसेस्को रिकॅटी (Francesco Riccati) (१७१८-९१) ; प्रिय विषय—वास्तुकला पर ज्यामिति का प्रयोग।

रोजर कोट्स (Roger Cotes) (१६८२-१७१६) इंग्लैंड के एक पादरी का पुत्र था। इसकी प्रारम्भिक शिक्षा लन्दन के सेण्ट पॉल के स्कूल में हुई थी। तत्पश्चात् यह केम्ब्रिज के ट्रिनिटी कॉलज में प्रविष्ट हुआ। केम्ब्रिज में १७०४ में ज्यामिति की एक गद्दी की स्थापना हुई थी। उक्त गद्दी पर सर्व प्रथम कोट्स की ही नियुक्ति हुई, और वह भी २४ वर्ष की अल्पावस्था में। डा० बेंण्टले (Bentley) के आग्रह पर कोट्स ने न्यूटन की प्रिन्सीपिया का दूसरा संस्करण निकाला। अपने जीवन काल में तो कोट्स केवल दो अभिपत्र ही प्रकाशित कर सका। उसकी समस्त कृतियाँ उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके एक सम्बन्धी डा० रॉबर्ट स्मिथ (Robert Smith) ने प्रकाशित कीं। स्मिथ कोट्स का भाई लगता था और केम्ब्रिज की उपरिलिखित गद्दी पर उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसका जीवन काल १६८९-१७६८ था।

कोट्स की मृत्यु पर न्यूटन ने यह टीका की थी—“यदि कोट्स जीवित रहता तो हमें कुछ बता जाता।” इस से पता चलता है कि न्यूटन कोट्स का कितना आदर

करता था। कोटस के संग्रह का नाम रखा गया था 'हरमोनिया में सुरेस' (Harmonia Mensurarum)। ग्रन्थ का यह नाम इस प्रमेय के कारण पड़ा जो उसमें समाविष्ट है—

यदि मू के मध्येन कुछ सदिस निज्याएँ (Radii Vectores) खींची जायें और उनमें से प्रत्येक पर एक बिन्दु पा ऐसा लिया जाय कि

$$\frac{1}{\text{मूपा}} = \frac{1}{s} \left(\frac{1}{\text{मूपा}_1} + \frac{1}{\text{मूपा}_2} + \frac{1}{\text{मूपा}_3} + \dots + \frac{1}{\text{मूपा}_n} \right),$$

तो पा का बिन्दुपथ (Locus) एक ऋजु रेखा होगी।

कोटस ने १७१० में यह सूत्र दिया था—

$$\text{लघु (कोज् क्ष+ए ज्या क्ष)} = \text{ए क्ष}, \quad (\text{ए} = \sqrt{-1})$$

किन्तु यह प्रकाशित हुआ १७२२ में उसके संग्रह के अन्तर्गत।

इसी सूत्र से द ब्वात्रे प्रमेय निकला है

$$(\text{कोज् क्ष+ए ज्या क्ष})^n = \text{कोज् सक्ष+ए ज्या सक्ष}।$$

यह प्रमेय द ब्वात्रे ने १७१० में प्रकाशित किया किन्तु १७०७ में द ब्वात्रे यह सूत्र दे चुका था—

$$\frac{1}{2} (\text{कोज् सक्ष+ए ज्या सक्ष})^n + \frac{1}{2} (\text{कोज् सक्ष-ए ज्या सक्ष})^n \\ = \text{कोज् क्ष}।$$

इससे यह अनुमान होता है कि सम्भवतः द ब्वात्रे को अपने प्रमेय का पूर्वाभास १७०७ में ही हो गया था।

आयलर ने १७४८ में यह सूत्र दिया था—

$$2^n - \text{कोज् क्ष+ए ज्या क्ष},$$

$$\text{जिसमें } 2 = 1 + 1 + \frac{1}{12} + \frac{1}{12} + \frac{1}{12} + \dots$$

इसके अतिरिक्त आँयलर ने १७४८ में ही ये सूत्र भी दिये थे—

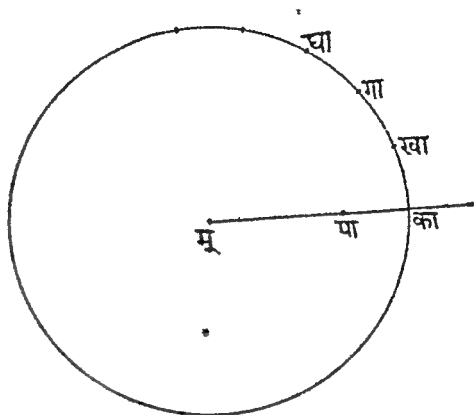
$$\text{कोज् क्ष} = \frac{2^{n/2} + 2^{-n/2}}{2},$$

$$\text{ज्या क्ष} = \frac{2^{n/2} - 2^{-n/2}}{2i},$$

स्पष्ट है कि ये मूत्र भी कोट्स के मूत्र से निकाले जा सकते हैं ।
कोट्स का एक अन्य प्रमेय बहुत प्रसिद्ध हो गया है—

मान लीजिए कि का, खा,

गा,.... किसी सम बहुभुज के शीर्ष हैं जो किसी वृत्त के अन्दर अन्तर्लिखित हैं । मान लीजिए कि पा वृत्त के अन्दर अथवा बाहर कोई बिन्दु है जो मूका पर स्थित है । तो, यदि वृत्त की त्रिज्या त है, और मूपा = य, तो



पा का. पा खा. पागा.स

गुणन खण्डों तक

= तⁿ — यⁿ अथवा यⁿ — तⁿ, चित्र ९३—कोट्स के एक प्रमेय का वृत्त ।

यदि बिन्दु पा क्रमशः वृत्त के अन्दर अथवा बाहर स्थित हो ।

इस प्रमेय को 'वृत्त का कोट्स गुण' (Cotes' Property of the Circle) कहते हैं ।

कोट्स ने इस वक्र का भी अध्ययन किया था—

$$क = त^3 \text{ क्ष } (a = r^2 0),$$

जिसका नाम उसने लिटुअस (Lituus) रखा था ।

यदि पाठक थोड़ी देर धैर्य रखें तो हम निकोलस साँडर्सन (Nicholas Saunderson) (१६८२—१७३९) से भी निवृत्ते चलें । इस का जन्म इंग्लैण्ड के थर्लस्टन (Thurleston) नगर में हुआ था । जब यह एक वर्ष का था तभी चेचक से इसकी आँखें जाती रही थीं । नेत्रहीन अवस्था में ही इसने ग्रीक, लैटिन और गणित का अध्ययन किया । १७०७ में यह केम्ब्रिज में न्यूटनी सिद्धान्त पर अध्यापन कार्य करने लगा । यह व्हिस्टन (Whiston) का शिष्य था और १७११ में उसी के स्थान पर, केम्ब्रिज की गणित की गद्दी पर आरूढ़ हो गया । १७२८ में इसे कानून के डाक्टर की उपाधि मिली और १७३६ में यह रॉयल सोसायटी का अविसदस्य हो गया ।

साँडर्सन ने एक परिकलन यन्त्र का आविष्कार किया था जिससे अंकगणितीय और बीजगणितीय क्रियाएँ स्पर्श मात्र से की जा सकती हैं । उक्त यन्त्र का विवरण

इसने अपनी बीजगणित की पुस्तक में दिया है जो इसकी मृत्यु के पश्चात् १७४० में दो भागों में प्रकाशित हुई। 'प्रवाह विधि' पर इसका एक ग्रन्थ १७५१ में प्रकाशित हुआ। यो मी इसने न्यूटनी सिद्धान्तों का यथेष्ट प्रचार किया।

ब्रुक टेलर (Brook Taylor) (१६८५-१७३१) एक अंग्रेज गणितज्ञ था। इसकी शिक्षा कैम्ब्रिज में हुई। १७०८ में इसने दोलन केन्द्र (Centre of Oscillation) की समस्या का हल निकाला जो १७१४ में प्रकाशित हुआ। जॉन बर्नोली ने उक्त आविष्कार में टेलर की प्राथमिकता स्वीकार नहीं की है। १७१२ में टेलर रॉयल सोसायटी का अधिसदस्य निर्वाचित हुआ और चार वर्ष तक सोसायटी का सचिव भी रहा। १७१२ में ही यह उक्त समिति का भी सदस्य नियुक्त हुआ जो कलन में न्यूटन अथवा लिब्नीज की प्राथमिकता सिद्ध करने के लिए बनायी गयी थी।

१७१५ में टेलर ने एक अभिपत्र लिखा जिसमें यह प्रमय दिया—

$$f(y+\delta) = f(y) + \delta f'(y) + \frac{\delta^2}{2} f''(y) + \frac{\delta^3}{6} f'''(y) + \dots$$

इसी फल को आजकल टेलर श्रेणी (Taylor Series) कहते हैं। कलन का प्रत्येक विद्यार्थी इस श्रेणी से भली भाँति परिचित होता है। टेलर के समय से आज तक इसके बहुत से सन्नाधित रूप प्रस्तुत किये जा चुके हैं।

उसी अभिपत्र में टेलर ने उच्च गणित की एक नयी शाखा का श्री गणेश किया था सान्त अन्तर कलन (Calculus of Finite Differences)। इसमें कम्पमान डारी (Vibrating String) की गति निकालने में उक्त विषय का प्रयोग किया था। इस की अन्य कृतियाँ के विषय ये थे—भौतिकी, लघुगणक, दृष्टि साम्य (Perspective)। लाय कहते हैं कि 'न्यूटन और कोट्स के पश्चात् टेलर ही इंग्लैण्ड का ऐसा गणितज्ञ हुआ है जिसने बर्नोलियो से मुँहटा लिया। किन्तु इसमें अमिध्यजना शक्ति की कमी थी।

जेम्स स्टर्लिंग (James Stirling) (१६९२-१७७०) की शिक्षा ग्लास्गो (Glasgow) और ऑक्सफोर्ड (Oxford) में हुई। कुछ राजनीतिक कारणों से इसे ऑक्सफोर्ड छोड़ना पड़ा और इसने वेंनिस (Venice) में प्राध्यापकत्व स्वीकार कर लिया। वेंनिस में यह दस वर्ष रहा। इसकी न्यूटन और निकोलस बर्नोली से मित्रता थी। इसने १७१७ में पन वक्ता पर एक अभिपत्र लिखा। न्यूटन नंऐसे वक्ता को बहतर जातियों में विभक्त किया था। वर्गीकरण के जो सिद्धान्त न्यूटन

ने स्थिर किये थे, उनके अनुसार इन पदों की ६ जाँचकर उनमें में गड़ गयी थी। स्टर्लिंग ने इन पदों को पूरा कर दिया।

१७३० में स्टर्लिंग ने अनन्त श्रेणियों पर एक प्रणिपत्र लिखा जिनमें श्रेणियों के स्थानों का विवेचन किया गया था। उक्त अनिपत्र का एक महत्वपूर्ण फल इस प्रकार है—

$$\frac{1}{n!} = \sum_{s=1}^{\infty} \frac{1}{n} \cdot \frac{n!}{n(n+1)(n+2)\dots(n+s)}$$

इसके अतिरिक्त स्टर्लिंग के दो अन्य सूत्र प्रसिद्ध हो गये हैं—

$$(i) \text{ लघु } (n!) = (n+1) \text{ लघु } n - n+1 \text{ लघु } (n-1)$$

$$+ \frac{v_1}{2.2n} - \frac{v_2}{3.3n} + \dots$$

जिसमें v_1, v_2, \dots बर्नोली संख्याएँ हैं।

इस फल को स्टर्लिंग श्रेणी (Stirling Series) कहते हैं।

$$(ii) n! (1+y)^{-n} = e^{-y} y^n (2n-y)^{-n}$$

इस सूत्र को स्टर्लिंग अनन्तस्पर्शी सूत्र (Stirling Asymptotic Formula) कहते हैं।

स्टर्लिंग ने दो प्रकार की संख्याओं का भी आविष्कार किया था जिन्हें स्टर्लिंग संख्याएँ (Stirling Numbers) कहते हैं। स्थान के अभाव के कारण हम यहाँ उनका विवरण देने में असमर्थ हैं।

कोलिन मॅक्लॉरिन (Colin Maclaurin) (१६९८-१७४६) स्कॉलैण्ड का एक गणितज्ञ था। इसकी शिक्षा ग्लासगो विश्वविद्यालय में हुई थी। बारह वर्ष की अवस्था में इसे यूक्लिड की एक प्रति मिल गयी। दो चार दिन में ही इसने उसके ६ भाग उदरस्थ कर लिये। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में इसने एम० ए० की उपाधि प्राप्त की, उन्नीसवें वर्ष यह ऐबर्डीन (Aberdeen) में गणित का प्राध्यापक नियुक्त हुआ और इक्कीसवें वर्ष रॉयल सोसायटी का अधिसदस्य निर्वाचित हो गया। उसी वर्ष इसका न्यूटन से परिचय हुआ और उसी वर्ष इसने अपनी पहली पुस्तक प्रकाशित की। उक्त ग्रन्थ में इसने न्यूटन के कई प्रमेयों का विकास किया और श्रोकों के जनन की विधि दी। दो वर्ष पश्चात् इसने उक्त पुस्तक का परिशिष्ट प्रकाशित किया जिसमें यह महत्वपूर्ण प्रमेय दिया—

इसने अपनी बीजगणित की पुस्तक में दिया है जो इसकी मृत्यु के पश्चात् १७६० में दो भागों में प्रकाशित हुई। 'प्रवाह विधि' पर इसका एक ग्रन्थ १७५१ में प्रकाशित हुआ। या भी इसने न्यूटनी सिद्धान्तों का यथेष्ट प्रचार किया।

ब्रुक टेलर (Brook Taylor) (१६८५-१७३१) एक अग्रज गणितज्ञ था। इसकी शिक्षा वेम्ब्रिज में हुई। १७०८ में इसने दोलन केन्द्र (Centre of Oscillation) की समस्या का हल निकाला जो १७१४ में प्रकाशित हुआ। जॉन बर्नोली ने उक्त आविष्कार में टेलर की प्राथमिकता स्वीकार नहीं की है। १७१२ में टेलर रॉयल सोसायटी का अधिमध्य निर्वाचित हुआ और चार वर्ष तक सोसायटी का सचिव भी रहा। १७१२ में ही यह उक्त समिति का भी सदस्य नियुक्त हुआ जो कलन में न्यूटन अथवा लिम्नोज की प्राथमिकता मिट्ट कराने के लिए बनायी गयी थी।

१७१५ में टेलर ने एक अभिपत्र लिखा जिसमें यह प्रमेय दिया—

$$f(y+h) = f(y) + h f'(y) + \frac{h^2}{2!} f''(y) + \frac{h^3}{3!} f'''(y) +$$

इसी फल का आजकल टेलर श्रेणी (Taylor Series) कहते हैं। कलन का प्रत्येक विद्यार्थी इस श्रेणी से भली भाँति परिचित होता है। टेलर के समय से आज तक इसके बहुत से सशोधित रूप प्रस्तुत किये जा चुके हैं।

उसी अभिपत्र में टेलर ने उच्च गणित की एक नयी शाखा का भी गणेश किया था सान्त भन्तर कलन (Calculus of Finite Differences)। इसने कम्पमान डोरी (Vibrating String) की गति निकालने में उक्त विषय का प्रयोग किया था। इस की अन्य कृतियों के विषय ये थे—भौतिकी, लघुगणक, दृष्टि साम्य (Perspective)। लोग कहते हैं कि 'न्यूटन और कोट्स के पश्चात् टेलर ही इंग्लैंड का ऐसा गणितज्ञ हुआ है जिसने बर्नोलियो से मुँहटा लिया। किन्तु इसमें अभिव्यजना शक्ति की कमी थी।

जैम्स स्टर्लिंग (James Stirling) (१६९२-१७७०) की शिक्षा ग्लासगो (Glasgow) और ऑक्सफोर्ड (Oxford) में हुई। कुछ राजनीतिक कारणा से इसे ऑक्सफोर्ड छोड़ना पड़ा और इसने वेंनिस (Venice) में प्राध्यापकत्व स्वीकार कर लिया। वेंनिस में यह दस वर्ष रहा। इसकी न्यूटन और निकोलस बर्नोली से मित्रता थी। इसने १७१७ में घन वक्र पर एक अभिपत्र लिखा। न्यूटन ने एमे वक्रों को बहुतर जातियों में विभक्त किया था। वर्गीकरण के जो सिद्धान्त न्यूटन

ने स्थिर किये हैं, उनके अनुसार इन वनों की ६ जातियाँ देने में सक्षम थी। स्टर्लिंग ने इस कमी को पूरा कर दिया।

१७३० में स्टर्लिंग ने अनन्त श्रेणियों पर एक अभिप्रेत लिखा जिसमें श्रेणियों के स्थानान्तरों का विवेचन किया गया था। उक्त अभिप्रेत का एक महत्वपूर्ण फल उस प्रकार है—

$$\frac{1}{n!} = \sum_{s=1}^{\infty} \frac{1}{n} \cdot \frac{1}{n(n+1)(n+2)\dots(n+s)}.$$

इसके अतिरिक्त स्टर्लिंग के दो अन्य सूत्र प्रसिद्ध हो गये हैं—

$$(i) \text{ लघु } (n!) = (n+1) \text{ लघु } n - n+1 \text{ लघु } (n-1)$$

$$+ \frac{v_1}{2.2 \text{ स}} - \frac{v_2}{2.4 \text{ स}} + \dots$$

जिसमें v_1, v_2, \dots वनों की संख्याएँ हैं।

इस फल को स्टर्लिंग श्रेणी (Stirling Series) कहते हैं।

$$(ii) \Gamma(1+y) \cdot e^{-y} y^y (2-y)^{\frac{1}{2}}.$$

इस सूत्र को स्टर्लिंग अनन्तस्पर्शी सूत्र (Stirling Asymptotic Formula) कहते हैं।

स्टर्लिंग ने दो प्रकार की संख्याओं का भी आविष्कार किया था जिन्हें स्टर्लिंग संख्याएँ (Stirling Numbers) कहते हैं। स्थान के अभाव के कारण हम यहाँ उनका विवरण देने में असमर्थ हैं।

कोलिन मॅक्लॉरिन (Colin Maclaurin) (१६९८-१७४६) स्कॉलैंड का एक गणितज्ञ था। इसकी शिक्षा ग्लासगो विश्वविद्यालय में हुई थी। बारह वर्ष की अवस्था में इसे यूक्लिड की एक प्रति मिल गयी। दो चार दिन में ही इसने उसके ६ भाग उदरस्थ कर लिये। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में इसने एम० ए० की उपाधि प्राप्त की, उन्नीसवें वर्ष यह ऐबर्डीन (Aberdeen) में गणित का प्राध्यापक नियुक्त हुआ और इक्कीसवें वर्ष रॉयल सोसायटी का अधिसदस्य निर्वाचित हो गया। उसी वर्ष इसका न्यूटन से परिचय हुआ और उसी वर्ष इसने अपनी पहली पुस्तक प्रकाशित की। उक्त ग्रन्थ में इसने न्यूटन के कई प्रमेयों का विकास किया और शांकवों के जनन की विधि दी। दो वर्ष पश्चात् इसने उक्त पुस्तक का परिशिष्ट प्रकाशित किया जिसमें यह महत्वपूर्ण प्रमेय दिया—

इसने अपनी बीजगणित की पुस्तक में दिया है जो इसकी मृत्यु के पश्चात् १७४० में दो भागों में प्रकाशित हुई। 'प्रवाह विधि' पर इसका एक ग्रन्थ १७५१ में प्रकाशित हुआ। यों भी इसने न्यूटनी सिद्धान्तों का यथेष्ट प्रचार किया।

ब्रुक टेलर (Brook Taylor) (१६८५-१७३१) एक अंग्रेज गणितज्ञ था। इसकी शिक्षा केम्ब्रिज में हुई। १७०८ में इसने दोलन केन्द्र (Centre of Oscillation) की समस्या का हल निकाला जो १७१४ में प्रकाशित हुआ। जॉन बर्नोली ने उक्त आविष्कार में टेलर की प्राथमिकता स्वीकार नहीं की है। १७१२ में टेलर रॉयल सोसायटी का अधिसदस्य निर्वाचित हुआ और चार वर्ष तक सोसायटी का सचिव भी रहा। १७१२ में ही यह उक्त समिति का भी सदस्य नियुक्त हुआ जो कलन में न्यूटन अथवा लिब्नीज की प्राथमिकता सिद्ध करने के लिए बनायी गयी थी।

१७१५ में टेलर ने एक अभिपत्र लिखा जिसमें यह प्रमेय दिया—

$$f(y+z) = f(y) + z f'(y) + \frac{z^2}{2} f''(y) + \frac{z^3}{6} f'''(y) + \dots$$

इसी फल को आजकल टेलर श्रेणी (Taylor Series) कहते हैं। कलन का प्रत्येक विद्यार्थी इस श्रेणी से भली भाँति परिचित होता है। टेलर के समय से आज तक इसके बहुत से सशोधित रूप प्रस्तुत किये जा चुके हैं।

उसी अभिपत्र में टेलर ने उच्च गणित की एक नयी शाखा का भी गणेश किया था सान्त अन्तर कलन (Calculus of Finite Differences)। इसने वम्पमान डोरी (Vibrating String) की गति निकालने में उक्त विषय का प्रयोग किया था। इस की अन्य कृतियों के विषय ये थे—भौतिकी, लघुगणक, दृष्टि-साम्य (Perspective)। लोग कहते हैं कि 'न्यूटन और कोट्स के पश्चात् टेलर ही इंग्लैण्ड का ऐसा गणितज्ञ हुआ है जिसने बर्नोलियो से मुँहटा लिया। किन्तु इसमें अभिव्यञ्जना शक्ति की कमी थी।

जेम्स स्टर्लिंग (James Stirling) (१६९२-१७७०) की शिक्षा ग्लासगो (Glasgow) और ऑक्सफोर्ड (Oxford) में हुई। कुछ राजनीतिज्ञ कारणों से इसे ऑक्सफोर्ड छोड़ना पड़ा और इसने वेंनिस (Venice) में प्राध्यापकत्व स्वीकार कर लिया। वेंनिस में यह दस वर्ष रहा। इसकी न्यूटन और निकोलस बर्नोली से मित्रता थी। इसने १७१७ में घन मत्रों पर एक अभिपत्र लिखा। न्यूटन ने इसे बत्रों को बृहत्तर जालियों में विभक्त किया था। वर्गीकरण के जो सिद्धान्त न्यूटन

ने स्थिर रखे थे, उनसे अनुसार इन वस्तुओं की ६ जातियाँ देने में मर गयी थी। स्टर्लिंग ने इन वस्तुओं को पूरा कर दिया।

१७३० में स्टर्लिंग ने अनन्त श्रेणियों पर एक अनिपन्न क्रिया जिनमें श्रेणियों के पदों का विवेचन किया गया था। इस अनिपन्न का एक महत्वपूर्ण फल इस प्रकार है—

$$\frac{1}{n!} = \sum_{m=1}^{\infty} \frac{1}{n} \cdot \frac{1}{n(n+1)} \cdot \frac{1}{(n+2)} \cdots \frac{1}{(n+m)}.$$

इसके अतिरिक्त स्टर्लिंग के दो अन्य सूत्र प्रसिद्ध हो गये हैं—

$$(i) \text{ लघु } (n!) = (n+1) \text{ लघु } n - n + \frac{1}{2} \text{ लघु } (n-1) \\ + \frac{v_1}{1.2 n} - \frac{v_2}{3.4 n^2} + \dots$$

जिसमें v_1, v_2, \dots बर्नोली संख्याएँ हैं।

इस फल को स्टर्लिंग श्रेणी (Stirling Series) कहते हैं।

$$(ii) \Gamma(1+y) = e^{-y} y^{-y} (2\pi y)^{\frac{1}{2}}.$$

इस सूत्र को स्टर्लिंग अनन्तस्पर्शी सूत्र (Stirling Aymptotic Formula) कहते हैं।

स्टर्लिंग ने दो प्रकार की संख्याओं का भी आविष्कार किया था जिन्हें स्टर्लिंग संख्याएँ (Stirling Numbers) कहते हैं। स्थान के अभाव के कारण हम यहाँ उनका विवरण देने में असमर्थ हैं।

कोलिन मैकलॉरिन (Colin Maclaurin) (१६९८-१७४६) स्कॉटलैंड का एक गणितज्ञ था। इसकी शिक्षा ग्लासगो विश्वविद्यालय में हुई थी। बारह वर्ष की अवस्था में इसे यूक्लिड की एक प्रति मिल गयी। दो चार दिन में ही इसने उसके ६ भाग उदरस्थ कर लिये। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में इसने एम० ए० की उपाधि प्राप्त की, उसीसर्वे वर्ष यह एबर्डीन (Aberdeen) में गणित का प्राध्यापक नियुक्त हुआ और इक्कीसवें वर्ष रॉयल सोसायटी का अधिसदस्य निर्वाचित हो गया। उसी वर्ष इसका न्यूटन से परिचय हुआ और उसी वर्ष इसने अपनी पहली पुस्तक प्रकाशित की। उक्त ग्रन्थ में इसने न्यूटन के कई प्रमेयों का विकास किया और शान्कों के जनन की विधि दी। दो वर्ष पश्चात् इसने उक्त पुस्तक का परिशिष्ट प्रकाशित किया जिसमें यह महत्वपूर्ण प्रमेय दिया—

यदि कोई बहुभुज इस प्रकार चलता है कि उसकी प्रत्येक भुजा सदैव एक स्थिर बिन्दु में से होकर जाती है और यदि, एक को छोड़ कर, उसके समस्त शीर्ष क्रमशः त, थ, द, घातो के वक्र बनाते हैं, तो स्वतन्त्र शीर्ष २ त थ द घात का एक वक्र बनायेगा। और यदि स्थिर बिन्दु एक ऋजु रेखा पर स्थित हो तो वक्र का घात त थ द होगा।”

यह प्रमेय पास्कल के समस्त प्रमेय का सार्विक रूप है। १७२४ में मॅक्लॉरिन को एक निबन्ध पर फ्रांस की विज्ञान परिषद का पुरस्कार मिला। निबन्ध का विषय था ‘काया का आघात’ (Percussion of Bodies). १७२५ में न्यूटन की सन्तुष्टि पर यह ऐडिन्बरा (Edinburgh) विश्वविद्यालय में प्राध्यापक नियुक्त हुआ।

१७४० में फ्रांस की विज्ञान परिषद ने मॅक्लॉरिन, ऑयलर और डॅनियैल बर्नौली को मिला कर पुरस्कार दिया। मॅक्लॉरिन के निबन्ध का विषय था ‘ज्वारभाट’। १७४२ में इसकी प्रसिद्ध पुस्तक *Treatise on Fluxions* छपी। उस पुस्तक में मॅक्लॉरिन ने ही सबसे पहले मूयिष्ठ और अल्पिष्ठ बिन्दुओं (Maxima and Minima Points) का भेद निकालने की विधि दी और यह भी बताया कि वनों के बहुलक बिन्दु सिद्धांत (Theory of Multiple points) में उसका क्या महत्व है।

१७४५ में जब विद्रोहिया ने ऐडिन्बरा पर अधिकार जमा लिया तब मॅक्लॉरिन भाग कर इंग्लैण्ड चला गया। १७४६ में इसकी मृत्यु हो गयी।

मॅक्लॉरिन के कुछ आविष्कार बहुत प्रसिद्ध हो गये हैं—

(i) टेलर श्रेणी का सहायित रूप—

$$f(y) = f(0) + y f'(0) + \frac{y^2}{2!} f''(0) + \frac{y^3}{3!} f'''(0) + \dots$$

(ii) मॅक्लॉरिन का समाकल परीक्षण (Integral Test) जो आजकल कलन का प्रत्येक विद्यार्थी पढ़ता है।

(iii) मॅक्लॉरिन का त्रिभागज (Trisectrix of Maclaurin) जिस का समीकरण यह है—

$$(x-y)r^3 = y^3 (3x+y),$$

अर्थात् त्रिभाज रेखा = २ व ज्या ३६।

आयलर के जीवन की कुछ घटनायाँ का उल्लेख हम बीजगणित के परिच्छेद में कर चुके हैं। यदि हम फलन सिद्धान्त के सम्बन्ध में भी आयलर का नाम गलें तो

[illegible]
$$\begin{aligned} \frac{\partial}{\partial t} &= \frac{\partial}{\partial t} + \frac{\partial}{\partial x} \frac{dx}{dt} + \frac{\partial}{\partial y} \frac{dy}{dt} + \frac{\partial}{\partial z} \frac{dz}{dt} \\ &= \frac{\partial}{\partial t} + \frac{\partial}{\partial x} u + \frac{\partial}{\partial y} v + \frac{\partial}{\partial z} w \end{aligned}$$

$\frac{1}{n} \sum_{j=1}^n x_j = \bar{x}$

[illegible]

1. The first part of the document is a list of names and their corresponding dates. The names are: "John Doe", "Jane Smith", "Bob Johnson", "Alice Brown", "Charlie White", "David Green", "Eve Black", "Frank Gray", "Grace Pink", "Henry Blue", "Ivy Yellow", "Jack Purple", "Karen Red", "Leo Orange", "Mia Silver", "Noah Gold", "Olivia Bronze", "Peter Copper", "Quinn Iron", "Rory Tin", "Sam Lead", "Tina Zinc", "Uma Nickel", "Victor Platinum", "Wendy Silver", "Xavier Gold", "Yara Bronze", "Zoe Copper". The dates are: "1990", "1991", "1992", "1993", "1994", "1995", "1996", "1997", "1998", "1999", "2000", "2001", "2002", "2003", "2004", "2005", "2006", "2007", "2008", "2009", "2010", "2011", "2012", "2013", "2014", "2015", "2016", "2017", "2018", "2019", "2020", "2021", "2022", "2023", "2024", "2025", "2026", "2027", "2028", "2029", "2030", "2031", "2032", "2033", "2034", "2035", "2036", "2037", "2038", "2039", "2040", "2041", "2042", "2043", "2044", "2045", "2046", "2047", "2048", "2049", "2050", "2051", "2052", "2053", "2054", "2055", "2056", "2057", "2058", "2059", "2060", "2061", "2062", "2063", "2064", "2065", "2066", "2067", "2068", "2069", "2070", "2071", "2072", "2073", "2074", "2075", "2076", "2077", "2078", "2079", "2080", "2081", "2082", "2083", "2084", "2085", "2086", "2087", "2088", "2089", "2090", "2091", "2092", "2093", "2094", "2095", "2096", "2097", "2098", "2099", "2100", "2101", "2102", "2103", "2104", "2105", "2106", "2107", "2108", "2109", "2110", "2111", "2112", "2113", "2114", "2115", "2116", "2117", "2118", "2119", "2120", "2121", "2122", "2123", "2124", "2125", "2126", "2127", "2128", "2129", "2130", "2131", "2132", "2133", "2134", "2135", "2136", "2137", "2138", "2139", "2140", "2141", "2142", "2143", "2144", "2145", "2146", "2147", "2148", "2149", "2150", "2151", "2152", "2153", "2154", "2155", "2156", "2157", "2158", "2159", "2160", "2161", "2162", "2163", "2164", "2165", "2166", "2167", "2168", "2169", "2170", "2171", "2172", "2173", "2174", "2175", "2176", "2177", "2178", "2179", "2180", "2181", "2182", "2183", "2184", "2185", "2186", "2187", "2188", "2189", "2190", "2191", "2192", "2193", "2194", "2195", "2196", "2197", "2198", "2199", "2200", "2201", "2202", "2203", "2204", "2205", "2206", "2207", "2208", "2209", "2210", "2211", "2212", "2213", "2214", "2215", "2216", "2217", "2218", "2219", "2220", "2221", "2222", "2223", "2224", "2225", "2226", "2227", "2228", "2229", "2230", "2231", "2232", "2233", "2234", "2235", "2236", "2237", "2238", "2239", "2240", "2241", "2242", "2243", "2244", "2245", "2246", "2247", "2248", "2249", "2250", "2251", "2252", "2253", "2254", "2255", "2256", "2257", "2258", "2259", "2260", "2261", "2262", "2263", "2264", "2265", "2266", "2267", "2268", "2269", "2270", "2271", "2272", "2273", "2274", "2275", "2276", "2277", "2278", "2279", "2280", "2281", "2282", "2283", "2284", "2285", "2286", "2287", "2288", "2289", "2290", "2291", "2292", "2293", "2294", "2295", "2296", "2297", "2298", "2299", "2300", "2301", "2302", "2303", "2304", "2305", "2306", "2307", "2308", "2309", "2310", "2311", "2312", "2313", "2314", "2315", "2316", "2317", "2318", "2319", "2320", "2321", "2322", "2323", "2324", "2325", "2326", "2327", "2328", "2329", "2330", "2331", "2332", "2333", "2334", "2335", "2336", "2337", "2338", "2339", "2340", "2341", "2342", "2343", "2344", "2345", "2346", "2347", "2348", "2349", "2350", "2351", "2352", "2353", "2354", "2355", "2356", "2357", "2358", "2359", "2360", "2361", "2362", "2363", "2364", "2365", "2366", "2367", "2368", "2369", "2370", "2371", "2372", "2373", "2374", "2375", "2376", "2377", "2378", "2379", "2380", "2381", "2382", "2383", "2384", "2385", "2386", "2387", "2388", "2389", "2390", "2391", "2392", "2393", "2394", "2395", "2396", "2397", "2398", "2399", "2400", "2401", "2402", "2403", "2404", "2405", "2406", "2407", "2408", "2409", "2410", "2411", "2412", "2413", "2414", "2415", "2416", "2417", "2418", "2419", "2420", "2421", "2422", "2423", "2424", "2425", "2426", "2427", "2428", "2429", "2430", "2431", "2432", "2433", "2434", "2435", "2436", "2437", "2438", "2439", "2440", "2441", "2442", "2443", "2444", "2445", "2446", "2447", "2448", "2449", "2450", "2451", "2452", "2453", "2454", "2455", "2456", "2457", "2458", "2459", "2460", "2461", "2462", "2463", "2464", "2465", "2466", "2467", "2468", "2469", "2470", "2471", "2472", "2473", "2474", "2475", "2476", "2477", "2478", "2479", "2480", "2481", "2482", "2483", "2484", "2485", "2486", "2487", "2488", "2489", "2490", "2491", "2492", "2493", "2494", "2495", "2496", "2497", "2498", "2499", "2500", "2501", "2502", "2503", "2504", "2505", "2506", "2507", "2508", "2509", "2510", "2511", "2512", "2513", "2514", "2515", "2516", "2517", "2518", "2519", "2520", "2521", "2522", "2523", "2524", "2525", "2526", "2527", "2528", "2529", "2530", "2531", "2532", "2533", "2534", "2535", "2536", "2537", "2538", "2539", "2540", "2541", "2542", "2543", "2544", "2545", "2546", "2547", "2548", "2549", "2550", "2551", "2552", "2553", "2554", "2555", "2556", "2557", "2558", "2559", "2560", "2561", "2562", "2563", "2564", "2565", "2566", "2567", "2568", "2569", "2570", "2571", "2572", "2573", "2574", "2575", "2576", "2577", "2578", "2579", "2580", "2581", "2582", "2583", "2584", "2585", "2586", "2587", "2588", "2589", "2590", "2591", "2592", "2593", "2594", "2595", "2596", "2597", "2598", "2599", "2600", "2601", "2602", "2603", "2604", "2605", "2606", "2607", "2608", "2609", "2610", "2611", "2612", "2613", "2614", "2615", "2616", "2617", "2618", "2619", "2620", "2621", "2622", "2623", "2624", "2625", "2626", "2627", "2628", "2629", "2630", "2631", "2632", "2633", "2634", "2635", "2636", "2637", "2638", "2639", "2640", "2641", "2642", "2643", "2644", "2645", "26

[Faint handwritten notes at the bottom of the page]

[Faint handwritten notes at the bottom of the page]

[illegible]

जाने से जिनसे मिलते वसने से इतिहास
गंगाया गया था कि यदि अभिमान के

५०,००० टालर देना था । बिना

जोसमर की इन्तर्निधियों का एक और
के जगहाह पर नुसार पाया हो गया !

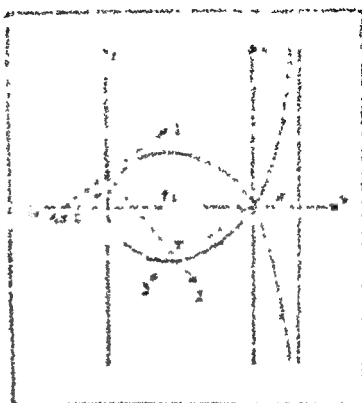
१७५१ में ऑपेलन का अवकाशन म
नमा करने गणित पद । लखनऊ का ११

दिया गया था जो उन समस्त तप धान
नो थे, जैसे बीटा और मामा एलिय ।

महत्त्वपूर्ण रहा है। उक्त विषय में
जिनसे बहुत से प्रश्नों के हल सम्बन्धित

संवेतग्रिपि के क्षेत्र में भी ऑयल के बोणों का निरूपण बड़े अक्षरों द्वारा

करना आरम्भ किया। यों तो इस युक्ति



विषय-सूची

$\frac{1}{2} \times \frac{1}{2} = \frac{1}{4}$

परिणाम यह होता था कि विदेशों पर बड़े बड़े कामों में जोर अमरिष्य पर हम
जाने से जिनमें विदेशों पर भी इतिहास का अध्ययन होता था ! एक बार अमरिष्य
गया था कि यदि अमरिष्य के समस्त कामों को अमरिष्य विद्या काय तो बड़े
कारणों के समस्त अमरिष्य समस्त में काम नहीं होगा । १९०९ के दशक में अमरिष्य
६०,००० टालर धनदा था । किन्तु इसके बाद-तत् लेनिनग्राद (Leningrad) में
अमरिष्य की इत्यदिधियों का एक और दिन उपस्थित हो गया । तब तो अमरिष्य
के अमरिष्य पर सुधार प्राप्त हो गया !

१७५१ में ऑयलर का अवकलन गणित पुनः एक ग्रन्थ निकाला और १७६८-७० में समाकलन गणित पर। इन पुस्तकों में दोनों गिरियों की उन समस्त बातों का सारांश दिया गया था जो उन समय तक ज्ञान थीं। इसके अनिश्चित कर्तृ मौलिक अनुसन्धान भी थे, जैसे बीटा और गामा फलन। विचरण कलन पर भी ऑयलर का कार्य बहुत महत्वपूर्ण रहा है। उक्त विषय में हमने ज्यामितीय विधि का प्रयोग किया है जिससे बहुत से प्रश्नों के हल सरलता से निकाल आते हैं।

संकेतलिपि के क्षेत्र में भी ऑयलर की देन बड़ी विलक्षण रही है। इसने त्रिभुज के कोणों का निरूपण बड़े अक्षरों द्वारा और भुजाओं का निरूपण छोटे अक्षरों द्वारा करना आरम्भ किया। यों तो इस युक्ति का प्रयोग इससे पहले भी एक बार रॉल्लिंसन

(Rawlinson) ने किया था। किन्तु उस घटना को लगभग एक शताब्दी बीत चुकी थी। उसका प्रचलन तभी हुआ जब यूरोप में ऑयलर ने और इंग्लैंड में सिम्पसन (Simpson) ने उसे दुबारा आरम्भ किया। निम्नलिखित चिह्नों के प्रचलन का प्राथमिक श्रेय भी ऑयलर को ही है—

$f(x)$	(Δ) y के फलन के लिए
$\frac{1}{x}$	$\sqrt{-1}$ के लिए
\sum	सकलन के लिए
s	त्रिभुज के अर्ध परिमाण के लिए।

इसके अतिरिक्त 'ऑयलर संख्याएँ' आज जगत प्रसिद्ध हो गयी हैं। मान लीजिए कि व्युत्क्रोच् $y = 1 + k, y^2 + k, y^3 + k, y^4 + \dots$

तो इस एकात्म्य में गुणांको k, k^2, k^3, \dots को ऑयलर संख्याएँ कहते हैं।

ऑयलर के विषय में एक उपाख्यान उल्लेखनीय है। इस की रानी अन्ना के कट्टरपन के कारण ऑयलर को सावजनिक कार्यों से हाथ खींचना पड़ा। १७४० में अन्ना का देहान्त हो गया। तब ऑयलर को जर्मनी के राजा फ्रेडरिक महान् ने बुला लिया। जब ऑयलर बर्लिन पहुँचा तो प्रशा की रानी ने उसे अपना वृषापात्र बनाना चाहा। वह ऑयलर से बात करती थी तो ऑयलर बेवल् 'हाँ, हूँ' में उत्तर दे देता था। रानी ने कहा कि "आश्चर्य है कि इतना बड़ा विद्वान् इतना चुप्पा और भैतला है।" ऑयलर ने उत्तर दिया कि "महारानी जी, इसका कारण यह है कि जिस देश से मैं आया हूँ वहाँ बोलने के कारण ही लोगों को फाँसी पर चढ़ा दिया जाता है।"

लगे हाथ दो शब्द थॉमस सिम्पसन (Thomas Simpson) के विषय में भी कहते चलें। यह इंग्लैंड का निवासी था और इसका जीवन-काल १७१०-९१ था। इसके पिता इसे जुलाहा बनाना चाहते थे किन्तु इसरी रुचि गणित में थी। इसी बात पर इसकी पिता से कहा मुनी होती थी जिसका परिणाम यह निकला कि यह घर छोड़ कर भाग गया। इसके हाथ अबगणित और बीजगणित की एक पुस्तक लग गयी जिसे इमने स्वयं पढ़ना आरम्भ किया। यह एक स्वगर्भित ध्यनि था किन्तु इममें असाधारण प्रतिभा थी। यहाँ यह लन्दन में शरीबी मे रहना रहा। १७४३ में यह ऊल्विच (Woolwich) की मैनिंग परिषद में गणित का प्राध्यापक नियुक्त हुआ। १७४५ में रॉयल सोसायटी ने इमे अपना अधिमदस्य निर्वाचित कर दिया।

सिम्पसन ने कई पाठ्य पुस्तकें और बहुत से अभिपन्न प्रकाशित किये। इससे

समीकरणों का हल अनन्त श्रेणियों द्वारा निकालता था। न्यूटन की प्रवाह विधि पर इसने दो पुस्तकें लिखी हैं जो क्रमशः, १७३७ और १७५० में प्रकाशित हुईं। १७४८ में इसकी 'त्रिकोणमिति' छपी जिनमें इन दो सूत्रों की बहुत सुन्दर उपपत्तियाँ दी गयी थीं जो समतल त्रिभुजों पर लागू हैं—

(क—स) : ग = कोज् $\frac{1}{2}$ (का—ग्या) : ज्या $\frac{1}{2}$ गा,

(क—स) : ग = ज्या $\frac{1}{2}$ (का—ग्या) : कोज् $\frac{1}{2}$ गा ।

क्लैरो परिवार

जीन बैप्टिस्ट क्लैरो (Jean Baptiste Clairant) पेरिस में गणित का अध्यापक था। इसके जीवन काल का ठीक-ठीक पता नहीं है किन्तु इतना निश्चित है कि इसकी मृत्यु १७६५ में हुई। इसने ज्यामिति पर तीन अभिपत्र लिखे थे।

जीन बैप्टिस्ट क्लैरो का एक पुत्र ऐलेक्सिस क्लैरो (Alexis Claude Clairant) था जो इस परिवार का एक प्रमुख सदस्य हुआ है। इसका जन्म पेरिस में १७१३ में और मृत्यु भी पेरिस में ही १७६५ में हुई। इसमें विलक्षण प्रतिभा थी। दस वर्ष की अवस्था में ही यह उच्च गणित की पुस्तकें पढ़ने लगा और बारह वर्ष की अवस्था में इसने फ्रांस की परिपद् में अपना एक अभिपत्र पढ़ा जिस में चार वक्रों के गुणों का वर्णन था जिनका इसने स्वयं आविष्कार किया था। १७२९ में, १६ वर्ष की अवस्था में, इसने द्विक वक्रता वक्रों (Curves of Double Curvature) पर एक एकवन्ध (Monograph) लिखा जिसके फलस्वरूप अठारह वर्ष की अल्पावस्था में ही यह फ्रांस की परिपद् का सदस्य बना लिया गया। १७३६ में यह एक आयोग के साथ लॉन्डन गया जो याम्योत्तर (Meridean) के एक अंश (Degree) को नापने के लिए भेजा गया था। १७४३ में इसने पृथ्वी की आकृति पर एक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें गुरुत्वाकर्षण पर एक महत्वपूर्ण प्रमेय दिया गया था। उक्त प्रमेय अब 'क्लैरो प्रमेय' के नाम से प्रसिद्ध हो गया है। १७५० में इसने चन्द्रमा पर एक निबन्ध लिखा जिस पर हैलीयारा की परिपद् ने इसे एक पुरस्कार दिया। १७५९ में इसने हैली धूमकेतु (Halley Comet) पर भी महत्वपूर्ण गवेषणा कार्य किया है।

क्लैरो का कार्य शुद्ध और प्रयोजित —दोनों प्रकार के गणित में विलक्षण रहा है। शुद्ध गणित में इसके प्रिय विषय थे—ज्यामिति, बीजगणित, कलन, अवकल समीकरण। एक अवकल समीकरण तो इसी के नाम से प्रसिद्ध हो गया है —

$$r = y \frac{\text{तार}}{\text{ताय}} + \phi \left(\frac{\text{तार}}{\text{ताय}} \right) ।$$

ऐलेक्सिस वा एव भाई वा जो केवल सोलह वर्ष (१७१६-३२) जीवित रहा। यह बालक बड़ा ही होनहार था। चौदह वर्ष की अवस्था में इसने ज्यमिति पर एव अभिपन्न लिखा और पन्द्रहवें वर्ष एव पुस्तक सैमार कर दी जो १७३१ में प्रकाशित हुई।

जीन ल रॉन्द डि लेम्बर्ट (Jean Le Rond D'Alembert) (१७१७-८३) एव फ्रांसीसी गणितज्ञ और दार्शनिक था। यह जीन ल रॉन्द के गिरजा के समीप असहाय अवस्था में पाया गया था। बाद को पता चला कि यह अपने माता पिता को अवैध सन्तान था। एव अन्य दम्पति ने इसका लालन पालन किया। इसका पिता गुप चाप इगका व्यव दिया करता था।

बॉलिज छोड़ने पर यह अपनी धारैय माता के घर लौट आया और तीस वर्ष तक वही पर रहा। इसने गानून का अध्ययन किया था किन्तु इसने उक्त व्यवसाय को अपनाया नहीं। तब इसने औपधि विज्ञान में रुचि दिखायी किन्तु एव वर्ष के अन्तर ही उसे भी छोड़कर गणित के अध्ययन में संलग्न हो गया। इसने फ्रांस की विज्ञान परिषद् में कई अभिपन्न भेजे जिससे फल स्वरूप १७४१ में यह उक्त सस्था का सदस्य हो गया। तत्पश्चात् इसने प्रयोजित गणित पर कई अभिपन्न लिखे। १७४२ में इसने गतिविज्ञानके उस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो आजकल 'डि लेम्बर्ट सिद्धान्त' के नाम से प्रसिद्ध है। १७४७ में इसकी एव पुस्तक प्रकाशित हुई जिसका विषय था 'आंशिक अन्तर कलन (Calculus of Partial Differences)'। १७६३ में यह बलिग गया। इसे बलिग परिषद् का अध्यक्ष बनाने का प्रयत्न किया गया किन्तु इसने अस्वीकार कर दिया। तत्पश्चात् इसने कई अन्य ग्रन्थ प्रकाशित हुए जिनके विषय थे—वायों की गति, पृथ्वी की घुरी, दोलित डोरियाँ आदि। १७४६ और ४८ में बलिग परिषद् की पवित्रा में इसने समाकलन गणित पर कई अभिपन्न प्रकाशित किये जो बहुत महत्त्वपूर्ण थे। इसने कई लेख अवकल समीकरणों पर भी हैं।

डिडेरेट के सहयोग में डिलेम्बर्ट ने एव विश्वकोष का सम्पादन किया। उक्त ग्रन्थ के पहले दो भागों के लिए तो इसने कई साहित्यिक लेख लिखे हैं, किन्तु दोष भागों में इसकी देन गणितीय ही रही है। इसने अतिरिक्त इसकी एव पुस्तक दर्शन पर (१७५९) और एव संगीत पर (१७७९) भी प्रकाशित हुई है।

डि लेम्बर्ट को जीवन भर मितव्ययी रहता पड़ा क्योंकि इसने साधा सदैव सीमित रहे। जीवन के तीसरे पहर में इसका परिचय कुमारी लैस्पिन्स (Lespinasse) से हो गया था। १७६५ में अब यह रोगग्रस्त हुआ तब उसने इसकी बड़ी सेवा की। वह तो इसको केवल एव पनिष्ठ मित्र ही समझती थी किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि

उसके प्रति डि लेम्बर्ट की भावनाएँ और भी गहरी थीं। वर्षों दोनों एक ही मकान में रहे। १७७६ में उसकी मृत्यु से डि लेम्बर्ट को गहरा धक्का लगा। यों तो वह अपना दैनिक कार्य करता रहा और इसने अध्ययन, लेखन भी नहीं छोड़ा किन्तु फिर पहले जैसी बात कभी आयी नहीं। १७८३ में इसका स्वर्गवास हो गया।

पियर साइमन लैप्लास (Pierre Simon Laplace) (१७४९-१८२७) एक फ्रांसीसी गणितज्ञ और ज्योतिषी था। इसके पिता एक छोटे से किसान थे, अतः इसकी शिक्षा पड़ोसियों की कृपा पर आवृत हुई। यह अपने जन्मस्थान बीमाँण्ट (Beau-



चित्र—९५ लैप्लास (१७४९-१८२७)

[स्क्रिप्टा मैथेमेटिका की अनुज्ञा से 'पोट्टेस ऑफ़ ऐमिनेण्ट मैथेमेटिशियंस' से प्रयुत्पादित।]

mont) के सैनिक स्कूल में प्रविष्ट हुआ और तत्पश्चात् वही पर गणित का अध्यापन नियुक्त हो गया। १७६७ में यह कुछ सस्तुति पत्र लेकर डि लेम्बर्ट में मिला। उस पत्र का तो कोई प्रभाव नहीं पड़ा किन्तु जब इसने यान्त्रिकी पर एक लेख लिखकर डि लेम्बर्ट को दिया तो उसको कहना पड़ा कि “तुम्हें किसी मस्तुति की आवश्यकता नहीं थी। मैं अवश्य तुम्हारी सहायता करूँगा।” अस्तु, डि लेम्बर्ट ने इसे पेरिस नियुक्त करा दिया।

लॅप्लास को विश्लेषण पर बड़ा अधिकार था और इसने उसके सिद्धान्तों में खगोल यान्त्रिकी पर प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। इसने उक्त विषय पर क अमिपत्र लिखे और इसमें और लॅप्राज में एक प्रकार से अमिपत्र लेखन की हाड स लग गयी। तत्पश्चात् इसने पाँच भागों में अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ ‘खगोल यान्त्रिकी’ (Mécanique Céleste) प्रकाशित किया। यह पुस्तक उक्त विषय में मुग प्रवर्तक सिद्ध हुई है। १७९६ में इसकी एक अन्य पुस्तक छपी जिसके अन्त में ज्योतिष का इतिहास दिया हुआ था जिसकी भूरि भूरि प्रशंसा हुई है। लॅप्लास की नीहारिका परिकल्पना (Nebular Hypothesis) भी इसी पुस्तक का एक अंग है।

लॅप्लास के प्रमुख विषय तो ज्योतिष और खगोल यान्त्रिकी ही थे किन्तु इसने एक पुस्तक सम्भाव्यता पर भी लिखी है। इसके अतिरिक्त इसने भूमिति (Geodesy), अवकल समीकरणों और कलन को भी अच्छा नहीं छोड़ा है। इसकी समस्त कृतियाँ फ्रांसीसी सरकार ने सात भागों में १८४३-४७ में प्रकाशित की। तत्पश्चात् उनका दूसरा संस्करण १९१२ में चौदह भागों में छपा।

लॅप्लास की शैली बड़ी ही परिसहृत (Terse) थी। एक बार अमेरिका के ज्योतिषी नैथॅनियल बाउडिच (Nathaniel Bowditch) (१७७३-१८३८) ने इसकी शैली के विषय में कहा था कि “लॅप्लास की लेखनी में जब कहीं पर यह दृष्टि गोचर होता है कि ‘अतएव, यह स्पष्ट है कि’ तो मैं समझ लेता हूँ कि रिक्ति (Gap) को भरने के लिए मुझे घण्टों माथा पन्वी करनी पड़ेगी।”

यह अवकल समीकरण लॅप्लास के नाम से प्रसिद्ध हो गया है—

$$\frac{t^2 v}{t y^2} + \frac{t^2 v}{t r^2} + \frac{t^2 v}{t l^2} = 0 \left(\frac{\partial^2 u}{\partial x^2} + \frac{\partial^2 u}{\partial y^2} + \frac{\partial^2 u}{\partial z^2} = 0 \right)$$

इस समीकरण का गोलीय हरमिति (Spherical Harmonics) में बहुत प्रयोग होता है।

जीन बॅप्टिस्ट जोजफ फूरियर (Jean Baptiste Joseph Fourier) (१७६८-१८३०) एक फ्रांसीसी गणितज्ञ था। यह आठ वर्ष की अल्पावस्था में ही

अनाथ हो गया था। इसने आँक्सेर (Auxerre) के एक सैनिक स्कूल में शिक्षा पायी और फिर यह वहीं पर गणित का अध्यापक नियुक्त हो गया। कई वर्ष तक यह पेरिस की विभिन्न संस्थाओं में अध्यापक रहा और १७९८ में नॅपोलियन (Napoleon) के साथ मिला गया। वहीं नॅपोलियन ने इसे एक प्रान्त का राज्यपाल बना दिया। नॅपोलियन ने फ्रांस का प्रभाव क्षेत्र बढ़ाने के लिए कॅरो में एक संस्थान स्थापित किया। फ़ूरियर उसी संस्थान को अपने गणितीय अभिपत्र देने लगा। १८०१ में यह फ्रांस लौट आया। तत्पश्चात् इसे कई प्रकार की उपाधियाँ और सम्मान मिले। १८१६ में यह पेरिस में जम कर रहने लगा और १८२२ में विज्ञान परिषद् का सचिव हो गया।

फ़ूरियर का नाम दो बातों के लिए प्रसिद्ध है—

(i) इसका ग्रन्थ—ताप का वैश्लेषिक सिद्धान्त, जो १८२२ में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में गणितीय भौतिकी का बड़ा व्यवस्थित इतिहास दिया गया है।

(ii) फ़ूरियर श्रेणी—फ़ूरियर ने १८०७ में विज्ञान परिषद् को एक अभिपत्र लिख कर दिया जिसमें यह कहा था कि 'प्रायः कोई भी स्वेच्छ फलन एक त्रिकोण-मितीय श्रेणी के रूप में प्रसृत किया जा सकता है।' इस बात से लॅग्रान्ज इतना स्तम्भित हुआ कि उसने कहा कि फ़ूरियर का कथन असम्भव है। परिषद् ने फ़ूरियर को प्रोत्साहित करने के लिए घोषणा की कि परिषद् का १८१२ का पुरस्कार 'ताप संवहन' (Conduction of Heat) पर ही दिया जायगा जो फ़ूरियर के उक्त अभिपत्र का विषय था। फ़ूरियर ने अपना लेख १८११ में परिषद् के पास भेज दिया। लॅप्लास, लॅग्रान्ज और लेजाण्ड्र पंच नियुक्त हुए। इन्होंने पुरस्कार तो फ़ूरियर को दे दिया किन्तु उसके विश्लेषण और विवि की कड़ी आलोचना की। अभिपत्र परिषद् की पत्रिका में नहीं छप सका। जब फ़ूरियर स्वयं उक्त परिषद् का सचिव हुआ तब उसने अपना उक्त लेख परिषद् की पत्रिका में प्रकाशित किया।

फ़ूरियर सिद्धान्त के अनुसार, यदि $f(y)$ कोई फलन है जो बहुत ही व्यापक शर्तों को पूरा करता है तो हम उसे इस रूप में निरूपित कर सकते हैं—

$$f(y) = k_0 + k_1 \cos y + k_2 \cos 2y + \dots$$

$$+ x_1 \sin y + x_2 \sin 2y + \dots$$

इस श्रेणी को $f(y)$ की फ़ूरियर श्रेणी कहते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि फ़ूरियर एक प्रतिभाशाली व्यक्ति था। बारह वर्ष की अवस्था में यह पेरिस के गिरजा के अधिकारियों को उपदेश लिख कर दिया करता

था और ये लोग अपने नाम से उन्हीं उपदेशों के आधार पर प्रवचन किया करते थे। तेरह वर्ष की अवस्था में यह एक समस्या बना हुआ था—चंचल और आशया। विन्तु गणित में पहला सम्पर्क होने ही इसका कायापलट हो गया। इसे अपना स्वयं मिल गया। और फिर तो यह गणित के क्षेत्र में दिन पर दिन उन्नति हो करता गया।

बहुत दिनों बाद आज गाउस की याद आयी है। इसके जीवन को एक प्रसंग हम ज्यामिति के अध्याय में दिग्ग चुने हैं। इसके पिताजी में कोई प्रतिभा नहीं थी। वह तो यही चाहते थे कि उनका पुत्र भी मजदूर अथवा माली बन जाये और यदि उनकी चली होनी तो गाउस इससे अधिक कुछ न हो पाता किन्तु इसकी माता सदैव इसका पक्ष लिया करती थी। इसीलिए गाउस को अपने पिता के प्रति कोई भ्रम नहीं थी। गाउस की माता को पुत्र ने बड़ी बड़ी आशाएँ थीं। एक दिन उसने गाउस के मित्र बोलिवे से पूछा कि उसके विचार में गाउस बड़ा होकर क्या होगा। बोलिवे ने उत्तर दिया "यूरोप का सबसे बड़ा गणितज्ञ!" और उसका पूर्वानुमान ठीक ही निकला।

गाउस के बचपन की कुछ घटनाएँ उल्लेखनीय हैं। इसके भ्रान्त के पास से एक नहर बहती थी। एक बार नहर में बहुत पानी भरा हुआ था। गाउस उसमें खेलने खेलने डूबने लगा। एक मजदूर उधर से आ रहा था जिसने इसकी जान बचायी।

गाउस कठिनाई में तीन वर्ष का रहा होगा कि एक दिन इसके पिता मजदूरों का साप्ताहिक हिसाब कर रहे थे। बच्चा ध्यान से सुन रहा था कि एकदम बोल उठा, "हिसाब में गलती है। द्रव्य इतना नहीं, इतना होना चाहिए।" पिता ने दुबारा हिसाब लगाया तो बच्चे का कथन ठीक निकला। तीन वर्ष के बच्चे में इतनी प्रतिभा का उदाहरण मिले ही मिलेगा।

सात वर्ष की अवस्था में गाउस एक स्कूल में प्रविष्ट हुआ। स्कूल का प्रधान-ध्यापक बटनर (Buttner) बड़ा दया था। वह बड़ी क्रूरता से अपने डण्डे का प्रयोग किया करता था। गाउस का दसवाँ वर्ष था कि एक दिन बटनर ने सारे बच्चों को जोड़ का एक प्रश्न दिया। प्रश्न यह था—

योग निकालो,

८१२९७+८१४९५+८१६९३+... १०० पदों तक।

उन दिनों तक किसी बच्चे ने समान्तर श्रेणी का नाम भी नहीं सुना था। बटनर स्वयं तो ऐसे प्रश्नों का उत्तर सूत्र द्वारा निकाल लिया करता था। लड़कों से वह यही

द्विती स्कूलों में वह प्रथा थी कि जो लड़का सबसे पहले प्रश्न हल कर लिया करता था वह तुरन्त अपनी स्लेट अध्यापक की मेज पर रख दिया करता था। तत्पश्चात् जो लड़के प्रश्न को निकालते जाते थे, बारी बारी से उम स्लेट पर अपनी स्लेटें रखते जाते थे। बटनर ने कठिनाई से प्रश्न बोल पाया था कि गाउस ने तुरन्त उसका उत्तर लिखकर स्लेट मेज पर पटक दी। कोई भी अन्य विद्यार्थी पूरे घण्टे में भी उक्त प्रश्न को हल न कर पाया। गाउस का उत्तर ठीक निकला। उस दिन मे बटनर गाउस पर दयालु हो गया। उसने अपनी जेब से अंकगणित की एक पुस्तक गाउस को खरीद कर दी। गाउस के विषय में वह कहा करता था, "इस लड़के को मैं और कुछ नहीं पढ़ा सकता।"

गाउस ने जिस वस्तु पर हाथ रख दिया वह सोना हो गयी। इसकी प्रमुख रुचि तो अंकगणित में थी किन्तु चुम्बकत्व, ज्योतिष, भूमिति—सभी क्षेत्रों में इसका कार्य योग प्रवर्तक रहा है। इसकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक डिस्क्वीजिशनिस (Disquisitiones) है जिसके सात विभाग हैं।

उक्त पुस्तक के पहले तीन विभागों में संश्लेषता सिद्धान्त (Theory of Congruences) का प्रतिपादन किया गया है। विशेषकर इस संश्लेषता का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है—

$y \equiv x \pmod{p}$ का (मापांक p),

जिसमें s , का स्वेच्छ पूर्णाङ्क है और p कोई रूढ़ संख्या (prime number)।

चौथे विभाग का विषय है वर्गात्मक अवशेष सिद्धान्त (Theory of Quadratic Residues). वर्गात्मक व्युत्क्रमता की पहली उपपत्ति इसी विभाग में दी गयी है।

पाँचवें विभाग में द्विवर्णक वर्गात्मक रूप (Binary Quadratic Forms) दिये गये हैं। इसी विभाग में आगे त्रिवर्णक रूपों का भी विवेचन है।

छठे और सातवें विभागों में बीजगणितीय समीकरणों पर उपरिलिखित सिद्धान्तों का प्रयोग किया गया है। अन्तिम विभाग के विषय में गणितज्ञ कहते हैं कि उसमें गाउस ने अपनी प्रतिभा की पराकाष्ठा दिखायी है।

डिस्क्वीजिशनिस १८०१ में छपी थी और उसने गणितीय जगत् में तहलका मचा दिया था। १८११ में गाउस ने वैसिल (१७८४-१८४६) को अपना वैश्लेषिक फलन सिद्धान्त (Theory of Analytic Functions) बताया। यदि गाउस ने उक्त सिद्धान्त को भी सार्वजनिक रूप में प्रकाशित कर दिया होता तो उसने

गणितीय ससार में एक दूसरा विलव मचा दिया होता। किन्तु उक्त सूचना वैसिल तक ही सीमित रह गयी।

सम्मिश्र राशियों (Complex Numbers) का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। गाउस ने सिद्ध कर दिया कि प्रत्येक बीजगणितीय समीकरण के मूल इस प्रकार के हाने हैं—

$$x + \epsilon y \quad (\epsilon = \sqrt{-1})$$

गाउस ने एकरूप फलनों (Uniform Functions) की परिभाषा तो दी ही। साथ ही यह भी बता दिया कि समस्त एकरूप फलन वैदलपिक् नहीं होते। वैदलेपिक्ता के लिए उनका अवकलनीय भी होना आवश्यक है। अवकलनायता की गाउस ने सन्तोषजनक परिभाषा दी है।

मान लीजिए कि समतल में कोई बिन्दु (x, y) है। तो आर्गण्ड चित्र (Argand Diagram) में हम वास्तविक अक्ष और राक्ष को काल्पनिक अक्ष कहेंगे। इस प्रकार वास्तविक क्षेत्र का बिन्दु (x, y) सम्मिश्र क्षेत्र में बिन्दु $(x + \epsilon y)$ बन जाता है। इसी राशि $(x + \epsilon y)$ का हम z से निरूपित करते हैं।

अब मान लीजिए कि z' एक अन्य बिन्दु है जो z के समीप है, और $f(z)$ कोई एकरूप फलन है। तो हम z' पर इस फलन का मान निकाल कर भजनफल

$$\frac{f(z') - f(z)}{z' - z}$$

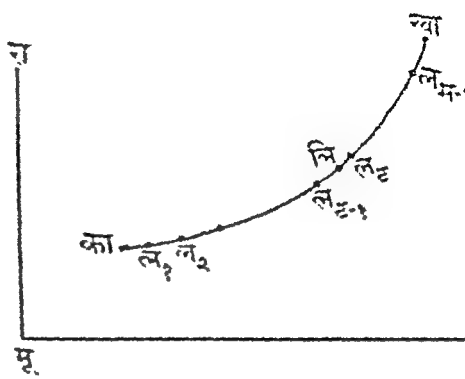
बनाते हैं।

अब मान लीजिए कि बिन्दु z' बिन्दु z की ओर चलता है और अन्त में उसमें अभिन्न हो जाता है। स्पष्ट है कि बिन्दु z तक पहुँचने में यह अनन्त पथा में से किसी एक का अवलम्बन कर सकता है। वह एक ऋजु रेखा, एक वृत्त, परवलय अथवा किसी अन्य वक्र द्वारा जा सकता है। अब प्रश्न यह है कि जब $z' \rightarrow z$ तब क्या उपरि लिखित भजनफल की कोई निश्चिन्ता, सान्त सीमा होगी? और यदि हाँ तो क्या वह सीमा समस्त मार्गों के लिए अद्वितीय रहेगी? यदि ऐसा हो तो फलन $f(z)$ को हम अवकलनीय कहेंगे।

अन्त में, जो फलन एकरूप भी हो और अवकलनीय भी, उसे वैदलेपिक् कहते हैं।

सम्मिश्र अवकलन की ही भाँति सम्मिश्र समाकलन (Complex Integrati-
on) की नींव को भी गाउस ने
पुष्ट कर दिया। हम यहाँ
स्पष्ट रूप से गाउस के
सम्मिश्र समाकलन की
परिभाषा देते हैं।

मान लीजिए कि $f(z)$
चर z (Variable z)
का एक फलन है, और C गा
एक सतत वक्र। वक्र को n
भागों में बाँट दीजिए। मान
लीजिए कि विभाजन बिन्दु



चित्र १६—गाउस के संकर अवकल का वक्र

$l_0 (= का), l_1, l_2, \dots, l_{n-1}, l_n (= खा)$ है।

इनमें से वक्र के प्रत्येक टुकड़े $l_{t-1} l_t$ पर कोई बिन्दु li लेकर $f(li)$
मान निकाल लीजिए।

अब इस मान को संगत अन्तर $(l_t - l_{t-1})$ से गुणा करके यह योग
कर लीजिए—

$$\sum_{t=1}^{t=n} f(li) (l_t - l_{t-1}).$$

अब मान लीजिए कि वक्र के टुकड़ों की संख्या अनन्त हो जाती है, और उन
प्रत्येक की लम्बाई शून्य की ओर प्रवृत्त होती है। तब हम सीमा

$$\lim_{n \rightarrow \infty} \sum_{t=1}^{t=n} f(li) (l_t - l_{t-1})$$

निकालते हैं। यदि यह सीमा निश्चित, सान्त और अद्वितीय (Definite, F
and Unique) हो तो उसके मान को $f(z)$ का रेखा समाकल (Line Integ
कहते हैं, और उसे इस प्रकार निरूपित करते हैं—

$$\int_{का}^{खा} f(z) dz$$

- इसमें सन्देह नहीं कि गाउस की कृतियों से गणित का एक नया अध्याय आरम्भ होना है। लाग्ग मुनध्मता (precision) की महत्ता, परिभाषा की आवश्यकता और उपपत्ति की परपक्ता (Rigour) को समझने लगे। गाउस गणितज्ञ नहीं गणितज्ञ सत्तात् था। सत्सार में तीन ही गणितज्ञ हुए हैं जिन्होंने गणित के विषय को नयी प्रेरणा नया जीवन, नयी प्रकृति दी है—आर्किमिडीज, न्यूटन और गाउस। तीनों महान् थे। इनमें से कौन सबसे बड़ा था, यह कहना हमारे बून की बात नहीं है।

वो राख्ड हूँने रॉन्स्की (Hölder Wronski) के विषय में भी बहूँ तो क्या हानि है? पोलॉण्ड के उन्नीसवीं शताब्दी के गणितज्ञों में इसी का नाम उल्लेखनीय है। इसका जीवन काल १७७८-१८५३ था। यह निर्धन था किन्तु धन का पक्का था। जीवन का अधिकांश हमने फ्रांस में व्यतीत किया। इसकी लेखन शैली आकर्षक नहीं थी, इसीलिए इसकी विरोध व्याप्ति नहीं हुई। इसका नाम दो बातों के लिए प्रसिद्ध है—

(1) गणितीय दर्शन पर इसने लेख।

(2) सारगणिक पर इसका कार्य। इसने चार प्रकार के सारगणिकों का विरोध रूप से अध्ययन किया था। उनमें से एक का नाम १८८१ में थॉमस म्योर (Thomas Muir) ने रॉन्स्कियन (Wronskian) रूप दिया, और वही नाम प्रचलित हो गया। हम यहाँ तृतीय वर्ण के रॉन्स्कियन की परिभाषा देने दें।

मान लीजिए कि f_1, f_2, f_3 चर x के तीन फलन हैं। तो सारगणिक

$$\begin{vmatrix} f_1 & f_2 & f_3 \\ f_1' & f_2' & f_3' \\ f_1'' & f_2'' & f_3'' \end{vmatrix}$$

को इन फलनों का रॉन्स्कियन कहते हैं और इसे इस प्रकार लिखते हैं—

रॉ (f_1, f_2, f_3)

गॉस्ट लियोपोल्ड क्रेले (August Leopold Crelle) (१७८०-१८५५) एक जर्मन गणितज्ञ था। इसकी रुचि बहुमुखी थी और इसमें बड़ी सफलता मिली थी। व्यवसाय से यह इंजीनियर था। इसमें कोई विशेष गणितीय प्रतिभा नहीं थी किन्तु इसने गणित के प्रवर्तन के लिए बहुत परिश्रम किया। १८२८ में इसने उस प्राविधिक संस्थान (Technical Institute) की सेवा छोड़ दी जिसमें यह काम करता था और सार्वजनिक शिक्षा मन्त्रालय में नौकरी कर ली। इसने जीवन का प्रमुख कार्य

यह रहा है कि इसने एक गणितीय पत्रिका की स्थापना की जो आजतक 'क्रेले जर्नल' (Crelle Journal) के नाम से प्रसिद्ध है। इस योजना में आर्विल, स्टेनर और जैकोबी ने इसे सहयोग दिया। बर्लिन-पाँत्सदम (Berlin-Potsdam) की योजना भी इसी ने बनायी थी।

बर्नार्ड बॉल्ज़ानो (Bernard Bolzano) भी इस योग्य अवश्य था कि उस पर दो वाक्य लिखे जायें। इसका जीवन काल १७८१-१८४८ था। यह एक पादरी था और १५ वर्ष प्राग (Prague) में धर्म दर्शन का प्राध्यापक रहा। १८१६ में इसने द्विपद सूत्र (Binomial Formula) की उपपत्ति दी और श्रेणी अभिसरण (Convergence of Series) का विवेचन किया। इसने सीमा और सातत्य के भावों का भी स्पष्टीकरण किया। यों तो इसने कई पुस्तकें लिखीं किन्तु इसका तर्कशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हो गया है।

यदि पाठक उक्तार्थों नहीं तो दो शब्द सिमियन डैनिस पॉयसों (Siméon Denis Poisson) (१७८१-१८४०) के विषय में भी कहते चलें। यह एक सिपाही का पुत्र था। इसने पहले औषधि विज्ञान का और फिर गणित का अध्ययन किया। १७९८ में यह पेरिस के एक कॉलेज में भर्ती हुआ और लॅग्रेंज और लॅप्लास के सम्पर्क में आया। यह संसर्ग इसके जीवन भर चला। अट्ठारह वर्ष की अवस्था में इसने दो अभिपत्र लिखे, एक विलोपन विधि पर, दूसरा सान्त अन्तर के एक समीकरण पर। दूसरा लेख लेजाण्ड्र को बहुत पसन्द आया। १८०६ में यह प्राध्यापक बना दिया गया।

पॉयसों ने कुल मिलाकर ३०० से अधिक लेख और अभिपत्र लिखे। इसने गणितीय भौतिकी पर कई पुस्तकें भी लिखनी आरम्भ की किन्तु उन्हें पूरा न कर पाया। इसका गवेषणा कार्य मुख्यतः प्रयोजित गणित पर है। शुद्ध गणित में इसके लेख इन विषयों पर हैं—निश्चित समाकल, फूरियर श्रेणी, सम्भाव्यता, विचरण कलन, अवकल समीकरण।

ऑगस्टिन लुई कॉशी (Augustin Louis Cauchy) (१७८९-१८५७) फ्रांस का एक महान् गणितज्ञ हुआ है। यह ६ माई बहिनों में सबसे बड़ा था। इसने पेरिस में शिक्षा पायी और कुछ दिनों इंजीनियरी का व्यवसाय किया। १८१३ में इसके स्वास्थ्य ने जवाब दे दिया और इसके पिताजी के मित्रों लॅग्रेंज और लॅप्लास ने इसे परामर्श दिया कि अब यह अपना जीवन गणित की सेवा में लगा दे। कॉशी का वचन कान्ति के दिनों में बीता। इसके पिता अपने परिवार को अपने पुरातन गाँव आर्कु-इल (Arcueil) में ले आये। उसके पास साधनों की कमी थी। उसने आवे

पेट सागर बच्चा का लालन पालन किया। बाशी को बचपन में पेट भर भोजन का भी डोटा रहा, इसीलिए जीवन भर उसका स्वास्थ्य असन्तोषजनक रहा।



चित्र ९७—काँशी (१७८९-१८५७)

काँशी के पिता पद्य लिखा करते थे। उन उन्होंने कई पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित कीं और किसी प्रकार बच्चा को शिक्षा दिलायी। इस प्रकार काँशी को भी लैटिन और फ्रेंच पद्य पर अधिकार हो गया। आनुइल से सलमन को सम्पत्तिर्था थी—एक लैप्लास की और एक रसायनज्ञ बर्थोल्लेट (Berthollet) (१७४८-१८२२) की। और इस प्रकार काँशी का लैप्लास से परिचय हुआ। लप्लास ने शीघ्र ही जान लिया कि काँशी में अमाधारण गणितीय प्रतिभा है। जब उसे पता चला कि काँशी ने श्रेणियों के अभिसरण परीक्षण (Tests for Convergence) निकाले हैं तो वह बर्बा गया। उसने खगोल गान्त्रिकी पर जो कार्य किया था उसमें कई स्थानों पर श्रेणियों के योग का परिकलन करना पड़ता था। और यदि लप्लास श्रेणियाँ अपसृत (Divergent) को भी तो उसका इस प्रकार परिकलन सम्भव था। किन्तु जब उसने अपनी श्रेणियाँ

पर काँशी के परोक्ष लगाये तो उन्हें अनिसारी (Convergent) पाया। तब उसने सन्तोष की साँस ली।

१८०० में बड़े काँशी पेरिस की परिषद् के सचिव नियुक्त हुए। उनके कार्यालय के ही एक कोने में तरुण काँशी एक मेज कुर्सी लेकर बैठा रहता था। लॅग्रान्ज उक्त कार्यालय में बहुधा आया करता था। इस प्रकार उसे काँशी की गतिविधि का परिचय मिला। वह काँशी से बहुत प्रभावित हुआ। एक दिन जब वहाँ नगर के प्रमुख नागरिक बैठे हुए थे, उसने कहा कि “कोने में बैठे हुए उस लड़के को देखते हो। एक दिन वह गणित की दौड़ में हम सबको पीछ छोड़ देगा।”

तेरह वर्ष की अवस्था में काँशी ने स्कूल में नाम लिखाया। यह स्कूल भर में सबसे तेज लड़का समझा जाता था। ग्रीक, लॅटिन आदि प्रायः सभी विषयों में प्रथम पारितोषिक इसी को मिला करता था। १८०५ में यह स्कूल से निकला और १८१० में इंजीनियर हो गया। काँशी के अस्वास्थ्य में चार पुस्तकें रचा करती थीं। लॅप्लास की ‘खगोल यान्त्रिकी’, लॅग्रान्ज का ‘वैश्लेषिक फलन सिद्धान्त’, एक पद्य की पुस्तक और एक धार्मिक ग्रन्थ। स्पष्ट है कि इनमें से एक भी पुस्तक उसके व्यवसाय से सम्बद्ध नहीं थी। किन्तु काँशी की अभिरुचि तो गणित में ही थी। अतः उसे इंजीनियरी का व्यवसाय छोड़ना ही पड़ा। तरुण अवस्था में ही उसने लॅग्रान्ज की पुस्तक में कई गलतियाँ निकाल डाली थीं।

१८१६ से १८३० तक काँशी पेरिस के क्रमशः तीन स्थानों पर प्राध्यापक नियुक्त रहा। अन्त में अपनी धार्मिक स्वतन्त्रता के कारण इसे अपना पद छोड़ना पड़ा। इसके लिए ट्यूरिन (Turin) विश्वविद्यालय में गणितीय भौतिकी की एक नयी गद्दी का सर्जन किया गया। १८३८ में यह फ्रांस लौट आया और फिर पेरिस में प्राध्यापक नियुक्त हो गया।

१८०५ में काँशी ने ऐंपोलोनियस के इस प्रश्न का हल निकाला—यदि तीन वृत्त दिये हों तो एक चौथा वृत्त किस प्रकार खींचा जाय जो उक्त तीनों वृत्तों को स्पर्श करे।

पॉइन्सो (Poinsot) (१७७७-१८५९) ने एक प्रश्न यह उठाया था—

“चार, छः, आठ, बारह, बीस फलकों (Faces) के सम बहुफलक (Regular Polyhedra) तो ज्ञात हैं। क्या और कोई सम बहुफलक बनाना सम्भव है जिनके फलकों की संख्या इन संख्याओं से भिन्न हो?”

काँशी ने १८११ में एक अभिपत्र द्वारा उक्त प्रश्न का नकारात्मक उत्तर दिया।

बहुफलकों पर आँयलर का यह प्रमेय प्रसिद्ध है:—

यदि किसी बहुफलक की बारा, फलकों और क्षीपों की सत्या प्रमश दो, फ और क्षी हा तो

$$\text{को} + २ = \text{फ} + \text{क्षी} ।"$$

पेरिस की विज्ञान परिषद् ने एक बार घापणा की कि 'जो कोई ऑयलर के उक्त प्रमेय की किसी महत्वपूर्ण दिशा में पूर्ति करेगा, उसे पारितोषिक दिया जाएगा।' लॅयाज ने बॉशी को प्रोत्साहित किया। बॉशी ने १८११ में एक दूसरा अमिपत्र लिखा जिसमें उपरिलिखित प्रमेय का सार्वीकरण कर दिया।

१८४५ के आस पास बॉशी ने कई अमिपत्र लिखे जिनमें प्रतिस्थापन सिद्धांत (Theory of Substitutions) का व्यवस्थित रूप से प्रतिपादन किया गया था। उक्त विषय आज 'साम्त सघ सिद्धान्त' (Theory of Finite Groups) के रूप में विकसित हो गया है।

गणित को काशी की महत्तम देन कलन के क्षेत्र में हुई है। इस विषय पर बॉशी ने तीन ग्रन्थ लिखें—

(i) Cours d analyse de l Ecole Polytechnique (1821)

(ii) Le Calcul infinitesimal (1823)

(iii) Lecons sur les applications du Calcul infinitesimal a la géometrie (1826-28)

बॉशी का सम्मिश्र समाकलन पर निम्नलिखित प्रमेय प्रसिद्ध हो गया है और शुद्ध गणित के प्रत्येक विद्यार्थी को इसे पढ़ना ही पड़ता है।

'यदि व कोई बन्द वक्र है, और फ (ल) एक फलन है जो इस वक्र के अन्दर और ऊपर एकमानीय (One-valued) और वैश्लेषिक है तो

$$\int_{\gamma} \text{फ (ल)} \text{ ता ल} = ० '$$

इसे 'काशी प्रमेय' (Cauchy Theorem) कहते हैं। यह अनेक रूपा में व्यक्त किया जा सकता है। हमने एक बहुत सरल रूप दिया है।

बॉशी ने सीमा और सातत्य के भावा को माँजा और सँवारा और उनकी सहायता से वक्रों के रूप को निष्कार। इसके अतिरिक्त बॉशी ने टेलर प्रमेय की पहली परंप्र उपपत्ति दी। बॉशी ने उक्त प्रमेय में स पदा के पदचान् का योग इस रूप में दिया है—

और यह भी वह दिया कि उसमें बर्द गलतियाँ थीं। नेले ने तनिक भी कोप नहीं दिखाया बल्कि उससे उक्त त्रुटियों का व्यौरा पूछने लगा। नेले स्वयं कोई उच्च गणितज्ञ तो था नहीं। वह ऑबैल की बात पूरी तरह समझा तो नहीं किन्तु उस पर विश्वास हो गया कि उसे मुदड़ी में लाल मिल गया है। उसने तुरन्त निश्चय किया कि वह ऑबैल के लेख अपनी पत्रिका में प्रकाशित करेगा। अतः उक्त पत्रिका के पहले तीन अंक में ऑबैल के २२ लेख छपे।

नेले ने ऑबैल की बड़ी सहायता की। वह जहाँ भी जाता था, ऑबैल को साथ ले जाता था। इस प्रकार नेले द्वारा उसका परिचय बड़े बड़े गणितज्ञों से हो गया। पेरिस में उसकी लेजाण्ड्र और कॉसी से भेंट हुई। इन दोनों ने उसकी पीठ ठोकी किन्तु कभी उसकी महत्ता को नहीं समझा। जब कभी ऑबैल अपनी किसी कृति का उल्लेख उनके सम्मुख किया करता, दोनों अपनी ही डींग हाँकने लगते थे।

विद्वेषण को भी ऑबैल की देन महान् रही है। दीर्घवृत्तीय फलना पर ऑबैल ने कुछ वर्षों में इतना काम कर दिया जितना लेजाण्ड्र जीवन भर में न कर पाया। इसके अतिरिक्त बर्द विषय तो ऑबैल के नाम से ही प्रसिद्ध हो गये हैं। हम यहाँ उनके नाममात्र देते हैं। उनका विवरण देने का यहाँ स्थान नहीं है—

- (i) ऑबैल प्रमेय (Abel Theorem)
- (ii) ऑबैली समाकल (Abelian Integrals)
- (iii) ऑबैली सप्त (Abelian Groups)
- (iv) ऑबैली फलन (Abelian Functions)

ऑबैल को गणितीय पर्यता का कितना भान था, इसका पता उस पत्र से चलता है जो १८२६ में उसने अपने मित्र हॉल्म्बी (Holmboe) को लिखा —

“यदि कोई यह बहे कि

$$0 = 1^n - 2^n + 3^n - 4^n + \dots,$$

जिसमें n कोई घन पूर्णांक है, तो तुम इससे अधिक मूर्खतापूर्ण बात की करपना कर सकते हो ?

“किन्तु, गणित में कदाचित् ही कोई अनन्त श्रणी ऐसी होगी जिसका योग किसी परप रीति से निकाला गया हो।”

कार्ल गुस्टव जेकब जैकोबी (Carl Gustav Jacob Jacobi) (१८०४-५१) का जन्म पॉत्सदम (Potsdam), जर्मनी, में हुआ था। इसके पिता एक धनी महाजन थे। इसकी प्रारम्भिक शिक्षा इसके मामा की देखरेख में ई थी। १८२१ में यह

गैलिन विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हुआ। जॅकोबी को गणित के अतिरिक्त भाषा-विज्ञान में भी रुचि थी और यदि इसने उक्त विषय में अपना समय लगाया होता तो भी कदाचित् इतना ही नाम पैदा किया होता।



चित्र ९८—जॅकोबी (१८०४—५१)

जॅकोबी को पता नहीं था कि आर्वेल सार्विक पंचघात समीकरण का कचूमर निकाल चुका है। अतः उसने १८२० में उक्त समीकरण पर परिश्रम किया और सिद्ध किया कि सार्विक समीकरण इस रूप में ढाला जा सकता है—

$$y'' - 10y' + y = 0,$$

और इस समीकरण का हल दशम घात के एक अन्य समीकरण पर निर्भर है। जॅकोबी के ध्यान में यह नहीं आया कि सार्विक पंचघात समीकरण का, बीजगणितीय विधि से, साधन असम्भव है।

१८२५ में जॅकोबी ने पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। इसका प्रबन्ध (Thesis) आंशिक भिन्न (Partial Fractions) पर था। प्रबन्ध कोई बहुत

उच्च वाटि का नहीं था और उससे यह पता नहीं चलता था कि उसका स्वेच्छ एक दिन गणित के दिग्गजों में गिना जायगा। डाक्टरेट के साथ जैकोबी ने शिक्षण की उपाधि भी ले ली। तत्पश्चात् इसने बर्लिन विश्वविद्यालय में कलन के प्रयोग पर व्याख्यान देना आरम्भ किया। अपने व्याख्याना में यह अपनी नवीनतम खोजों दिया करता था। और अपने शिष्यों को अनुसन्धान कार्य के लिए प्रेरित किया करता था। इसका एक विद्यार्थी था जिसमें आत्म विश्वास की कमी थी। यह सदैव बोलता था कि 'किसी समस्या पर स्वयं कार्य करने से पहले जितना कुछ भी कार्य उस पर अब तक हो चुका है, वह मथ जान लू।' एक दिन जैकोबी ने उस इन शब्दों में लडाई, 'यदि तुम्हारे पिता ने यह आग्रह किया होता कि एक लडकी से विवाह करने से पहले वह समार की सम्मन लडकियां से परिचय प्राप्त कर लें तो न उनका विवाह होगा न तुम उत्पन्न होते।' "

जैकोबी जन्म से ही एक सफल अन्यायक था। इसने मर्यादा सिद्धान्त पर अपने कुछ फल प्रकाशित किये जो गाउस को इनने पसन्द आये कि उसने इसे तुरन्त सहायक अध्यापक नियुक्त करा दिया। जो लाग अध्यापन कार्य में इसके अप्रत्यक्ष थे, उन्हें बुरा लगा किन्तु १८२९ में जब इसने दीर्घवृत्तीय फलना पर अपना पहला ग्रन्थ प्रकाशित किया तब उन्हीं लाग ने कहा कि जैकोबी की उन्नति में तनिक भी अन्याय नहीं हुआ है।

१८४० में जैकोबी पर आर्थिक संकट आ पड़ा। १८४२ में इसने सहाय्य न भी जवाब द दिया। यह पाँच महीने राम और नेपल्स (Naples) में छुट्टी पर रहा। जब यह बर्लिन लौटा तब इस प्राध्यापकत्व का दुबारा मही मिला किन्तु तब विभाग में इसे भत्ता मिलने लगा। कुछ समय पश्चात् यह राब्रनोर्ग में पद देना। यह समय के लिए गड़ा हुआ किन्तु निर्वाचित नहीं हुआ। इसका भत्ता भी बढ़ा दिया गया किन्तु कुछ मित्रों की सहायता से कुछ समय पाछे दुबारा मिलने लगा।

जैकोबी का कार्य गतिविज्ञान में भी बहुत महत्वपूर्ण रहा है। मैनचेस्टर (Manchester) में इसकी नेट हमिल्टन (Hamilton) से हुई थी। इनो गतिविज्ञान का डार्विन का वहीं से पकड़ लिया जहाँ पर हमिल्टन ने उन छोड़ा था। आरथम सिद्धान्त पर भी इसने बहुत कार्य किया और दीर्घवृत्तीय और आर्बोरा फलना का दापवृत्तता (Lilipsoids) के आकार पर प्रकाश किया। अर्बोरी फलना पर इसका कार्य बहुत मोल्य है। यह फलना अर्बोरी समायोजन के उलटपटा (Inversion) से उत्पन्न होता है। जैकोबी ने इन फलना का भी वर्णन किया है।

लिये)।

जब परिहृत निर्दिष्ट (१८००-१८०५) का प्रयोग करी करने की बात पसेगी
की। पीटर डीरिचलेट (Peter Gustav Lejeune Dirichlet)
का समय डीरिच (Dirich) में हुआ था। इनको सियोल (Cologne)
में हुई थी। १८२६-२७ में यह निर्दिष्ट निर्दिष्ट, ब्रेस्लाव (Breslau)
और बर्लिन में प्राध्यापक रहा और १८५५ में गाउस के स्थान पर गौटगन में नियुक्त
हुआ। १८६२ में यह बर्लिन पणिपद का सदस्य हुआ और १८५४ में पेरिस परिषद्
का विदेशी सदस्य।

डिरिचलेट के प्रिय विषय संख्या सिद्धान्त और बीजगणित थे। यों इनने सम्मिश्र
संख्याओं, निश्चित समाकलों और विभव (Potential) पर भी अभिपद्य लिखे हैं।
उनका पहला लेख फर्मा के समीकरण

$$x^n + y^n = z^n$$

पर था जिसमें इनने सिद्ध किया था कि $n > 4$ के लिए यह समीकरण सत्य हो ही
नहीं सकता।

डिरिचलेट जीवन भर गाउस का भक्त रहा। १८६३ में इसका प्रसिद्ध ग्रन्थ
'संख्या सिद्धान्त' (Zahlentheorie) छपा। इसमें गाउस के अनुसन्धानों का

बहुत सुन्दर विवेचन किया गया है और बहुत से नये पत्र भी दिये गये हैं। समग्र राशियाँ पर डिरिचले का गवेषणा कार्य १८४१-४२ और ४६ में प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त इसने फूरियर श्रेणी की अभिसृति की पर्याप्त उपपत्ति भी दी।

डिरिचले के नाम से तीन बातें प्रसिद्ध हो गयी हैं—

(1) १८४० में डिरिचले ने एक अभिपत्र लिखा था जिसमें सख्या सिद्धान्त पर वैश्लेषिक फलन सिद्धान्त का प्रयोग करके दिखाया था। सब प्रथम इसी पत्र में डिरिचले ने इस श्रेणी

$$\sum_{s=0}^{\infty} \frac{1}{(s+\pi)^2}$$

का उपानयन किया था। यही श्रेणी आज तक 'डिरिचले श्रेणी' (Dirichlet Series) के नाम से विख्यात है।

(ii) डिरिचले समाकल (Dirichlet Integral) जिसका तीन चरों वाला रूप हम यहाँ देते हैं—

मान लीजिए कि ϕ (x) एक सतत फलन है। तो

$$\iiint \phi(x+y+z) x^{p-1} y^{q-1} z^{r-1} \text{ तब तब तब}$$

$$= \frac{\Gamma(p)\Gamma(q)\Gamma(r)}{\Gamma(p+q+r)} \int_0^1 \phi(x) dx,$$

जिसमें बायें पक्ष का समाकल x, y, z के ऐसे समस्त घन मानों पर फैलाया जाय जिनके लिए $x+y+z \leq 1$

यह प्रमेय कई रूपा में दिया जाता है।

(iii) डिरिचले सिद्धान्त (Dirichlet Principle)—मान लीजिए कि x, y, z का कोई पञ्चन है। तो दिये हुए पञ्चन अनुबन्ध (Boundary conditions) के लिए एक फलन ϕ ऐसा अस्तित्वमय होगा जिसके लिए सम्पूर्ण

$$\iiint [x^p + y^q + z^r] \text{ तब तब तब}$$

का मान न्यूनतम होगा।

यह सिद्धान्त भी कई प्रकार से लिखा जा सकता है।

वह गणित का इतिहास किस काम का जिसमें हैमिल्टन का नाम न आये ? विलियम रोवन हैमिल्टन (William Rowan Hamilton) (१८०५-६५) के विषय में दो विवाद हैं। पहला विवाद तो इस बात पर है कि यह स्कॉटलैण्ड (Scotland) का निवासी था अथवा आयरलैण्ड (Ireland) का। इसका जन्म आयरलैण्ड के नगर डबलिन (Dublin) में हुआ था और यह स्वयं भी अपने आप को आयरलैण्ड का ही निवासी मानते हैं। अतएव हम भी इसको आयरलैण्ड का ही निवासी मानते हैं।



चित्र १९—हैमिल्टन (१८०५-६५)

[स्क्रिप्ट में थैमेटिका की अनुशा से, 'पोट्रेट्स ऑफ़ ऐमिनेण्ट मैथेमैटिशियंस' से प्रत्युत्पादित।]

दूसरा विवाद हैमिल्टन की जन्म-तिथि के विषय में है। इसका जन्म ३-४ अगस्त १८०५ को ठीक मध्य-रात्रि में हुआ था। अतएव इसकी जन्म-तिथि ३ अगस्त

मानी जाय अथवा ४ अगस्त ? इसने स्वयं भी अपने इतिहासज्ञों को घपले में डाल दिया है, क्योंकि वर्षों यह अपनी जन्म-तिथि ३ अगस्त देता रहा, किन्तु जीवन के अन्तिम दिनों में इसने बदल कर उसे ४ अगस्त कर दिया । इसकी कब्र पर जन्म-तिथि ४ अगस्त पड़ी हुई है ।

हैमिल्टन की शिक्षा अद्भुत ढंग से हुई थी । जब यह तीन ही वर्ष का था तभी इसके पिताजी ने इसे इसकी माँ की छनछाया से हटाकर इसके तायाजी जेम्स हैमिल्टन (James Hamilton) के पास भेज दिया । इसके पिता एक सफल व्यापारी थे, किन्तु बौद्धिक अभ्याप्तियाँ (Intellectual attainments) से बीना दूर थे । जेम्स पश्चिम से लेकर पूर्व तक की दर्जनों भाषाओं के ज्ञाता थे । उन्होंने हैमिल्टन को भी विभिन्न भाषाओं का ज्ञान कराना आरम्भ कर दिया । जब हैमिल्टन बारह वर्ष का था, तभी इसकी माता का स्वर्गवास हो गया और इसकी चौदह वर्ष की अवस्था में इसके पिता भी चल बसे । अब इसकी देखरेख करने के लिए केवल भाषाओं के विद्वाने इसके तायाजी ही रह गये ।

बचपन में ही हैमिल्टन ने कितना ज्ञान उपलब्ध कर लिया, इसका इतिहास अविश्वसनीय है । हम यहाँ उसकी एक तालिका देते हैं—

अवस्था	भाषाओं और विषयों का ज्ञान
३ वर्ष	अंग्रेजी, अवगणित
४ "	भूगोल
५ "	लैटिन, ग्रीक, हिब्रू का ज्ञान और उनके अनुवाद की क्षमता, इसके अतिरिक्त अंग्रेजी और ग्रीक के कविता की मूर्ध्नि रचनाएँ नष्टस्थ
८ "	इटैलियन, फ्रेंच
१० "	फारसी, अरबी, चल्दी (Chaldee), सीरी (Syriac), मध्यत, हिन्दी, बंगाली, मराठी, मलयाली, चीनी
१३ "	तेरह भाषाओं का पण्डित

हैमिल्टन बहुत सन्तुलित स्वभाव का व्यक्ति था । इसका स्वरूप अच्छा था और इसे तैरने का शौक था । जीवन की सन्ध्या के दिना में एक बार इसका सन्तुलन

विद्वत्-पद । बात यह हुई कि एक वर्षों में उसे इच्छा पड़ गयी । उसने उसे इसके लिए प्रोत्साहित किया, किन्तु मित्रों ने योंन विचार करने का समय माँगा कर दिया ।

हिल्टन ने गणित या अक्षय्यतन ज्ञान की अवस्था में उत्तम माना और पाँच वर्षों में यह उच्च गणित में सारंगत हो गया । उसने न्यूटन और लेिबनिज का विशेष रूप से अध्ययन किया था । कणन के साथ साथ उसने ज्यामिति में भी रुचि दिखायी थी । मगह वर्षों की अवस्था में ही उसने लेिबनिज की 'यस समानान्त-चतुर्भुज' की उपाधि में एक दृष्टि निराल दी । जब उसका नलनन्दनी लेिब आयरलैण्ड के राजनीय ज्यामिती जॉन ब्रिकले (John Brinkley) को दिखाया गया, तो तुरन्त उनके मुँह से निकला कि 'इसका लेिबनिज बड़ा होनहार है ।'

हिल्टन कई वर्षों एडमंड के ट्रिनिटी कॉलिज में पढ़ा, किन्तु पाठ्यक्रम समाप्त होने से पहले ही ब्रिकले के स्थान पर ज्यामिति का प्राध्यापक नियुक्त हो गया । इसने अपना मारा शेष जीवन एडमंड की वेदधान्या में ही बिताया । जब तक यह कॉलिज में रहा, गणित और प्राच्य मापाओं के नमन्त पारितोषिक उसी को मिला करते थे । और उन्हीं दिनों इसने "रश्मि-निकायो" (Systems of rays) पर एक अभिपत्र तैयार कर लिया जिसे पढ़कर ब्रिकले को कहना पड़ा कि "हिल्टन अपने समय का सबसे बड़ा गणितज्ञ होगा नहीं, वरन् है ।"

हिल्टन जीवन भर एक नुकवन्द भी रहा । इसने एक प्रेयसी ढूँढ़ निकाली और उस पर दसियों कवितायें लिख डाली । जब इसे पता चला कि उक्त लड़की ने एक सिपाही से विवाह कर लिया है तो इसकी इच्छा डूबकर आत्महत्या करने की हुई किन्तु इसने अपनी उक्त इच्छा की पूर्ति नहीं की, वरन् एक कविता लिखकर सन्तोष कर लिया ।

अठ्ठाईस वर्ष की अवस्था में हिल्टन ने एक अन्य स्त्री से विवाह कर लिया । इसके कुछ दिन पश्चात् यह पीने भी लगा । एक बार एक वैज्ञानिक भोज में यह इतनी पी गया कि बेकाबू हो गया और इसने शपथ ले ली कि "फिर कभी नहीं पियूंगा ।" इसने दो वर्ष अपनी क्रसम को निभाया । दो वर्ष पश्चात् फिर उसी ढंग के एक भोज में इसके एक पुराने मित्र एयरी (Airy) ने इसकी खिल्ली उड़ायी कि "यह तो केवल एक जल-पियकड़ है ।" बात इसे लग गयी और इसने फिर पीना आरम्भ कर दिया ।

हिल्टन को अपने जीवन में बहुत से सम्मान मिले । इसे 'सर' की उपाधि मिली, रॉयल आइरिश परिषद् (Royal Irish Academy) का सभापतित्व

मिला और जीवन की अन्तिम घड़ियों में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, की 'राष्ट्रीय विज्ञान परिषद्' की वेंदेशिन सदस्यता प्राप्त हुई।

चाक्षुषी में तो हेंमिल्टन का कार्य आश्चर्यजनक रहा ही, चतुष्टयो (Quaternions) पर इसका कार्य चमत्कारिक रहा है। इस विषय में हेंमिल्टन के मस्तिष्क की पराकाष्ठा दिखाई देती है। १८३५ में इसने बीजगणितीय युग्म (Algebraic Couples) पर एक अभिपत्र लिखा। बीजगणित के प्रति इसका दृष्टिकोण ही निराला था। यह बीजगणित का केवल सख्या विज्ञान नहीं बल्कि 'प्रगति क्रम विज्ञान' (Science of the order of progression) समझता था। और इसको प्रगति का सबसे सुन्दर निरूपण 'समय' में दिखाई पड़ता था। इसी लिए यह बीजगणित को "शुद्ध समय विज्ञान" (Science of Pure Time) कहा करता था। यहाँ यह इस बात पर विचार करता रहा कि दो परस्पर लम्ब सदिश रेखाओं के गुणनफल का निरूपण किस प्रकार होगा। १६ अक्तूबर १८४३ को यह एक दिन अपराह्न में अपनी पत्नी के साथ टहल रहा था कि एकदम से इसके मस्तिष्क में एक विचार बिजली की भाँति कौंध गया। इसने सड़क पर से एक पत्थर उठा लिया और चाकू से उस पर ये सूत्र गोंद दिये—

$$e^2 = e^2 = o^2 = e \cdot e \cdot o = -1$$

$$[i^2 = j^2 = k^2 = ijk = -1]$$

या तो चतुष्टयो का इतिहास बहुत पुराना है। ऑयलर तो हेंमिल्टन से सौ वर्ष पहले हुआ था। उसका एक फल ऐसा था जिसे चतुष्टयो के पदों में बहुत सरलता से निरूपित किया जा सकता है। एक दिन डी मोंगन ने बिनोद में हेंमिल्टन से कहा कि, "कहो तो प्राचीन हिन्दुओं से लेकर महारानी विक्टोरिया के समय तक का, चतुष्टयो का इतिहास तैयार कर दूँ।" यदि इस कथन में कुछ तथ्य भी हो तो भी यह मानना पड़ेगा कि हेंमिल्टन ने चतुष्टयो के विषय में एक नये अध्याय का सत्रंग किया। इसके 'चतुष्टयो पर व्याख्यान' १८५२ में प्रकाशित हुए।

हेंमिल्टन के जीवन के अन्तिम बाईस वर्ष चतुष्टयो के विकास में ही बीते। इमने ज्योतिष और गतिविज्ञान पर इनका प्रयोग किया। हेंमिल्टन की मृत्यु के पश्चात् इसके घर से कागजों का एक ढेर निकला जिसमें साठ गणितीय पुस्तकें भी पाण्डुलिपियाँ भी थी। इसकी समस्त कृतियाँ आज तक प्रकाशित नहीं हो पायी हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि हेंमिल्टन के लिए भोजनअथवा जलपान आया करता था, किंतु यह गणितीय कार्य में इतना वश रहता था कि इसे खाने की सुविधा ही नहीं रहती थी। यही कारण

हैं कि कागज़ों के ढेर के अन्दर इसके घर से दर्जनों टूटी हुई प्लेटें और आलू चाँप, रोटी आदि निकले। इसमें सन्देह नहीं कि हेमिल्टन एक बहुत ही धुनी व्यक्ति था और इतना देश प्रेमी था कि अपना समस्त गवेषणा कार्य इसी विचार से किया गया था कि उसके द्वारा इसके देश का भस्त्वक ऊँचा हो।

इस स्थल पर यदि हम दो शब्द कुमर के विषय में न कहें तो अनुचित होगा। एर्नस्ट एडुवर्ड कुमर (Ernst Eduard Kummer) (१८१०-९३) की शिक्षा धर्मशास्त्र और गणित में हुई थी। प्रारम्भ में यह क्रम से कई स्थानों पर पढ़ाता रहा। १८४२ में यह ब्रेस्ला (Breslau) में और १८५५ में बर्लिन में गणित का प्राध्यापक नियुक्त हुआ जहाँ यह १८८४ तक रहा।

कुमर का घनिष्ठ सम्बन्ध संख्या सिद्धान्त से है। कुमर ने समीकरण

$$y^m - 1 = 0$$

(i)

का अध्ययन किया जिसमें स कोई घन पूर्णांक है। इस सम्बन्ध में इसने इस प्रकार की श्रमिश्र संख्याओं का उपानयन किया—

$$x = k_1 \text{ का } 1 + k_2 \text{ का } 2 + k_3 \text{ का } 3 + \dots + k_r \text{ का } r$$

जिसमें $k_1, k_2, k_3, \dots, k_r$ वास्तविक पूर्णांक हैं और $k_1, k_2, k_3, \dots, k_r$ समीकरण (i) के मूल।

कुमर ने फ़र्मा के अन्तिम प्रमेय

$$y^m + z^m = l^m$$

($m > 2$)

पर भी वर्षों परिश्रम किया। इस सम्बन्ध में इसने आदर्श संख्याओं (Ideal Numbers) का सर्जन किया। इन संख्याओं की सहायता से कुमर ने फ़र्मा के अन्तिम प्रमेय की एक उपपत्ति निकाली। उपपत्ति सर्वथा सार्थक तो नहीं है, किन्तु अविकांश पूर्णाकों पर लागू है। १०० तक का कोई भी पूर्णांक ऐसा नहीं है जिस पर कुमर की उपपत्ति प्रयोज्य न हो। १८५७ में फ्रांस की विज्ञान परिषद् ने कुमर को उसके संमिश्र पूर्णांक (Complex Integers) सम्बन्धी कार्य पर ३००० फ्रैंक का पुरस्कार दिया।

श्रेणी अभिसरण (Convergence of Series) पर भी कुमर का कार्य महत्वपूर्ण हुआ है। आज भी गणित के विद्यार्थी “कुमर परीक्षण” का अध्ययन करते हैं। हम यहाँ उक्त परीक्षण की प्रतिज्ञा देते हैं।

मान लीजिए कि

$$v_1 + v_2 + v_3 + \dots + v_n + \dots$$

$$\text{और } \frac{1}{m_1} + \frac{1}{m_2} + \frac{1}{m_3} + \dots \dots \dots \frac{1}{m_n} + \dots \dots$$

धन पदों की दो श्रेणियाँ हैं जिनमें से दूसरी अपसारी (Divergent) है।

$$\text{तो श्रेणी } \sum_{n=1}^{\infty} v_n$$

अभिसारी (Convergent) अथवा अपसारी होगी

$$\text{यदि क्रमशः } \frac{v_n}{v_{n+1}} \geq \frac{m_{n+1}}{m_n} \text{ ।}$$

इस परीक्षण में $m_n = 1$ रखने से इस असमता का यह रूप

$$\frac{v_n}{v_{n+1}} \geq 1$$

प्राप्त होता है। इसी को डिलेम्बर्ट परीक्षण कहते हैं।

और यदि

$$m_n = \frac{1}{n}$$

ले लें तो परीक्षण का यह रूप

$$\text{स } \left(\frac{v_n}{v_{n+1}} - 1 \right) \geq 1$$

हो जाता है। इसे राबे परीक्षण (Raabe Test) कहते हैं। राबे का जीवन काल १८०१—५९ था।

कुमर ने रिकट्टी समीकरण और पराज्यामितीय श्रेणी (Hypergeometric Series) पर भी कार्य किया है। इसके अतिरिक्त एक प्रकार के तलों की परिभाषा दी है जिन्हें “कुमर तल” (Kummer Surfaces) कहते हैं।

अब बताइए हम बूल का उल्लेख कैसे न करें। जॉर्ज बूल (George Boole) (१८१५—६४) एक अंग्रेज गणितज्ञ और तर्कशास्त्री था। इसके पिता एक सामान्य स्थिति के व्यापारी थे। सोलह वर्ष की अवस्था में बूल एक स्कूल मास्टर हो गया और चौतीस वर्ष की अवस्था में कॉर्क (Cork) के एक कॉलेज में गणित का प्रोफेसर। बूल ने अपने जीवन में दो ही ग्रन्थ लिखे—एक अवकल समीकरणों पर, दूसरा सान्त अन्तर कलन पर। बूल प्रमुख रूप से इस बात के लिए प्रसिद्ध है कि इसने

संकेत संकेतों (Symbols of quantity) के सार्वभौमिक (Symbols of quantity) ने सर्वथा गिरा जाता है। इसका ही कारण, उसने उस सब का प्रतिपादन भी किया है कि संकेत संकेतों का भी एक सार्वभौमिक है मूलभूत नियमों का जो प्रमाण प्रमाण बनाने है कि प्रमाण सार्वभौमिक है।

किन्तु ब्रह्म की सार्वभौमिक प्रमाण के क्षेत्र में यह है। इसने १८४० में 'संकेत के सार्वभौमिक विवेचन' पर एक अध्याय लिखा जिसमें सार्वभौमिक सार्वभौमिक का ज्ञान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। १८५४ में इसका 'विचार के नियम' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। निम्नलिखित इसका सर्वोच्च प्रतिपादन करने वाला है। उसी पुस्तक को पढ़कर बर्ट्रैंड रसेल (Bertrand Russell) ने हाथ ही में कहा है कि "संकेत सार्वभौमिक का आविष्कार ब्रह्म ने ही किया था।"

ब्रह्म ने सार्वभौमिक को भी बीजगणित का अंग बना दिया था। इस प्रकार बीजगणित सबसे आधारभूत विज्ञान बन जाता है। हम यहां बीजगणित के पांच मूलभूत नियम देने हैं।

मान लीजिए कि क, ख, ग,.....बुद्ध अल्पांशों (Elements) का एक बुद्ध (Set) है जो निम्नलिखित पांच नियमों का पालन करते हैं। तो इन अल्पांशों का एक (System of elements) को हम 'क्षेत्र' (Field) कहेंगे।

(i) यदि क, ख क्षेत्र के दो अल्पांश हैं, तो

$$क+ख=ख+क,$$

$$कख=खक$$

और अल्पांश (क+ख), (कख) भी उसी क्षेत्र के अल्पांश हैं।

इस नियम को व्यत्यय नियम (Law of Commutation) कहते हैं।

(ii) यदि क, ख, ग तीन अल्पांश हों तो

$$(क+ख)+ग=क+(ख+ग), \quad (कख)ग=कखग=क(खग)$$

इस नियम को सहचरण नियम (Law of Association) कहते हैं।

साथ ही, क (ख+ग)=कख+कग।

यह 'वितरण नियम' (Law of Distribution) कहलाता है।

(iii) उसी क्षेत्र में ऐसे दो पृथक् अल्पांश ०, १ होंगे, कि

$$क+०=क=०+क;$$

$$क.१=क=१.क।$$

(iv) प्रत्येक क्षेत्र में एक अल्पांश य ऐसा होता है कि

$$क+य=०, \quad \text{अर्थात् } य+क=०.$$

(v) यदि $k, 0$ को छोड़ कर कोई भी अल्पांश हो तो प्रत्येक क्षेत्र में एक ऐसा अल्पांश r भी होगा कि

$$kr=1, \text{ अर्थात् } r=k^{-1}.$$

परम्परा से बीजगणित के ये नियम चले आ रहे थे। हेंमिल्टन ने इस परम्परा को तोड़ा और इस बात पर विचार किया कि क्या ऐसी सख्याओं का अस्तित्व नहीं हो सकता जो उपरिलिखित नियमों में से एक अथवा अनेक का पालन न करें। और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि ऐसी सख्याएँ सम्भव हैं। आज उन्व गणित के समस्त विद्यार्थी जानते हैं कि श्रेणिक (Matrices) गुणन के व्यत्यय नियम का पालन नहीं करते। इस प्रकार किसी एक नियम की उपेक्षा करने से एक नये प्रकार का बीजगणित तैयार हो जाता है। इस ढंग से अब तो दर्जनों प्रकार के बीजगणितों की सृष्टि हो चुकी है और आये दिनों गणितज्ञ नये नये प्रकार के बीजगणितों का सृजन करते रहते हैं जो 'विचार नियमों' में से कुछ का पालन करते हैं, कुछ का नहीं।

इस प्रकार हेंमिल्टन ने बीजगणित के क्षेत्र में एक नये पथ का प्रदर्शन किया। ब्रूल ने इस प्रवृत्ति को और भी आगे बढ़ाया। इसने यह उक्ति दी कि उपरिलिखित अल्पांश $k, ख, ग,$ राशियों के बदले किसी भी भाव का निरूपण कर सकते हैं। मान लीजिए कि सकेत

$$y = \text{झूठा}.$$

तो $(1-y)$ का अर्थ हुआ 'ऐसे समस्त प्राणी जो झूठे न हों।'

इसी प्रकार, यदि

$$r = \text{गजा},$$

तो $1-r = (\text{जा गजे न हों})$

अतः $yr = (\text{जो झूठे भी हों, गजे भी})$

और $(1-y)(1-r) = (\text{जो न झूठे हों, न गजे})$

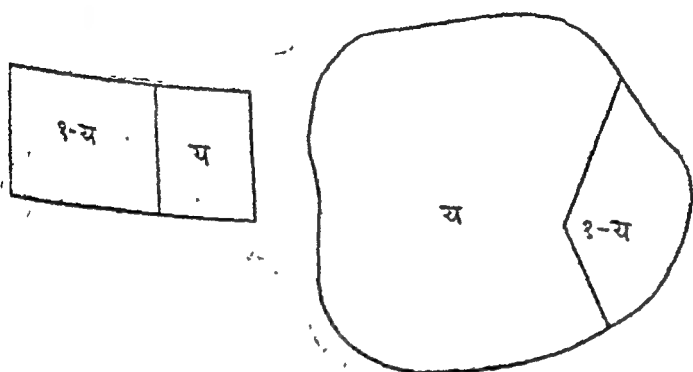
इस प्रकार, समीकरण

$$y(1-y) = 0$$

(1)

का अर्थ निकलेगा—वह वस्तु y जिसमें और $(1-y)$ में कोई भी सामान्य तत्त्व न हो। यदि इस समीकरण का यह अर्थ लगाया जाय तो स्पष्ट है कि इसके हल संकेतों के प्रकार की आकृतियाँ हो सकती हैं।

अतः (i) के अनन्त हल हो सकते हैं जिनका एक दूसरे से कोई सम्बन्ध न हो । स्पष्ट है कि (i) का अर्थ सामान्य बीजगणितीय वर्ग समीकरण



चित्र १००—बीजगणित के एक विचार नियम का प्रदर्शन ।

$$y(1-y) = y - y^2 = 0$$

से सर्वथा भिन्न है, यद्यपि देखने में दोनों विलकुल एक हैं ।

बूल ने बीजगणित के अर्थ में इतने मौलिक आविष्कार किये हैं कि इस प्रकार के बीजगणित को बूली बीजगणित (Boolean Algebra) कहते हैं ।

यहाँ हम फिर एक महान् गणितज्ञ का परिचय पाठकों को देना चाहते हैं । यह है कार्ल विलियम थियोडोर वीस्ट्रास (Karl Wilhelm Theodor Weierstrass) (१८१५-९७) जो अपने भाई वहनों में सबसे बड़ा था । इसका जन्म वेस्टफ़ेलिया (Westphalia) के एक गाँव में हुआ था । इसके पिता फ्रांस के तटकर विभाग के एक अविकारी थे । जब यह ग्यारह वर्ष का था तभी इसकी माता का चोला छूट गया और इसके पिता ने दूसरा विवाह कर लिया । वीस्ट्रास दो भाई और दो बहन थे जिनमें से किसी ने भी विवाह नहीं किया ।

वीस्ट्रास के जन्म के पश्चात् यह परिवार वेस्टर्नकोट्टेन (Westernkotten) चला गया और वहीं इसके पिता ने नौकरी कर ली । बाप बेटे में बहुत दिन इस बात पर संघर्ष चला कि बेटे को किस व्यवसाय में डाला जाय । बड़ी कठिनाइयों के पश्चात् पुत्र की विजय हुई । उक्त गाँव में कोई स्कूल नहीं था, अतः वीस्ट्रास को मुन्स्टर (Munster) के स्कूल में भेजा गया । जब तक यह स्कूलों में शिक्षा पाता रहा, उसे सदैव पुरस्कार मिला करते थे । यह गणित, जर्मन, लैटिन, ग्रीक—प्रायः सभी में सर्व प्रथम रहा करता था ।

प्रायः देखा गया है कि गणितज्ञों को गणीत में भी रुचि होती है। वीस्ट्रॉस इस नियम का अपवाद था। यह तो गणीत सहन भी नहीं कर सकता था। एक बार इसकी बहनो ने प्रयत्न करके इसके लिए समीत की शिक्षा का प्रवन्ध किया, किन्तु दो एक पाठों में ही इसका मन ऊन गया और वहना ने समझ लिया कि यह बेल भगरी नहीं चढ़ेगी।

पन्द्रह वर्ष की अवस्था में वीस्ट्रॉस ने एक व्यापारी की दुकान में पुस्तकालय (Book-Keeping) के काम पर नौकरी कर ली। इसके पिता ने सोचा कि लड़के को लेखा पालन (Accountancy) का शौक है। अतः इसे बॉन (Bonn) विश्वविद्यालय में वाणिज्य (Commerce) और कानून के अध्ययन के लिए भर्ती करा दिया। वीस्ट्रॉस चार वर्ष विश्वविद्यालय में रहा। न इसका कानून में मन लगा, न वाणिज्य में। गणित में इसका मन अवश्य लगता था, किन्तु वहाँ गणित का एक ही अध्यापक तगड़ा था—जूलियस प्लकर (Julius Plucker) जिसे अपने विविध कार्य बलाप से कभी अवकाश ही नहीं मिलता था। परिणाम यह हुआ कि चार वर्ष पश्चात्, बिना कोई भी उपाधि प्राप्त किये, घर के बुढ़ू घर लौट आये।

बॉन में वीस्ट्रॉस की दो आदतें पड़ गयी थीं कुश्ती लड़ना और धाराब पीना। और यह बेरा पिया करता था। किन्तु इन दोनों चीकों के बीच में यह अध्ययन भी किया करता था। उन्हीं चार वर्षों में इसने खगोल गान्त्रिकी और अवकल समीकरणों का गहन अध्ययन कर लिया।

वीस्ट्रॉस क बॉन से बोरा लौट आने पर घर में कुहराम मच गया और सात परिवार यह सोचने लगा कि अब इससे क्या किया जाय। अन्त में एक माँगे निबल आया। इस मुन्टर के स्कूल में शिक्षा उपाधि के लिए फिर प्रविष्ट कराया गया। यह दिन में अपनी बधाआ में पढा करता था और सन्ध्या समय गणित का स्वाध्याय किया करता था। इसी स्कूल में वीस्ट्रॉस गुडरमैन (Gudermann) (१७९८-१८५२) के सम्पर्क में आया। जिस दिन गुडरमैन ने दीर्घवृत्तीय पथना पर अपने व्याख्यान आरम्भ किये, उस दिन उनकी बधा में छिरहू थोता थे। दूसरे दिन केवल एक रह गया था—वीस्ट्रॉस। बारण यह था कि अपने व्याख्यान में गुडरमैन बहुत ऊँची उड़ान चिया करता था। और सामान्य स्तर के थोना मुँह बाये बँडे रहते थे।

शिक्षा उपाधि तो वीस्ट्रॉस ने छत्तीस वर्ष की अवस्था में प्राप्त कर ली। एक वर्ष पश्चात् इसे एक अन्य परीक्षा देनी थी जिसके लिए इसे कई निबन्ध लिखने थे। इसी की प्राधना पर गुडरमैन ने इस निबन्ध के लिए एक गणितोप विषय दिया। इसके

विशेषी व्यक्ति की शक्ति स्कूल मास्टरी में नष्ट न की जाय, वरन् इसे किसी उच्च
स्था में स्थान दिया जाय।” किन्तु कौन सुनता है ! यह एक माध्यमिक स्कूल में
अध्यापक नियुक्त हुआ जिसमें पन्द्रह वर्ष रहा !



चित्र १०१—वीस्ट्रासि (१८१५-१७)

[डोवर पब्लिकेशंस, इन्कॉर्पोरेटेड, न्यूयॉर्क-१०, की अनुज्ञा से, डी० स्टुडिओ कृत 'ए कॉन्साइज
हिस्ट्री ऑफ़ मैथेमैटिक्स' (१.७५ डालर) से प्रत्युत्पादित।]

गुडरमन का मारा कार्य फलना की घात श्रेणी (Power Series) के रूप में प्रसार करने पर आधुन था। वीस्ट्रॉम ने भी अपना कार्य इसी संकेत में आरम्भ किया और विश्लेषण का आधार-अन्तर्ग्रह धान श्रेणी का ही बनाया। सभी सभी वीस्ट्रॉम कहा भी करता था कि "ममार में धान श्रेणी के अनिरिक्त और कुछ है ही नहीं।"

वीस्ट्रॉम आर्बेल का बड़ा भक्त था। यह हर एक को परामर्श दिया करता था कि 'आर्बेल की कृतियां का अध्ययन करा। उसने चिरम्यायी कार्य किया है।' यही वीस्ट्रॉम के विषय में भी बोहे जा सकन हैं। वीस्ट्रॉम का कार्य तो अद्भुत था ही। वह इसने गिा और भी श्रेयस्वर था, क्योंकि हमके त्रियाशील जीवन का बहुतसा समय ऐसे गाँवा में बीता जहाँ इसे दूसरा की कृतियां के सम्पर्क में आने का अवसर ही नहीं मिलता था। डाक महमूल भी इतना अधिक था कि हमके जैसे निर्धन स्कूल मास्टर के लिए अपना वैज्ञानिक पत्राचार निमाना भी दुष्कर था। अतः वह अपने कार्य में दूसरा की कृतियां का कोई अमिदेन (Reference) दे ही नहीं पाता था। कौंसी वाले प्रकरण में हम उसके आधारभूत समाकूल प्रमेय का उल्लेख कर चुके हैं। वीस्ट्रॉम को उस प्रमेय के प्रकाशन का पता १८४२ में लगा था किन्तु यह स्वयं उस प्रमेय को स्वतन्त्र रूप में १८११ में निकाल चुका था।

१८४२ में वीस्ट्रॉम एक स्कूल में गणित का सहायक अध्यापक नियुक्त हुआ जहाँ इसे गणित के अतिरिक्त भूगोल और जर्मन भी पढ़ानी पड़नी थी। उन्ही दिनों की एक बात उल्लेखनीय है। जर्मनी की जनता में राजनीतिक चेतना जाग्रत हो रही थी। कुछ लोग मुल्लम खुल्ला सरकार की बुराई लेखा और कविताओं के रूप में किया करते थे। सरकार ने एक दापवेचक (Censor) नियुक्त कर दिया था। दापवेचक को कविता में घुणा थी। उसने समस्त पद्य रचनाओं की छानबीन का काम वीस्ट्रॉम को सौंप दिया था। वीस्ट्रॉम उनमें से सबसे विद्रोहात्मक रचनाओं को छांट छांट कर प्रकाशित करा दिया करता था। यह खेल बहुत दिन तक चलता रहा। अन्त में एक उच्चाधिकारी ने इसका भण्डाफोड कर दिया।

वीस्ट्रॉम का जीवन तपस्या में बीता। यह अपन काम में इतना एकाग्र चित्त हो जाता था कि दोन, दुनिया की सुधि नहीं रहनी थी। जिन दिनों यह मुन्स्टर के स्कूल में अध्यापन किया करता था, उन्ही दिनों की बात है कि एक दिन यह सवेरे आठ बजे की कक्षा में नहीं पहुँचा। सस्था के निदेशक को आश्चर्य हुआ और वह कारण जानने के लिए इसके घर पहुँचा। तो पता चला कि वीस्ट्रॉम एक गवेषणा कार्य में लगा हुआ था जो उसने पिछली सन्ध्या को आरम्भ किया था। रात भर यह उसी में सलग्न रहा

और उनकी पता भी नहीं चला कि क्या गन बीन नहीं और मरणा हो गया। उसने निदेश से स्कूल में अपनी अनुपस्थिति के लिए क्षमा माँगी और कहा कि यह शीघ्र ही एक ऐसा आविष्कार प्रकाशित करेगा जो मंत्रान को चमकाने के लिए होगा।

और ऐसा ही हुआ भी। १८५४ में बीस्ट्रॉम का उच्च अभिपत्र प्रकाशित हुआ जिसका विषय 'अर्धेनो फलन' था। किसी को भी यह आशा नहीं हो सकती थी कि एक गाँव का स्कूल मास्टर इतनी उच्च कोटि का कार्य कर सकता है। उन दिनों कॉनिम्बर्ग के विश्वविद्यालय में रिशेलो (Richelot) गणित के प्राध्यापक थे। उन्होंने अभिपत्र के लेखक की प्रतिभा को पहचाना और विश्वविद्यालय ने आग्रह किया कि बीस्ट्रॉम को डाक्टरेट की मानांपाधि (Honorary Degree) दी जाय। उपाधि देने के लिए रिशेलो स्वयं बीस्ट्रॉम के निवास स्थान तक आया।

जर्मनी के शिक्षा मन्त्रालय ने बीस्ट्रॉम को एक वर्ष की छुट्टी दे दी जिसमें यह निर्विघ्न रूप में अपना गवेषणा कार्य कर सके। तत्पश्चात् यह बर्लिन विश्वविद्यालय में नियुक्त हो गया। कार्याधिक्य के कारण इनका स्वास्थ्य जवाब देने लगा और इसे लम्बी छुट्टी लेनी पड़ी। छुट्टी से लौटने पर भी इसके स्वास्थ्य में विशेष सुधार दिखाई नहीं दिया और यह एक व्याख्यान देते देते ही गिर पड़ा। इसके बाद यह रोग से उभर ही न पाया। इसने यह नियम बना लिया कि स्वयं कक्षा में बैठ जाया करता था और कक्षा में से किसी तेज़ लड़के को बुलाकर उससे श्याम पट्ट पर अपनी टिप्पणियों की नक़ल कराया करता था। एक लड़का अपने आपको बहुत लगाता था। वह क्या किया करता था कि नक़ल करते समय बीस्ट्रॉम की टिप्पणियों में अपनी ओर से भी कुछ जोड़ दिया करता था। जहाँ कहीं वह गलती करता था, बीस्ट्रॉम उठ कर मिटा दिया करता था। इस पर गुरु, चेले में संघर्ष होता था। विद्यार्थी भी अपनी बात पर अड़ जाता था किन्तु जीत अन्त में गुरु की ही हुआ करती थी।

एक उपाख्यान और देकर हम बीस्ट्रॉम के जीवन वृत्तांत को समाप्त करते हैं। १८७०-७१ में फ्रांस और प्रशा (Prussia) में लड़ाई हो चुकी थी जिसके कारण फ्रांस और जर्मनी का सम्बन्ध दूषित हो गया था। १८७३ में स्टॉकहोम (Stockholm) से मिताग-लैफ़्लर (Mittag-Leffler) पेरिस आया और हर्मिट (Hermite) के साथ गवेषणा करने की इच्छा प्रगट की। हर्मिट ने फ्रांस और जर्मनी की कटुता को भुला कर उत्तर दिया कि "तुमने गलती की जो यहाँ आयें। तुम्हें बीस्ट्रॉम के पास जाना चाहिए जो हम सब लोगों का चचा है।" मिताग-लैफ़्लर ने उक्त उपदेश को हृदयंगम कर लिया और बीस्ट्रॉम के पास पहुँच गया।

बीस्ट्रॉस ने मिट्टी पर भी हाथ रख दिया तो वह सोना बन गयी। इसने स्वयं तो अपना कार्य बहुत कम प्रकाशित किया। इसके विद्यार्थियों ने इसके व्याख्याना पर जो टिप्पणियाँ तैयार की उनके आधार पर इसका गवेषणा कार्य प्रकाशित हो गया। इसकी शुद्ध गणित सम्बन्धी गवेषणाओं के मुख्य क्षेत्र ये थे—

- (i) अबेली फलन (Abelian Functions)
- (ii) दीर्घवृत्तीय फलन (Elliptic Functions)
- (iii) विचरण कलन (Calculus of Variations)
- (iv) श्रेणी अभिसार (Convergence of Series)
- (v) गुणनफल अभिसार (Convergence of Products)
- (vi) द्विघात और वर्ग रूप (Bilinear and Quadratic Forms)
- (vii) सम्मिश्र चर फलन (Functions of a Complex Variable)

एक बात और लिखनी रह गयी है। बीस्ट्रॉस के समय तक गणितज्ञ का यह विचार था कि समस्त सतत फलन अवकलनशील होते हैं। बीस्ट्रॉस ही पहला व्यक्ति था जिसने एक ऐसे फलन का उदाहरण दिया जो सतत है किन्तु कहीं भी अवकलनशील नहीं है। हम यहाँ उक्त फलन की एक विशिष्ट दशा देते हैं—

$$\text{यदि } f(y) = \sum_{n=0}^{\infty} 2^{-n} \cos(3^n \pi y),$$

तो y के किसी भी मान के लिए $f(y)$ अवकलनशील नहीं है।

बीस्ट्रॉस के इस आविष्कार ने समस्त गणितीय ससार को आश्चर्यचकित कर दिया था। यह फलन बीस्ट्रॉस के नाम से ही प्रसिद्ध हो गया है।

बीस्ट्रॉस के पश्चात् ता और गणितज्ञों ने भी अनवकलनशील सतत फलनों के उदाहरण दिये हैं। निम्नलिखित फल १९३० में वॉन डर वॉर्देन (Van der Waerden)^१ ने दिया था—

१. Ein einfaches Beispiel einer nicht differenzierbaren stetigen Funktion Math. Zeitschrift 32 (1930) 474—5.

मान लीजिए कि y से उस भूमिपतम संख्या की दूरी को हम $f_n(y)$ से निरूपित करते हैं जो इस रूप $\frac{1}{10^n}$ की हो।

$$\text{तो फलन } f(y) = \sum_{n=1}^{\infty} f_n(y)$$

सतत है किन्तु अवकलनशील नहीं है।

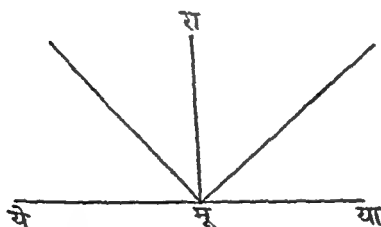
इसके अतिरिक्त, १९१८ में नाॅप (Knopp)^३ ने एक सार्विक विधि दे दी जिससे बहुत से अनवकलनशील सतत फलनों का सर्जन किया जा सकता है।

यह तो रहे ऐसे फलन जो पूरे के पूरे अन्तरालों में अनवकलनशील हैं। किन्तु बहुत से ऐसे फलन भी होते हैं जो एक विशिष्ट बिन्दु को छोड़कर शेष सब स्थानों पर अवकलनशील होते हैं। ऐसे फलनों का सबसे सरल उदाहरण यह है—

$$r = |y|,$$

अर्थात् $r = y$, यदि $y > 0$

$$= -y, \text{ यदि } y < 0.$$



चित्र १०२—एक अनवकलनशील फलन

यह फलन मूलबिन्दु पर सतत है किन्तु अवकलनशील नहीं है। शेष सब बिन्दुओं पर सतत भी है, अवकलनशील भी।

इतिहासज्ञ इंग्लैण्ड के दो गणितज्ञों का नाम एक साथ लेते हैं—सिल्वेस्टर और केली का। इसमें सन्देह नहीं कि दोनों वर्षों एक दूसरे के मित्र रहे और इन्होंने कन्वे-से-कन्वा मिड़ा कर काम किया। किन्तु दोनों के स्वभाव में आकाश पाताल का अन्तर

२. Ein einfaches Verfahren zur Bildung stetiger, nirgends diff-
erenzierbarer Funktionen-Math Zeitschrift 2 (1918) 1—26.

था। सिल्वेस्टर का जीवन सघर्ष में ही बीता, केली के मार्ग में बहुत कम विघ्न, बाधाएं आयीं। सिल्वेस्टर क्षण में नरम, क्षण में गरम था, केली धीर, मन्मीर था। सिल्वेस्टर प्रायः सदैव कवित्वमय भाषा में बोला करता था, केली की भाषा गणितीय सूत्रा में निकला करती थी। स्वभाव के इसी वैपम्य के कारण दोनों में बहुधा मन मुगव हा जाया करता था। जब दोनों में किसी बात का लेकर विवाद हुआ करता था, सिल्वेस्टर औधी और तूफान की तरह बरस पड़ता था, केली चट्टान की भाँति शान्त बना बैठा रहता था। थोड़ी देर के पश्चात् सिल्वेस्टर अपनी करनी पर पछताता था। किन्तु पश्चात्ताप का दौर समाप्त भी नहीं होने पाता था कि दूसरा उबाल आ जाता था।

जेम्स जोर्जेफ सिल्वेस्टर (James Joseph Sylvestor) (१८१४-९७) का जन्म लन्दन में हुआ था। यह कई भाई-बहनो में सबसे छोटा था। स्कूली शिक्षा प्राप्त करके चौदहवें वर्ष में यह लन्दन विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हुआ जहाँ यह डी मॉर्गन का शिष्य बना। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में इसने लिवरपूल की एक सस्था में प्रवेश किया। यह अपनी कक्षा में और सब विद्यार्थियों से इतना आगे निकल गया कि इसके लिए एक विशेष कक्षा बनानी पड़ी। उन्हीं दिनों अमेरिका की एक कम्पनी ने पारितोषिक के लिए एक कठिन समस्या सिल्वेस्टर को दी। इसने प्रश्न को पूर्ण रूप से हल कर लिया और इस प्रकार ५०० डॉलर का पारितोषिक मार दिया।

सिल्वेस्टर ने कॉलिज की शिक्षा केम्ब्रिज में पायी, किन्तु इसके यूही धम के कारण विश्वविद्यालय ने न इस कोई उपाधि दी, न छात्रवृत्ति। एक बार यह अपने धार्मिक विचारों के कारण ही लिवरपूल से भागकर डवलिन गया। इसकी जेब में बहुत थोड़े पैस थे, किन्तु गली में इसका एक दूर का सम्बन्धी मिल गया जिसने इसे लिवरपूल लौट जाने का किराया दे दिया। १८७१ में डवलिन विश्वविद्यालय ने ही इसे बी० ए० और एम० ए० दोनों की मानोपाधियाँ दे दी।

१८३७ में सिल्वेस्टर लन्दन के एक कॉलिज में प्राध्यापक नियुक्त हुआ और दो वर्ष पश्चात् रायल सोसायटी का अधिसदस्य निर्वाचित हुआ गया। १८४१ में यह वर्जीनिया (Virginia) में प्राध्यापक नियुक्त हुआ किन्तु कुछ ही महीना में इस का एक विद्यार्थी स सघर्ष हो गया जिसके कारण इस वर्जीनिया छोड़ना पड़ा। लन्दन लौटने पर सिल्वेस्टर पहले तो जीवनान्विक (Actuary) बना, फिर वानून का अध्ययन कर के बैरिस्टर हुआ। १८५५ में यह फिर ऊलविच (Woolwich) में गणित का प्राध्यापक नियुक्त हुआ और चौदह वर्ष तक उसी पद पर बना रहा। १८७० में इसे जबरदस्ती सेवा से निवृत्त कर दिया गया। १८७६ में यह अमेरिका के जॉन हॉपकिंस (John Hopkins) विश्वविद्यालय में नियुक्त हो गया।

१८८३ में इसे आक्सफोर्ड की एक गद्दी मिल गयी जिस पर वह १८९२ तक रहा।
जीवन के अन्तिम दिन इसने लन्दन में बिताये।



चित्र १०३—सिल्वेस्टर (१८१४-९७)

[टोमर पब्लिकेशन्स, इन्कॉर्पोरेटेड, न्यूयार्क—१०, की अनुज्ञा से, टी० स्टुड्स कृत
'ए कॉन्माइन हिस्ट्री ऑफ मैथमैटिक्स' (१७३ टालर) से प्रत्युपादित।]

सिल्वेस्टर की कृतियाँ चार भागों में प्रकाशित हुई हैं। इसका प्रमुख कार्य बीज-
गणित पर है, विशेष कर निश्चल सिद्धान्त (Theory of Invariants) पर।

पेत्रोग्राद (Petrograd) में प्रवान कर लिया था। चौदह वर्ष की अवस्था में केली लन्दन के एक कॉलेज में प्रविष्ट हुआ। १७ वर्ष की अवस्था में यह कैम्ब्रिज के ट्रिनिटी कॉलेज में गत हुआ। चार वर्ष में इसने बहुत से पुरस्कार पाये और १८४२ में यह स्नातक परीक्षा में सर्व प्रथम उत्तीर्ण हुआ। कुछ वर्ष इसने बरतान की। उन्हीं दिनों यह एक बार उबरलिन गया और वहाँ चतुष्टयों पर हेमिल्टन के व्याख्यान सुने। जब कैम्ब्रिज में गणित की गद्दी स्थापित हुई, इसने उसे स्वीकार कर लिया।

केली स्नातक भी नहीं हो पाया था कि इसने अभिपन्न लिखना आरम्भ कर दिया। आश्चर्य की बात यह है कि इसके सारे महत्वपूर्ण गवेषणा कार्य उस समय हुए हैं जब यह बकालत करता था। कैम्ब्रिज की गद्दी पर यह जीवन पर्यन्त रहा। उसे दिन पर दिन सम्मान मिलता गया। १८८२ में इसे अमेरिका के जॉन हॉपकिन्स विश्व-विद्यालय ने व्याख्यान देने के लिए आमन्त्रित किया। इसके व्याख्यानों के विषय 'अबेली और थीटा फलन' (Abelian and Theta Functions) थे। हम ऊपर लिख चुके हैं कि उन दिनों उन्नीस विश्वविद्यालय में सिल्वेस्टर अध्यापन कार्य कर रहा था। इस प्रकार दोनों मित्रों का फिर एक बार गँठबन्धन हो गया।

केली की प्रतिभा बहुमुखी थी। शुद्ध गणित की तो कदाचित् ही कोई शाखा हो जो इसने अच्छी छोड़ दी हो। सब मिलाकर इसने ८०० गणितीय अभिपन्न लिखे हैं जो १३ भागों में कैम्ब्रिज से प्रकाशित हुए हैं। इसका सबसे बढ़िया काम निश्चलों पर हुआ है। यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि इसके निश्चल सिद्धान्त से विश्लेषण की एक नयी शाखा का श्रीगणेश हो गया। इस विषय में सिल्वेस्टर और केली दोनों का कार्य टक्कर का रहा है। दोनों एक ही समय वर्षों लन्दन में रहे हैं और एक दूसरे से विचार विनिमय करते रहते थे। कभी कभी तो यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि किसी प्रकरण में कितना काम सिल्वेस्टर का है और कितना केली का।

केली के गवेषणा कार्य के अन्य विषय ये थे—

- (i) दीर्घवृत्तीय फलन।
- (ii) वैश्लेषिक ज्यामिति।
- (iii) पंचघातक (Quantics)।
- (iv) समुदाय (Groups) सिद्धान्त।
- (v) श्रेणिक (Matrix) सिद्धान्त।
- (vi) परम (Absolute) ज्यामिति।

- (vii) घन वक्रों का समीकरण ।
- (viii) वक्रों और तलों की उच्च विचित्रताएँ (Singularities) ।
- (ix) स्थानान्तर और एकैकी-भंगति (Correspondence) ।
- (x) घन तल पर २७ रेखाओं का सिद्धान्त ।
- (xi) दीर्घवृत्तों का आकर्षण ।
- (xii) सैद्धान्तिक गणितज्ञान ।
- (xiii) चन्द्रमा की मध्यम गति (Mean Motion)

पाठक, तनिक ठहरिए ! चार्ल्स हर्मिट (Charles Hermite) का नाम छूटा जा रहा है । इसका जीवन काल १८२२-१९०१ था । इसका जन्म लोरेन (Lorraine) के ड्यूज (Dieuze) नगर में हुआ था । बचपन में ही इसने नियमित पाठ्यक्रम छोड़कर गणितज्ञों की कृतियाँ पढ़नी आरम्भ कर दी । बीस वर्ष की अवस्था में इसने पेरिस के एच कॉलिज में नाम लिखाया । किन्तु सिर मुँडाने ही ओले पड़े । बात यह थी कि लड़कपन में ही इसकी दाहिनी टाँग में बज आ गया था । अतः कॉलिज में प्रविष्ट होते ही इसे पना चल गया कि स्नातक होने पर टाँग के बज के कारण इसे कोई सरकारी नौकरी नहीं मिल सकेगी । इसलिए इसने पहले वर्ष ही कॉलिज छोड़ दिया ।

१८६९ में हर्मिट एक कॉलिज में प्राध्यापक नियुक्त हुआ । कुछ दिनों पश्चात् इसे पेरिस विश्वविद्यालय की उच्च बीजगणित की गद्दी भी मिल गयी । उक्त पद पर यह १८९७ तक रहा । हर्मिट के मुख्य विषय बीजगणित और विश्लेषण थे । फ्रांस में इसका इतना मान था कि बौशी की मृत्यु के पश्चात् यहीं उक्त देश का अग्रणी विश्लेषक गिना जाने लगा । इसने इन प्रवरणा पर अपनी लेखनी उठायी है—

समीकरण सिद्धान्त, मर्यादा सिद्धान्त, फलन सिद्धान्त, दीर्घवृत्तीय फलन, निश्चित समाकल, निश्चल और सहचल (Invariants and Covariants) ।

हर्मिट के नाम से हर्मिटी संख्याएँ (Hermitian Numbers) और हर्मिटी रूप (Hermitian Forms) प्रचलित हैं । इसकी मित्रता हॉर्लण्ड के गणितज्ञ स्टील्टजेंज (Stieltjes—१८५६-९४) से थी जिसे इसने टूलुस (Toulouse) की गद्दी दिलवाने में सहायता दी । स्टील्टजेंज द्वारा स्टील्टजेंज समाकल (Stieltjes Integral) का आविष्कार हुआ । इस प्रकार हम दम्बते हैं कि उक्त आविष्कार का — भोग हर्मिट को भी मिलना चाहिए । दोनों मित्रों का पारस्परिक पत्राचार चार

जो में छाता है जिने फलने ने संमिश्र नन फलनो (Functions of a Complex Variable) के विषय में बहुत सी जानकारी प्राप्त हो गयी है ।



चित्र १०५—स्टील्डजैज (१८५६—९४)

[टोवर पब्लिकेशंस, इन्कॉर्पोरेटेड, न्यूयॉर्क-१०, की अनुज्ञा से, टी० स्ट्रोक कृत 'ए कॉन्साइज हिस्ट्री ऑफ मैथेमेटिक्स' (१७५ टालर) से प्रत्युत्पादित ।]

आइजैन्स्टाइन भी कोई ऐसा वैसा नहीं था जो हम उसका नाम ही न लें । इसका पूरा नाम फर्डिनैण्ड गोथॉल्ड मैक्स आइजैन्स्टाइन (Ferdinand Gotthold Max Eisenstein) (१८२३-५२) था । यह बेचारा गरीबी में पला और १९ वर्ष

की अवरुद्धता तक हमने गणित में कोई विशेष रुचि भी नहीं दिखायी। हमने बर्लिन में शिक्षा पायी और फिर वही पर प्राध्यापक हो गया। २९ वर्ष की अल्पावस्था में इसका देहान्त हो गया, किन्तु इनने थोड़े समय में ही इसने तेज़ी विलक्षण प्रतिभा दिखायी कि माउस की इसने विषय में कहना पड़ा कि “संसार में तीन ही युग प्रगत गणितज्ञ हुए हैं—आर्किमिडीज, न्यूटन और आइज़ैन्हाइम।”

आइज़ैन्हाइम ने बहुत से अभिपन्न लिये हैं। हमने द्विपर वर्ग रूपों (Binary Quadratic Forms) का विकास किया और ऐसे प्रथम सहचर का आविष्कार किया जो विस्लेषण में प्रयुक्त होता है। सरयाओ को दो वर्गों के जोड़ के रूप में निरूपित करने के विषय में हमने यह सिद्ध किया कि उक्त प्रमेय आठ वर्गों तक ही सीमित है। तीन और पाँच वर्गों तक के लिए इसने उसने हल भी दे दिये। इसके अतिरिक्त इसका बहुत सा कार्य दीर्घवृत्तीय फलनों और समिध राशियों पर भी है।

लियोपोल्ड क्रॉनैकर (Leopold Kronecker) (१८२३-९१) ब्रैस्लॉ का निवासी था। हमने ब्रैस्लॉ और बर्लिन में शिक्षा पायी। ग्यारह वर्ष तक यह अपने व्यापार में फँसा रहा, किन्तु यदा यदा गणित का भी अध्ययन करता रहा। १८५५ में यह बर्लिन गया। इसे वहाँ आधिकारिक नियुक्ति नहीं मिली किन्तु अनौपचारिक रूप से ही यह वहाँ के विश्वविद्यालय में १८६१ से व्याख्यान देने लगा।

क्रॉनैकर को सहचरपन से ही बड़ी प्रवृत्ति के शौक थे। गणित के अतिरिक्त इसे ग्रीक, लैटिन, हिब्रू और दर्शन में रुचि थी। इसने अनिरिक्त इसे संगीत से भी असाधारण लगाव था। यह स्वयं एक गर्वया था और प्यानों बजाने में भी दक्ष था। यह कहा करता था कि गणित को छोड़ कर संसार की सबसे ललित कला संगीत है।

क्रॉनैकर कुमर का शिष्य था और इसने जीवन पर कुमर का प्रभाव भी विशेष रूप से पड़ा था। १८८३ में जब कुमर सेवा निवृत्त हुआ तब क्रॉनैकर उसके स्थान पर नियुक्त हो गया। १८४५ में क्रॉनैकर ने पीएच० डी० की उपाधि के लिए एक प्रबन्ध (Thesis) लिखा जिसमें इसने कुमर के सत्या सिद्धान्त सम्बन्धी कार्य को ही आगे बढ़ाया था। कुमर, बीस्ट्रास और क्रॉनैकर यह तिकड़ी थी जिसने गणित में परंपरा का प्रवर्तन किया। प्लेटो कहा करता था कि “ईश्वर एक ज्यामितिज्ञ है।” क्रॉनैकर ने कहा आरम्भ किया कि “ईश्वर एक अगणितज्ञ है।”

क्रॉनैकर अध्यापन में अद्वितीय था किन्तु लेखन में असफल था। इसके अभिप्रायों की भाषा बोझिल रहती थी। इसकी गवेषणा के मुख्य विषय थे—वर्ग रूप, दीर्घवृत्तीय फलन और आदर्श सिद्धान्त (Ideal Theory)। इसका विश्वास था कि

मस्त गणित अन्ततोगत्वा अंकगणित पर आवृत है, अंकगणित संख्याओं पर अवलम्बित है और संख्याओं का मूल स्तम्भ प्राकृतिक संख्याएँ हैं। इसीलिए यह कहता था कि संख्या n का उपानयन वृत्त के द्वारा नहीं, वरन् इस श्रेणी के द्वारा होना चाहिए—

$$1 - \frac{1}{2} + \frac{1}{4} - \frac{1}{8} + \dots$$

वाद को तो कॉर्नेकर यहाँ तक कहने लगा था कि अपरिमेय संख्याओं का अस्तित्व ही नहीं है। इसने लिण्डमैन (Lindemann) को एक पत्र में लिखा भी था कि “संख्या n पर तुम्हारे सुन्दर कार्य करने का क्या उपयोग है? जब तुम जानते हो कि अपरिमेय संख्याएँ होती ही नहीं, तब ऐसी समस्याओं पर क्यों माथा-पच्ची करते हो?”

आइए पाठक, एक महान् व्यक्तित्व से मुचैटा लेना है। जार्ज फ्रेडरिक बर्नार्ड रिमान (Georg Friedrich Bernhard Riemann) का जीवन काल १८२६-६६ था। चालीस वर्ष में ही इसने अपनी मौलिकता से गणितीय जगत् में क्रान्ति मचा दी थी। यदि दस बीस वर्ष और जीता रहता तो न जाने क्या कर जाता! इसका जन्म हॅनोवर (Hanover), जर्मनी, के एक गाँव में हुआ था। इसके पिता नॅपोलियन की लड़ाइयों में लड़ चुके थे। तत्पश्चात् वे हॅनोवर के एक गाँव में आकर बस गये। उनके ६ बच्चे थे जिनमें से रिमान की संख्या दूसरी थी।

इस प्रकार रिमान का बचपन गरीबी में बीता। यह जन्म से ही संकोची प्रकृति का था और जनता के सम्मुख बोलने में इसे भय मालूम होता था। जीवन के दूसरे पहर में यह समझने लगा था कि इस कारण इसे ख्याति मिलने में बड़ी बाधा पड़ती है। अतः यह बड़ी तैयारी के साथ व्याख्यान देने जाता था और अन्त में इसने अपने संकोच पर विजय प्राप्त करके ही छोड़ी।

६ वर्ष की अवस्था से ही रिमान ने अंकगणित में रुचि दिखानी आरम्भ कर दी। इसे जितने प्रश्न दिये जाते थे वह तो यह हल कर ही लिया करता था, बहुत बार अपने भाई बहिनों को तंग करने के लिए यह स्वयं नये नये प्रश्न बना लिया करता था। दस वर्ष की अवस्था में इसे पढ़ाने के लिए एक शिक्षक शुल्ज (Schulz) रखा गया किन्तु शीघ्र ही शुल्ज को पता चल गया कि गुरु गुड़ ही रह गया है, चेला शक्कर हो गया है।

१४ वर्ष की अवस्था में रिमान को स्कूल भेजा गया। इसे भाई बहिनों की बहुत याद आती थी और आये दिनों यह उन्हें भेंटें भेजा करता था। उन्हीं दिनों अपने माता पिता के लिए इसने एक चिरस्थायी तिथि-पत्र (Perpetual Calendar) बनाकर भेजा। इसके स्कूल के निदेशक ने इसकी प्रतिमा पहचानी और अपने निजी

आम। गमिथ विश्लेषण (Complex Analysis) पर इनके विचारों को इन्हीं जिने प्रोत्सा प्राप्त हुई। १८५० में यह गॉटगन लौट आया और एक वर्ष पश्चात् अपने शपथन की उपाधि प्राप्त की। इनके प्रयत्न का विषय गमिथ फलन ही थे। अब कार्यालय के कारण रोमान का स्वास्थ्य गिरने लगा था। यह गॉटगन की नोकरी छोड़ कर हार्ज (Hart) चला गया और अपने मित्र डैडीकाइण्ड के साथ एक प्रकार ने निवृत्त जीवन बिताने लगा। इनकी आर्थिक दशा चिन्ताजनक थी और १८५५ में सरकार ने इसे थोड़ी सी वृत्ति देनी आरम्भ कर दी। १८५९ में डिग्चिले की मृत्यु पर यह उनके न्याय पर प्राध्यापक नियुक्त हों गया। सात वर्ष पश्चात् इनका देहावसान हो गया।

रोमान की प्रतिभा विलक्षण भी थी, चतुर्मुखी भी। उनकी गिनती सबसे मौलिक गणितज्ञों में की जाती है। बहुत सी आधुनिक गणितीय संकल्पनायें इसी के नाम से प्रसिद्ध हो गई हैं। हम उनमें से कुछ यहाँ देते हैं।

(१) रोमान जीटा फलन (Riemann Zeta Function)—हम इस फलन का उल्लेख पिछले प्रकरणों में कर आये हैं। यह इग थ्रेणी का नाम है—

$$1 + \frac{1}{2^p} + \frac{1}{3^p} + \frac{1}{4^p} + \dots + \frac{1}{n^p} + \dots$$

जिसमें $p = \sigma + i\tau$ (ए - $\sqrt{-1}$)।

जब रोमान स्कूल में पढ़ता था, इसने लेजाण्ड्र के संख्या सिद्धान्त का अध्ययन किया था। ८५९ पृष्ठों की यह पुस्तक रोमान ने ६ दिन में ही पढ़कर अपन शिक्षक को वापस कर दी। उसके कई महीने पश्चात् शिक्षक ने उक्त ग्रन्थ पर इससे कई प्रश्न किये जिनके उत्तर यह फटाफट देता गया। इसी पुस्तक से रोमान को रुढ़ संख्याओं के अध्ययन की चाट पड़ी। किसी निर्दिष्ट संख्या से कम कितनी रुढ़ संख्याएँ होती हैं, इसके लिए लेजाण्ड्र ने एक सूत्र दिया था जिससे इन संख्याओं की सन्निकट (Approximate) संख्या ही निकाल सकती थी। रोमान ने लेजाण्ड्र के इस फल से बढ़िया फल निकालने का प्रयत्न किया। इस प्रयत्न में रोमान ने यह उक्ति दी—

p के ऐसे समस्त मान जिनके लिए जीटा फलन का योग शून्य हो, और $0 < \sigma < 1$, इस प्रकार

$$\frac{1}{2} + i\tau$$

के होते हैं। अर्थात् उनका वास्तविक भाग $\frac{1}{2}$ होता है। रोमान ने यह कथन केवल अनुमान के रूप में दिया है। इसे 'रोमान परिकल्पना' (Riemann Hypothesis)

कहते हैं। इसे न आज तक कोई सिद्ध कर सका है, न विप्रमाणिन (Disproved)। यह शुद्ध गणितज्ञों के लिए एक स्थायी चुनौती है।

(२) रोमान समीकरण—यदि

$$l = y + \epsilon r \quad \text{और} \quad m = x + \epsilon m,$$

और m चर l का कोई वैश्लेषिक फलन है तो

$$\frac{t_x}{t_y} = \frac{t_m}{t_r}, \quad \frac{t_x}{t_r} = \frac{t_m}{t_y}।$$

ये समीकरण सर्वप्रथम डि लेम्बर्ट ने और तत्पश्चात् कॉशी ने दिये थे। अब ये कॉशी-रोमान समीकरणों (Cauchy-Riemann Equations) के नाम से प्रसिद्ध हैं।

(३) रोमान समाकल (Riemann Integral)—निश्चित समाकल की व्याख्या हम इस अध्याय के आरम्भ में कर चुके हैं। १८५४ में रोमान ने त्रिकोण-मितीय ध्रुवी पर एक अभिपन्न लिखा था जिसमें पहले पहल समाकल की यथाय परिभाषा दी थी। रोमान ने निश्चित और अनिश्चित समाकलों का सम्बन्ध इन शब्दों में दिया है—

यदि फलन $f(y)$ a से b तक समाकलनशील है, और a और b के बीच में रहता है तो $f(y)$ के ' a से y तक के अनिश्चित समाकल' और ' y से b तक के निश्चित समाकल' में केवल एक अचर (Constant) का अन्तर होगा।

इस सम्बन्ध में किसी बिन्दु कुलक (Set of Points) की 'समावृत्ति' (Content) की परिभाषा पर भी विचार कर लेना चाहिए।

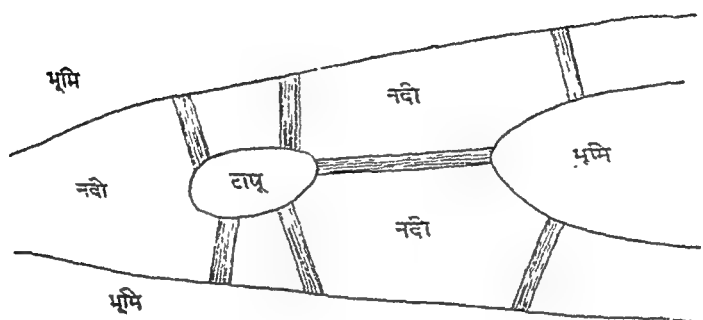
मान लीजिए कि बिन्दु कुलक अन्तराल (a, b) में स्थित है। एक फलन $f(y)$ ऐसा बनाइए जिसका मान कुलक के प्रत्येक बिन्दु पर १ हो और अन्तराल के अन्य समस्त बिन्दुओं पर शून्य हो। तो समाकल

$$\int_a^b f(y) dy$$

के मान का हम बिन्दु कुलक की समावृत्ति कहेंगे।

रोमान ने किसी फलन की समाकलनशीलता के लिए आवश्यक और पर्याप्त शर्त यह दी है कि उक्त अन्तराल में फलन के असान्तत्य बिन्दुओं (Points of Discontinuity) के कुलक की समावृत्ति शून्य हो।

(४) रीमानो तल (Riemannian Surfaces)—यहाँ इस विषय के विस्तार में जाने का तो अवकाश नहीं है। हम एक रोचक समस्या का वर्णन करते हैं।
 आँयलर के समय में कॉनिग्सबर्ग (Königsberg) नगर में नदी प्रेगेल (pregel) के ऊपर सात पुल थे।



चित्र १०७—कॉनिग्सबर्ग नगर में नदी के सात पुल

आँयलर ने यह समस्या उपस्थित की कि कोई किस प्रकार सातों पुलों पर होकर जाय ताकि किसी भी पुल पर दो बार न जाना पड़े ? प्रश्न असम्भव है।



चित्र १०८—रीमानो तल

इस छोटे से प्रश्न से स्थानिकी (Topology) का आरम्भ होता है। रोमान ने इस विषय का बहुत विचार किया और इसके सिद्धान्तों का फलन विज्ञान पर प्रयोग किया। आज यह विषय इतना विकसित हो चुका है कि इस बात पर विश्वास करना कठिन है कि इसका शोधगणेश इतनी छोटी सी बात से हुआ होगा।

(५) रोमानी ज्यामिति (Riemannian Geometry)—हम साधारणतः द्वैविम (Two-dimensional) और त्रैविम (Three-dimensional) आकाश का अध्ययन करते हैं। रोमान ने ऐसे आकाश की कल्पना की है जिसमें स विमा (Dimensions) हों। ऐसे आकाश में प्रत्येक बिन्दु के निर्देशांक (Coordinates) का कुलक इस प्रकार का होगा—

$$x_1, x_2, x_3, \dots, x_n$$

गाउस के आकाश में दो प्राचल (Parameters) थे। रोमान ने उक्त संकल्पना का मार्बिकरण किया है।

(६) रोमानी वक्रता प्रदिश—(Riemann Curvature Tensor)

हेनरी जॉन स्टीफ़ेन स्मिथ (Henry John Stephen Smith) (१८२६-८१) कोई नामी गणितज्ञ नहीं था किन्तु बहुत ही प्रतिभावान् था। इसका जन्म डवर्निन में हुआ था। जब यह दो वर्ष का था, इसने पिता का स्वर्गवास हो गया और इसकी माता इस लेकर इंग्लैंड आ गयी। १८४१ में यह रग्बी (Rugby) के एक स्कूल में प्रविष्ट हुआ। १८४४ में इसने ऑक्सफोर्ड के बैलियल (Balliol) कॉलेज में नाम लिखाया। उन्हीं दिनों इसने एक चक्कर यूरोप का लगाया। १८४९ में इसने आक्सफोर्ड में उच्चतम सम्मान प्राप्त किया। एक लोकोक्ति है कि यह प्राच्य भाषाओं और गणित दोनों में सर्व प्रथम हुआ था, अतः निश्चय नहीं कर पा रहा था कि इनमें से किस विषय को अपनाये। तब इसने पैसा उछाल कर निर्णय किया।

स्मिथ ने विवाह नहीं किया। १८५० में यह बैलियल कॉलेज का अधिपत्य निर्वाचित हुआ, १८६० में ऑक्सफोर्ड में ही प्राध्यापक नियुक्त हुआ और १८६१ में रायल् सोसायटी का अधिपत्य हा गया। यह कई राजकीय आयागों का सदस्य रहा और कई वर्ष मनु-विज्ञान कार्यालय (Meteorological Office) का अध्यक्ष रहा।

स्मिथ ने आरम्भ में कई अनिष्ट ज्यामिति पर लिये। तत्पश्चात् इसने सत्यामिज्ञान पर कार्यारम्भ किया। इसका गवेषणा कार्य ब्रिटिश एसोसिएशन (British Association) के १८५९-६५ के अवकाश में लगा है। इसके साविक गृन्ना की दो

न्य में निरूपण। द्विचर और त्रिचर रूपों (Binary and Ternary Forms) पर भी इसका कार्य महत्त्वपूर्ण रहा है। १८९४ में ग्लैशर (Glaisher) ने इसकी रूपायों का संग्रह प्रकाशित किया है।

रिचर्ड डेडीकाइण्ड (Richard Dedekind) (१८३१-१९१६) का जन्म ब्रुन्सविक (Brunswick) में हुआ था। मोल्लह वर्ष की अवस्था तक इनने अपने जन्मस्थान में ही शिक्षा पायी। उस समय तक इसकी रुचि भौतिकी और गणित में अधिक थी। सत्रहवें वर्ष जब यह कार्लिज में प्रविष्ट हुआ तब उसने वैश्लेषिक ज्यामिति, कलन, बीजगणित आदि का अध्ययन आरम्भ किया। उन्नीस वर्ष की अवस्था में यह गटिंगन विश्वविद्यालय में भर्ती हुआ और गाउस, स्टर्न (Stern) (१८०७-९४) और वेबर (Weber) (१८४२-१९१३) के मार्ग में आया। १८५२ में इसने गाउस की देव-रेख में डाक्टर की उपाधि पायी। इसके प्रबन्ध का विषय था—ऑयलरी समाकल (Eulerian Integrals)।

१८५४ में डेडीकाइण्ड गटिंगन में व्याख्याता (Lecture) नियुक्त हो गया। उक्त पद पर यह चार वर्ष रहा। उन्हीं दिनों इसकी मित्रता रीमान से हुई और वहीं पर यह डिरिचले के सम्पर्क में आया। १८५७ में यह जूरिच में प्राध्यापक नियुक्त हुआ और १८६२ में ब्रुन्सविक की एक संस्था में प्रोफ़ेसर हो गया। उक्त स्थान पर यह लगभग पचास वर्ष रहा।

डेडीकाइण्ड जीवन भर अविवाहित रहा। इसकी बहन जूली (Julie) इसके साथ रहती थी। यह पचासी वर्ष की अवस्था तक जीवित रहा। इसकी ख्याति इसके जीवन काल में ही चारों ओर फैल गयी थी। मृत्यु से १२ वर्ष पूर्व 'गणितज्ञों के तिथिपत्र' (Calendar for Mathematicians) में यह समाचार छपा कि '४ सितम्बर १८९९ को डेडीकाइण्ड का देहान्त हो गया।' डेडीकाइण्ड ने यह समाचार पढ़कर पत्रिका के सम्पादक को लिखा कि 'तिथि कदाचित् ठीक निकले किन्तु वर्ष तो निश्चय ही गलत है। अपनी दैनिकी (Diary) के अनुसार तो मैं उस दिन पूर्णतया स्वस्थ था और अपने सम्मानित मित्र और अतिथि जॉर्ज कॅन्टर (Georg Cantor) से 'पद्धति और सिद्धान्त' पर घुल-घुल कर बातें कर रहा था।'

यों तो डेडीकाइण्ड ने बहुत से अभिपत्र लिखे हैं किन्तु इसके दो ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हुए हैं जिनके विषय 'अपरिमेय संख्याएँ' (Irrational Numbers) और 'आदर्श संख्याएँ' (Ideal Numbers) थे। इसने डिरिचले के गवेषणा कार्य का सम्पादन किया और रीमान के संग्रह की प्रस्तावना (१८७६) भी लिखी।

इस छोटे से प्रश्न से स्थानिकी (Topology) का आरम्भ होता है। रोमान ने इस विषय का बहुत विकास किया और इसके सिद्धान्तों का फलन सिद्धान्त पर प्रयोग किया। आज यह विषय इतना विकसित हो चुका है कि इस बात पर विश्वास करना कठिन है कि इसका श्रीगणेश इतनी छोटी-सी बात से हुआ होगा।

(५) रोमानी ज्यामिति (Riemannian Geometry)—हम साधारणतया द्वैविम (Two-dimensional) और त्रैविम (Three-dimensional) आकाश का अध्ययन करते हैं। रोमान ने ऐसे आकाश की कल्पना की है जिसमें स विमाएँ (Dimensions) हों। ऐसे आकाश में प्रत्येक बिन्दु के निर्देशांक (Coordinates) का कुलक इस प्रकार का होगा—

$$x_1, x_2, x_3, \dots, x_n$$

गाउस के आकाश में दो प्राचल (Parameters) थे। रोमान ने उक्त संकल्पना का सार्वीकरण किया है।

(६) रोमानी वक्रता प्रदिश—(Riemann Curvature Tensor)
हेनरी जॉन स्टीफेन स्मिथ (Henry John Stephen Smith) (१८२६-८३) कोई नामी गणितज्ञ नहीं था किन्तु बहुत ही प्रतिभावान् था। इसका जन्म डबलिन में हुआ था। जब वह दो वर्ष का था, इसके पिता का स्वर्गवास हो गया और इसकी माता इसे लेकर इंग्लैंड आ गयी। १८४१ में यह रग्बी (Rugby) के एक स्कूल में प्रविष्ट हुआ। १८४४ में इमने ऑक्सफोर्ड के बैलियल (Balliol) कॉलिज में नाम लिखाया। उन्ही दिनों इसने एक चक्कर यूरोप का लगाया। १८४९ में इमने आक्सफोर्ड में उच्चतम सम्मान प्राप्त किया। एक लोकोक्ति है कि यह प्राच्य नापाओ और गणित दोनों में सर्व प्रथम हुआ था, अतः निश्चय नहीं कर पा रहा था कि इनमें से किस विषय को अपनाये। तब इमने पैमा उछाल कर निर्णय किया।

स्मिथ ने विवाह नहीं किया। १८५० में यह बैलियल कॉलिज का अधिसदस्य निर्वाचित हुआ, १८६० में ऑक्सफोर्ड में ही प्राध्यापक नियुक्त हुआ और १८६१ में रायल सोसायटी का अधिसदस्य हो गया। यह कई राजकीय आयागों का सदस्य रहा और कई वर्ष मेटेओ विज्ञान कार्यालय (Meteorological Office) का अध्यक्ष रहा।

स्मिथ ने आरम्भ में कई अभिपन्न ज्यामिति पर लिखे। तत्पश्चात् इमने सत्या सिद्धांत पर कार्यारम्भ किया। इसका गवेषणा काय ब्रिटिश एसोसियेशन (British Association) से १८५९-६५ के अकों में छपा है। इसने सावित्र सूत्रों की दो सिद्धांत दगाए जल्दगामीय हैं—निर्सी सत्या का पाँच अथवा सात वर्गों के योग के

रूप में निरूपण। द्विचर और त्रिचर रूपों (Binary and Ternary Forms) पर भी इसका कार्य महत्वपूर्ण रहा है। १८९४ में ग्लेशर (Glaisher) ने इसकी कृतियों का संग्रह प्रकाशित किया है।

रिचर्ड डेडेकीण्ड (Richard Dedekind) (१८३१-१९१६) का जन्म ब्रन्सविक (Brunswick) में हुआ था। सोलह वर्ष की अवस्था तक इमने अपने जन्मस्थान में ही शिक्षा पायी। उस समय तक इसकी रुचि भौतिकी और रसायन में अधिक थी। सत्रहवें वर्ष जब यह कॉलज में प्रविष्ट हुआ तब इसने वैश्लेषिक ज्यामिति, कलन, बीजगणित आदि का अध्ययन आरम्भ किया। उन्नीस वर्ष की अवस्था में यह गटिंगन विश्वविद्यालय में भर्ती हुआ और गाउस, स्टर्न (Stern) (१८०७-९४) और वेबर (Weber) (१८४२-१९१३) के संसर्ग में आया। १८५२ में इसने गाउस की देख-रेख में डाक्टर की उपाधि पायी। इसके प्रबन्ध का विषय था—ऑयलरी समाकल (Eulerian Integrals)।

१८५४ में डेडेकीण्ड गटिंगन में व्याख्याता (Lecture) नियुक्त हो गया। उक्त पद पर यह चार वर्ष रहा। उन्हीं दिनों इसकी मित्रता रीमान से हुई और वहीं पर यह डिरिचले के सम्पर्क में आया। १८५७ में यह जूरिच में प्राध्यापक नियुक्त हुआ और १८६२ में ब्रन्सविक की एक संस्था में प्रोफ़ेसर हो गया। उक्त स्थान पर यह लगभग पचास वर्ष रहा।

डेडेकीण्ड जीवन भर अविवाहित रहा। इसकी बहन जूली (Julie) इसके साथ रहती थी। यह पचासी वर्ष की अवस्था तक जीवित रहा। इसकी ख्याति इसके जीवन काल में ही चारों ओर फैल गयी थी। मृत्यु से १२ वर्ष पूर्व 'गणितज्ञों के तिथिपत्र' (Calendar for Mathematicians) में यह समाचार छपा कि '४ सितम्बर १८९९ को डेडेकीण्ड का देहान्त हो गया।' डेडेकीण्ड ने यह समाचार पढ़कर पत्रिका के सम्पादक को लिखा कि 'तिथि कदाचित् ठीक निकले किन्तु वर्ष तो निश्चय ही गलत है। अपनी दैनिकी (Diary) के अनुसार तो मैं उस दिन पूर्णतया स्वस्थ था और अपने सम्मानित मित्र और अतिथि जॉर्ज कॅण्टर (Georg Cantor) से 'पद्धति और सिद्धान्त' पर घुल-घुल कर बातें कर रहा था।'।

यों तो डेडेकीण्ड ने बहुत से ग्रन्थ लिखे हैं किन्तु इसके दो ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हुए हैं जिनके विषय 'अपरिमेय संख्याएँ' (Irrational Numbers) और 'आदर्श संख्याएँ' (Ideal Numbers) थे। इसने डिरिचले के गवेषणा कार्य का सम्पादन किया और रीमान के संग्रह की प्रस्तावना (१८७६) भी लिखी।

इस छोटे से प्रश्न से स्थानिकी (Topology) का आरम्भ होता है। रोमान ने इस विषय का बहुत विकास किया और इसके सिद्धान्तों का फलन सिद्धान्त पर प्रयोग किया। आज यह विषय इतना विवसित हो चुका है कि इस बात पर विस्वाम करना बठिन है कि इसका श्रीगणेश इतनी छोटी सी बात से हुआ होगा।

(५) रोमानी ज्यामिति (Riemannian Geometry)—हम साधारणतया द्वैविम (Two-dimensional) और त्रैविम (Three-dimensional) आकाश का अध्ययन करते हैं। रोमान ने ऐसे आकाश की कल्पना की है जिसमें स विमाएँ (Dimensions) हों। ऐसे आकाश में प्रत्येक बिन्दु के निर्देशांक (Coordinates) का कुलक इस प्रकार का होगा—

$$x_1, x_2, x_3, \dots, x_n$$

गाउस के आकाश में दो प्राचल (Parameters) थे। रोमान ने उक्त संकल्पना का सार्वाङ्करण किया है।

(६) रोमानी वक्रता प्रदिश—(Riemannian Curvature Tensor) हैनरी जॉन स्टीफें स्मिथ (Henry John Stephen Smith) (१८२६-८३) कोई नामी गणितज्ञ नहीं था किन्तु बहुत ही प्रतिभावान् था। इसका जन्म डवलिन में हुआ था। जब यह दो वर्ष का था, इसके पिता का स्वर्गवास हो गया और इसको माता इसे लेकर इंग्लैण्ड आ गयी। १८४१ में यह रग्बी (Rugby) के एक स्कूल में प्रविष्ट हुआ। १८४४ में हमने ऑक्सफोर्ड के बेलियल (Balliol) कॉलेज में नाम लिखाया। उन्ही दिना हमने एक चक्कर यूरोप का लगाया। १८४९ में हमने ऑक्सफोर्ड में उच्चतम सम्मान प्राप्त किया। एक लोकोक्ति है कि यह प्राच्य भाषाओं और गणित दोनों में सर्व प्रथम हुआ था, अतः निश्चय नहीं कर पा रहा था कि इनमें से किस विषय को अपनाये। तब हमने पैसा उछाल कर निर्णय किया।

स्मिथ ने विवाह नहीं किया। १८५० में यह बेलियल कॉलेज का अधिसदस्य निर्वाचित हुआ, १८६० में ऑक्सफोर्ड में ही प्राध्यापक नियुक्त हुआ और १८६१ में रॉयल सोसायटी का अधिसदस्य हो गया। यह कई राजकीय आयोगों का सदस्य रहा और कई वर्ष मेटेोरोलॉजिकल कार्यालय (Meteorological Office) का अध्यक्ष रहा।

स्मिथ ने आरम्भ में कई अज्ञिपत्र ज्यामिति पर लिखे। तत्पश्चात् हमने सम्पूर्ण सिद्धान्त पर कार्यारम्भ किया। इसका श्रेयपणा कार्य ब्रिटिश एसोसिएशन (British Association) के १८५९-६५ के अका में छपा है। हमने साविक सूत्रों की दो निम्नलिखित दशाएँ उल्लेखनीय हैं—जिसी सख्या का पाँच अथवा सात वर्गों के योग के

हमें निरूपण। द्विचर और त्रिचर रूपों (Binary and Ternary Forms) पर भी इसका कार्य महत्वपूर्ण रहा है। १८९४ में ग्लैशर (Glaisher) ने इसकी दृष्टियों का संग्रह प्रकाशित किया है।

रिचर्ड डेडीकाइण्ड (Richard Dedekind) (१८३१-१९१६) का जन्म ब्रुन्सविक (Brunswick) में हुआ था। सोलह वर्ष की अवस्था तक उसने अपने जन्मस्थान में ही शिक्षा पायी। उन्नत मर्यादा तक उसकी गणितीय भाँतिकी और रसायन में अधिक थी। मग्नहर्वे वर्ष जब यह कॉलेज में प्रविष्ट हुआ तब उसने वैश्लेषिक ग्यामिति, कलन, बीजगणित आदि का अध्ययन आरम्भ किया। उन्नीस वर्ष की अवस्था में यह गटिंगन विश्वविद्यालय में भर्ती हुआ और गाउस, स्टर्न (Stern) (१८०७-९४) और वेबर (Weber) (१८४२-१९१३) के संसर्ग में आया। १८५२ में उसने गाउस की देख-रेख में डाक्टर की उपाधि पायी। इसके प्रबन्ध का विषय था—ऑयलरी समाकल (Eulerian Integrals)।

१८५४ में डेडीकाइण्ड गटिंगन में व्याख्याता (Lecture) नियुक्त हो गया। उक्त पद पर यह चार वर्ष रहा। उन्हीं दिनों इसकी मित्रता रीमान से हुई और वहीं पर यह डिरिचले के सम्पर्क में आया। १८५७ में यह जूरिच में प्राध्यापक नियुक्त हुआ और १८६२ में ब्रुन्सविक की एक संस्था में प्रोफ़ेसर हो गया। उक्त स्थान पर यह लगभग पचास वर्ष रहा।

डेडीकाइण्ड जीवन भर अविवाहित रहा। इसकी बहन जुली (Julie) इसके साथ रहती थी। यह पचासी वर्ष की अवस्था तक जीवित रहा। इसकी ख्याति इसके जीवन काल में ही चारों ओर फैल गयी थी। मृत्यु से १२ वर्ष पूर्व 'गणितज्ञों के तिथिपत्र' (Calendar for Mathematicians) में यह समाचार छपा कि '४ सितम्बर १८९९ को डेडीकाइण्ड का देहान्त हो गया।' डेडीकाइण्ड ने यह समाचार पढ़कर पत्रिका के सम्पादक को लिखा कि 'तिथि कदाचित् ठीक निकले किन्तु वर्ष तो निश्चय ही गलत है। अपनी दैनिकी (Diary) के अनुसार तो मैं उस दिन पूर्णतया स्वस्थ था और अपने सम्मानित मित्र और अतिथि जॉर्ज कॅण्टर (Georg Cantor) से 'पद्धति और सिद्धान्त' पर घुल-घुल कर बातें कर रहा था।'।

यों तो डेडीकाइण्ड ने बहुत से अग्रिम लिखे हैं किन्तु इसके दो ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हुए हैं जिनके विषय 'अपरिमेय संख्याएँ' (Irrational Numbers) और 'आदर्श संख्याएँ' (Ideal Numbers) थे। उसने डिरिचले के गवेषणा कार्य का सम्पादन किया और रीमान के संग्रह की प्रस्तावना (१८७६) भी लिखी।

इस छोटे से प्रश्न से स्थानिकी (Topology) का आरम्भ हुआ। रोमान ने इस विषय का बहुत विवाम किया और इसके सिद्धान्तों का फलन सिद्ध पर प्रयोग किया। आज यह विषय इतना विवसित हो चुका है कि इस बात विश्वास करना बठिन है कि इसका शीगणेश इतनी छोटी सी बात से हुआ होगा।

(५) रोमानो ज्यामिति (Riemannian Geometry)—हम साधारणतः द्वैविम (Two-dimensional) और त्रैविम (Three-dimensional) आकाश का अध्ययन करते हैं। रोमान ने ऐसे आकाश की कल्पना की है जिसमें स विम (Dimensions) हों। ऐसे आकाश में प्रत्येक बिन्दु के निर्देशांक (Coordinates) का कुलक इस प्रकार का होगा—

$$x, y_1, y_2, \dots, y_n.$$

गाइस के आकाश में दो प्राचल (Parameters) थे। रोमान ने उक्त सकल्पन का मार्बीकरण किया है।

(६) रोमानो वक्रता प्रदिश—(Riemannian Curvature Tensor)

हैनरी जॉन स्टीफेन स्मिथ (Henry John Stephen Smith) (१८२६-८३) कोई नामी गणितज्ञ नहीं था किन्तु बहुत ही प्रतिभावान् था। इसका जन्म डवलिन में हुआ था। जब यह दस वर्ष का था इसके पिता का स्वर्गवास हो गया और इसकी माता इसे लेकर इंग्लण्ड आ गयी। १८४१ में यह रग्बी (Rugby) के एक स्कूल में प्रविष्ट हुआ। १८४४ में इसने ऑक्स्फोर्ड के बैलियल (Balliol) कॉलेज में नाम लिखाया। उन्ही दिना इसने एक चक्कर यूरोप का लगाया। १८४९ में इसने आक्स्फोर्ड में उच्चतम सम्मान प्राप्त किया। एक लोकोविन है कि यह प्राच्य भाषाओं और गणित दोनों में सर्व प्रथम हुआ था अतः निश्चय नहीं कर पा रहा था कि इनमें से किस विषय का अपनाये। तब इसने पैसा उछाल कर निर्णय किया।

स्मिथ ने विवाह नहीं किया। १८५० में यह बलियल कॉलेज का अधिसदस्य निर्वाचित हुआ, १८६० में आक्स्फोर्ड में ही प्राध्यापक नियुक्त हुआ और १८६१ में रॉयल सोसायटी का अधिसदस्य हो गया। यह कई राजकीय आयागा का सदस्य रहा और कई वर्ष मेटेोरोलॉजिकल कार्यालय (Meteorological Office) का अध्यक्ष रहा।

स्मिथ ने आरम्भ में कई अनिपत्र ज्यामिति पर लिखे। तत्पश्चात् इसने सत्या सिद्धांत पर कार्यारम्भ किया। इसका गवेषणा काय ब्रिटिश एसोसिएशन (British Association) के १८५९-६५ में अका में छपा है। इसने साविक मूत्रा की दो

रूप में निरूपण। द्विचर और त्रिचर रूपों (Binary and Ternary Form) पर भी इसका कार्य महत्त्वपूर्ण रहा है। १८९४ में ग्लेशर (Glaisher) ने इन्हियों का संग्रह प्रकाशित किया है।

रिचर्ड डेडीकाइण्ड (Richard Dedekind) (१८३१-१९१६) का ब्रन्सविक (Brunswick) में हुआ था। सोलह वर्ष की अवस्था तक इसने जन्मस्थान में ही शिक्षा पायी। उस समय तक इसकी रुचि भौतिकी और गणित में अधिक थी। सत्रहवें वर्ष जब यह कॉलिज में प्रविष्ट हुआ तब इसने वैज्ञानिक, कलन, बीजगणित आदि का अध्ययन आरम्भ किया। उन्नीस की अवस्था में यह गटिंगन विश्वविद्यालय में भर्ती हुआ और गाउस, स्टर्न (St. १८०७-९४) और वेबर (Weber) (१८४२-१९१३) के संसर्ग में १८५२ में इसने गाउस की देख-रेख में डाक्टर की उपाधि पायी। इसके प्रविषय था—ऑयलरी समाकल (Eulerian Integrals)।

१८५४ में डेडीकाइण्ड गटिंगन में व्याख्याता (Lecture) नियुक्त गया। उक्त पद पर यह चार वर्ष रहा। उन्हीं दिनों इसकी मित्रता रोमा और वहीं पर यह डिरिचले के सम्पर्क में आया। १८५७ में यह जूरिच में नियुक्त हुआ और १८६२ में ब्रन्सविक की एक संस्था में प्रोफेसर हो गया। स्थान पर यह लगभग पचास वर्ष रहा।

डेडीकाइण्ड जीवन भर अविवाहित रहा। इसकी बहन जूली (Julie) इसके साथ रहती थी। यह पचासी वर्ष की अवस्था तक जीवित रहा। व्याप्ति इसके जीवन काल में ही चारों ओर फैल गयी थी। मृत्यु से १८ वर्ष पूर्व 'गणितज्ञों के तिथिपत्र' (Calendar for Mathematicians) में यह छपा कि '४ सितम्बर १८९९ को डेडीकाइण्ड का देहान्त हो गया।' डेडीकाइण्ड यह समाचार पढ़कर पत्रिका के सम्पादक को लिखा कि 'तिथि कदाचित् त्रुटिपूर्ण है किन्तु वर्ष तो निश्चय ही गलत है। अपनी दैनिकी (Diary) के अनुसार दिन पूर्णतया स्वस्थ था और अपने सम्मानित मित्र और अतिथि जॉर्ज कॅण्ट (Cantor) से 'पद्धति और सिद्धान्त' पर घुल-घुल कर बातें कर रहा था।

यों तो डेडीकाइण्ड ने बहुत से अमिपत्र लिखे हैं किन्तु इसके दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं जिनके विषय 'अपरिमय संख्याएँ' (Irrational Numbers) और 'संख्याएँ' (Ideal Numbers) थे। इसने डिरिचले के गवेषणा कार्य

इस छोटे से प्रश्न से स्थानिकी (Topology) का आरम्भ होता है। रीमान ने इस विषय का बहुत विनाश किया और इसके सिद्धान्तों का फलन निदान पर प्रयोग किया। आज यह विषय इतना विवर्धित हो चुका है कि इस बात पर विश्वास करना कठिन है कि इसका श्रीगणेश इतनी छोटी सी बात से हुआ होगा।

(५) रीमानी ज्यामिति (Riemannian Geometry)—हम साधारणतया द्विविम (Two-dimensional) और त्रिविम (Three-dimensional) आकाश का अध्ययन करते हैं। रीमान ने ऐसे आकाश की कल्पना की है जिसमें स विमाएँ (Dimensions) हों। ऐसे आकाश में प्रत्येक बिन्दु के निर्देशांक (Coordinates) का कुल इतना प्रकार का होगा—

$$x_1, x_2, x_3, \dots, x_n$$

गाउस ने आकाश में दो प्राचल (Parameters) थे। रीमान ने उसी संख्या का मार्गीकरण किया है।

(६) रीमानी वक्रता प्रदिश—(Riemannian Curvature Tensor)

हेनरी जॉन स्टीफेन स्मिथ (Henry John Stephen Smith) (१८२९-८३) काई नामी गणितज्ञ नहीं था बल्कि बहुत ही प्रतिभावान् था। इसका जन्म इंग्लैंड में हुआ था। जब यह दस वर्ष का था, इसने पिता का स्वर्गवास हो गया और इसकी माता इस लेकर इंग्लैंड आ गयी। १८४१ में यह रग्बी (Rugby) के एक स्कूल में प्रविष्ट हुआ। १८४४ में इसने ऑक्सफोर्ड के बेलियल (Balliol) कॉलेज में नाम लिखाया। उन्हीं दिनों इसने एक चक्कर यूरोप का लगाया। १८४९ में इसने ऑक्सफोर्ड में उच्चतम सम्मान प्राप्त किया। एक लोकोक्ति है कि यह प्राच्य भाषाओं और गणित दोनों में सर्व प्रथम हुआ था, अब निश्चय नहीं कर पा रहा था कि इनमें से किस विषय को अपनाने। तब इसने पैसा उछाल कर निर्णय किया।

स्मिथ न विवाह नहीं किया। १८५० में यह बेलियल कॉलेज का अधिसदस्य निर्वाचित हुआ, १८६० में ऑक्सफोर्ड में ही प्राध्यापक नियुक्त हुआ और १८६१ में रायल सोसायटी का अधिसदस्य हो गया। यह कई राजकीय आयोगों का सदस्य रहा और कई वर्ष आनु विज्ञान कार्यालय (Meteorological Office) का अध्यक्ष रहा।

स्मिथ ने आरम्भ में कई अभिप्राय ज्यामिति पर लिखे। तत्पश्चात् इसने सत्या सिद्धान्त पर कार्यारम्भ किया। इसका गवेषणा कार्य ब्रिटिश एसोसिएशन (British Association) के १८५९-६५ के अका में छपा है। इसके सांख्यिक सूत्रों की दो विशिष्ट दशाएँ उल्लेखनीय हैं—किसी सत्या का पाँच अथवा सात वर्गों के योग के

रूप में निरूपण। द्विचर और त्रिचर रूपों (Binary and Ternary Forms) पर भी इसका कार्य महत्त्वपूर्ण रहा है। १८९४ में ग्लैशर (Glaisher) ने इसकी कृतियों का संग्रह प्रकाशित किया है।

रिचर्ड डेडीकाइण्ड (Richard Dedekind) (१८३१-१९१६) का जन्म ब्रन्सविक (Brunswick) में हुआ था। सोलह वर्ष की अवस्था तक इसने अपने जन्मस्थान में ही शिक्षा पायी। उस समय तक इसकी रुचि भौतिकी और रसायन में अधिक थी। सत्रहवें वर्ष जब यह कॉलज में प्रविष्ट हुआ तब इसने वैश्लेषिक ज्यामिति, कलन, बीजगणित आदि का अध्ययन आरम्भ किया। उन्नीस वर्ष की अवस्था में यह गटिंगन विश्वविद्यालय में भर्ती हुआ और गाउस, स्टर्न (Stern) (१८०७-९४) और वेबर (Weber) (१८४२-१९१३) के संसर्ग में आया। १८५२ में इसने गाउस की देख-रेख में डाक्टर की उपाधि पायी। इसके प्रबन्ध का विषय था—**ऑयलरी समाकल (Eulerian Integrals)**।

१८५४ में डेडीकाइण्ड गटिंगन में व्याख्याता (Lecture) नियुक्त हो गया। उक्त पद पर यह चार वर्ष रहा। उन्हीं दिनों इसकी मित्रता रोमान से हुई और वहीं पर यह डिरिचले के सम्पर्क में आया। १८५७ में यह जूरिच में प्राध्यापक नियुक्त हुआ और १८६२ में ब्रन्सविक की एक संस्था में प्रोफ़ेसर हो गया। उक्त स्थान पर यह लगभग पचास वर्ष रहा।

डेडीकाइण्ड जीवन भर अविवाहित रहा। इसकी बहन जूली (Julie) इसके साथ रहती थी। यह पचासी वर्ष की अवस्था तक जीवित रहा। इसकी व्याप्ति इसके जीवन काल में ही चारों ओर फैल गयी थी। मृत्यु से १२ वर्ष पूर्व 'गणितज्ञों के तिथिपत्र' (Calendar for Mathematicians) में यह समाचार छपा कि '४ सितम्बर १८९९ को डेडीकाइण्ड का देहान्त हो गया।' डेडीकाइण्ड ने यह समाचार पढ़कर पत्रिका के सम्पादक को लिखा कि 'तिथि कदाचित् ठीक निकले किन्तु वर्ष तो निश्चय ही गलत है। अपनी दैनिकी (Diary) के अनुसार तो मैं उस दिन पूर्णतया स्वस्थ था और अपने सम्मानित मित्र और अतिथि जॉर्ज कैंटर (Georg Cantor) से 'पद्धति और सिद्धान्त' पर घुल-घुल कर बातें कर रहा था।'।

यों तो डेडीकाइण्ड ने बहुत से अभिपत्र लिखे हैं किन्तु इसके दो ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हुए हैं जिनके विषय 'अपरिमेय संख्याएँ' (Irrational Numbers) और 'आदर्श संख्याएँ' (Ideal Numbers) थे। इसने डिरिचले के गवेषणा कार्य का सम्पादन किया और रोमान के संग्रह की प्रस्तावना (१८७६) भी लिखी।

इस छोटे से प्रश्न से स्थानिकी (Topology) का आरम्भ ।
रीमान ने इस विषय का बहुत विकास किया और इसके सिद्धान्त का कलन
पर प्रयोग किया । आज यह विषय इतना विवक्षित हो चुका है कि इस
विश्वास बरना बख़्त है कि इसका श्रीगणेश इतनी छोटी सी बात से हुआ ।

(५) रीमानी ज्यामिति (Riemannian Geometry)—हम साधारण
द्वैविम (Two-dimensional) और त्रैविम (Three-dimensional)
का अध्ययन करते हैं । रीमान ने ऐसे आकाश की कल्पना की है जिसमें स
(Dimensions) हों । ऐसे आकाश में प्रत्येक बिन्दु के निर्देशांक (Co-
ordinates) का कुलक इस प्रकार का होगा—

$$x_1, y_1, z_1, \dots, x_n, y_n, z_n, \dots$$

गाउस के आभास में दो प्राचल (Parameters) थे । रीमान ने उक्त सर्व
का मार्बोकरण किया है ।

(६) रीमानी वक्रता प्रविज्ञ—(Riemann Curvature Tensor)
हैनरी जॉन स्टीफ़ेन स्मिथ (Henry John Stephen Smith) (१८२६-
काई नामी गणितज्ञ नहीं था किन्तु बहुत ही प्रतिभावान् था । इसका जन्म डबलि
हुआ था । जब यह दो वर्ष का था, इसके पिता का स्वर्णवास हो गया और इसकी म
इसे लेकर इंग्लैंड जा गयी । १८४१ में यह रग्बी (Rugby) के एक स्कूल में प्र
हुआ । १८४४ में इसने ऑक्फ़र्ड के बेलियल (Balliol) कॉलेज में न
लिखाया । उन्हीं दिना इसने एक चक्कर यूरोप का लगाया । १८४९ में इ
आक्स्फ़ोर्ड में उच्चतम सम्मान प्राप्त किया । एक लोकोक्ति है कि यह प्राच्य भाषा
और गणित दोनों में सर्व प्रथम हुआ था, अतः निश्चय नही कर पा रहा था कि इन
से किस विषय को अपनाये । तब इसने पैसा उछाल कर निगय किया ।

स्मिथ ने विवाह नहीं किया । १८५० में यह बेलियल कॉलेज का अधिसदस्य
निर्वाचित हुआ, १८६० में ऑक्स्फ़ोर्ड में ही प्राध्यापक नियुक्त हुआ और १८६१ म
रॉयल सोसायटी का अधिसदस्य हो गया । यह कई राजकीय आयागो का सदस्य रहा और
कई वर्ष ऋतु विज्ञान कार्यालय (Meteorological Office) का अध्यक्ष रहा ।

स्मिथ ने आरम्भ में कई अभिपन्न ज्यामिति पर लिखे । तत्पश्चात् इसने सम्या
सिद्धांत पर कार्यारम्भ किया । इसका गवेषणा कार्य ब्रिटिश एसोसियेशन (British
Association) के १८५९-६५ के अका में छपा है । इसके साविक मूत्रों की दो

रूप में निरूपण। द्विचर और त्रिचर रूपों (Binary and Ternary Forms) पर भी इसका कार्य महत्त्वपूर्ण रहा है। १८९४ में ग्लेशर (Glaisher) ने इसकी कृतियों का संग्रह प्रकाशित किया है।

रिचर्ड डेडीकाइण्ड (Richard Dedekind) (१८३१-१९१६) का जन्म ब्रुन्सविक (Brunswick) में हुआ था। सोलह वर्ष की अवस्था तक इसने अपने जन्मस्थान में ही शिक्षा पायी। उस समय तक इसकी रुचि भौतिकी और रसायन में अधिक थी। सत्रहवें वर्ष जब यह कॉलिज में प्रविष्ट हुआ तब इसने वैश्लेषिक ज्यामिति, कलन, बीजगणित आदि का अध्ययन आरम्भ किया। उन्नीस वर्ष की अवस्था में यह गटिंगन विश्वविद्यालय में भर्ती हुआ और गाउस, स्टर्न (Stern) (१८०७-९४) और वेबर (Weber) (१८४२-१९१३) के संसर्ग में आया। १८५२ में इसने गाउस की देख-रेख में डाक्टर की उपाधि पायी। इसके प्रबन्ध का विषय था—ऑयलरी समाकल (Eulerian Integrals)।

१८५४ में डेडीकाइण्ड गटिंगन में व्याख्याता (Lecture) नियुक्त हो गया। उक्त पद पर यह चार वर्ष रहा। उन्हीं दिनों इसकी मित्रता रीमान से हुई और वहीं पर यह डिरिचले के सम्पर्क में आया। १८५७ में यह जूरिच में प्राध्यापक नियुक्त हुआ और १८६२ में ब्रुन्सविक की एक संस्था में प्रोफ़ेसर हो गया। उक्त स्थान पर यह लगभग पचास वर्ष रहा।

डेडीकाइण्ड जीवन भर अविवाहित रहा। इसकी बहन जूली (Julie) इसके साथ रहती थी। यह पिचासी वर्ष की अवस्था तक जीवित रहा। इसकी ख्याति इसके जीवन काल में ही चारों ओर फैल गयी थी। मृत्यु से १२ वर्ष पूर्व 'गणितज्ञों के तिथिपत्र' (Calendar for Mathematicians) में यह समाचार छपा कि '४ सितम्बर १८९९ को डेडीकाइण्ड का देहान्त हो गया।' डेडीकाइण्ड ने यह समाचार पढ़कर पत्रिका के सम्पादक को लिखा कि 'तिथि कदाचित् ठीक निकले किन्तु वर्ष तो निश्चय ही गलत है। अपनी दैनिकी (Diary) के अनुसार तो मैं उस दिन पूर्णतया स्वस्थ था और अपने सम्मानित मित्र और अतिथि जॉर्ज कैंटर (Georg Cantor) से 'पद्धति और सिद्धान्त' पर घुल-घुल कर बातें कर रहा था।'।

यों तो डेडीकाइण्ड ने बहुत से अभिपत्र लिखे हैं किन्तु इसके दो ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हुए हैं जिनके विषय 'अपरिमेय संख्याएँ' (Irrational Numbers) और 'आदर्श संख्याएँ' (Ideal Numbers) थे। इसने डिरिचले के गवेषणा कार्य का सम्पादन किया और रीमान के संग्रह की प्रस्तावना (१८७६) भी लिखी।

डिडोनाइण्ड की मूलभूत गणितशास्त्र में से एक इनका अरिमेय संख्या सिद्धांत है जो आसानी से कुछ गणित के प्रत्येक विद्यार्थी को हृदयंगम करना होता है। गिडाल का आधार एक युक्ति है जिसे डिडोनाइण्ड काट (Dedekind cut) कहा है। हम यहाँ उक्त गिडाल का बहुत ही सरल भाषा में दिग्दर्शन करते हैं जो संख्या त्रिमी मिश्र

$$\frac{p}{q}$$

के रूप में निरूपित हो गये, उमेपरिमेय संख्या (Rational Number) कहते हैं जो हम प्रसार निरूपित न हो गये, उमे अरिमेय संख्या कहते हैं। त्रिमेय भी दशमलव मिश्र (Terminating Decimal Fractions) और आवर्तमान दशमलव मिश्र (Recurring Decimal Fractions) हैं, सब सामान्य मिश्र के रूपमें प्रदर्शित किये जा सकते हैं, अतः सब परिमेय संख्याएँ हैं, जैसे—

$$५.७५ = \frac{२३}{४}$$

$$३.१\bar{७} = \frac{१५७}{४९५}$$

चिन्तु $\sqrt{७}$ अथवा $\sqrt{११}$ को हम किसी साधारण मिश्र (Vulgar Fraction) के रूप में निरूपित कर ही नहीं सकते। सब प्रष्टिए तो हम ऐसी सख्याओं का ठीक ठीक मान निकाल ही नहीं सकते। किसी भी दशमलव स्थान तक इन संख्याओं का निश्चित मान निकाला जा सकता है किन्तु इनका संपूर्ण मान निकालना असंभव है।

अब स्कूल में विद्यार्थी सरणियाँ (Surds) का परिचय सीखता है तो मान लेता है कि

$$\sqrt{३ \times ५} = \sqrt{१५}$$

यहाँ तक तो ठीक है। किन्तु उसे यह भी मानना पड़ता है कि

$$\sqrt{३ \times ५} = \sqrt{३} \times \sqrt{५} \quad (\text{अ})$$

अन्यथा वह यह सिद्ध नहीं कर सकता कि

$$\sqrt{३} \times \sqrt{५} = \sqrt{१५}$$

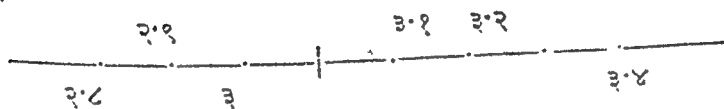
किन्तु (अ) को सिद्ध करने का उसके पास कोई साधन नहीं है क्योंकि उक्त

निकाला जा सकता है। अतः यह प्रश्न हमारे सम्मुख उपस्थित होता है कि "यह अपरिमेय संख्याएँ वास्तव में हैं किस प्रकार की?" डेडीकाइण्ड ने इसी प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया है।

पहले एक परिमेय संख्या $\sqrt{9}$ लीजिए। समस्त परिमेय संख्याओं को दो श्रेणियों में विभक्त कीजिए : बायीं और दायीं। दायीं श्रेणी में उन समस्त परिमेय संख्याओं को रखिए जिनका वर्ग ९ से बड़ा है। बायीं श्रेणी में शेष समस्त परिमेय संख्याओं को रखिए।

बा

दा



हम यह मान लेते हैं कि बायीं श्रेणी की प्रत्येक संख्या दायीं श्रेणी की प्रत्येक संख्या से छोटी होगी।

उपरिलिखित वर्गीकरण में बायीं श्रेणी में एक महत्तम संख्या ३ होगी और दायीं श्रेणी में कोई लघुतम संख्या नहीं होगी। इस काट को हम संख्या $\sqrt{9}$ अथवा ३ का डेडीकाइण्ड काट कहते हैं।

इसी प्रकार हम एक ऐसा वर्गीकरण कर सकते हैं जिसकी बायीं श्रेणी में कोई महत्तम संख्या न हो किन्तु दायीं श्रेणी में एक लघुतम संख्या हो। हम यहाँ $2/3$ का संगत वर्गीकरण देते हैं—

बा

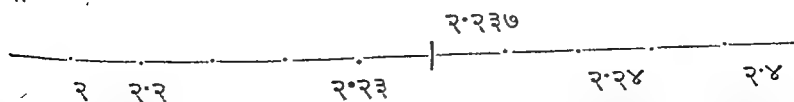
दा



अब तनिक $\sqrt{5}$ के संगत काट पर विचार कीजिए।

बा

दा



हम दायीं श्रेणी में ऐसी समस्त परिमेय संख्याएँ रखते हैं जिनके वर्ग ५ से अधिक हैं। और बायीं श्रेणी में शेष समस्त परिमेय संख्याओं को रखते हैं। स्पष्ट है कि इस वर्गीकरण में न तो दायीं श्रेणी में कोई लघुतम संख्या होगी, न बायीं श्रेणी में कोई

महत्तम सरया । ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों श्रेणियाँ एक दूसरे की ओर दौड़ रही हैं किन्तु बीच में कहीं पर टूट आ पड़ती है जिसके कारण मिल नहीं पाती । इसीलिए इसे 'वाट' की सज़ा दी गयी है । डेडोवाइण्ड का यह सिद्धान्त है कि जहाँ कहीं ऐसा वर्गीकरण आयेगा कि बायीं श्रेणी में कोई महत्तम सरया न हो और दायीं श्रेणी में कोई लघुतम सरया न हो, वही एक अपरिमित सख्या का सर्जन हो जायगा ।

उचित हागा कि यहाँ हम दो शब्द पुम्स के विषय में भी कहन चलें । लॅज़रस पुम्स (Lazarus Fuchs) (१८३३-१९०२) एक जर्मन गणितज्ञ था । इसका जन्म पोसैन (Posen) के पास मोसिन (Moschun) में हुआ था । यह क्रमग प्राइसवालड (Greifswald), गटिंगन, हीडेलबर्ग और बर्लिन में प्राध्यापक नियुक्त हुआ । प्रारम्भ में इसने सरया सिद्धान्त और उच्च ज्यामिति में परिश्रम किया किन्तु इसका सबसे बढ़िया काम एकघात अवकल समीकरणों में हुआ है । उस समय तक अवकल समीकरणों के हल के लिए विभिन्न गणितज्ञ दो विधियाँ प्रयुक्त करते थे । एक विधि घात श्रेणी वाली विधि थी जिससे सीमा कलन की सहायता से कौंसी अस्तित्व प्रमेय (Existence Theorems) निकाला करता था । दूसरी विधि में उत्तरोत्तर उपनयन (Successive Approximations) निकाले जाते थे । पुम्स ने इन दोनों विधियों को मिला दिया था और इस प्रकार एकघात अवकल समीकरणों के एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन कर दिया था ।

कॅण्टर (१८४५-१९१८) का बड़ा लम्बा चौड़ा नाम था—जार्ज फर्डिनेण्ड लुडविग फिलिप कॅण्टर (Georg Ferdinand Ludwig Philipp Cantor) । इसकी राष्ट्रीयता का निर्धारण भी एक दुस्तर काम है । इसके पिता एक यहूदी थे जिनका जन्म डेन्मार्क (Denmark) में हुआ था । किन्तु युवावस्था में ही वह डेन्मार्क छोड़ कर रुम चले गये थे । जब कॅण्टर भी बर्ष का था तभी इसके पिताजी सारे परिवार को लेकर जर्मनी के फ्रैंकफर्ट (Frankfurt) नगर में आ बसे थे । अतः कॅण्टर के लालन पालन में कई राष्ट्रा का सहयोग था किन्तु यह स्वयं अपने आपसे जर्मन ही कहा करता था ।

कॅण्टर की माँ की प्रकृति कलात्मक थी जो उसे पुरस्का से प्राप्त हुई थी । उसके एक बाबा संगीत निदेशक थे, उनका एक भाई वायलिन का विशेषज्ञ था, एक भाई संगीतज्ञ था और एक भतीजी चित्रकार थी । स्वयं कॅण्टर का भाई प्यानो बजाना था और वहन परिष्पक (Designer) थी । अतः कॅण्टर के रक्त में भी कला के जीवाणु विद्यमान थे । किन्तु कॅण्टर के जीवन में उनका प्रस्फुटन गणित और दर्शन में ही हुआ ।

कॅण्टर की आरम्भिक शिक्षा एक निजी शिक्षक द्वारा हुई । गण्यमान कुछ वर्षों
यह पेंसिलवार्ड और प्रोक्टर् के स्कूलों में पढ़ा । गणित में इसे बचपन में ही रुचि थी
किन्तु इसके पिता की यह उम्मीदवादी भी कि यह उद्योगिक बनने । कॅण्टर ने पिता के



चित्र १०९—कॅण्टर (१८४५—१९१८)

[होवर पब्लिकेशंस, इन्वॉपेरिटेड, न्यूयॉर्क—१०, की अनुज्ञा से, टी० एड्. इकट्टर 'ए कॉन्स्टांज
हिस्ट्री ऑफ मैथिमेंटिक्स' (१.७५ डालर) से प्रत्युत्पादित ।]
आग्रह के आगे गरदन झुका दी । किन्तु शीघ्र ही इसके पिता को पता चल गया कि इस
प्रकार तो पुत्र की प्रतिभा ही नष्ट हो जायगी । सत्रह वर्ष की अवस्था में जब कॅण्टर
ने स्कूल का पाठ्यक्रम समाप्त किया और उसमें विशेषता प्राप्त की तो पिता ने लिखा

कि “अब यदि तुम चाहो तो विश्वविद्यालय में प्रवेश लेकर उच्च गणित का अध्ययन कर सकते हो।” अस्तु कॅण्टर ने १८६२ में जूरिच विश्वविद्यालय में नाम लिखा किन्तु एक वर्ष पश्चात् ही इसके पिता का स्वर्गवास हो गया और इसे जूरिच छोड़कर बर्लिन आना पड़ा। बर्लिन में इसने गणित, दर्शन और भौतिकी का अध्ययन किया। गणित में इसके शिक्षक कुमर, वीस्ट्रॉम और क्रॉनैकर थे। उस दिन इस क्या पता था कि भविष्य में इसका क्रॉनैकर से ही विद्योचित युद्ध छिड़ जायगा।

१८६७ में कॅण्टर ने पीएच० डी० की उपाधि प्राप्त की। इसके प्रबन्ध का विषय अनिर्णीत समीकरण

$$x^2 + x + 1 = 0$$

था। तत्पश्चात् कॅण्टर ने सख्या सिद्धान्त और फूरियर श्रेणी में परिधम कला आरम्भ किया। किन्तु इस कार्य में इसने कोई विलक्षण प्रतिभा नहीं दिखायी। इसकी मेधा ने गणितीय जगत् का ध्यान तब आकृष्ट किया जब तीस वर्ष की अवस्था में इसने ‘अनन्त कुलको’ (Infinite Sets) पर अपना पहला अभिपत्र प्रकाशित किया। उसे पढ़ते ही लोगो ने समझा कि गणितीय क्षेत्र में एक नया अक्षुर फूट रहा है जो किसी दिन एक विशाल वृक्ष बन जायगा।

१८६९ में कॅण्टर हाल (Halle) विश्वविद्यालय में व्याख्याता नियुक्त हुआ, १८७२ में सहायक प्राध्यापक और १८७९ में प्राध्यापक। १८७४ में इसका गुण-प्रवर्णक अभिपत्र छप चुका था। उक्त अभिपत्र में इसने बीजगणितीय सख्याओं के एक गुण का प्रतिपादन किया था जो आरम्भ विरोधी दिखाई पड़ता था। कॅण्टर ने यह सिद्ध किया था कि समस्त बीजगणितीय समस्याओं में उतने ही सदस्य होते हैं जितने प्राकृतिक संख्याओं में।

१, २, ३,

म। यह उक्ति बहुत ही आश्चर्यजनक थी क्योंकि प्राकृतिक संख्याओं का कुल तो बीजगणितीय समस्याओं के कुल का एक उपकुल (sub-set) ही है।

कॅण्टर के सिद्धान्त का क्रॉनैकर ने डटकर विरोध किया। यह विवाद इतना बढ़ा कि नतीजतन कॅण्टर इसके कारण बड़ा दुःखी हो जाता था। इसके साथियों में उडोवाइण्ड ही ऐसा था जो इस घोरज बँधेया करता था। यहाँ कॅण्टर के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने का तो अवकाश नहीं है। यहाँ हम केवल उनकी एक शक्ति दिखाने हैं। मान लीजिए कि हम दो समस्या कुल लेते हैं—

(३ ४ ५ ६ ७ ८ ९) और (२ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९) (५)

सरलता से हम इन दोनों कुलकों की तुलना कर सकते हैं । हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि दूसरे कुलक की संख्याओं की संख्या पहले कुलक की संख्याओं की संख्या से बड़ी है । और इनमें से प्रत्येक कुलक में एक प्रथम पद है और एक अन्तिम पद । किन्तु अब तनिक इन कुलकों पर विचार कीजिए—

(१, ३, ५, ७,) और (२, ४, ६, ८,) (खा)

हम उपरिलिखित उक्तियाँ इन दोनों कुलकों के विषय में नहीं दे सकते । इनमें से प्रत्येक कुलक में एक प्रथम पद है किन्तु कोई अन्तिम पद नहीं है । हम यह नहीं कह सकते कि प्रथम कुलक में दूसरे कुलक से अधिक संख्याएँ हैं । न हम यह कह सकते हैं कि उससे कम संख्याएँ हैं । तो क्या हम यह कह सकते हैं कि दोनों में संख्याओं की संख्या समान है ? यह कहने में भी हमें संकोच होगा, क्योंकि हम गिनकर दोनों की संख्याओं की समानता सिद्ध नहीं कर सकते ।

ऐसे कुलकों को हम 'अनन्त वर्ग' (Infinite Classes) कहते हैं । ऐसे किसी भी कुलक में पदों की संख्या अन्तहीन (endless) होती है । हम किसी भी सान्त कुलक (Finite Set) के विषय में कह सकते हैं कि उसमें कितने पद हैं । किन्तु किसी भी अनन्त कुलक के विषय में इस प्रश्न का ठीक ठीक उत्तर नहीं दिया जा सकता—उक्त कुलक में कितने पद हैं ? दो अनन्त वर्गों की तुलना करना भी सरल नहीं है ।

एक बात और भी है । यदि हम (का) के दूसरे कुलक में से एक पद निकाल लें, तो सात पद रह जायेंगे । यदि दो पद निकाल लें तो ६ पद रह जायेंगे । किन्तु यदि हम (खा) के किसी कुलक में से एक या दो पद निकाल लें तो कितने पद रह जायेंगे ? अनन्त । यदि हम दस, बीस, सौ अथवा हजार पद भी निकाल लें तो भी शेष पदों की संख्या अनन्त ही रहेगी । इतना ही नहीं । मान लीजिए कि हम प्राकृतिक संख्याओं के कुलक

१, २, ३, ४, ५, ६, ७, (i)

में से समस्त सम संख्याएँ
२, ४, ६, ८, (ii)

निकाल लें, तो कितनी प्राकृतिक संख्याएँ बच रहेंगी ? अनन्त ।

यदि हम सम संख्याओं के बदले केवल ६ के अपवर्त्य निकाल लें—
६, १२, १८, २४, (iii)

तो (i) में कितनी संख्याएँ बच रहेंगी ? वही अनन्त !

यदि हम मक्षिप्त भाषा का प्रयोग करें तो कहेंगे कि 'अनन्त में से अनन्त निरालने पर शेष भी अनन्त रहता है।'

यह कोई नया विचार नहीं है। ईगोपनिषद् में एव इति आता है—

ओम् पूर्णं अद पूर्णं इद, पूर्णान् पूर्णं उदच्यते ।

पूर्णस्य पूर्णं आदाय, पूर्णं एवावशिष्यते ॥

भावार्थ, यदि हम पूर्ण में से पूर्ण घटावें तो शेष भी पूर्ण ही रहता है।

कुछ लोग अवतारवाद में विश्वास नहीं करते। वे कहते हैं कि 'कृष्णजी १६ जला के अवतार थे, अर्थात् उनमें पूर्ण रूप से ईश्वरत्व विद्यमान था।' अब, प्रश्न यह है कि जब कृष्णजी इस लोक में मनुष्य रूप में जीवित थे, तब ईश्वर कहाँ था। सम्पूर्ण ईश्वरत्व तो कृष्ण में ही समाया हुआ था। अतः ईश्वरत्व का लोप हो गया था। ऐसे व्यक्ति ईश्वरत्व, पूर्णत्व और अनन्तता का अर्थ ही नहीं समझते। यदि ईश्वर के समस्त गुण लेकर एक नयी सत्ता का निर्माण कर लिया जाय तो भी ईश्वर के समस्त गुण ईश्वर में अभ्युन्न वने रहेंगे। यदि एक दिये से हजार दिये जला दिये जायें तो भी उस दिये की ज्योति में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

कॅण्टर ने अनन्त वर्गों की तुलना का एक उपाय निकाला है। यदि दो वर्गों में एक-एक-संगति (One-one correspondence) बिठायी जा सके तो दोनों वर्ग तुल्य (Equivalent) कहलायेंगे। उपरिलिखित तीनों वर्ग तुल्य हैं। (1) और (III) पर विचार कीजिए। (1) के प्रत्येक पद का ६ गुना एक ही संख्या होगी जो (III) में विद्यमान होगी, जैसे ५ का छ गुना ३०, ७ का छ गुना ४२, ३० और ४२—दोनों संख्याएँ (III) में वही न वही अवश्य आयेंगी।

इसी प्रकार (III) के किसी भी पद के ३ की संख्या कही न कही (1) में आवेगी ही।

अतः (1) के प्रत्येक पद की संगति (III) के एक पद से बिठायी जा सकती है। और (III) के प्रत्येक पद की संगति (1) के एक पद से बिठायी जा सकती है।

अतएव (1) और (III) तुल्य हैं। अर्थात् एक पूर्ण सत्ता (A whole) अपने एक भाग (Part) के तुल्य है। कॅण्टर के सिद्धान्त में यही विरोधाभास दिखाई पड़ता है जिस पर कॅनेकर ने आक्रमण किया था।

इस यज्ञ की पूर्णाहुति हम पॉइन्कारे से करेंगे। कहते हैं कि जब जॉर्ज बर्नार्ड शॉ (George Bernard Shaw) मराठवासांधी में मिल कर लौटे थे तो उनके एक मित्र

ने उनसे पूछा था कि, 'कहो, महात्मा के विषय में नुस्खा क्या विचार है?' गाँ ने उत्तर दिया, 'पहले मुझे होश में आ लेने दो ! वह मनुष्य नहीं है, एक चलना फिरता जादू है !

छोटे पैमाने पर कुछ इसी ढंग का अनुभव सिल्वेस्टर को हुआ था जब वह पॉएँन्कारे से मिलने गया था । पॉएँन्कारे की कृतियाँ की संख्या इतनी अधिक थी और वह इतनी उच्च कोटि की थी कि सिल्वेस्टर ने मन में धारणा बना ली थी कि पॉएँन्कारे कोई बाढ़ी वाला प्राँट अथवा वृद्ध होगा । वह तीन जीने चढ़कर पॉएँन्कारे से मिलने गया । जब उसे देखा तो हक्का बक्का रह गया । उसे तो पॉएँन्कारे एक लड़का सा दिखाई पड़ा जिसने अभी गणितीय जीवन में पदार्पण ही किया हो । दो तीन मिनट तक वह मुँह बाँधे खड़ा रहा और उसके मुँह ने एक शब्द भी नहीं निकला मानों उसने संसार का आठवाँ अचम्भा देखा हो !

हेनरी पॉएँन्कारे (Henri Poincaré) (१८५४-१९१२) का जन्म नॅन्सी (Nancy) में हुआ था । इसके कोई भाई नहीं था । केवल एक बहन थी । इनकी माँ बहुत मेधावी और फुर्तीली थी । उसने बड़ी तन्मयता से बच्चों का लालन पालन किया था । बचपन में न पॉएँन्कारे की बोली साफ़ थी, न यह ढंग से लिख सकता था, यद्यपि यह दोनों हाथों से लिखा करता था । पाँच वर्ष की अवस्था में ही इसे रोग ने चाँप दिया और जीवन भर के लिए इसे दुर्बल बना दिया ।

पॉएँन्कारे की स्मरण शक्ति बड़ी विलक्षण थी । एक बार जिस पुस्तक को पढ़ लेता था, वह प्रायः कण्ठस्थ हो जाती थी । इसे यह भी याद रहता था कि अमुक वाक्य पुस्तक के किस पृष्ठ की किस पंक्ति में आया है । इसकी आँखें कमजोर थीं । यह अपनी श्रवण शक्ति से ही काम लिया करता था । कक्षा में पिछाड़ी बैठा करता था । श्याम पट्ट पर जो लिखा रहता था, वह तो यह पढ़ नहीं पाता था । किन्तु जैसे जैसे अध्यापक बोलता जाता था वैसे वैसे यह याद करता जाता था । यह कक्षा में कभी लिखा नहीं करता था किन्तु एक बार सुनने से ही इसे सारा व्याख्यान याद हो जाता था ।

पॉएँन्कारे बड़ा भुलक्कड़ और असामाजिक था । जिस होटल में यह ठहरता था, कभी कभी उसकी तौलिया और चादरें अपने सन्दूक में रख लिया करता था । जब कभी इसे किसी गणितीय प्रश्न पर विचार करना होता था, यह घण्टों कमरे में टहल टहल कर उस पर मनन किया करता था । एक बार फ़िन्लैण्ड (Finland) का एक गणितज्ञ इससे मिलने पेरिस आया । नौकरानी ने उसके आने की सूचना

पाएँ-कारे को दी गिन्तु यह बराबर आगे बचने में टहलना भी रहा। आपनुव बँक में हमारी बात देगना रहा। तीन घण्ट पन्चान पाएँ-कारे न बँक में साँवर रहा कि आप मेरे काम में बिघ्न डाल रहे हैं। इतना मुन्ने ही गणिता उतर चला गया।



चित्र ११०—पाएँ-कारे (१८५४-१९१२)

[नेवर पब्लिकेशंस इन्सपिरिटेड ब्रूयर्स—१० की अनुशा से डी० एडुइक इत प कान्स्टाबल दिरनी ब्राक मेथेमेटिक्स (१७५ डालर) से प्रलुप्त।]

यह था पाएँ-कारे का गिष्टाचार। ओर ऐसे व्यक्ति से क्या आशा की जा सकती है जो बहुत बार भोजन करना ही मत्त जाता था।

अध्याय ८

गणित के इतिहासज्ञ

(१) आदि काल

तो तो जब कभी कोई इतिहासकार किसी देश की सभ्यता और संस्कृति का लिखता है, यदि उस देश का गणितीय कार्य श्लाघनीय होता है, तो उसका भी करता ही है। किन्तु यहाँ हमारा तात्पर्य केवल उन इतिहासज्ञों से है विगोप रूप से गणित का ही इतिहास लिखा है। साधारणतः कोई गणितज्ञ ही इतिहास लिखेगा, किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि कोई गणित का इतिहासज्ञ न गणितज्ञ ही हो। इसके विपरीत बहुधा यह देखा जाता है कि किसी देश के गणितज्ञ इतिहास में रुचि नहीं लेते, और जो गणितज्ञ इतिहास लिखने में होते हैं, गणित को उनकी देन नगण्य रहती है।

र में गणित के इतिहासज्ञों में सर्व प्रथम कौन था, यह कहना कठिन है। खित अभिलेखों से तो ऐसा प्रतीत होता है कि सबसे पहला इतिहास लेखक (Geminus) था। यह ईजियन सागर (Aegian Sea) के र्होड्स (Rhodes) नामक टापू का निवासी था और इसका जीवन काल ७७ ई० पू० के था। इसकी एक ही पुस्तक प्राप्य है—फ़ेनॉमैना (Phenomena) ज्ञान सबसे पहले ग्रीक और लैटिन में १५९० में हुआ था। इसने गणित को में विभाजित किया था—

शुद्ध गणित—अंकगणित और ज्यामिति।

प्रयोजित गणित—ज्यामिति, यान्त्रिकी, चालुपी, भूमिति आदि।

समय का एक अन्य नाम उल्लेखनीय है : डायोडोरस (Diodorus) सेमिली का निवासी था और इसका जीवन काल ईसवी शताब्दी से सुरुज्ज इसने इतिहास पर चालीस पुस्तकें लिखी हैं। इसकी शैली मजे की हो किन्तु उससे उक्त काल के गणित पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

यों के पश्चात् वाल्टर बर्ले (Walter Burley) का नाम आता है।

काल का ठीक ठीक पता नहीं है। इतना ज्ञात है कि इसका जन्म

पाँएँकारे को दी किन्तु यह बराबर अपने कमरे में टहलता ही रहा। आगन्तुक बैठक में इसकी वाट देखता रहा। तीन घण्टे पश्चात् पाँएँकारे ने बैठक में झाँककर कहा कि "आप मेरे काम में विघ्न डाल रहे हैं।" इतना मुनते ही गणितज्ञ उठकर चला गया।



चित्र ११०—पाँएँकारे (१८५४-१९१२)

[डोवर पब्लिकेशन, इन्फॉर्मिडेंट, न्यूयॉर्क—१०, की अनुशा से, डी० स्ट्रुट्ट फ़न 'ए कॉन्सार्च हिस्ट्री ऑफ़ मैथेमेटिक्स' (१७५ बालर) से प्रत्युद्धित ।]

यह था पाँएँकारे का शिष्टाचार । और ऐसे व्यक्ति से क्या आशा की जा सकती है जो बहुत बार मोजन करना ही भूल जाता था ।

वचपन में पॉएँन्कारे को प्राकृतिक इतिहास से रुचि थी। जीवन में एक ही बार इसने राइफ़िल चलायी और एक ऐसी चिड़िया मार गिरायी जो इसका लक्ष्य नहीं थी। तब से इसने, अनिवार्य सैनिक शिक्षा छोड़कर, राइफ़िल को हाथ नहीं लगाया।

गणित का शौक पॉएँन्कारे को पन्द्रह वर्ष की अवस्था से हुआ। यह अविकतर गणितीय समस्याएँ मन में ही हल कर लिया करता था। और जब समस्या का पूर्ण-रूप से साधन हो जाता था तभी उसे लिखित रूप देता था। सत्रह वर्ष की अवस्था में यह स्नातक हुआ, किन्तु गणित में इसे बहुत ही निम्न स्थान मिला। परन्तु जब यह वनविद्या (Forestry) की प्रवेशिका परीक्षा में बैठा तो बिना किसी तैयारी के गणित में सर्व प्रथम आया। इसके पश्चात् तो इसकी गणितीय प्रतिभा प्रस्फुटित होने लगी। जब कोई इससे कठिन से कठिन प्रश्न भी पूछता था, यह तुरन्त, बिना एक क्षण की भी देर लगाये, उत्तर दे दिया करता था। और उत्तर सदैव ठीक निकलता था।

जब पॉएँन्कारे कॉलिज पहुँचा तो शारीरिक व्यायाम और रेखन (Drawing) को छोड़कर शेष सब विषयों में सर्व प्रथम आने लगा। प्रवेशिका परीक्षा में इसे रेखन में शून्य मिला। शेष सब विषयों में यह प्रथम रहा। अब प्रश्न यह था कि इसे कॉलिज में प्रविष्ट किया जाय या नहीं। परीक्षा के नियमों के अनुसार, यदि किसी का किसी विषय में शून्य आता था, तो उसका प्रवेश असम्भव था। किन्तु पॉएँन्कारे को प्रविष्ट किया गया। लोगों का अनुमान है कि कदाचित् परीक्षकों ने • के स्थान पर .०१ लिख दिया हो।

१८७५ में पॉएँन्कारे न खनिज विद्यालय (School of Mines) में प्रवेश लिया। तीन वर्ष पश्चात् इसने अवकल समीकरणों पर एक प्रबन्ध लिखा। डारबो (Darboux) उसका परीक्षक था। इसने कहा कि 'यद्यपि प्रबन्ध में इधर उधर कुछ त्रुटियाँ हैं, तथापि इस प्रबन्ध से कई अन्य प्रबन्ध तैयार किये जा सकते हैं।' कह सकते हैं कि पॉएँन्कारे का गणितीय कार्य इसी प्रबन्ध से आरम्भ हुआ। अब तक यह तो इसकी समझ में आ चुका था कि इसे इन्जीनियरी के क्षेत्र में जीवन नहीं बिताना है। १८७९ में यह केन (Caen) में गणितीय विश्लेषण का प्राध्यापक नियुक्त हुआ। १८८१ में इसकी नियुक्ति पेरिस के विश्वविद्यालय में हुई। पाँच वर्ष पश्चात् इसकी उन्नति हो गयी और यह पेरिस में ही यान्त्रिकी और प्रयोगात्मक भौतिकी (Experimental Physics) का प्रोफ़ेसर हो गया। इस प्रकार १८८६ से मृत्यु तक यह प्रायः पेरिस में ही रहा।

पॉएँन्कारे ने लगभग ३४ वर्ष गवेषणा कार्य किया। इसकी कृतियाँ का वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है—

- (१) गणित पर तीन पुस्तकें।
- (२) लगभग ५०० गणितीय अभिपत्र।
- (३) दर्जेनो लोकौपयोगी लेख और निबन्ध।
- (४) विज्ञान दर्शन पर कई पुस्तकें।

इसमें शन्देह नहीं कि पॉएँन्कारे ने इतना कार्य कर दिखाया कि आज किसी एक व्यक्ति के लिए जीवन पर्यन्त उम्र सबका अध्ययन करना भी असम्भव सा है। और इन समस्त कृतियों के विषय इनने विस्तृत ये कि गणित, ज्योतिष और सैद्धान्तिक भौतिकी की कदाचित् ही कोई शाखा छूटी हो। लोग कहते हैं कि पॉएँन्कारे आधुनिक काल का अन्तिम सर्वज्ञ (Last universalist) था जो गणित की समस्त शाखाओं का समझ था। अब तो किसी के लिए भी समस्त शाखाओं का ज्ञान होना असम्भव है।

पॉएँन्कारे के मस्तिष्क में नये विचार इतनी तीव्र गति से आते थे कि यह उन्हें सँभाल नहीं पाता था। यह एक विचार पर अभिपत्र तैयार करता था कि नये विचार इससे मस्तिष्क में खबर-बाटने लगते थे। यही कारण था कि यह अपने लेखों को कभी दुहरा ही नहीं पाता था। यदि यह अपनी कृतियों को दुहरा पाता तो उनमें से बहुतों का सङ्ग्रहण और परिष्करण हो जाता। पॉएँन्कारे के कुछ आविष्कार तो जगत् प्रसिद्ध हो गये हैं—

- (i) फुक्सी फलन (Fuchsian Functions)
- (ii) थीटा-फुक्सी फलन (Theta-Fuchsian Functions)
- (iii) फुक्सी समुदाय (Fuchsian Groups)
- (iv) क्लैमैन्स (Kleinianes)

यहाँ इन सब प्रकरणों का विवरण देने का तो अवकाश नहीं है। हम केवल पॉएँन्कारे के दीर्घवृत्तीय फलनों सम्बन्धी कार्य की झंझी दिखाते हैं।

एक चर के आवर्त फलन (Periodic Functions) का उल्लेख हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। समस्त त्रिकाणमितीय फलन आवर्त होते हैं। हम जानते हैं कि

$$\cos(z + 2\pi) = \cos z$$

अतः कोज् ल एक आवर्त फलन है जिसका आवर्तनांक २ है। अब मान लीजिए कि एक फलन $f(x)$ ऐसा है जिसके दो आवर्तनांक a_1 और a_2 हैं। तो

$$f(x+a_1) = f(x) \text{ और } f(x+a_2) = f(x)$$

ऐसे फलन को द्विकावर्त (Doubly Periodic) कहते हैं। पाँचेंकारे ने यह सिद्ध किया कि आवर्तता एक अन्य सार्विक गुण की ही विधिष्ट दशा है। गुण यह है कि कुछ फलन ऐसे होते हैं कि x के बहुत से मानों में से कोई सा एक रख देने से फलन का मान ज्यों का त्यों बना रहता है। और ऐसे मानों की संख्या अनन्त किन्तु परिगणनशील (Enumerable) होती है।

हम जितने गणितज्ञों को स्थान दे सकते थे, हमने दे दिया। अभी दसियों गणितज्ञ शेष रह गये हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में गणितीय गवेषणा कार्य का इतना विकास हो गया था कि गणितज्ञों की कोई भी सूची बनायी जाय, अवूरी ही रह जायगी। हम यहाँ थोड़े से अन्य गणितज्ञों के नाम और प्रमुख विषय देते हैं। किन्तु ऐसी सूची कभी निशेषी नहीं हो सकती।

जर्मनी

(१) जॉन फ्रैडरिक पफ (John Friedrich Pfaff) (१७६५-१८२५) — विश्लेषण, ज्यामिति, ज्यौतिष।

(२) फ्रैडरिक विलियम बैसिल (Friedrich William Bessel) (१७८४-१८४६) — भौतिकी, ज्यौतिष और फलन सिद्धान्त। बैसिल फलन (Bessel Functions) इसी के नाम से प्रसिद्ध हैं।

(३) हर्मान लुडविग फर्डिनैंड फॉन हेल्महोल्त्ज (Hermann Ludwig Ferdinand Von Helmholtz) (१८२१-९४) — अयूक्लिडी ज्यामिति।

(४) पॉल दुवॉय रेमण्ड (Paul Du Bois Reymond) (१८३१-८९) — श्रेणी अभिसरण, फूरियर श्रेणी, विचरण कलन, समाकल समीकरण।

फ्रांस

(५) जीन रॉबर्ट आर्गण्ड (Jean Robert Argand) (१७६८-१८२२) — आर्गण्ड रेखाचित्र (Argand Diagram) इसी के नाम से प्रसिद्ध है जिसमें संमिश्र राशियों का निरूपण ज्यामितीय बिन्दुओं से किया जाता है।

(६) जार्जेफ ल्युविल (Joseph Liouville) (१८०९-८३)—वर्षों उत्तम गणितीय पत्रिका का सम्पादक रहा जो आज तक इसी के नाम से प्रसिद्ध है।

(७) जार्जेफ लुई फ़ीमॉय बेंड्रण्ड (Joseph Louis Francois Bertrand) (१८२०-१९००)—सम्भाव्यता, विचरण बलन और अवकल समीकरण।

(८) ऐड्मण्ड लॉये (Edmund Laguerre) (१८३४-८६)—समीकरण सिद्धान्त।

(९) जीन गस्तन डारबौ (Jean Gaston Darboux) (१८४२-१९१७)—अवकल ज्यामिति।

अध्याय ८

गणित के इतिहासज्ञ

(१) आदि काल

यों तो जब कभी कोई इतिहासकार किसी देश की सभ्यता और संस्कृति का इतिहास लिखता है, यदि उस देश का गणितीय कार्य श्लाघनीय होता है, तो उसका उल्लेख भी करता ही है। किन्तु यहाँ हमारा तात्पर्य केवल उन इतिहासज्ञों से है जिन्होंने विशेष रूप से गणित का ही इतिहास लिखा है। साधारणतः कोई गणितज्ञ ही गणित का इतिहास लिखेगा, किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि कोई गणित का इतिहासज्ञ एक महान् गणितज्ञ ही हो। इसके विपरीत बहुधा यह देखा जाता है कि किसी देश के छोटी के गणितज्ञ इतिहास में रुचि नहीं लेते, और जो गणितज्ञ इतिहास लिखने में सिद्धहस्त होते हैं, गणित को उनकी देन नगण्य रहती है।

संसार में गणित के इतिहासज्ञों में सर्व प्रथम कौन था, यह कहना कठिन है। किन्तु लिखित अभिलेखों से तो ऐसा प्रतीत होता है कि सबसे पहला इतिहास लेखक जेमिनस (Geminus) था। यह ईजियन सागर (Aegian Sea) के र्होड्स (Rhodes) नामक टापू का निवासी था और इसका जीवन काल ७७ ई० पू० के आस पास था। इसकी एक ही पुस्तक प्राप्य है—फ़ेनोमैना (Phenomena) जिसका मुद्रण सबसे पहले ग्रीक और लैटिन में १५९० में हुआ था। इसने गणित को दो वर्गों में विभाजित किया था—

(१) शुद्ध गणित—अंकगणित और ज्यामिति।

(२) प्रयोजित गणित—ज्यामिति, यान्त्रिकी, चाक्षुषी, भूमिति आदि।

उसी समय का एक अन्य नाम उल्लेखनीय है : डायोडोरस (Diodorus) का। यह सिमिली का निवासी था और इसका जीवन काल ईसवी शती से तुरन्त पहले था। इसने इतिहास पर चालीस पुस्तकें लिखी हैं। इसकी शैली मले ही आकर्षक न हो किन्तु उससे उक्त काल के गणित पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

गताब्दियों के पश्चात् वाल्टर बर्ले (Walter Burley) का नाम आता है। इसके जीवन काल का ठीक ठीक पता नहीं है। इतना ज्ञात है कि इसका जन्म

ऑक्सफोर्ड में १२७५ ई० के आस पास हुआ था। इसने दार्शनिका और कवियों की एक जीवनी लिखी थी। उक्त पुस्तक सर्व प्रथम कव और कहीं प्रकाशित हुई यह तो पता नहीं है किन्तु इतना पता है कि उसका एक संस्करण कोलोन (Cologne) में १४६७ ई० के लगभग प्रकाशित हुआ था। यह ग्रंथ इतना लोकप्रिय हुआ कि १५०१ तक इसने चौदह संस्करण निकल गये। इस गणित का इतिहास तो नहीं कह सकते किन्तु इसमें यूनान के गणितज्ञों के जीवन चरित्र पर भी टिप्पणियाँ दी गयी थी।

(२) सोलहवीं, सत्रहवीं और अठ्ठारहवीं शताब्दियाँ

बर्नार्दिनो बाल्डी (Bernardino Baldi) (१५५३-१६१७) इटली का गणितज्ञ और विविध लेखक था। यह उर्बिना (Urbino) का निवासी था। इसकी रुचि चतुर्मुखी थी। इसके प्रिय विषय थे—गणित, भूगोल, धर्मशास्त्र इतिहास, पुरातत्त्व आदि। इसने अतिरिक्त यह कविता भी कर लेता था। सब मिला कर इसने सौ पुस्तकें लिखी जिनमें से अधिकांश अप्रकाशित ही रह गयी। इसकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक क्रोमिका (Cromica) थी जिस पर इसने बारह वर्ष परिश्रम किया। इसका विचार इसमें २०० गणितज्ञों के जीवन चरित्र देने का था। उक्त ग्रंथ का संक्षिप्त संस्करण १७०७ में उर्बिनो में प्रकाशित हुआ।

जॉन वालिस की बीजगणित की पुस्तक का उल्लेख हम एक पिछले परिच्छेद में कर चुके हैं। उक्त पुस्तक में केवल बीजगणितीय सिद्धांत ही नहीं थे, बल्कि बीजगणित सम्बन्धी बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री भी थी। यह कहने में अत्युक्ति नहीं होगी कि इंग्लैंड में गणित के इतिहास का अध्ययन इसी ग्रंथ में आरम्भ हुआ।

‘गणित का इतिहास’ नाम की पहली पुस्तक हीलब्रॉनर की जिम्मी हुई थी। इसका पूरा नाम जॉन क्रिस्टोफ हीलब्रॉनर (John Christoff Heilbronner) था। यह एक जर्मन गणितज्ञ था जिसका जीवन काल १७०६-४७ था। इसने गणित के इतिहास का आज भी महत्व है क्योंकि उसमें समस्त गणितीय पुस्तकें और हस्तलिखिता की सूची दी हुई है जो उस समय प्राप्य थी।

अब्राहम गोथेल्फ कास्नर (Abraham Gotthelf Kästner) (१७१९-१८००) भी एक जर्मन गणितज्ञ था। यह १७३९ में लाइपज़िग में और १७९६ में गॉटिंग में गणित का प्राध्यापक नियुक्त हुआ। उन दिनों गॉटिंग में गाउस एक विद्यार्थी था। कास्नर के सहयोगी इमे एक महान् गणितज्ञ और एक उच्च कोटि का कवि रामानुज थे किन्तु भला गाउस को हमने क्या सोचना था। तथ्याति कास्नर के विरुद्ध

में गाउस कहा करता था कि यह 'कवियों में पहला गणितज्ञ है और गणितज्ञों में पहला कवि।' मतलब यह कि गाउस इसका बड़ा सम्मान किया करता था।

यों तो कास्नर ने दर्जनों अभिपत्र लिखे जिनके विषय थे—समीकरण, ज्यामिति, प्रयोजित गणित आदि। किन्तु इसकी सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक इसका गणित का इतिहास थी जो चार भागों में गटिंगन से १७९६-१८०० में प्रकाशित हुई।

जीन ऐंटियेन मॉन्टूक्ला (Jean Etienne Montucla) (१७२५-१९) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। यह एक फ्रांसीसी गणितज्ञ था और लियॉन्स (Lyons) का निवासी था। १७५८ में इसने एक गुमनाम ग्रन्थ लिखा जिसका विषय था 'वृत्त वर्गण सम्बन्धी गवेषणाओं का इतिहास।' चार वर्ष पश्चात् इसने अपने गणित के इतिहास का पहला भाग प्रकाशित किया। ढंग से लिखा हुआ गणित का यह पहला ही इतिहास था। कुछ समय पश्चात् इसका दूसरा भाग भी प्रकाशित हुआ और १७९९ में दोनों भागों का दूसरा संस्करण निकल गया। १७७८ में मॉन्टूक्ला ने जैक ओजानम (Jacques Ozanam) के 'गणितीय मनोरंजन' का पुनः सम्पादन किया। यह गणितीय इतिहास का तीसरा भाग तैयार कर रहा था जिसका थोड़ा सा अंश छप भी चुका था कि इसका देहान्त हो गया। शेषांश को ज्यौतिषी जोर्जेफ़ जेरोम लः फ़्रॉय दः ललान्दे (Joseph Jérôme le Francois de Lalande) ने मुद्रित कराया। उक्त ज्यौतिषी ने तत्पश्चात् ज्यौतिष के इतिहास पर भी एक पुस्तक लिखी

चार्ल्स बोसुट (Charles Bossut) (१७३०-१८१४) भी फ्रांस का ही निवासी था। इसकी विशेष रुचि पाठ्य पुस्तकों लिखने में थी किन्तु इसने गणित के इतिहास पर भी एक पुस्तक लिखी है जो महत्वपूर्ण है। यह ग्रन्थ दो भागों में पेरिस से १८०२ में प्रकाशित हुआ था।

पीट्रो कोसाली (Pietro Cossali) का जन्म वेरोना (Verona) में और मृत्यु पडुआ (Padua) में हुई थी। इसका जीवन काल १७४८-१८१५ था। यह क्रमशः इटली के पर्मा (Parma) और पडुआ विश्वविद्यालयों में प्राध्यापक हुआ। इसकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक वीजगणित के इतिहास पर है जो पर्मा से दो भागों में १७९७ में प्रकाशित हुई।

गणित के इतिहास के सम्बन्ध में चीन के युअन युअन का नाम भी उल्लेखनीय है। इसका जीवन काल १७६४-१८४९ था। इसने गणितज्ञों और ज्यौतिषियों के जीवन चरित्र पर एक बृहत् ग्रन्थ लिखा है। पुस्तक का नाम चू जेन चुअन था और १७९९ में प्रकाशित हुई थी। चीनी गणित के इतिहास पर कदाचित् सर्वोत्तम पुस्तक यही है।

(३) उन्नीसवीं शताब्दी

आइजक टॉडहण्टर (Isaac Todhunter) (१८२०-८४) एक अंग्रेज गणितज्ञ था। इसके पिता एक पादरी थे। इसकी शिक्षा लन्दन और केम्ब्रिज में हुई। आरम्भ में तो यह पैक्हैम (Peckham) के एक स्कूल में अध्यापक हो गया। अध्यापन कार्य के साथ ही साथ यह लन्दन के यूनिवर्सिटी कॉलेज की अपराह्न की बक्षाआ में भी जाया करता था। १८४२ में यह लन्दन विश्वविद्यालय का स्नातक हुआ और दो वर्ष पश्चात् इसने केम्ब्रिज के सेण्ट जॉन्स कॉलेज में प्रवेश ले लिया। केम्ब्रिज में इसने स्मिथ पुरस्कार और बर्नी (Burney) पुरस्कार प्राप्त किये और तत्पश्चात् अपने ही कॉलेज में अधिसदस्य और व्याख्याता नियुक्त हो गया। लन्दन में यह डी मॉर्गन के सम्पर्क में आया और केम्ब्रिज में इसने पाठ्य पुस्तकें लिखनी आरम्भ की। १८६२ में यह रॉयल सोसायटी का अधिसदस्य हो गया। १८७१ में इसे एडमंस (Adams) पुरस्कार मिला और यह रॉयल सोसायटी की परिषद् का भी सदस्य बन गया।

टॉडहण्टर भाषाविद् भी था, गणितज्ञ भी। इसने गणित की विभिन्न शाखाओं पर एक दर्जन से अधिक पुस्तकें लिखीं किन्तु इसकी विशेष ख्याति इसकी इतिहास-सम्बन्धी पुस्तकों से हुई—

(१) १८६१ History of the Calculus of Variations

(२) १८६५ History of the Mathematical Theory of Probability from the time of Pascal to that of Lagrange.

(३) १८७३ History of the Mathematical Theories of Attraction and Figure of the Earth from Newton to Laplace.

(४) The History of the Theory of Elasticity: इस ग्रन्थ की टॉडहण्टर पूरा नहीं कर पाया। इसे उसकी मृत्यु के पश्चात् काल पियर्सन ने १८८६ में प्रकाशित किया।

जॉर्ज जॉन्स्टन ऑल्मैन (George Johnston Allman) का जन्म १८२४ में डबलिन में हुआ था। यह निस्सन्देह एक विद्वान् था। १८५३ में यह गल्वे (Galway) के एक कॉलेज में गणित का प्राध्यापक नियुक्त हुआ। इसकी यह पुस्तक प्रसिद्ध हो गयी है—History of Greek Geometry from Thales o Euclid

यह पुस्तक १८८९ में डवलिन से प्रकाशित हुई। ऑल्मैन ने उसमें लिखा है कि यूक्लिड की ज्यामिति में केवल भाग १० यूक्लिड का लिखा हुआ था। भाग १, २, ४, ६ और १२ पिथैगोरियों ने मिलकर लिखे थे और भाग १३ और भाग १० का भी कुछ अंश थोटेटस (Thaetetus) का लिखा हुआ था। ऑल्मैन की मृत्यु १९०४ में हुई।

हर्मान हेंकैल (Hermann Hankel) (१८३९-७३) एक जर्मन गणितज्ञ था। इसे बड़े बड़े गणितज्ञों के सम्पर्क में आने का अवसर मिला—मोबियस (Möbius), रोमान, बीस्ट्रास, क्रॉनैकर। इनमें से प्रत्येक का यह किसी न किसी समय शिष्य रहा। तत्पश्चात् यह क्रमशः अर्लांगेन (Erlangen), ट्यूबिंगेन (Tubingen) और लाइपज़िग में प्राध्यापक नियुक्त हुआ। १८७० में इसने एक बहुत महत्वपूर्ण अमिषत्र पुस्तिका तैयार की जिसमें ऐसे फलन दिये गये थे जिनके अवकल गुणांक का अस्तित्व सन्दिग्ध था। इसके अतिरिक्त इसने ऐसे वक्रों का उल्लेख किया था जिनमें अत्यल्प परिमाण के असंख्य दोलन हों और जिनके प्रत्येक बिन्दु पर कोई निश्चित दिशा ही न हो, अर्थात् जिनके किसी भी बिन्दु पर स्पर्शी खींचे न जा सकें। यों कह सकते हैं कि उक्त पुस्तिका ने बीस्ट्रास के अनवकलनशील सतत फलनों वाले कार्य की नींव डाल दी।

हेंकैल के नाम से 'हेंकैल परिवर्त' (Hankel Transforms) प्रसिद्ध हो गये हैं। इसके अतिरिक्त इसने एक गणित का इतिहास लिखने की तैयारी की थी। बहुत से स्थानों पर इसने टिप्पणियाँ लिख रखी थीं। यह उस कार्य को पूरा भी न कर पाया था कि काल का बुलावा आ गया। उक्त टिप्पणियों को संग्रह करके इसके पिता ने उन्हें पुस्तक रूप में १८७४ में छपा। इसमें सन्देह नहीं कि यदि हेंकैल ३४ वर्ष की अल्पावस्था में न मर गया होता तो गणित के इतिहास के क्षेत्र में इसका नाम अमर हो जाता।

(४) बीसवीं शताब्दी

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक गणितीय इतिहास लेखन की परम्परा स्थापित हो चुकी थी। पिछले पचास वर्षों में गणित के इतिहास पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। हम यहाँ उनमें से थोड़ी सी का ही उल्लेख करेंगे।

(१) हम पहले लिख आये हैं कि भारत में पिछले दिनों तक गणित को ज्योतिष का ही अंग माना जाता रहा है। अतः इस देश में स्वतन्त्र रूप से गणित का इतिहास

लिखने की कोई परम्परा ही नहीं रही है। भारत के आधुनिक लेखका में से एक न विशेष उल्लेखनीय है—शंकर बाल कृष्ण दीक्षित का। इनका जन्म रत्नागिरी जिले एक गाँव में १८५३ में हुआ था। इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में ही पायी। तत्पश्चात् तीन वर्ष यह पूना ट्रेनिंग कॉलेज में पढ़े। १८७४ में मेट्रिक परीक्षा पास की। पिछाठ वर्ष मराठी स्कूलों में प्रध्यापक रहें। इसके पश्चात् भिन्न भिन्न स्कूलों सहायक अध्यापक का कार्य किया और अन्त में पूना ट्रेनिंग कॉलेज में अध्यापक रहें, जिस स्थान पर कई वर्ष रहे।

१८८४ में पूना की 'दक्षिणा प्राइज कमेटी' ने घोषणा की कि पचासों और ज्योतिष के इतिहास सम्बन्धी सर्वोत्तम ग्रन्थ पर ४५०) का पारितोषिक दिया जायगा। दीक्षित जी ने 'भारतीय ज्योतिष' नामक ग्रन्थ को हस्तलिपि मराठी में तैयार करके कमेटी के पास भेज दी। १८९१ में इन्हें पारितोषिक मिला गया। उन्ही दिनों गायकवाड़ सरदार की विज्ञप्ति निकली कि पचास सम्बन्धी सर्वोत्तम ग्रन्थ पर १०००) का पारितोषिक दिया जायगा। उक्त पुरस्कार भी दीक्षितजी को उपरिलिखित हस्तलिपि पर ही मिला। १८९६ में पाण्डुलिपि पुस्तक रूप में प्रकाशित हो गयी। पुस्तक वास्तव में स्तुत्य है। १९५७ में पुस्तक का हिन्दी अनुवाद प्रकाशन व्यास, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, द्वारा प्रकाशित हुआ। अनुवादक हैं श्री शिवनाथ शारदाजी और पुस्तक 'हिन्दी सभित ग्रन्थमाला' के अन्तर्गत प्रकाशित हुई है।

(२) पं० सुधाकर द्विवेदी का जीवन चरित्र हम अन्यत्र दे चुके हैं। १९१० में इनका गणित का इतिहास बनारस से प्रकाशित हुआ। उक्त पुस्तक में मुरारि अक्षर और सम्प्रदायों का इतिहास ही दिया गया है।

विस्तार भय से हम अन्य पुस्तकों का उल्लेख संक्षेप में ही करेंगे।

(३) W. W. R. Ball A short account of the History of Mathematics—London (1915)

इस पुस्तक में गणित की प्रायः समस्त शाखाओं का इतिहास दिया गया है।

(४) F. Cajori A History of Mathematics—Macmillan & Co., New York (1919).

यह पुस्तक अभिदेश के लिए अच्छी है।

(५) Sir Thomas Heath A History of Greek Mathematics—

जैसा नाम से स्पष्ट है, इस ग्रन्थ में यूनानी गणित के इतिहास का अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है।

(६) L. E. Dickson : History of The Theory of Numbers—3 volumes—Washington (1923).

(७) D. E. Smith : History of Mathematics—2 volumes—Ginn and Co., New York (1925).

इस पुस्तक की जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। सच पूछिए तो जब से प्रकाशित हुई है, यह गणित के इतिहासकारों का पथ प्रदर्शन कर रही है। इसके पहले भाग में तो सार्विक गणित का इतिहास है जो कई कालों में विभाजित किया गया है। दूसरे भाग में अलग अलग विशेष प्रकरणों का इतिहास दिया गया है। हम दूसरे भाग का अध्याय क्रम यहाँ देते हैं—

- (i) संख्या ।
- (ii) प्राकृतिक संख्याओं का गणित ।
- (iii) परिकलन यन्त्र ।
- (iv) कृत्रिम संख्याएँ (Artificial Numbers).
- (v) ज्यामिति ।
- (vi) बीजगणित ।
- (vii) प्रारम्भिक समस्याएँ ।
- (viii) त्रिकोणमिति ।
- (ix) नाप तोल ।
- (x) कलन ।

गणित के इतिहास के किसी भी पाठक का काम उक्त ग्रन्थ के बिना चल ही नहीं सकता।

(८) B. B. Dutt : Science of the Sulba—Calcutta (1932)

इस पुस्तक में प्राचीन हिन्दू ज्यामिति के इतिहास का दिग्दर्शन कराया गया है।

(९) Ganesh Prasad : Some Great Mathematicians of the Nineteenth Century Vol. I—Banaras Mathematical Society (1933).

स्वर्गीय डा० गणेश प्रसाद आधुनिक भारत के उन गिने चुने गणितज्ञों में से थे जिन्होंने इस देश में गणितीय गवेषणा की परम्परा स्थापित की। आपका जन्म

वर्तिया म १८७६ म हुआ था। इलाहाबाद और कल्कत्ता स एम० ए० का परीक्षा पाम करन के पश्चात आपन इलाहाबाद से डी० एससी० की डिग्री भी प्राप्त का। १८९९ म आप इंग्लैण्ड पधारे। पाँच वष आपन यूरोप म बिताय। आप वर्षों बनारस



चित्र १११—गंगा प्रसाद (१८७६-१९०५)

ए गणित हिन्दू बौद्ध के प्राचाय रह और आप म बालकन की उत्पत्ति की हासिज (Hiranyak) ग्री पर नियुक्त हुन। १०० म आपका विवरिदास्य की एक परिष्कृत का बौद्ध म माय २५। समय अरम्भाय आपका दशावसान हो गया। ३१० म आपका प्रमाण मे अन्त अभिमत और पुनः विगा १। आप एक अभिमत

में। विज्ञान ने इस दृष्टि को स्वीकार किया था। ऐतिहासिक दृष्टि में भारतीय
गणितीय पुस्तक के अतिरिक्त एक और पुस्तक प्रसिद्ध है—

"Mathematical Physics and Differential Equations at the
beginning of the Twentieth Century."

(१६) B. B. Dutt and A. N. Singh : History of Hindu
Mathematics. 2 vols.—Lahore (1935).

इस ग्रन्थ के पहले भाग में अंतर्भावित का इतिहास है, दूसरे में बीजगणित का।
पहले भाग का हिन्दी अनुवाद, प्रान्तीय सरकार की हिन्दी गणित के सत्यावधान में,
इस शीर्षक से, १९५६ में प्रकाशित हुआ है—

रक्षा मंत्रालय—हिन्दू गणित ग्रन्थ का इतिहास भाग १—प्रकाशन ब्यूरो,
उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ (१९५६)

(१७) E. T. Bell : Men of Mathematics (1937.)

इस पुस्तक में संसार के महान् गणितज्ञों की जीवनीयां बहुत ही रोचक ढंग से
लिखी गयी हैं।

(१८) A. Hooper : Makers of Mathematics (1949).

(१९) D. Struik : A concise History of Mathematics—
Dover Publications, New York 10 (1948).

(२०) गोरख प्रसाद—भारतीय ज्योतिष का इतिहास—प्रकाशन ब्यूरो, उत्तर
प्रदेश सरकार, लखनऊ (१९५६)

परिशिष्ट १

कोशावली

गणितीय शब्दकोश और विश्वकोश

(Mathematical Dictionaries and Encyclopedias)

(क) हिन्दी

१. ब्रजमोहन : गणितीय कोश—चौखम्बा संस्कृत सीरिज कार्यालय, बनारस १९५४
२. शुक्देव पांडेय : हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावली—गणित विज्ञान—नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस १९३१
३. हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावली—ज्योतिष विज्ञान—नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस १९३४

(ख) यूरोपीय भाषाएँ

4. Crispin, F. S. :
Dictionary of technical terms—Bruce, 1948
5. Davies, C. and Peck, W. G. :
Mathematical Dictionary and cyclopedia—N. Y., Barnes (1900).
6. Diderot, D'Alembert :
Encyclopedia, on dictionnaire raisonne etc—Paris (1754).
7. Encyclopedia der Elementar—Mathematik. Ein Handbuch für Lehrer und Studierende,
A. Band, I—Der Elementaren Algebra und Analysis—
H. Weber, Leipzig (1909).
B. Band II—Der Elementaren Geometrie—H. Weber,
J. Wellestein und W. Jacobsthal Leipzig
(1907).

C. Band III-Angewandte Elementare Mathematik Teil
I, Mathematische Physik (1910).

D. Band IV-Angewandte Elementare Mathematik Teil
II, Darstellende Geometrie Graphische Statik,
Wahrscheinlichkeitsrechnung Postische
Arithmetik und Astronomie—J. Wellst-
ein, H. Weber, H. Blicher und J. Baus-
chinger Leipzig (1912).

8. The Encyclopedia of Pure Maths. Griffin (1947).

9. Encyclopedie des Sciences Mathematiques pures et appliques,
Paris, Gautervillars (1904-16).

10. Encyclopedia der Mathematischen Wissenschaften, Leipzig,
Teubner (1899-1916)
6 vols. in 23, 1898-1935.

11. Herland, Leo :

Dictionary of Mathematical Series, N. Y., Frederick
(1951).

12. Herland, L. J :

Dictionary of Mathematical Sciences, v. 1. German-
English- v 2. English-German N. Y. Frederick
Ungar 1951-54, 2 v. v. 1., \$ 3.25 v. 2 \$ 4 50.

13. —: Worterbuch der Mathematischen Wissenschaften,
Hafner (1951).

14. The International Dictionary of Applied Mathematics D.
Van Nostrad Company, Inc. 1960. Princeton, New
Jersey.

5. James, G. & James, R. C. :

Mathematics Dictionary, 2nd ed., California Digest
Pr. (1943)

16. James, Glenn and James, Robert C. :
Mathematics dictionary, Multilingual ed. Princeton,
N. J. Van Nostrand, 1959, 546 pp. il. \$ 10.
17. James, Glenn :
Mathematics Dictionary. Van Nostrand, 1959.
18. Lohwater, A. J. :
Russian-English dictionary of the mathematical sciences, with the collaboration of S. H. Gould, under the joint auspices of the National Academy of Sciences of the USA, the Academy of Sciences of the USSR, (and) The American Mathematical Society, Providence, R. I., American Mathematical Soc. 1961, 267 p. \$ 7.70.
19. Malyutyle, Sheila and Erik. Witte :
German-English Mathematical vocabulary, Edinburgh, Oliver & Boyd (1956).
20. McDowell C. H. :
Dictionary of Maths., London Math. Dictionaries, 3 vols. (1947-50).
21. McDowell, C. H. :
Short Dictionary of Maths., N. Y., Philosophical Library (1957).
22. Millington, W. :
Dictionary of Mathematical data, London, Bernards (1944).
23. Moritz, R. E. :
Memorabilia Mathematica, or, The Philomath's quotation book, N. Y., Macmillan & Co. (1914) (2100 quotations).

24. Muller, Felix :
Mathematisches Vokabularium, französisch-deutsch
und deutsch-französisch, enthaltende Kunstausdrücke
aus der reinen und angewandten Mathematik, Leipzig.
Teubner (1900).
25. Nass, Josef & Schmid, Hermann, Ludwig :
Mathematisches Wörterbuch mit Einbeziehung der
theoretischen Physik. Berlin, Akademie Verlag G m.
b. H. Stuttgart, Teubner, 1961.
26. Pauly, A, G. Wissowa :
Real Encyclopedia der Classischen Altertumswissens-
chaft, Stuttgart (1894).
27. Percival A. G. :
Mathematical Facts and formulae, London, Blackie
(1933).
28. Parke, N. G. :
Guide to the literature of Mathematics and Physics
including related works on engineering science. 2nd
rev. ed N. Y. Dover, (1958,) 436 p. II \$ 2 49.
29. University of Wales-Department of Celtic Studies Termau
Mathemateg , Cyhoeddwyd ar ran burdd Gwybodau
caltatdd pryfisgol cymru. Caerdydd, Cardiff, Gwasg
Pryfysgol cymru, (1957), English-Welsh Dictionary.
30. ——World Directory of Mathematicians, 1958. Published
under the auspices of the International Mathematical
union and with the Co-operation of the Tata Institute
of Fundamental Research. Bombay, The Institute,
(1959)

परिशिष्ट २

ग्रन्थावली

(क) एशियाई भाषाएँ

१. आपस्तम्ब श्रुत्व
२. उदय नारायण सिंह : आर्यसटीय १९०६
३. कात्यायन श्रुत्व
४. गोरखप्रसाद : भारतीय ज्योतिष का इतिहास—हिन्दी समिति ग्रन्थमाला,
प्रकाशन व्यूरो—उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ १९५६
५. गौरी शंकर हीराचन्द ओझा : मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, प्रयाग १९२९
६. चू शी किये : स्वान हियो—कि—मूंग (गणितीय अध्ययन की भूमिका)
७. दुर्गा प्रसाद द्विवेदी : (भास्कर का) बीजगणित—लखनऊ, द्वितीयावृत्ति १९४७
८. पद्माकर द्विवेदी : गणकतरंगिणी—वनारस १९३३
९. प्रेमवल्लभ : परम सिद्धान्त—बम्बई, संवत् १९५३
१०. बौधायन श्रुत्व
११. ब्रह्मगुप्त : ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त—टीकाकार सुधाकर द्विवेदी—वनारस १९०२
१२. भास्कर : सिद्धान्त शिरोमणि
१३. युअन युअन : चू जेन चुअन १७९९
१४. शंकर वालकृष्ण दीक्षित : भारतीय ज्योतिष, हिन्दी अनुवादक शिवनाथ झार-
खंडी—हिन्दी समिति ग्रन्थमाला, प्रकाशन व्यूरो, उत्तर प्रदेशीय सरकार,
लखनऊ १९५७
१५. शतपथ ब्राह्मण
१६. सुधाकर द्विवेदी : गणित का इतिहास—वनारस १९१०

(ख) यूरोपीय भाषाएँ

17. G. J. Allman : History of Greek Geometry from Thales to Euclid-Dublin (1889).
18. W.W. R. Ball : A short account of the History of Mathematics, London (1915).

19. E. T. Bell : Men of Mathematics Penguin Book (1953)
- 20 — : The Development of Mathematics—2nd Ed. McGraw Hill Book Co. (1945).
21. W.W. Beman and D. E. Smith : A brief History of Mathematics, 2nd Ed. (1930)—The Open Court Publishing Co. Chicago.
22. Charles Bossut : History of Mathematics, Vols I, II—Paris (1802)
23. Brajendra Nath Seal : The Positive Sciences of the Ancient Hindus—Longman's Green & Co, London (1915).
24. C. A. Bretschneider : Die Geometrie und die Geometer von Eukleides Leipzig (1870).
25. Buhler : Indian Paleography.
26. A. Burk : Zeitschrift der Deutschen Morgen Landischen Gesellschaft LV.
27. Bernardino Baldi : Cronica.
28. F. Cajori : A History of Elementary Mathematics, Revised Ed New York (1917).
29. — : History of Mathematics, 2nd Ed —Boston (1922).
30. M Cantor : Mathematische Beitrage Zum Kulturleben der Volker, Halle (1863)
31. — : Vorlesungen uber Geschichte der Mathematik, 3rd Ed Vol I-IV (1880-1908)
32. H T. Colebrooke . Algebra with Arithmetic and Mensuration from the Samskrit of Brahmagupta and Bhaskar, London (1817).
33. Pietro Cossali : History of Algebra, Vols I, II—Parma (1797).
34. L E Dickson : History of the Theory of Numbers, 3 Vols ,

35. B. B. Datta : The Science of the Sulbas, Univ. of Calcutta (1932).
36. ——— & A. N. Singh : History of Hindu Mathematics, Pts. I, II, Motilal Banarasi Das, Lahore (1935).
37. Encyclopedia Britannica, 14th Ed. (1929).
38. Ganesh Prasad : Some Great Mathematicians of the Nineteenth Century, Vol. I Banaras Math. Soc. (1933).
39. Geminus : Phenomena, Rhodes (1590).
40. J. Gow : A short History of Greek Maths., Cambridge (1884).
41. S. Gunther; and H. Wieleitner : Geschichte der Mathematik, 2 Vols., Leipzig (1908-1921).
42. L. B. Gurjar : Ancient Indian Maths. and Vedha, Mr. S. G. Vidwans c/o Continental Book Service, 626, Shanwar, Poona 2. (1947).
43. Halliwell : Rara Mathematica, 56.
44. H. Hankal : History of Maths. (1874).
45. T. L. Heath : Apollonius of Perga, Cambridge (1896).
46. ——— : Archimedes, Cambridge (1897).
47. ——— : The Thirteen Books of Euclid's Elements, 3 Vols. , Cambridge (1908).
48. ——— : Diophantus of Alexandria (1910).
49. ——— : Aristarchus of Samos, Oxford (1913).
50. ——— : Aristarchus of Samos, the Copernicus of Antiquity, London (1920).
51. ——— : Euclid in Greek, Book I, Cambridge (1920).
52. ——— : Greek Maths. and Science, Pamphlet, Cambridge (1921).
53. ——— : A History of Greek Maths., 2 Vols., Cambridge (1921).

- 55 H V. Hilprecht *Mathematical, Metrological and Chronological Tablets from the Temple Library of Nippur, Philadelphia* (1906)
- 56 E W Hobson *Squaring the Circle*, Cambridge (1913)
- 57 A Hooper *Makers of Maths*, London (1949)
- 58 L C Karpinski *Robert of Chester's Latin translation of the Algebra of Al Khwarizmi* New York (1915)
- 59 A G Kastner *History of Maths*, Vols I IV, Gottingen (1796-1800)
- 60 G B Kaye *Indian Mathematics*, Calcutta (1915)
- 61 ——— *The Bakhshali Manuscript*, Pts I, II—Archaeological Survey of India (1933)
- 62 Muhammad ibn Musa Al Kowarizmi *On the Hindu Art of Reckoning*
- 63 Langdon *Mohanjodaro and the Indus Valley civilisation*.
- 64 G Libri *Histoire des Sciences Mathematiques en Italie*, 4 Vols, Paris (1838-41)
- 65 G Loria *Guida allo Studio della Storia delle Matematiche*, Milan (1916)
- 66 Sir Arthur Antony Macdonald *India's Past*, Oxford (1927)
- 67 M Marie *Histoire des Sciences Mathematiques et Physiques* 12 Vols, Paris (1883-88)
- 68 Y Mikami *The Development of Maths in China and Japan*, Leipzig (1913)
- 69 G A Miller *Historical Introduction to the Mathematical Literature*, Macmillan & Co New York (1921)
- 70 J E Montucla *History of Maths*, 2 Vols (1799)
- 71 ——— *Histoire des Mathematiques* 2nd ed, 4 Vols., Paris

72. Oresme : *Tractatus defiguratione potentiarum et Mensurarum difformitatum*.
73. J. C. Poggendorff : *Handwörterbuch zur Geschichte der exakten Wissenschaften*, 4 Vols., Leipzig (1863-1904).
74. Rangacharya : *Mahaviracharya's Ganitsara Sangraha with English Translation*, Madras (1912).
75. Sachse : *Al Beruni's India*, 2 Vols., London (1910).
76. G. Sarton : *The study of the History of Maths.*, Harvard Univ. Press (1936).
77. D. E. Smith : *Rara Arithmetica*, Boston (1908).
78. ——— : *Our debt to Greece and Rome Maths.*, Boston (1922).
79. ——— : *History of Maths.*, 2 Vols., Ginn & Co., New York (1923).
80. ——— : and L. C. Karpinski : *The Hindu-Arabic Numerals*, Boston (1911).
81. ——— and Y. Mikami : *History of Japanese Maths.*, Chicago (1914).
82. D. Struik : *A concise History of Maths.*, Dover Publications, New York 10 (1948).
83. J. W. N. Sullivan : *The History of Maths. in Europe*, Oxford Univ. Press, London (1925).
84. P. Tannery : *La Geometrie Grecque*, Paris (1887).
85. ——— : *Pour l' Histoire de la Science Hellene de Thales a Empedocle*, Paris (1887).
86. ——— : *Memoires Scientifiques*, edited by J. L. Heigerg & H. G. Zeuthen, 2 Vols., Paris (1912).
87. G. Thibaut : *Sulba Sutras*.
88. G. Thibaut and Sudhakar Dwivedi : *Panchsiddhantika with English translation*, Banaras (1899).
89. I. Todhunter : *History of the Calculus of Variations* (1861).

90. ———: History of the Mathematical Theory of Probability from the time of Pascal to that of Lagrange (1865).
91. ———: History of the Mathematical Theories of Attraction & Figure of the Earth from Newton to Laplace (1873).
92. ———: The History of the Theory of Elasticity (1886).
93. J. Tropfke : Geschichte der Elementar-Mathematik in systematischer Darstellung, 2 Vols., Leipzig (1902).
94. Vinay Kumar Sarkar : Hindu achievement in Exact Sciences, London (1918).
95. M. Williams : Indian Wisdom.
96. H. G. Zeuthen : Histoire des Mathematiques dans L'Antiquite et le Moyen Age, translated by J. Mascart, Paris (1902).

परिशिष्ट ३

लेखावली

(क) हिन्दी

१. आनन्द कुमार स्वामी : ख आदि शून्यवाची शब्द—विश्वभारती पत्रिका १ (१९४२) ५१-५४
२. ब्रज मोहन : प्राचीन हिन्दू गणित में श्रेढी व्यवहार—नागरी प्रचारिणी पत्रिका ५२ (संवत् २००४) २५-३४
३. —: लीलावती की शब्दावली—विज्ञान ६४ (१९४६) ४९-५६
४. —: भास्कर की शब्दावली—विन्ध्यमूमि २ (१९४६) २५-८
५. —: लॉगॅरिथ्म का पर्याय—विज्ञान ६५ (१९४७) १०-३
६. —: प्राचीन हिन्दू गणित में श्रेढी व्यवहार—नागरी प्रचारिणी पत्रिका ५२ (२००४) २६-३४
७. —: संख्या वृद्धि—रश्मि, गोकुलदास गुजराती हिन्दू इंटर कॉलज, मुरादाबाद "वाषिकांक (१९५६-५७) परिशिष्ट ४-१२
८. —: अंक—हिन्दी विश्वकोश, खंड १ (१९६०) १-२
९. —: गणना वृद्धि—K. P. Bhatnagar Commemoration Volume, Kanpur (1961) 342-53.
१०. —: हिन्दी की परिनिश्चित गणितीय शब्दावली—प्रज्ञा, काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय, X (1) नवम्बर (१९६४) १-२०
११. कु० सुप्तिमाई सिन्हा : प्राचीन भारतीय गणित—नागरी प्रचारिणी पत्रिका

(ख) यूरोपीय भाषाएँ

12. Avadhesh Narain Singh : On the Arithmetic of Surds among the Ancient Hindus—Mathematica XII (1936) 102-15.
13. ———Hindu Trigonometry—Proc. Banaras Math. Soc., New Series I (1939) 77-92.
14. E. C. Bayley : On the Genealogy of Modern Numerals—J. R. A. S. 14 (1882), 15 (1883).

- 15 Bhau Daji • On the Age and Authenticity of the Works of Aryabhatt, Varahmihira, Brahmagupta—J R A S (1865)
- 16 V Inderji On Ancient Nagri Numeration from an inscription at Ninaghat—J of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society 12 (1876)
- 17 Brij Mohan Number Sense—Cosmo—Scientific Journal, Banaras (1956) 53 67
- 18 ——— The Terminology of Lilavati—J Oriental Institute, Baroda,—VIII (1958) 159-68
- 19 Beginnings of Calculus in the East—Symposium on the History of Sciences National Institute of Sciences New Delhi 21 (1963) 253-7
- 20 ——— Progressions in Ancient Hindu Maths —J scientific Research B H U IX (1) 1958-59 (1958)
- 21 ——— The Terminology of Bhaskara—J Oriental Institute Baroda IX (1) (1959) 17 21
- 22 F Cajory Controversy on the Origin of our Numerals—Scientific Monthly IX
- 23 S R Das Origin and Development of Numerals—Indian Historical Quarterly (1927) 99-120, 356-75
- 24 H B Dutt Two Aryabhattas of Al Beruni—Bull Cal Math Soc 17 (1926) 59-74
- 25 ——— Early Literary Evidence of the use of the Zero in India—Amer Math Monthly 33 (1926) 449 54
- 26 ——— Hindu Values of π J A S B 22 (1926) 25 47
- 27 ——— A Note on the Hindu Arabic Numerals—A M M 33 (1926) 220 221
- 28 ——— On Mula the Hindu Term for Root—A M M 34 (1927) 4-23
- 29 ——— Aryabhatt the Author of the Ganita—B C M S

30. ———: Early History of the Arithmetic of Zero and Infinity in India—B. C. M. S. 18 (1927) 165-76.
31. ———: The Present Mode of Expressing Numbers—Ind. Hist. Quart. 3 (1927) 530-40.
32. ———: Present System of Numerals—Ind. Hist. Quart. (1927).
33. ———: Hindu Contribution to Mathematics—Bull. Math Assoc. Alld. 1 (1927-28) 49.
34. ———: On Mahavira's Solutions of Rational Triangles and Quadrilaterals—B. C. M. S. 20 (1928).
35. ———: On the Science of Calculation of the Board—A. M. M. 35 (1928).
36. ———: Al Beruni and the Origin of the Arabic Numerals—P. B. M. S. 7. (1928).
37. ———: The Hindu Solution of the General Pellian Equation—B. C. M. S. 19 (1928) 87-94.
38. ———: The Bhakshali Mathematics—B. C. M. S. 21 (1929) 1-60.
39. ———: Scope and Development of Hindu Ganita—I. H. Q. 5 (1929) 479.
40. ———: The Jaina School of Mathematics—B. C. M. S. 21 (1929) 115-45.
41. ———: On the supposed indebtedness of Brahmagupta to Chin-Chang Suan-Shu—B. C. M. S. 22 (1930) 39-52.
42. ———: The two Bhaskaracharyas—I.H. Q. 6 (1930) 727-36.
43. ———: Early Literary Evidence of the use of the Zero in India—A. M. M. 38 (1931) 566-72.
44. ———: On the Origin of the Hindu Terms for Root—A. M. M. 38 (1931) 371-6.
45. ———: Narayan's Method for finding the Approximate value of a Surd—B. C. M. S. 23 (1931) 187-94.

- 46 ——— Testimony of Early Arab writers on the Origin of our Numerals—B C M S 24 (1932) 193-218
- 47 ——— Elder Aryabhata's rule for the Solution of Indeterminate Equations of the First degree—B C M S 24 (1932) 19-36
- 48 ——— Origin and Development of Word Numerals (in Bengali)—Bangiya Sahitya Parishad Patrika, 36 22 50
- 49 Filon Beginnings of Arithmetic—Mathematical Gazette (1925)
- 50 J F Fleet The use of Abacus in India—J R A S (1911)
- 51 G Chakravarti Typical Problems of Hindu Maths—Annals Bhandarkar Oriental Research Institute 14 (1931-33) 87-100 ,
- 52 ——— Growth and development of Permutations and Combinations in India B C M S 24 (1932) 79-89
- 53 Hans Raj Gupta On the Extraction of Square Root of Surds—P B M S New Series 2 (1925) 33-38
- 54 Hiralal Kapadia Note on Jain Hymns & Magic Squares—I H Q 10, 148 53
- 55 Hoernle Indian Antiquary XII (1883) 89-90
- 56 ——— Verhandlungen des VII Internationalen Orientalisten Congress Ansche Section (1886) 127
- 57 ——— Bhakshali Manuscript—Ind Ant XVII (1889) 33-48, 275-79
- 58 G Junge Wann haben die Grieschen die Irrationale entdeckt—Novae Symbolae Joachimicae, Halle (1907) 2-1-64
- 59 G R Kaye Arithmetical Notation—J A S B 3 (1907)
- 60 ——— Notes on Indian Maths—J & Proc. Asiatic Soc., Bengal VIII (2)
- 61 ——— The Bakhshali Manuscript—J & Proc Asiatic Soc. Bengal VIII (2)

62. ———: Sources of Hindu Math.—J. R. A. S. (1910).
63. ———: Aryabhatta—J. A. S. B. (1908).
64. ———: East and West 17 (1918).
65. H. G. Kern: The Aryabhattiya with the commentary Batdipika of Paramdigvir—J. R. A. S. 20(1863) 371-87.
66. ———: The Greeks in India—Cal. Review 114 (1902).
67. Knopp: Ein einfaches Beispiel einer nicht-differenzierbaren stetigen Funktionen—Math. Zeitschrift 2(1918) 1-26.
68. Kripa Shanker Shukla: Acharya Jaidev, the Mathematician-Ganita 5 (1954) 1-20.
69. N. Mitra: Ancient Hindus' knowledge of Maths. II Alg.—Modern Review 18 (1915) 73-80.
70. ——— Ancient Hindus' knowledge of Maths. III Trigon.—Modern Review 18(1915) 154-62.
71. C. Muller: Die Mathematik der Sulvasutra-Abhand. a. d.. Math. Seminar d. Hamburgischen Univ. Bd. VII (1929) 175-205.
72. L. Rodet: L'Algebra d'Al Khowarismi et les Methodes indiennes et grecques J. Asiatique 12 (1878).
73. ———: Lecons de Calcul d'Aryabhatta—J. Asiatique 13(1879).
74. ———: Sur une methode d'approximation des racines carres, comme dans l'Inde anterieurement a' la conquete d' Alexandre—Bull. Soc. Math. d. France VII (1879) 98-102.
75. ———: Sur les methodes d'approximation chez les anciens—Bull. Soc. Math. d. France VII (1878) 159-67.
76. ———: H. G. Romig: Early History of division by zero—A. M. M. 31 (1924) 387-9.
77. Sardakant Ganguly: Notes on Aryabhatta—J. of Bihar & Orissa Research Soc. 12 (1926) 78-91.

- 78 ——— Bhaskaracharya and Simultaneous Indeterminate Equations of the First Degree—B C M S 17 (1926) 89-98
- 79 ——— The elder Aryabhata and the modern Arithmetic Notation—A M M (1927)
- 80 ——— The source of the Indian solution of the so-called Pellian Equation—B C M S 19 (1928) 151-76
- 81 ——— Bhaskaracharya's references to previous teachers—B C M S 18 (1927) 65-76
- 82 ——— The elder Aryabhata's value of π —A M M 37 (1930) 16-32
- 83 ——— Did the Babylonians and the Mayas of Central America possess the place value Arithmetic Notation? B C M S 22 (1930) 99-102
- 84 S Gandz On the origin of the term 'Root'—A M M 33 (1926)
- 85 ——— Did the Arabs know the abacus?—A M M 34 (1927) 308-16
- 86 ——— On the origin of the term 'Root' II—A M M 35 (1928) 67-75
- 87 ——— On three interesting terms relating to area—A M M 34 (1927) 80-6
- 88 P C Sengupta Aryabhata's lost work—B C M S 22 (1930) 115-20
- 89 C T Rajgopal & T V Vedomurthy Aiyar On the Hindu proof of Gregory's Series—Scripta Math 17 (1951) 65-74
- 90 Smith On the origin of certain typical problems—A M M 24 (1917)
- 91 D E Smith & S Murad Dust Numerals among Ancient Arabs—A M M 33 (1927) 258-60

92. R. Temple : Notes on the Burmese system of Arithmetic—
Indian Antiquary (1891).
93. E. Thomas : Ancient Indian Numerals—J. A. S. B. (1856)
94. Van der Waerden : Ein einfaches Beispiel einer nicht-
differenzierbaren stetigen Funktion—Math. Zeit. 32 (1930)
474-5.
95. Whish : On the Hindu quadrature of the circle—Trans.
Royal Asiatic Soc. 3 (1835) 509-23.

परिशिष्ट ४

(हिन्दी-अंग्रेजी शब्दावली)

अकगणक, गिनतारा—abacus	अनन्त वर्ग— <i>infinite class</i>
अकगणित— <i>arithmetic</i>	अनन्त श्रेणी— <i>infinite series</i>
अकगणितीय मध्यक— <i>arithmetic mean</i>	अनन्तस्पर्शी— <i>asymptote</i>
अकगणितीय पूरक— <i>arithmetical complement</i>	अनामक— <i>anonymous</i>
अक सिद्धान्त, मर्यादा सिद्धान्त— <i>theory of numbers</i>	अनिर्णीत रूप— <i>undetermined form</i>
अंश—1. numerator 2. Degree	अनिर्णीत समीकरण— <i>indeterminate equation</i>
अज्ञात— <i>latitude</i>	अनुकल्प— <i>option</i>
अग्नेसिक्का— <i>witch of Agnes</i>	अनुक्रम— <i>sequence</i>
अग्रज— <i>senior</i>	अनुगणन— <i>reckoning</i>
अचर— <i>constant</i>	अनुज— <i>junior</i>
अच्छेदक— <i>non-intersecting</i>	अनुपाती भाग— <i>proportional part</i>
अतिपरवलय— <i>hyperbola</i>	अनुस्यूती संख्याएँ— <i>congruous numbers</i>
अतिपरवलीय आकाश— <i>hyperbolic space</i>	अन्तर विह्वल— <i>sign of difference</i>
अतिमानस्य— <i>metaphysics</i>	अन्तराल— <i>interval</i>
अत्यल्प राशि— <i>infinitesimal quantity</i>	अन्तर्निर्देश— <i>cross-reference</i>
अदला बदली— <i>barter</i>	अन्तर्लिखित— <i>inscribed</i>
अद्वितीय— <i>unique</i>	अन्तर्हिन— <i>endless</i>
अदिमदस्य— <i>fellow</i>	अन्त स्फूर्ति— <i>intuition</i>
अनन्त, अनन्ती— <i>infinity</i>	अन्वालोप— <i>envelope</i>
अनन्त कुलक— <i>infinite set</i>	अतिपरवलीय फलन— <i>hyperbolic function</i>
	अपरिमेय संख्या— <i>irrational number</i>
	अपवर्त्य— <i>multiple</i>

असंगत, विविध—singularity	असंगत—p. osculate
असंगत—divergent	असंगत, अविभाज्य—indivisible
असंगत, अविभाज्य—indivisible	असंगत को मनीहरन—pure quadratic equation
असंगत संख्या, प्रथम संख्या—prime number	असंगत—discontinuity
अभिकलन—computation	अस्तित्व प्रमेय—existence theorem
अभिधान—reference	अष्टक—octave
अभिलेख—paper (research)	अष्टभुज—octahedron
अभिमुख—warden	अष्टभुज—octagon
अभिलेख—normal	
अभिलेख—record	अंशिक अन्तर कलन—calculus of finite differences
अभिव्यक्ति, व्यंजक—expression	अंशिक भिन्न—partial fraction
अभिसरण—convergence	आकलन—estimation
अभिसरण परीक्षा—test for convergence	आकाश—space
अभिसारी—convergent	आकृष्टन, उद्देशन, रेखन—drawing
अर्ध-जोधा—half-chord	आनन्तिक वृत्त बिन्दु—circular points at infinity
अर्धन, समद्विभाजन—bisection	आदर्श—ideal
अर्ध-परिमाप—semi-perimeter	आदर्श संख्या—ideal number
अर्ध-वृत्त—semi-circular	आदर्श सिद्धान्त—ideal theory
अलघुकरणीय दशा—irreducible case	आदि संख्या—initial number
अवयव—element	आमनसी—hydraulics
अवकल गुणांक—differential coefficient	आयतन—volume
अवकल संकेतलिपि—differential notation	आयताकार अतिपरवलय—rectangular hyperbola
अवकल समीकरण—differential equation	आलेखिक—graphical
अवधा, खंड—segment	आर्गण्ड चित्र—argand diagram
अवशेष—residue	आवर्त—periodic
	आवर्त दशमलव भिन्न—recurring decimal fraction

आवर्त फलन-periodic function	उपान्तराल-sub-interval
आवर्त श्रेणी-recurring series	
आसन-seat	ऊर्जा-energy
आयलरी समाक- \int -Eulerian integral	ऊर्ध्व, ऊर्ध्वधिर-vertical
इकाई मापक-unit	ऋण घात-negative power
इडा-goddess of reasoning	वस्तुविज्ञान कार्यालय-meteorological office
इरटास्थेनीज की छलनी-sieve of Eratosthenes	
उच्च घात-higher degree	एकघात समीकरण-linear equation
उच्चत्व-altitude	एकघात सहचर बीजगणित-linear associative algebra
उज्ज्या-versed	एक पूर्ण सत्ता-a whole
उत्किरण-engraving	एकबन्ध-monograph
उत्खोड्या-covered sine	एकमानीय-one-valued
उत्क्रम-inverse reverse	एकरूप फलन-uniform function
उत्क्रम अवकलन-inverse differentiation	एकादशफलक-undecahedron
उत्क्रम उना-versed sine	एकैकीसमिति-homology, one-one correspondence
उत्क्रमण नियम-rule of inversion	एकसम्य, सर्वसमिका-identity
उत्तरोत्तर उपनयन-successive approximation	ओद्दिमदी, वनस्पतिशास्त्र वानस्पतिकी-botany
उत्तोलक-lever	
उदधर्म-heretic	कनक काट-golden section
उद्गमण, आग्रहण, रेखन-drawing	कनिष्ठ-least
उपबुलक-sub set	कम्पमान डोरी-vibrating string
उपगोल, गोलामास-spheroid	करणी-surd
उपज्ञा-invention	कलन-calculus
उपनयन, सन्निकटन-approximation	काट-cut, section
उपनीति, सन्निकट-approximate	काय-body
उपमापा-dialect	

संवेग का प्रसार—propagation of	change
bodies	
संयुक्त गति—imaginary	संज्ञा—number of terms
complex quantity	संज्ञा—republic
गणित—grammar	संज्ञा, गिनती—counting
कृत्रिम—cell	गणना—sense of counting
कुलपति—chancellor	गणनात्मक संख्या—cardinal number
कुलपति—pulveriser	गणित—mathematics
कुलपति—set	गणितीयक—mathematicals
कुलपति—rector	गुणक चरण—Gunter quadrant
केन्द्र—evolute	गुणक स्तरिका—Gunter scale
कोज्—cos	गुणक रेखा—Gunter Line
कोज्या—cosine	गुणक शृंगला—Gunter chain
कोर—cot	गति नियम—law of motion
कोरज्या—cotangent	गतिविज्ञान, गतिकी—dynamics
क्रम, वर्ण—order	सामक बल—motive force
क्रमनय और संयोज—permutations	गिनतारा, अंगणक—abacus
and combinations	गुणक—multiplier
क्रम ज्या—direct sine	गुणनात्मक संख्या—multiplicative
क्रम संख्या, क्रमात्मक संख्या—ordinal	number
number	गुणोत्तर श्रेणी—geometrical pro-
कृत्रिम संख्या—Artificial number	gression
क्षेत्र—field	गुण्य—multiplicand
क्षेप—instalment	गुम्फाक्षर—monogram
क्षेपक—augment	गुरुत्वाकर्षण—gravitation
क्षेत्रकलन—quadrature	गोलाभास, उपगोल—spheroid
क्षैतिज—horizontal	गोलाकार, गोलीय—spherical
	गोलीय रेखागणित—spherical
खंड, अवधा—segment	geometry
खंडावकलन—partial differentiation	गोलीय विक्षेप—stereographic
खगोलीय यान्त्रिकी—celestial me-	projection

गोलीय हरमिति—spherical Har monics
 monics

घट्यनीक डायल—dial

घन—cube

घन गुणन—multiplication of the cube

घनन—cubature

घन तल—cubic surface

घातांक नियम—index law

घात श्रृंखला—power series

घर्ण—moment

घूर्ण चक्रज—moment cycloid

चक्रशाल विधि—cyclic method

चतुर्घाति समीकरण—biquadratic equation

चतुर्कोण—quadrangle

चतुष्टय—quaternion

चतुष्फलक—tetrahedron

चन्द्रम—Lune

चर—variable

चरण—quadrant

चलराशि कलन समाकलन गणित—integral calculus

चापूची—optics

चापकृान—rectification

चिरस्थायित्व—permanence

चिरस्थायी—permanent, perpetual

चिरस्थायी गति—perpetual motion

चिरस्थायी निश्चिन्न—perpetual

छन्दशास्त्र—prosody

छाया मापन—shadow reckoning

छिन्नक—frustum

जार्ज भजनफल—trial quotient

जार्ज भाजक—trial divisor

जीवनांकिक—actuary

जोडी—folio

ज्योति—sun sine

ज्यामिति रेखागणित—geometry

ज्येष्ठ—greatest

टङ्क, चक्री—angle

टङ्कण—commence

टॉरिसेली निर्वात—Torricelli vacuum

टोम ज्यामिति—solid geometry

डायल घट्यनीक—dial

डेडीलाइण्ड काट—Dedlund cut

तरंग—wave

तरंग सिद्धांत—wave theory

तल पृष्ठ—surface

तल निधि—surface locus

ताप संचलन—conduction of heat

तिर्वर्ध अक्ष—oblique axis

तिर्वर्ध अनुपात तिर्वर्ध विभक्ति—cross ratio

तिथ्यक्ष—transversal

निर्णीत—determinate	परिगणनीय—enumerable
निर्देशक—director	परिमा—bound
निर्देशांक, नियामक—coordinates	परिमाण—perimeter
निर्वचन—interpretation	परिमित—bounded
निर्वात—vacuum	परिमितता—boundedness
निश्चल—invariant	परिमेय सख्या—rational number
निश्चल सिद्धान्त—theory of invariants	परिमेय समकोण त्रिभुज—rational right-angled triangle
निश्चित—definite	परिष्प—design
नौतरण, नौवहन—navigation	परिरूपक—designer
न्यास—1 statement 2 data	परिवर्तन दर—rate of change
न्यूनतम वर्ग—least square	परिसहृत—terse
न्यूनतम वर्ग विधि—method of least squares	परीक्षण—test
पञ्चातक—quantic	परपक्वा—rigour
पथ—path	पर्यन्त अनुबन्ध—boundary condition
पदा का योग—sum of terms	पास्कल त्रिभुज—Pascal triangle
परतन्त्र चर—dependent variable	पुन स्थापन—restoration
परम—absolute	पुस्तपालन—book-keeping
परवलय—parabola	पूरक—complement
परवलयज—paraboloid	पूरक फलन—complements
परशु—cissoid	पूर्ण अवकलन—total differentiation
पराग्यामितीय—hyper-geometric	पृष्ठ, तल—surface
परिकलन—calculation	पूण सख्या पूणक—integer, integral number
परिकलन यन्त्र—calculating machine	पैमाना, मापिनी—scale
परिकल्पना—hypothesis	प्रक्षेत्र—farm
परिक्रमण—revolution	प्रगति क्रम—order of progression
परिक्रमण अतिपरवलयज—hyperboloid of revolution	प्रतिमान—model
परिगणन—enumeration	प्रतिलिपिक—copyist
	प्रतिस्थापन सभ—substitution group

प्रत्यास्थता—elasticity	बहुफलक—polyhedron
प्रथम पद—first term	बहुलक बिन्दु—multiple point
प्रदिग्—tensor	बायाँ—verso
प्रपात विधि—method of cascades	बिन्दुपथ, निधि—locus
प्रबन्ध—thesis	बिन्दु माला—range of points
प्रमेयिका—lemma	बिल—bill
प्रयोगात्मक भौतिकी—experimental physics	बीजगणित—algebra
प्रयोजित गणित—applied mathematics	बीजगणितीय युग्म—algebraic couple
प्रवणता कोण—angle of slope	बीजगणितीय हल—algebraic solution
प्रवाह विधि—method of fluxions	बेलन—cylinder
प्रसर, विधा—process	बौद्धिक अभ्याप्तियाँ—intellectual attainments
प्राकृतिक दार्शनिक—natural philosopher	भजनफल—quotient
प्राचल—parameter	भाग—1. Part 2. division
प्राच्यभाषाज्ञ—orientalist	भागरेखा—solidus
प्रावधान—provision	भारकेन्द्री कलन—barycentric calculus
प्राविधिक संस्थान—technical institute	भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण—archaeological survey of India
फली, टंक—wedge	भिन्न—fraction
फलक—face	भूमिति—geodesy
फलन कलन—calculus of functions	भूमितीय—geodetic
फलन सिद्धान्त—theory of functions	भूयिष्ठ और अल्पिष्ठ बिन्दु—maxima and minima points
फलित ज्योतिष—astrology	भौतिकी—physics
वल त्रिभुज—triangle of forces	भौमिकी—geology
वल समान्तर-चतुर्भुज—parallelogram of forces	भौमिकीज्ञ—geologist
	मतगणन—telling

मध्य-*mean*
 मध्यव गति-*mean motion*
 मन्त्र-*archbishop*
 मायक टर्दा-*unit*
 मात्रा-*quantity*
 मादा सख्या-*female number*
 मानक-*standard*
 मानकीकरण-*standardisation*
 मानोपाधि-*honorary degree*
 मापित्री-*mensuration*
 मापित्री, पैमाना-*scale*
 माया बग-*magic square*
 मिश्रण-*alligation*
 मिश्र श्रेणी-*complex series*
 मिश्र समानुपात, समुक्त समानुपात
compound proportion
 मूलभूत-*fundamental*
 मोरियस बन्ध-*mobius band*

 याक्ष-*axis*
 यावदन्त-*ad infinitum*
 यान्त्रिकी-*mechanics*
 याम्योत्तर-*meridean*
 युगपद समीकरण-*simultaneous*
equations
 युग्म-*couple*
 योगात्मक, योगिक-*additive*

 रचना-*construction*
 रज्जुका-*catenary*

राशि चिह्न-*sign of the zodiac*
 रिक्ति-*gap* २. *vacancy*
 रुद्र सख्या, अभाज्य सख्या-*prime*
number
 रेगन, श्रावण, उद्देशन-*drawing*
 रेखा-*line*
 रेखागणित, ज्यामिति-*geometry*
 रेखावली-*pencil of lines*
 रेखा समाकल-*line integral*
 रेखीकरण-*collimation*
 रेत गणक-*sand reckoner*

 रुक्षित-*directed*
 लघुकरण-*reduction*
 लघुगणक-*logarithm*
 लघुगणकीय सर्पिल-*logarithmic spiral*
 लाविक त्रिभुजीय सन्निभ-*right trian-*
gular prism
 लिटुअम-*littus*
 लेखापालन-*accountancy*
 लैन्स-*lens*

 वक्र-*curve*
 वक्र-*trochoid*
 वक्रता केन्द्र-*centre of curvature*
 वक्रता प्रदिश-*curvature tensor*
 वनविद्या-*forestry*
 वनस्पतिशास्त्र, वानस्पतिकी, ओर्दिमदी-
botany
 वर्ग-*1 class* २ *square*

वर्ग मूल—square root	विपमराशिक—rule of odd terms
वर्गात्मक द्वैधता नियम—law of quadratic reciprocity	विषयवस्तु—contents
वर्ण, क्रम—order	वृत्त—circle
वर्णान्तर—transliteration	वृत्तखंड—segment of a circle
वर्तुल, वृत्ताकार, वृत्तीय—circular	वृत्ताकार, वृत्तीय, वर्तुल—circular
वाग्मिता—eloquence	वृत्तीय चतुर्भुज—cyclic quadrilateral
वाणिज्य—commerce	वेग—velocity
वानस्पतिकी, वनस्पतिशास्त्र औद्भिदी—botany	वेद्यशाला—observatory
वायु मीनार—tower of wind	वैश्लेषिक—analytic
वास्तुकला—architecture	वैश्लेषिक फलन—analytic function
विंशतिफलक—icosahedron	वैश्व—universal
विक्षेप ज्यामिति—projective geometry	वैश्व बीजगणित—universal algebra
विचरण कलन—calculus of variations	व्यंजक, अभिव्यंजक—expression
विचित्रता, अपूर्वता—singularity	व्यत्यय नियम—law of commutation
वितत भिन्न—continued fraction	व्याख्याता—lecturer
वितरण—distribution	व्युकोज्—sec
विधा, प्रसर—process	व्युकोज्या—secant
विपरीतियाँ—oppositions	व्युज्या—cosecant
विभव—potential	व्युत्क्रम—reciprocal
विमा—dimension	शंकु—cone
विरोधाभास—budget of paradoxes	शंकवामास—conoid
विलोपन—elimination	शब्दकोश—dictionary
विश्वकोष—encyclopedia	शांकव—conic
विश्व गणित—arithmetic	शातघ्निकी—gunnery
universalis	शारीर—anatomy
विषम संख्या—odd number	शुद्ध गणित—pure mathematics
	शुद्ध वर्ग समीकरण—pure quadratic equation
	शुद्ध समय—pure time
	शृङ्खला—chain

श्रेणिक-matrix	समत-continued
श्रेणी-series	सत्य भाजक-true divisor
	सदिश-vector
सकलन-summation	सदिश विज्या-radius vector
सचेतलिपि-notation	सदृश-analogue
सक्रिया-operation	समिक्ट, उपनीत-approximate
संक्षिप्तिरा-abbreviation	सन्निकटन, उपनयन-approximation
संख्या दृष्टि-number sense	समवाचनक-autochroic
संख्या सिद्धान्त, अथ सिद्धान्त-theory of numbers	समकोण त्रिभुज-right-angled triangle
संख्यान-numbering	समघातीय, समघात homogeneous
संख्योल्लेखन-numeration	समचतुर्भुज-rhombus
संगति-correspondence	सम ठोस-regular solid
सम समुदाय-group	समतल ज्यामिति-plane geometry
समिश्र संख्या-complex number	समद्विबाहु त्रिभुज-isosceles triangle
समिश्र राशि-complex quantity	समद्विभाजन, अर्धन-bisection
समिश्र विश्लेषण-complex analysis	समपरिमतीय-isoperimetric
समिश्र समाकलन-complex integration	सम बहुफलक-regular polyhedron
संयुक्त-compound	समबाहु समलम्ब-isosceles trapezium
संयुक्त समानुपात, मिश्र समानुपात-compound proportion	समभुजीय-lozenge
संरचना-structure	सम षड्भुज-regular hexagon
सर्गलिक-collinear	सम संख्या-even number
संश्लेषता-congruence	समाकल-integral
संश्लेषता सिद्धांत-theory of congruences	समाकलन-integration
संगती मध्याह्न-congruent numbers	समाकलन गणित, चलराशि कलन-integral calculus
सत्त्वता-harmony	समाकल पराक्षण-integral test
सहति-sy stem	समाकल समीकरण-integral equation
	समानक, तुल्य-equivalent

समानाफलक—parallelopiped	mentary
समानुपात सिद्धान्त—theory of proportion	सहचरण—association
समानुपाती—proportional	सहचल—covariant
समानुपात चिह्न—sign of proportion	सांकेतिक कलन—symbolic calculus
समान्तर-चतुर्भुज—parallelogram	सातत्य—continuity
समान्तर स्वयंसिद्धि—axiom of parallelism	साधारण भिन्न—vulgar fraction
समान्तर श्रेढी—arithmetical progression	सान्त—finite
समान्तर-पङ्कफलक—parallelopiped	सान्त अन्तर—finite difference
समावृत्ति—content	सान्त कुलक—finite set
समीकरण—equation	सान्त दशमलव भिन्न—terminating decimal fraction
समीकरण मीमांसा—theory of equations	सान्त संघ सिद्धान्त—theory of finite groups
समुत्क्रमण—involution	सारणिक—determinant
समुदाय, संघ—group	सार्व, सार्विक—general
सम्भाव्यता—probability	सार्व अनुपात—common ratio
सम्मिक्त फलन—symmetric function	सार्व अन्तर—common difference
सम्मिति—symmetry	सीमा विधि—method of limits
सरल—simple	सुतथ्यता—precision
सरूप संख्या—figurate number	सुवर्ण गणित—computations relating to gold
सर्पिल—spiral	सुवाह्य—portable
सर्वज्ञ—universalist	सूक्ष्म मान—close value
सर्वसमिका, एकात्म्य—identity	सूचीस्तम्भ, स्तूप—pyramid
सर्वांगसमता—congruence	सृप रेखक—slide rule
सर्वेक्षण—surveying	स्टर्लिंग संख्या—Stirling number
सवर्णन—reduction to a common denominator	स्थानिकी—topology
सहगामी टीका—running commentary	स्थापना, न्यास—statement (of a problem)
	स्थिति मान—place value, positional value

स्थैतिकी—statics	हर—denominator
स्प—tan	हरमिति—harmonics
स्पग्जा—tangent	हरात्मक श्रेणी—harmonical pro-
स्वचल—automaton	gression
स्वतन्त्र चर— <i>independent variable</i>	हारमोनियम—harmonium

परिशिष्ट ५

(अंग्रेजी-हिन्दी शब्दावली)

Abacus—गिनतारा, अंकगणक	Approximate—उपनीत, सन्निकट
Abbreviation—संक्षिप्तिका	Approximation—उपनयन, सन्निकटन
Absolute—परम	Archaeological Survey of India—भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण
Accountancy—लेखापालन	Archbishop—महन्त
Actuary—जीवनांकिक	Architecture—वास्तुकला
Additive—योगात्मक, योगिक	Argand Diagram—आर्गण्ड चित्र
Adfectd quadratic equation—अगुद्ध वर्ग समीकरण	Arithmetic—अंकगणित
Ad infinitum—यावदनन्त	Arithmetical complement—अंकगणितीय पूरक
Algebra—बीजगणित	Arithmetical Progression—समान्तर श्रेढी
Algebraic couple—बीजगणितीय युग्म	Arithmetica Universalis—विश्व गणित
Algebraic solution—बीजगणितीय हल	Arithmetic Mean—समान्तर मध्यक
Alligation—मिश्रण	Artificial Numbr—कृत्रिम संख्या
Altitude—उच्चत्व	Association—सहचरण
Analogue—सदृश	Astrolabe—नक्षत्रयंत्र
Analytic—वैश्लेषिक	Astrology—फलित ज्योतिष
Analytic Function—वैश्लेषिक फलन	Asymptote—अनन्तस्पर्शी
Anatomy—शारीर	Atomic Theory—परमाणु सिद्धान्त
Angle of Slope—प्रवणता कोण	Augment—क्षेपक
Anonymous—अनामक	Automaton—स्वचल
Applied Mathematics—प्रयोजित गणित	A whole—एक पूर्ण सत्ता
	Axiom of Parallelism—समान्तर स्वयंसिद्धि

Balance-तुला	Calculation-परिकलन
Barter-अदला बदली	Calculus-कलन
Barycentric Calculus-सारवेन्द्री कलन	Calculus of Finite Differences- सान्त अन्तर कलन
Bill-बिल	Calculus of Partial Differences- आंशिक अन्तर कलन
Binary-द्विवर्णक, द्विचर	Calculus of Variations-विचरण कलन
Binary Quadratic Form-द्विवर्णक वर्ग रूप	Cancellation-निरसन
Binomial Equation-द्विपद समी- करण	Cardinal Number-गणनात्मक संख्या
Binomial formula-द्विपद सूत्र	Catenary-रज्जुका
Binomial Theorem-द्विपद प्रमेय	Celestial Mechanics-संगोलीय यांत्रिकी
Biquadratic Equation-चतुर्घाति समीकरण	Cell-कुटी
Biquaternion-द्विचतुष्टय	Censor-दोषवेचक
Bisection-अर्धन, समद्विभाजन	Centre of Curvature-वक्रता केन्द्र
Body-काय	Centre of mass-द्रव्यमान केन्द्र
Book-keeping-पुस्तकालन	Centre of Oscillation-दोलन केन्द्र
Botany-भौद्धिमिदी, वनस्पतिशास्त्र, वानस्पतिकी	Chain-श्रृंखला
Bound-परिमा	Chancellor-कुलपति
Boundary Condition-पर्यन्त अनुबन्ध	Circle-वृत्त
Bounded-परिमित	Circular-वर्तुल, वृत्ताकार, वृत्तीय
Boundedness-परिमितता	Circular Points at Infinity- आनन्तिक वर्तुल बिन्दु
Brachistochrone-द्रुततमपातवक्र	Cissoid-परशु
Budget of Paradoxes-विरोधा- भास संग्रह	Class-वर्ग
Calculating Machine-परिकलन यंत्र	Close value-सूक्ष्म मान
	Comage-टकण
	Collinear-सरेखिक
	Collimation-रेखीकरण

Commerce—वाणिज्य	Constant—अचर
Common Difference—सार्व अन्तर	Construction—रचना
Common Ratio—सार्व अनुपात, सार्व निष्पत्ति	Content (of a point)—(बिन्दुकी) समावृत्ति
Complex Analysis—संमिश्र विश्लेषण	Contents—विषयवस्तु
Complex Integration—संमिश्र समाकलन	Continued Fraction—वितत भिन्न
Complex Number—संमिश्र संख्या	Continuity—सातत्य
Complex quantity—संमिश्र राशि	Continuous—सतत
Complement—पूरक	Convergence—अभिसरण
Complements—पूरक फलन	Convergent—अभिसारी
Compound—संयुक्त	Coordinates—नियामक, निर्देशांक
Compound Proportion—संयुक्त समानुपात, मिश्र समानुपात	Copyist—प्रतिलिपिक
Compound Series—संयुक्त श्रेणी	Correspondence—संगति
Computation—अभिकलन	Cos—कोज्
Computations relating to gold— सुवर्ण गणित	Cosec—व्युज्या
Conduction of Heat—ताप संवहन	Cosecant—व्युज्या
Conc—शंकु	Cosine—कोज्या
Congruence—१. सर्वांगसमता २. संश्लेषता	Cot—कोस्प
Congruent Numbers—संश्लेषी संख्याएँ	Cotangent—कोस्पज्या
Congruent Triangles—सर्वांगसम त्रिभुज	Counting—गणन, गिनना
Congruous Numbers—अनुरूपी संख्याएँ	Couple—युग्म
Conic—शांकव	Covariant—सहचल
Conoid—शंकवामास	Coversed Sine—उत्क्रम ज्या
	Coversin—उत्कोज्
	Cross-ratio—तिर्यक् अनुपात
	Cross-reference—अन्तर्निर्देश
	Cubature—घनन
	Cube—घन
	Cubic Surface—घन तल
	Curvature Tensor—वक्रता प्रदिश
	Curve—वक्र

Cut—काट	Disprove—विप्रमाणन
Cyclic Method—चक्रवाल विधि	Distribution—वितरण
Cyclic quadrilateral—वृत्तीय चतुर्भुज	Divergent—अपसारी
Cycloid—चक्रज	Dodecahedron—द्वादशफलक
Data—न्यास	Double Curvature—द्विव वक्रता
Dedekind cut—डेडीकाइण्ड काट	Double Periodicity—द्विक परा वसंता
Definite—निश्चित	Doubly periodic—द्विकावर्त
Degree—अंश	Drawing—आपहण, उद्ग्रेषण, रेखन
Denominator—हर	Duality—द्वैधता
Dependent Variable—परतन्त्र चर	Dynamics—गतिविज्ञान, गतिशी
Design—परिरूप	Elasticity—प्रत्यास्थता
Designer—परिरूपक	Element—अल्पाक्ष
Determinant—सारणिक	Elimination—विलोपन
Determinate—निर्णीत	Ellipsoid—दीर्घवृत्तज
Dial—डायल घट्यनीक	Elliptic function—दीर्घवृत्तीय फलन
Dialect—उपभाषा	Elliptic Integral—दीर्घवृत्तीय समाकल
Diary—दैनिकी	Elliptic Involution—दीर्घवृत्तीय समुत्क्रमण
Dictionary—शब्दकोश	Eloquence—शामिता
Differential Coefficient—अवकल गुणांक	Encyclopedia—विश्वरोश
Differential Equation—अवकल समीकरण	Endless—अन्तहीन
Differential Notation—अवकल सकेतलिपि	Energy—ऊर्जा
Dimension—विमा	Engraving—उत्तरण
Directed—लक्षित	Enumerable—परिगणनशील
Director—निदेशक	Enumeration—परिगणन
Direct Sine—क्रम ज्या	Envelope—अन्वालोप
Discontinuity—असातत्व	Equation—समीकरण
	Equivalent—१ तुल्य २ समान
	Estimation—आवलन

Eulerian समाकल	Integral-आँयलरी	Geology-भौमिकी
Even Number-सम संख्या		Geometrical Progression- गुणोत्तर श्रेढी
Evolute-केन्द्रज		Geometry-ज्यामिति
Existence Theorem-अस्तित्व प्रमेय		Gnomon-कीली
Experimental Physics-प्रयोगात्मक भौतिकी		Goddess of Reasoning-इड़ा
Expression-व्यंजक, अमिव्यंजक		Golden Section-कनक काट
Face-फलक		Graphical-आलेखिक
Farm-प्रक्षेत्र		Gravitation-गुरुत्वाकर्षण
Fellow-अविसदस्य		Greatest-ज्येष्ठ
Female Number-मादा संख्या		Group-समुदाय, संघ
Field-क्षेत्र		Gunnery-शातघ्निकी
Figurate Number-सरूप संख्या		Guntur chain-गण्टर शृंखला
Finite-सान्त		Guntur line-गण्टर रेखा
Finite Difference-सान्त अन्तर		Guntur Quadrant-गण्टर चरण
Finite Set-सान्त कुलक		Gunter Scale-गण्टर मापिनी
First Term-प्रथम पद		Half-chord-अर्ध-जीवा
Focal Sector-नाभिग द्वैत्रिज्य		Harmonic Progression-हरात्मक श्रेढी
Folio-जोड़ी		Harmonics-हरमिति
Forestry-वनविद्या		Harmoniun-हारमोनियम
Fraction-भिन्न		Harmony-संस्वरता
Frustum-छिन्नक		Heiratics-वर्मलिपि
Fundamental-मूलभूत		Heiroylyphics-चित्रलिपि
Gap-रिक्ति		Heretic-उद्धर्षी
General-सार्व, सार्विक		Higher Degree-उच्च घात
Geodesy-भूमिति		Homogeneous-समघातीय, समघात
Geodetic-भूमितीय		Homology, One-one Corres- pondence-एकैकीसंगति
Geologist-भौमिकीज्ञ		Honorary Degree-मानोपाधि

Horizontal—क्षैतिज	Infinitesimal Quantity—अत्यल्प राशि
Hydraulics—आमस्यी	Infinity—अनन्त, अनन्ती
Hydro-mechanics—द्रवयानित्री	Instalment—क्षेप
Hydrostatics—द्रवस्थैतिकी	Initial Number—आदि संख्या
Hyperbola—अतिपरवलय	Inscribed—अन्तर्लिखित
Hyperbolic Function—अतिपरवलीय लीय फलन	Integer—पूर्णांक, पूर्ण संख्या
Hyperbolic Space—अतिपरवलीय आकाश	Integral—समाकल
Hyperboloid of Revolution—परिक्रमण अतिपरवलयज	Integral Calculus—समाकलन गणित, चलराशि कलन
Hyper-geometric—पराग्यामिनीय	Integral Equation—समाकल समीकरण
Hypothesis—परिचल्यना	Integral number—पूर्णांक, पूर्ण संख्या
Icosahedron—विंशतिफलक	Integral Test—समाकल परीक्षण
Ideal—आदर्श	Integration—समाकलन
Ideal number—आदर्श संख्या	Intellectual attainments—बौद्धिक अभ्याप्तियाँ
Ideal Theory—आदर्श सिद्धान्त	Interpretation—निर्बचन
Identity—एकात्म्य, सर्वसमिका	Interval—अन्तराल
Imaginary Complex Quantity—काल्पनिक समिश्र राशि	Intuition—अन्त स्फूर्ति
Independent Variable—स्वतन्त्र चर	Invariant—निश्चल
Indeterminate Equation—अनिर्णित समीकरण	Invention—उपज्ञा
Index Law—घातांक नियम	Inverse, Reverse—उत्क्रम
Indivisible—अभाज्य, अविभाज्य	Inverse Differentiation—उत्क्रम अवकलन
Infinite Class—अनन्त वर्ग	Involution—समुत्क्रमण
Infinitely small Quantity—अत्यल्प राशि	Irrational—अपरिमयेय
Infinite Series—अनन्त श्रेणी	Irrational Number—अपरिमयेय संख्या
Infinite Set—अनन्त वलक	Irreducible Case—अव्युत्तरणीय दशा

Isoperimetric—समपरिमितिय	Magic Square—माया वर्ग
Isosceles Trapezium—समबाहु समलम्ब	Male Number—नर संख्या
Junior—अनुज	Mass—द्रव्यमान
Latitude—अक्षांश	Mathematicals—गणितीयक
Law of Commutation—प्रत्यय नियम	Mathematics—गणित
Law of Quadratic Reciprocity—वर्ग व्युत्क्रमता नियम	Matrix—ध्रेणिक
Law of Motion—गति नियम	Maxima and Minima Points— भूयिष्ठ और अल्पिष्ठ बिन्दु
Least—कनिष्ठ	Mean—मध्यक
Least Square—कनिष्ठ वर्ग	Mean Motion—मध्यक गति
Lecturer—व्याख्याता	Mechanics—यान्त्रिकी
Lemma—प्रमेयिका	Mensuration—मापिकी
Lens—लेंस	Meridian—याम्योत्तर
Lever—उत्तोलक	Metaphysics—अतिमानस्य
Line—रेखा	Meteorological Office—ऋतुविज्ञान कार्यालय
Linear Associative Algebra— एकघात सहचरण बीजगणित	Method of Cascades—प्रपात विधि
Linear Equation—एकघात समी- करण	Method of Fluxions—प्रवाह विधि
Linear Integral—रेखा समाकल	Method of Exhaustion—निःशेषण विधि
Lituus—लिटुअस	Method of Least Squares—न्यून- तम वर्ग विधि
Locus—निधि, बिन्दुपथ	Method of Limits—सीमा विधि
Logarithm—लघुगणक	Mobious Band—मोबियस बन्ध
Logarithmic Spiral—लघुगणकीय सर्पिल	Model—प्रतिमान
Lozenge—समभुजीय	Moment—धूर्ण
Lune—चन्द्रम	Monogram—गुम्फाक्षर
	Monograph—एकवन्ध
	Motive Force—गामक बल
	Multiple—अपवर्त्य
	Multiple Point—बहुलक बिन्दु

Multiplicand-गुण्य	Oppositions-विपरीतियां
Multiplication of the Cube- घन गुणन	Optics-चाक्षुषी
Multiplicative Number-गुणना त्मक सख्या	Option-अनुवत्प
Multiplier-गुणक	Order-वर्ण, क्रम
Natural Philosopher-प्राकृतिक दार्शनिक	Order of Progression-प्रगति क्रम
Navigation-नीतरण, नौबहन	Ordinal Number-क्रम सख्या, क्रममात्मक सख्या
Negative Power-ऋण घात	Orientalist-प्राच्यभाषाज्ञ
Non-intersecting-अछेदक	Paper (Research)-अभिपत्र
Normal-अभिलम्ब	Parabola-परबलय
Notation-संकेतलिपि	Paraboloid-परबलयज
Numbering-संख्यान	Parallelogram-समान्तरचतुर्भुज
Number of Terms-गच्छ	Parallelogram of Forces-बल समान्तर-चतुर्भुज
Number Sense-संख्या बुद्धि	Parallelopiped-समानाफलक
Numerating Rod-संख्यान छड	Parameter-प्राचल
Numeration-संख्योल्लेखन	Part-भाग
Numerator-अंश	Partial Differentiation-लडा- वकलन
Oblique Axis-तिर्यक अक्ष	Partial Fraction-आंशिक भिन्न
Observatory-वेधशाला	Pascal triangle-पास्कल त्रिभुज
Octagon-अष्टभुज	Path-पथ
Octahedron-अष्टफलक	Pencil of lines-रेखावली
Octave-अष्टक	Percussion of Bodies-कायो का आघात
Odd Number-विषम सख्या	Perimeter-परिमाप
One-one Correspondence, Homology-एकैकीसंगति	Periodic-आवत
One-valued-एकमानीय	Periodic Function-आवत फलन
Operation-संक्रिया	Permanence-चिरस्थायित्व
	Permutations and Combina-

tions-क्रमचय और संचय	Prosody-छन्दशास्त्र
Perpetual-चिरस्थायी	Provision-प्रावधान
Perpetual Calendar-चिरस्थायी तिथिपत्र	Pulverisor-कुट्टक :
Perpetual Motion-चिरस्थायी गति	Pure Mathematics-शुद्ध गणित
Perspective-दृष्टिसाम्य	Pure Quadratic Equation-शुद्ध वर्ग समीकरण
Physics-भौतिकी	Pure Time-शुद्ध समय
Physiology-दैहिकी	Prism-स्तूप, सूचीस्तम्भ
Place Value, Positional Value-स्थिति मान	Quadrangle-चतुष्कोण
Plane Geometry-समतल ज्यामिति	Quadrature-क्षेत्रकलन
Polar-ध्रुवी	Quantic-पंचघातक
Pole-ध्रुव	Quantity-राशि, मात्रा
Polyhedron-बहुफलक	Quaternion-चतुष्टय
Portable-सुवाह्य	Quotient-भजनफल, भागफल
Positional Value, Place Value-स्थिति मान	Radius Vector-सदिश त्रिज्या
Postulate-अवाध्योपक्रम	Range of Points-बिन्दु माला
Potential-विभव	Rate-दर
Power Series-घात श्रेणी	Rate of Change-परिवर्तन दर
Precision-सुतथ्यता	Rational Number-परिमेय संख्या
Prime Number-रूढ़ संख्या, अभाज्य संख्या	Rational Right-angled Triangle-परिमेय समकोणत्रिभुज
Principle of duality-द्वैवता सिद्धान्त	Reciprocal-व्युत्क्रम
Probability-संभाव्यता	Reckoning-अनुगणन
Process-प्रसर, विघा	Record-अभिलेख
Projective Geometry-विक्षेप ज्यामिति	Rectangular Hyperbola-आयताकार अतिपरवलय
Proportional-समानुपाती	Rectification-चापकलन
Proportional part-अनुपाती भाग	Recto-दायाँ
	Rector-कुलाचार्य

Recurring Decimal Fraction—	Sec—व्युकोज
आवर्त दशमलव भिन्न	Secant—व्युबोज्या
Recurring Series—आवर्त श्रेणी	Segment—खंड, अवघा
Reduction—लघुकरण	Segment of a Circle—वृत्तखंड
Reduction to a common denominator—सर्वपंन	Semi-circular—अर्धवर्तुल
Reference—अभिदेश	Semi-perimeter—अर्ध परिमाप
Regular Hexagon—सम षडभुज	Senior—अग्रज
Regular Polyhedron—सम बहुफलक	Sense of Counting—गणना बुद्धि
Regular Solid—सम ठोस	Sequence—अनुक्रम
Republic—गणतन्त्र	Series—श्रेणी
Residue—अवशेष	Set—कुल
Restoration—पुन स्थापन	Shadow reckoning—छाया मापन
Reverse, Inverse—उत्क्रम	Side Face—पाश्वर्क फलक
Revolunon—परिव्रमण	Sieve of Eratosthenes—
Rhombus—समचतुर्भुज	इरटोस्तेनीज की छलनी
Right-angled Triangle—समकोण त्रिभुज	Sign of Difference—अन्तर चिह्न
Right Triangular Prism—	Sign of Proportion—समानुपात चिह्न
लांबिक त्रिभुजीय सक्षेत्र	Sign of the Zodiac—राशि चिह्न
Rigour—परपक्वता	Simple—सरल
Rule of Inversion—उत्क्रमण नियम	Simultaneous Equations—
Rule of Odd Terms—विषमराशिक	युग्मपद समीकरण
Rule of Three—त्रैराशिक	Sim—ज्या
Running Commentary—	Sine—ज्या
गहगामो टीका	Singularity—अपूर्वता, विचित्रता
Sand Reckoner—रेत गणक	Slide Rule—ग्लाइड रेगल
Scale—मापित्री, पैमाना	Solid Geometry—ठोस ज्यामिति
Sea-port—समुद्र बन्दर	Solidus—सामरेखा
Seat—आसन	Space—आकाश
	Spherical—गोलीय, गोणसार
	Spherical Geometry—गोलीय

रेखागणित	Symmetric Function—सम्मित फलन
Spherical Harmonics—गोलीय हरमिति	Symmetry—सम्मिति
Spheroid—उपगोल, गोलाभास	System—संहति
Spiral—सर्पिल	System of Rays—रश्मि संहति
Square Root—वर्ग मूल	Tan—स्प
Squaring—वर्गण	Tangent—स्पज्या
Standard—मानक	Tautochrone—समकालवक्र
Standardisation—मानकीकरण	Technical Institute—प्राविधिक संस्थान
Statement (of a problem)— न्यास, स्थापना	Telescope—दूरवीक्ष
Statics—स्थैतिकी	Telling—मतगणन
Stereographic projection—गोलीय विक्षेप	Tensor—प्रदिश
Stirling Number—स्टर्लिंग संख्या	Terminating Decimal Fraction— सान्त दशमलव भिन्न
Structure—संरचना	Tertiary—त्रिवर्णक
Sub-interval—उपान्तराल	Terse—परिसंहत
Sub-set—उपकुलक	Test—परीक्षण
Substitution Group—प्रतिस्थापन संघ	Test of Convergence—अभिसरण परीक्षण
Successive Approximation— उत्तरोत्तर उपनयन	Tetrahedron—चतुष्फलक
Summation—संकलन	Theological—धर्मशास्त्रीय
Sum of Terms—पदों का योग	Theory of Congruences— संश्लेषता सिद्धान्त
Sun Dial—घूप घड़ी	Theory of Equations—समीकरण मीमांसा
Surd—करणी	Theory of Finite Groups—सान्त संघ सिद्धान्त
Surface—तल, पृष्ठ	Theory of Functions—फलन सिद्धान्त
Surface Locus—तल निवि	Theory of Invariants—निश्चल
Surplice—ग्रामिक चोगा	
Surveying—सर्वेक्षण	
Symbolic Calculus—सांकेतिक कलन	

मिद्धान्त	Undetermined form-अनिर्णीत रूप
Theory of Numbers-संख्या	Uniform Function-एकरूप फलन
सिद्धान्त, अथ मिद्धान्त	Unique-अद्वितीय
Theory of Proportion-समानुपात	Unit-इकाई, मात्रक
सिद्धान्त	Universal-वैश्व
Theory of substitution-	Universalist-सर्वज्ञ
प्रतिस्थापन मिद्धान्त	Universal Algebra-वैश्व धोरणगणित
Thesis-प्रबन्ध	
Three-dimensional-त्रैविम, त्रिविम	Vacancy-रिक्ति
Topology-स्थानिकी	Vacuum-निर्वात
Toricelli vacuum-टॉरीसेल्ले	Variable-चर
निर्वात	Vector-सदिश
Total Differentiation-पूर्णावकलन	Velocity-वेग
Tower of Wind-वायु की मीनार	Versed Sine-उत्क्रम ज्या
Transliteration-वर्णान्तर	Versin-उज्या
Transversal-तिर्यग्रेखा	Verso-वापस
Trial Divisor-जाँच भाजक	Vertical-ऊर्ध्व, ऊर्ध्वाधर
Trial Quotient-जाँच भजनफल	Vibrating String-कम्पमान डोरी
Triangle of Forces-बल त्रिभुज	Volume-आयतन
Triangular Number-त्रिभुजीय	Vulgar Fraction-साधारण भिन्न
संख्या	
Trigonometry-त्रिकोणमिति	Warden-अभिरक्षक
Trisectrix-त्रिभागज	Wave-तरंग
Trochoid-वक्रज	Wave Theory-तरंग सिद्धान्त
True Divisor-सत्य भाजक	Wedge-टक्, पत्ती
Two-dimensional-द्वैविम	Witch of Agnesi-अग्नेसिका
Undecahedron-एकादशफलक	X-axis-याक्ष

